







Digitized by Madhuban Trust, Delhi

EB,

श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायन-व्यास-प्रणीतम्

कूर्मपुरागाम्

सम्पादक:-

डा० रामशंकरभट्टाचार्यः

(व्याकरणाचार्यः, एम० ए०; पी-एच० हो०)

[वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालयः]

प्रकाशक:

इण्डोलाँजियल चुयहाउस

सी॰ के॰ ३१/१० नेपालीखपड़ा

वाराणसी

प्रकाशक रामेश्वरसिंह इएडोलाजिकल बुकहाउस पोस्ट वक्स नं ० ९८ वारासिक्ष

मर्वाधिकार सुरक्षित १९६७

मूल्य (०)

मुदक: —
श्री प्रेस
कतुम्रापुरा
विशेश्वरगंज
वाराससी

INTERNATION OF

(of apply, the de that alte

कूर्मपुराण-विषयानुक्रमणी पूर्वभागः

| | | 10 | | | |
|------------|--|--------------------------------|----------------|--|------------|
| भ्रध्याय | विषयः | पृष्ठम् | ग्रध्या य | पः विषयः | 28 |
| 8 | इन्द्रच ुस्रमोक्षवर्णनम् | . 8 | २७ | राजवंशानुकीर्तनम् | ्ठ ७ |
| २ | वर्णाश्रमवर्णनम् | Ę | and the second | युगधर्मानुकीर्तनम् | 1 |
| ą | चातुराश्रम्यकथनम् | 3 | 1 311 | युगधर्मवर्णनम् | 9 |
| 8 | प्राकृतसर्गवर्गानम् | १० | 30 | | ७१ |
| ¥ | कालसख्याकथनम् | 83 | 38 | वाराणसीमाहात्म्यवर्णनम् वाराणसीमाहात्म्यवर्णनम् | 98 |
| Ę | पृथिव्युद्धारवर्णनम् | 23 | 32 | | 89 |
| 9 | सर्गकथनम् | 88 | | वाराणसीमाहात्म्यवर्णनम् | 50 |
| 5 | मुख्यादिसर्गकथनम् | १६ | 33 | वाराणसीमाहात्म्यवर्णनम् | 53 |
| 3 | पद्मोद्भवप्रादुर्भाववर्णनम् | 80 | ₹8 | वाराग्रसीमाहात्म्यवर्णनम् | 5 |
| 80 | रुद्रसृष्टिवर्णनम् | | ३४ | प्रयागमाहात्म्यवर्णनम् | 54 |
| | | २० | ३६ | ्रप्रयागमाहातम्यवर्णानम् | = 6 |
| 88 | देव्यवतारवर्णनम् | २३ | ३७ | प्रयागमाहातम्यवर्णनम् | 55 |
| १२ | देवीनामसहस्रकथनम् | २३ | ₹≒ | प्रयागमाहाटम्यवर्गानम् | 55 |
| १३ | भृग्वादिसर्गकथनम् | ३३ | 38 | भुवनकोशविन्यासंवर्णनम् | 59 |
| 88 | स्वायम्भुवमनुसर्गकथनम् | ३४ | 80 | भुवनकोशविन्यासवर्गानम् | 83 |
| ६४ | दक्षयज्ञविघ्वं सवर्गानम् | ३६ | 88 | भुवनकोशविन्यासवर्णन म् | ६२ |
| १६ | दक्षमुतावंशवर्गानम् | 80 | 82 | भुवनकोशिवन्यासवर्णनम् | £3 |
| १७ | त्रिविक्रमचरितवर्गानम् | ४७ | 85 | भुवनकोशिवन्यासवर्णनम् | 13 |
| १८ | दक्षमुतावशवर्णनम् | प्र | 88 | पर्वतसंख्यानवर्णनम् | ६६ |
| 39 | ऋषिवंशवर्णनम् | प्र | ४५ | मेरुवर्णनम् | 93 |
| ? o | राजवंशवर्गानम् | पुर | ४६ | केतुमाल्यादिवर्षवर्णानम् | 23 |
| 88 | इक्ष्वाकुव शवर्णनम् | पूर | 89 | जम्बूद्वीपवर्णनम् | 200 |
| 2 | सोमवंशवर्णनम् | ५७ | 55 | प्लक्षद्वीपादिकथनम | १०२ |
| 3 : | सोमवं शवर्गानम् | Ę. | 38 | भुवनकोशिवन्यासवर्णनम् | १०४ |
| | यदुवशानुकी तिवर्णनम् | ६१ | ५० | मन्वन्तरकीर्तने विष्णुमाहात्म्यवर्णनम् | |
| ્યું ; | श्रीकृष्णतपश्चरणवर्णनम् | ६४ | ४१ | वेदव्यासकथनम् | १०५ |
| | लिङ्गाविभविवर्णनम् | E = | ५२ | महादेवावतारकथनम | 108 |
| | The state of the s | A COLUMN TWO IS NOT THE OWNER. | | | 1 |

(?)

उत्तरभागः

| अध्य | ाय: | विषयः | पृष्ठम् | श्रध्य | ायः | विषयः | पृष्ठम् |
|------|---------|-----------------------------------|----------------|--------|-----|--|---------|
| | | गीता—ज्ञानयोगवर्णनम् | 555 | २३ | ,, | श्रशोचविधिवर्णनम् | १५४ |
| 2 | | ज्ञानयोगवर्णनम् | ११३ | २४ | ,, | ग्रिग्निहोत्रादिनियमवर्ग्गनम् | ६४७ |
| 7 | " | श्रव्यक्तादिज्ञानयोगवर्ग्गनम् | ११५ | २५ | " | द्विविधगृहिवृत्तिकथनम | १५६ |
| Y | " | देवदेवमाहात्म्य-ज्ञानयोगवर्गानम् | ११६ | २६ | 33 | दानधर्मादिकथनम् | 378 |
| ¥ | " | देबदेवनृत्यदर्शन-भक्तियोगवर्गानम् | ११७ | २७ | ,, | वानप्रस्थाश्रमधर्मवर्णनम | १६२ |
| Ę | " | परमेश्वरनृत्यदर्शनज्ञानयोगवर्णतम् | 388 | २इ | 21 | यतिवर्मकयनम् | १६३ |
| 6 | " | परमेष्ठिप्रभाववर्णनम् | १२१ | 39 | " | यतिधर्मकथनम् | १६४ |
| 5 | | संसारतारणज्ञानयोगवर्णनम् | १२२ | 30 | 22 | प्रायश्चित्तकथनम् | ३३१ |
| 3 | 27 | विश्वरूपकारणज्ञानयोगवरणनम् | १२३ | 38 | 33 | कवालमोचनमाहात्म्यवर्णानम् | १६८ |
| 20 | | लिङ्गब्रह्मज्ञानयोगवर्णनम् | 858 | 3 ? | " | प्रायश्चितनियमकथनम् | 800 |
| 22 | " | योगादिज्ञानयोगवर्णनम् | १२५ | 33 | " | प्रायश्चित्तविवेकवर्णनम् | १७२ |
| 12 | | तगीता—बाह्यणकर्मकथनम् | १३० | 38 | | वीर्थोपाख्यानवर्णनम् | १७७ |
| 23 | 21 | ग्राचमनादिकमेयोगवर्णन म् | १३२ | ३५ | | तीर्थोपाख्याने कालवधवर्णनम् | 250 |
| 88 | 10000 | वेदाध्ययनादिक्रमनियमवर्णनम् | 133 | ३६ | | तीर्थीपाख्यानवर्णनम् | १८१ |
| १५ | | धर्माध्यायवर्णनम् | १३६ | ३७ | 7 | तीर्धामाहातम्ये देवदारुवनप्रवेशवर्णनम् | १८३ |
| १६ | | गाथपानार निरामधर्मे वर्गानम | १३८ | ३८ | | नर्मदा-माहात्म्यवर्णनम् | 039 |
| 20 | | भक्ष्याभक्ष्यनिर्ण्यकथनम् | 188 | 38 | | नर्मदातीर्धमाहात्म्यवर्णनम् | 138 |
| 25 | | बाटामानां नित्यिक्याविधिवर्गाना | न् १४० | 80 | | नर्मदामाहात्म्यवर्णनम् | १६५ |
| 38 | 1000000 | भोजनादिनियमविधिनगानम | १४७ | 88 | | जाप्येश्वरमाहात्म्यवर्णनम् | 638 |
| 20 | 1 | शास्त्रसम्बद्धाः | १४८ | ४२ | | तीर्थमाहातम्यवर्णनम् | 331 |
| 28 | | शासकलकथनम | १५० | ४३ | | प्रलयवर्णनम् | २०० |
| ວຣ | | श्चादकलाक्यनम | १५१ | 188 | | प्रतिसर्गादिकथनम | २०२ |

कूर्मपुराग्रम्

पूर्वभागः

प्रथमोऽध्यायः

नारायणं नमस्क्रत्य नरश्चेव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीश्चेव ततो जयमुदीरयेत्॥

नमस्कृत्याप्रमेयाय विष्णवे कूर्मरूपिणे । पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं विश्वयोनिना ॥ १ ॥ सत्रान्ते सूतमनघं नैमिषेया महर्षयः । पुराणसंहितां पुरायां पप्रच्छू रोमहर्षणम् ॥ २ ॥ त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः । इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ॥ ३ ॥ तस्य ते सर्वरोमाणि वचसा हृषितानि यत् । द्वैपायनस्य तु भवांस्ततो वे रोमहर्षणः ॥ ४ ॥ भवन्तमेव भगवान् व्याजहार स्वयं प्रभुः । सुनीनां संहितां वक्तुं व्यासः पौराणिकीं पुरा ॥ ५ ॥ त्वं हि स्वायम्भुवे यज्ञे सुत्याहे वितते सित । सम्भूतः संहितां वक्तुं स्वांशेन पुरुषोत्तमः ॥ ६ ॥ तस्माद्भवन्तं पृच्छामः पुराणं कौर्ममृत्तमम् । वक्तुमहं स्व चास्माकं पुराणार्थविशारद ॥ ७ ॥ मुनीनां वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः । प्रणम्य मनसा प्राह गुरुं सत्यवतीसुतम् ॥ ६ ॥

रोमहर्पण उवाच

नमस्कृत्य जगद्योनि कूर्मरूपधरं हरिम् । वक्ष्ये पौराणिकीं दिन्यां कथां पापप्रणाधिनीम् ॥ ९ ॥
यां श्रुत्वा पापकर्मापि गच्छेत परमां गितम् । न नास्तिके कथां पुर्यामिमां ब्रूयात् कदाचन ॥१०॥
श्रद्धानाय धार्मिकाय द्विजातये । इमां कथामनुब्रयात् साक्षान्नारायणेरिताम् ॥११॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥१२॥
ब्राह्मां पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेत्र च । शैवं भागवतञ्चैव भविष्यं नारदीयकम् ॥१३॥
मार्कर्षेत्रयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्तमेव च । लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च ॥१४॥
कौमं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनुत्तमम् । श्रष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्मार्यडमिति संज्ञितम् ॥१४॥
श्रन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु । श्रष्टादश पुराणानि श्रुत्वा संक्षेपतो द्विजाः ॥१६॥
श्राद्यं सनत्कुमारोवतं नारसिंहमतः परम् । तृतीयं स्कान्दमृदृष्टं कुमारेण तु भाषितम् ॥१०॥

3

चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम् । दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदीयमतः परम् ॥१८॥ कापिलं वामनञ्चेव तथैवोशनसेरितम् । ब्रह्माएडं वामनञ्चेव कालिकाह्वयमेव च ॥१९॥ माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम् । पराशरोक्तं मारीचं तथैव भार्गवाह्वयम् ॥२०॥ इदन्तु पञ्चदशमं पुराणं कौर्ममुत्तमम् । चतुर्द्धा संस्थितं पुरायं संहितानां प्रभेदतः ॥२१॥ ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीत्तिताः। चतस्रः संहिताः पुराया धर्म-कामार्थ-मोक्षदाः ॥२२॥ इयन्तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता । भवन्ति षट् सहस्राणि व्लोकानामत्र संख्यया ॥२३॥ यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः । माहात्म्यमिखलं ब्रह्म ज्ञायते परमेश्वरः ॥२४॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं पुराया दिव्या प्रासिङ्गिकी कथा ॥२५॥ ब्राह्मणाचैरियं घार्या धार्मिकैर्वेदपारगैः । तामहं वर्णियष्यामि व्यासेन कथितां पुरा ॥२६॥ पुराऽमृतार्थं दैतेय-दानवैः सह देवताः । मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥२७॥ मध्यमाने तदा तस्मिन् कूर्मरूपी जनार्दनः । बभार मन्दरं देवो देवानां हितकाम्यया ॥२८॥ तुष्टुवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः । कूर्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमन्ययम् ॥२९॥ तदन्तरेऽभवद्देवी श्रीर्नारायणवल्लभा । जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः ॥३०॥ तेजसा विष्णुमन्यक्तं नारदाद्या महर्षयः । मोहिताः सह शक्रेण श्रेयोवचनमञ्जवन् ॥३१॥ भगवन् देवदेवेश नारायण जगन्मय । कैषा देवी विशालाक्षी यथावद् ब्रहि पृच्छताम् ॥३२॥ श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुदीनवमर्दनः । प्रोवाच् देवीं सम्प्रेक्ष्य नारदादीनकल्मषान् ॥३३॥ इयं सा परमा शक्तिमन्मयी ब्रह्मरूपिणी । माया मम प्रियाऽनन्ता ययेदं धार्यते जगत् ॥३४॥ ग्रनयैव जगत् सर्वं सदेवासुर-मानुषम् । मोहयामि द्विजश्रेष्ठा ग्रसामि विस्जामि च ॥३४॥ उत्पत्ति प्रलयञ्चैव भूतानामागित गतिम् । विद्यया वीक्ष्य चात्मानं तरन्ति विपुलामिमाम्।।३६।। ग्रस्यास्त्वंशानिधष्टाय शक्तिमन्तोऽभवन् सुराः । ब्रह्मेशानादयः सर्वे सर्वशक्तिरियं मम ॥३७॥ सेषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणारिमका । प्रागेव मत्तः सञ्जाता श्रीः कल्पे पद्मवासिनी ॥३८॥ चतुर्भुंजा शङ्ख-चक्र-पद्महस्ता स्नगन्विता। कोटिसूर्यप्रतीकाशा मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥३९॥ नालं देवा न पितरो मानवा वासवोऽपि च । मायामेतां समुत्तत् ये चान्ये भूवि देहिनः ॥४०॥ इत्युक्ता वासुदेवेन मुनयो विष्णुमब्रुवन् । ब्रूहि त्वं पुराडरीकाक्ष यद्धि कालक्षयेऽपि च ॥४१॥ श्रथोवाच हृषीकेशो मुनीच् मुनिगणाचितः । ग्रस्ति द्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ॥४२॥ पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शङ्करादिभिः । दृष्ट्वा मां कूर्पसंस्थानं श्रुत्या पौराणिकीं स्वयम् ॥४३॥ संहितां मन्मुखाद्वियां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान् । ब्रह्माणश्व महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः ॥४४॥ मच्छक्ती संस्थितान् बुद्ध्वा मामेव शरणं गतः। सम्भाषितो मया चाथ विप्रयोगि गमिष्यसि ॥४५॥ इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो जाति स्मरिस पौर्विकीम् । सर्वेषामेव भूतानां देवानामप्यगोचरम् ॥४६॥ वक्तव्यं तद् गुह्यतमं दास्ये ज्ञानं तवानघ । लब्ध्वा तन्मामकं ज्ञानं मामेवान्ते प्रवेक्ष्यसि ॥ ८७॥ म्रां त्वं तत्र तिष्ठ सुनिर्वृतः । वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते कार्यार्थं मां प्रवेक्ष्यसि ॥४८॥ मां प्रणम्य पुरीं गत्वा पालयामास मेदिनीम् । कालधर्मं गतः कालाच्छ्वेतद्वीपे मया सह ॥४९॥ भूक्तवा तान् वैष्णवान् भोगान् योगिनामप्यगोचरान् । मदाज्ञया मुनिश्रेष्ठा जज्ञे विप्रकुले पुनः ॥५०॥ ज्ञात्वा मां वासुदेवाख्यं यत्र हे निहितेऽक्षरे । विद्याविद्ये गूढरूपं यद ब्रह्म परमं विदुः ॥५१॥ सोऽर्चयामास भूतानामाश्रयं परमेश्वरम् । व्रतोपवास - नियमैहोंमैब्राह्मिण्तपंगै: ृतज्जापो तन्नमस्कारतिन्नष्ठस्तत्परायणः । भ्राराधयन् महादेवं योगिनां हृदि संस्थितम् ॥५३॥ तस्यैवं वर्त्तमानस्य कदाचित् परमा कला । स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं विष्णुसमुद्भवम् ॥५४॥ दृष्ट्वा प्रणम्य शिरसा विष्णोर्भगवतः प्रियाम् । संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः कृताञ्जलिरभाषत ॥५५॥

इन्द्रयुम्न उवाच

का त्वं देवि विशालाक्षि विष्णुचिह्नाङ्किते शुभे । याथातथ्येन वै भावं तवेदानौं ब्रवीहि मे ॥५६॥ तस्य तद्वाक्यमाकएर्यं सुप्रसन्ना सुमङ्गला । हसन्ती संस्मरत् विष्णु प्रियं ब्राह्मएामब्रवीत् ॥५७॥

श्रीरुवाच

न मां पश्यन्ति मुनयो देवाः शक्रपुरोगमाः । नारायणित्मकामेकां मायाऽहं तन्मयी परा ॥४०॥ न से नारायणाद् भेदो विद्यते हि विचारतः । तन्मय्यहं परं ब्रह्म स विष्णुः परमेश्वरः ॥४९॥ येऽचंयन्तीह भूतानामाश्रयं पुरुषोत्तमम् । ज्ञानेन कर्मयोगेण न तेषां प्रभवाम्यहम् ॥६०॥ तस्मादनादिनिधनं कर्मयोगपरायणः । ज्ञानेनाराधयानन्तं ततो मोक्षमवाप्स्यिसि ॥६१॥ इत्युक्तः स मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नो महार्मातः । प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत् ॥६२॥ कथं स भगवानीशः शाश्वतो निष्कलोऽच्युतः । ज्ञातुं हि शक्यते देवि ब्रह्म से परमेश्वरि ॥६३॥ एवंमुक्ताथ विप्रेण देवी कमलवासिनी । साक्षान्नारायणो ज्ञानं दास्यतीत्याह तं मुनिम्॥६४॥ उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां संस्पृश्य प्रणतं मुनिम् । स्मृत्वा परात्परं विष्णुं तत्रैवान्तरधीयत ॥६४॥ सोऽपि नारायण द्रष्टुं परमेण समाधिना । स्राराधयद् हृषीकेशं प्रणतार्त्तप्रभञ्जनम् ॥६६॥ ततो बहुतिथे काले गते नारायणः स्वयम् । प्रादुरासीन्महायोगी पीतवासा जगन्मयः ॥६७॥ हृष्ट्वा देवं समायान्तं विष्णुमात्मानमव्ययम् । जानुभ्यामवनीं गत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥६८॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव । कृष्ण विष्णो हिषीकेश तुभ्यं विश्वात्मने नमः ॥६९॥ नमोऽस्तु ते पुराणाय हरये विश्वमूर्त्तये। सर्ग-स्थिति-विनाशानां हेतवेऽनन्तशक्तये॥७०॥ िनिर्गुणाय नमस्तुभ्यं निष्कलाय नमो नमः। पुरुषाय नमस्तेऽस्तु विश्वरूपाय ते नमः॥७१॥ मन्मस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये । म्रादिनध्यान्तहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ॥७२॥ ्रमस्ते निर्विकाराय निष्प्रपञ्चाय ते नमः । भेदाभेदिवहीनाय नमोऽस्त्वानन्दरूपिणे ॥७३॥ शान्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने । भ्रनन्तमूर्त्तये तुभ्यममूर्त्ताय नमो नमः ॥७४॥ नमस्ते परमार्थाय मायातीताय ते नमः । नमस्ते परमेशाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥७५॥ ानमोऽस्तु ते सुसूक्ष्माय महादेवाय ते नमः । नमः शिवाय शुद्धाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥७६॥ त्वयैतत् मृष्टमिखलं त्वमेव परमा गितः । त्वं पिता सर्वभूतानां त्वं माता पुरुषोत्तम ॥७७॥ ्त्वमक्षरं परं धाम चिन्मातं व्योग निष्कलम् । सर्वस्याधारमव्यक्तमनन्तं तमसः परम् ॥७५॥ ; प्रपञ्यन्ति परात्मानं ज्ञानदीपेन केवलम् । प्रपद्ये भवतो रूपं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥७९॥ एवं स्तुवन्तं भगवान् भूतात्मा भूतभावनः। उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां पस्पर्धं प्रहसन्निव।।५०॥ स्पृष्टमात्रो भगवता विष्णुना मुनिपुङ्गवः। यथावत् परमं तत्त्वं ज्ञातवांस्तत्प्रसादतः।। ५१॥ , ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य जनाईनम् । प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षं पीतवाससमन्युतम् ॥६२॥ ्रवत्त्रसादादसन्दिग्धमुत्पन्नं पुरुषोत्तम् । ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं परमानन्दसिद्धिदम् ॥५३॥

कूमपुरासम्

8

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वेधसे। किं करिष्यामि योगेश तन्मे वद जगन्मय।।५४॥ श्रुत्वा नारायणो वाक्यमिन्द्रद्युन्नस्य माधवः। उवाच सिस्मतं वाक्यमशेषं जगतो हितम्।।५४॥

श्रीभगवानुवाच

वणिश्रमाचारवतां पुंसां देवो महेश्वरः । ज्ञानेन भक्तियोगेन पूजनीयो न चान्यथा ।। देशी विज्ञाय तत् परं तत्त्वं विभूति कार्यकारणम् । प्रवृत्तिश्वापि मे ज्ञात्वा मोक्षार्थीश्वरमर्चयेत् ॥ दर्शाः सर्वसङ्गान् परित्यज्य ज्ञात्वा मायामयं जगत् । श्रद्धेतं भावयात्मानं द्रक्ष्यसे परमेश्वरम् ॥ दन्।। विविधां भावनां ब्रह्मन् प्रोच्यमानां निबोध मे । एका मद्विषया तत्र द्वितीया व्यक्तसंश्रया । श्रम्या च भावना ब्राह्मी विज्ञेया सा गुणातिगा ॥ दिश।

स्रासामन्यतमाश्वाय भावनां भावयेद् बुधः । स्रशक्तः संश्रयेदाद्यामित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥९०॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तन्निष्ठस्तत्परायणः । समाराधय विक्वेशं ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥९१॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

कि तत् परतरं तत्वं का विभूतिर्जनार्दन । किं कार्यं कारणं कस्त्वं प्रवृत्तिश्चापि का तव ॥९२॥

श्रीभगवानुवाच

परात्परतरं तत्त्वं परं ब्रह्मैकमव्ययम् । नित्यानन्दमयं ज्योतिरक्षरं तमसः परम् ॥९३॥ ऐश्वयं तस्य यन्नित्यं विभूतिरिति गीयते । कार्यं जगदथाव्यवतं कारणं शुद्धमक्षरम् ॥९४॥ ग्रहं हि सर्वभूतानामन्तर्यामीश्वरः परः । सर्गस्थित्यन्तकर्त्तात्वं प्रवृत्तिर्मम गीयते ॥९४॥ एतद्विज्ञाय भावन यथावदिखलं द्विजः । ततस्त्वं कर्मयोगेण शाश्वतं सम्यगर्चय ॥९६॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

के ते वर्णाश्रमाचारा यै: समाराध्यते पर: । ज्ञानञ्च कीहरां दिव्यं भावनात्रयसंस्थितम् ॥९७॥ कथं सृष्टिमदं पूर्वं कथं संह्रियते पुनः । कियत्यः सृष्ट्रयो लोके वंशा मन्वन्तराणि च ॥९:॥ कानि तेषां प्रमाणानि पावनानि व्रतानि च । तीर्थान्यकीदिसंस्थानं पृथिव्यायामविस्तरम् ॥९९॥ कित द्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च नदी-नदाः । ब्रूहि मे पुराडरीकाक्ष यथावदधुना पुनः ॥१००॥

कूर्म उवाच

एवमुक्तोऽथ तेनाहं भक्तानुग्रहकाम्यया । यथावदिखलं सम्यगवीचं मुनिपुङ्गवाः ॥१०१॥ व्याख्यायाशेषमेवेदं यत् पृष्टोऽहं द्विजेन तु । श्रनुगृह्य च तं विष्रं तत्रैवान्तर्हितोऽभवम् ॥१०२॥ सोऽपि तेन विधानेन मदुक्तेन द्विजोत्तमाः । श्राराधयामास प्र भावपूतः समाहितः ॥१०३॥ त्यक्त्वा पृत्रादिषु स्नेहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः । संन्यस्य सर्वकर्माणि परं वैराग्यमाश्रितः ॥१०४॥ स्रात्मन्यात्मानमन्वीक्ष्य स्वात्मन्येवाखिलं जगत् । सम्प्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्यीमक्षरपूर्विकाम् ॥१०४॥ स्रवाप परमं योगं येनैकं परिपश्यति । यं विनिद्रा जितश्वासाःकांक्षन्ते मोक्षकाङ्क्षिणः ॥१०६॥ ततः कदाचिद्योगीन्द्रो ब्रह्माणं द्रष्टुमव्ययम् । जगामादित्यनिर्द्वेशान्मानसोत्तरपर्वतम् ॥१०७॥ स्राकाशिनैव विप्रेन्द्रो योगैश्वर्यप्रभावतः । विमानं सूर्यसङ्काशं प्रादुर्भूतमनुत्तमम् ॥१०६॥

श्रन्वगच्छन् देवगणा गन्धर्वाप्सरसां गणाः । हष्ट्वाऽन्ये पथि योगोन्द्रं सिद्धा ब्रह्मष्यो ययुः ॥१०९॥ ततः स गत्वाऽनुगिरं विवेश सुरविन्दित् । स्थानं तद्योगिभिजुं ष्टं यत्रास्ते परमः पुमान् ॥११०॥ सम्प्राप्य परमं स्थानं सूर्यायुतसमप्रभम् । विवेश चान्तर्भवनं देवानाश्व दुरासदम् ॥११९॥ विचिन्तयामास परं शर्गयं सर्वदेहिनाम् । श्रनादिनिधनञ्चैव देवदेवं पितामहम् ॥११२॥ ततः प्रादुरभूत् तिस्मन् प्रकाशः परमाद्धतः । तन्मध्ये पुरुषं पूर्वमपश्यत् परमं पदम् ॥११२॥ महान्तं तेजसो राशिमगम्यं ब्रह्मविद्धिषाम् । चतुर्मुखमुदाराङ्गमिचिभिरुपशोभितम् ॥११४॥ महान्तं तेजसो राशिमगम्यं ब्रह्मविद्धिषाम् । प्रत्युद्गम्य स्वयं देवो विश्वात्मा परिषद्भे ॥११४॥ परिष्वक्तस्य देवेन द्विजेन्द्रस्याथ देहतः । निर्गत्य महती ज्योत्स्ना विवेशादित्यमण्डलम्॥११६॥ त्रह्मयजुःसामसंजं तत् पवित्रममलं पदम् । हिरएयगर्भो भगवान् यत्रास्ते ह्व्यकव्यभुक् ॥११७॥ द्वारं तद्योगनामाद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् । ब्रह्मतेजोमयं श्रीमिन्नष्ठा चैव मनीषिणाम् ॥११९॥ द्वारं तद्योगनामाद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् । ब्रह्मतेजोमयं श्रीमिन्नष्ठा चैव मनीषिणाम् ॥११९॥ स्विभ्वतानमभूतस्यः परमश्वर्यमास्थितः । प्राप्तवानात्मनो चाम यत्तन्योक्षास्थमव्ययम् ॥१२९॥ सर्वभूतात्मभूतस्थः परमैश्वर्यमास्थितः । प्राप्तवानात्मनो चाम यत्तन्योक्षास्थमव्ययम् ॥१२९॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वर्णश्रमविद्यौ स्थतः । समाश्रित्यान्तमं भावं मायां लक्ष्मों तरेद् ब्रुधः ॥१२२॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वर्णश्रमविद्यौ स्थतः । समाश्रित्यान्तिमं भावं मायां लक्ष्मों तरेद् ब्रुधः ॥१२२॥

स्त उवाच

व्याहृता हरिणा त्वेवं नारदाद्या महर्षयः । शक्रेण सहिताः सर्वे पत्रच्छुर्गरुडध्वजम् ॥१२३॥

ऋषय ऊचुः

दिवदेव हृषीकेश नाथ नारायणाव्यय । तद्वदाशेषमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा ॥१२४॥ इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञानं धर्मादिगोचरम् । शुश्रूषुश्चाप्ययं शकः सखा तव जगन्मय ॥१२४॥ ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मरूपी जनार्दनः । रसातलगतो देवो नारदाद्यंमहर्षिभिः ॥१२६॥ पृष्टः प्रोवाच सकलं पुराणं कौर्ममुत्तमम् । सिन्नधौ देवराजस्य तद्वक्ष्ये भवतामहम् ॥१२७॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुग्यं मोक्षप्रदं नृणाम् । पुराणश्रवणं विप्राः पठनञ्च विशेषतः ॥१२५॥ श्रुत्वा चाध्यायमेवैकं सर्वपापः प्रमुच्यते । उपाख्यानमथैकं वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१२९॥ इदं पुराणं परमं कौर्मं कूर्मस्वरूपिणा । उक्तं देवािषदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः ॥१३०॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे इन्द्रद्युम्नमोक्षवर्रानं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

HASH SHIP BY LEMMA THE RESIDENCE THE RESIDENCE OF THE PROPERTY OF THE PROPERTY

Host with the standard to the left of the Standard Standard

कूर्मपुराणम्

द्वितीयोऽध्यायः

कूर्म उवाच

श्रुणुध्वमृषयः सर्वे यत् पृष्टोऽहं जगद्धितम् । वक्ष्यमाणं मया सर्वीमन्द्रद्युन्नाय भाषितम् ॥ १॥ भूतैर्भव्यैर्भवद्भिश्च चरितैरुपबृंहितम् । पुराणं पुरायदं नणां मोक्षधर्मानुकीर्त्तनम् ॥ २॥ ग्रहं नारायणो देवः पूर्वमासं न मे परम्। उपास्य विपुलां निद्रां भोगिशय्यां समाश्रितः। चिन्तयामि पुनः सृष्टि निशान्ते प्रतिबुध्य तु ॥ ३ ॥ ततो मे सहसोत्पन्नः प्रसादो मुनिपुङ्गवाः । चतुर्मुखस्ततो जातो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४ ॥ तदन्तरेऽभवत् कोघः कस्मान्चित् कारणात् तदा । भ्रात्मनो मुनिशाद् लस्तत्र देवो महेश्वरः ॥ ५॥ रुद्रः क्रोवात्मको जज्ञे शूलपाणिस्त्रिलोचनः । तेजसा सूर्यसङ्काशस्त्रैलोक्यं निर्दहन्तिव ॥ ६॥ ततः श्रीरभवद्देवी कमलायतलोचना । सुरूपा सौम्यवदना मोहिनी सर्वदेहिनाम् ॥ ७॥ शुचिस्मिता सुप्रसन्ना मङ्गला महिमास्पदा । दिव्यकान्तिसमायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता ॥ ५ ॥ नारायणी महामाया मूलप्रकृतिरव्यया । स्वधाम्ना पूरयन्तीदं मत्पाक्वं समुपाविशत् ॥ ९॥ तां दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा मामुवाच जगत्पतिम्। मोहायाशेषभूतानां नियोजय सुरूपिणीम्।।१०।। येनेयं विपुला सृष्टिर्वर्द्धते मम् माधव । तथोक्तोऽहं श्रियं देवीमन्नवं प्रदसन्निव ॥११॥ सदेवासुरमानुषम् । मोहयित्वा ममादेशात् संसारे विनिपातय ॥१२॥ विश्वं ज्ञानयोगरतान् दान्तान् ब्रह्मिष्ठान् ब्रह्मवादिनः । ग्रक्नोधनान् सत्यपरान् दूरतः परिवर्जय ॥१३॥ ्ध्यायिनो निर्ममाञ्छान्तान् घार्मिकान् वेदपारगान् । याजिनस्तापसान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय।।१४।। वेदवेदान्तविज्ञान-संखिन्नारोषसंशयान् । महायज्ञपरान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय । ११।। ये यजन्ति जपैहोंमैर्देवदेवं महेश्वरम् । स्वाध्यायेनेज्यया दूरात् तान् प्रयत्नेन वर्जय ।।१६॥ अक्तियोगसमायुक्तानीश्वरापितमानसान् । प्राणायामादिषु रतान् दूरात् परिहरामलान् ॥१७॥ प्रणवासक्तमनसो रुद्रजप्यपरायणान् । अथर्वशिरसो वेत्तृन् धर्मज्ञान् परिवर्जय ।।१८।। बहुनात्र किमुक्तेन स्वधर्मपरिपालकान् । ईश्वराराधनरतान् मिन्नियोगान् न मोहय ॥१९॥ एवं मया महामाया प्रेरिता हरिवल्लभा। यथादेशं चकारासी तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत्।।२०।। श्रियं ददाति विपुलां पुष्टि मेघां यशो बलम् । श्रिचिता भगवत्पत्नी तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत् ॥२१॥ ततोऽसुजत् स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः। चरावराणि भूतानि यथापूर्व ममाज्ञया।।२२।। मरीचिभुग्विङ्गरसं पुलस्त्यं पुलहं कतुम्। दक्षमित विसष्ठश्व सोऽस्जद्योगिवद्यया।।२३।। नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्राह्मणा ब्राह्मणोत्तमाः। ब्रह्मवादिन एवैते मरीच्याद्यास्तु साधकाः॥२४॥ ससर्जं ब्राह्मणान् वनत्रात् क्षत्रियांश्च भुजाद्विभुः । वैश्यानूरूद्वयाद्देवः पद्भचां शूद्रान् पितामहः ॥२५॥ यज्ञनिष्पत्तये ब्रह्मा शूदवर्जं ससर्ज ह । गुप्तये सर्वदेवानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्वभौ ॥२६॥ त्रहचो यज् षि सामानि तथैवाथर्वणानि च । ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया ॥२७॥ श्रनादिनिधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा । श्रादो वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥२८॥ म्रतोऽन्यानि हि शास्त्राणि पृथिंव्यां यानि कानिचित्। न तेषु रमते घीरः पाषएडी तेन जायते ॥२९॥ वेदार्थिवत्तमैः कार्यं यत् स्मृतं मुनिभिः पुरा । स ज्ञेयः परमो धर्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः ॥३०॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः । सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥३१॥ पूर्वकल्पे प्रजा जाताः सर्वेबाधाविवर्जिताः । शुद्धान्तः करणाः सर्वाः स्वधर्मपरिपालकाः ॥३२॥ वतः कालवशात् तासां रागद्वेषादिकोऽभवत् । ग्रधमा मुनिशार्दुलाः स्वधर्मप्रतिबन्धकः ॥३३॥ ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते । रजोमात्रात्मिकास्तासां सिद्धयोऽन्यास्तदाभवन्।।३४।१ तासु क्षीणास्वरीषासु कालयोगेन ताः पुनः । वार्त्तीपायं पुनश्चकुर्हस्तसिद्धिः कर्मजाम् ॥३५॥ ततस्तासां विभुर्वह्या कर्माजीवमकल्पयत् । स्वामम्भुवो मनुः पूर्व धर्मान् प्रोवाच सर्वहक् ॥३६॥ साक्षात् प्रजापतेमू र्त्तिनिसृष्टा ब्रह्मणो द्विजाः । भृग्वादयस्तद्वदनाच्छ्रत्वा धर्मानथोचिरे ॥३७॥ यजनं याजनं दानं ब्राह्मएास्य प्रतिग्रहः । ग्रध्यापनः बाध्ययन षट् कर्माणि द्विजोत्तमाः ॥३८॥ दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रिय-वैश्ययोः । दएडो युद्धं क्षत्रियस्य कृषिवैश्यस्य शस्यते ॥ ९॥ शुश्रूपैव द्विजातीनां शूदाणां धर्मसाधनम् । कारुकर्म तथाजीवः पाकयज्ञादि धर्मतः ॥४०॥ ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान् । गृहस्थ च वनस्थ च भिक्षुकं ब्रह्मचारिएाम् ॥४१॥ भ्राग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुराचेनम् । यह थस्य समासेन धर्मोऽयं मुनिपुङ्गवाः ॥४२॥ होमो मूल फलाशित्वं स्वाधायस्तप एव च । संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनाम् ॥४३॥ भैक्षाशनश्व मीनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः । सम्यग्ज्ञानश्व वैराग्य धर्मोऽयं भिक्षुके मतः ॥४४॥ भिक्षाचर्या च शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च । संध्याकर्माग्नकार्यच धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम् ॥ ४५॥ ब्रह्मचारि-वनस्थानां भिक्षुकाणां द्विजोत्तमाः । साधारणं व्रह्मवर्यं प्रोवाच कमलोद्भवः ॥४६॥ ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारेषु न चान्यतः । पर्ववर्जं ग्रहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम् ॥४७॥ श्रा गर्भवारणादाज्ञा कार्या तेनाप्रमादतः । अकुर्वाणस्तु विष्ठेन्द्रा अणहा त्राजायते ॥४५॥ वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या श्राद्धः चातिथिपूजनम् । ग्रहस्थस्य परो धर्मो देवताभ्यचनं तथा ॥४९॥ वैवाह्यमग्निमिन्धीत सायं प्रातर्यथाविधि । देशान्तरगते वाथ सुतः पत्यत्विगेव वा ॥५०॥ त्रयागामाश्रमागान्तु एहस्थो योनिरुच्यते । अन्ये तमुपजीवन्ति तस्माच्छ्रेयान् एहाश्रमी ॥५१॥ ऐकाश्रम्यं गृहस्थस्य चतुर्णां श्रुतिदर्शनात् । तस्माद् गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मसाधनम् ॥५२॥ परित्यजेदर्थ-कामी यो स्यातां धर्मवर्जितो । सर्वलोकविरुद्ध च धर्ममप्या बरेन्न धर्मात् सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽभिजायते । धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्म समाश्रयेत् ॥१४॥ धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गिस्त्रगुराो मतः । सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धमं समाश्चयेत् ॥५५॥ ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥५६॥ ्यस्मिन् धर्मसमायुक्तौ ह्यर्थकामौ व्यवस्थितौ । इह लोके सुखी भूत्वा प्रत्यानन्त्याय कल्पते ॥५७॥ धर्मात् सञ्जायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते । एवं साधन-साध्यत्वं चातुर्विद्ये प्रदर्शितम् ॥५८॥ य एवं वेद धर्मार्थ-काम-मोक्षस्य मानवः । माहात्म्यश्वानुतिष्ठेत स चानन्त्याय कल्पते ॥५९॥ ेतस्मादर्थन्त्र कामन्त्र त्यक्तवा धर्मं समाश्रयेत् । धर्मात् ः सञ्जायते । सर्वमित्याहुन्ने ह्यवादिनः ॥६०॥ वर्मेगा धार्यते सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। श्रनादिनिधना शक्तिः सैषा त्राह्मी द्विजोत्तमाः ॥६१॥ कर्मणा प्राप्यते वर्मो ज्ञानेन च न संशयः । तस्माज् ज्ञानेन सहितं कर्मयोगं समाश्रयेत् ॥६२॥ प्रवृत्तश्च निवृत्तश्च द्विविधं कर्म वैदिकम् । ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात् प्रवृत्तं यदतोऽन्यथा ॥६३॥ निवृत्तं सेवमानस्तु याति तत् परमं पदम् । तस्मान्निवृत्तं संसेव्यमन्यवा संसरेत् पुनः ॥६४॥ िक्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च । ग्रार्जवङ्यानसूया च तीर्थानुसरणं तथा ॥६४॥ ·सत्यं सन्तोषमास्तिवयं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः । देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥६६॥

प्रांता प्रियवादित्वमपैशुन्यमकत्कता । सामासिकिममं धर्मं चातुर्वर्ग्येऽत्रवीन्मनुः ॥६७॥ प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् । स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥६८॥ वर्ष्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्त्तताम् । गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारेण वर्त्तताम् ॥६९॥ प्रष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् । स्मृतं तेषान्तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥७०॥ सप्तर्षीणान्तु यत् स्थानं स्मृतं तद्दे वनौकसाम् । प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुवतं स्वयम्भुवा ॥७१॥ पतीनां जितचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम् । हैरएयगर्भं तत् स्थानं यस्माञ्चावर्त्तते पुनः ॥७२॥ योगिनाममृतं स्थानं व्योमाख्यं परमक्षरम् । ग्रानन्दमैश्वरं धाम सा काष्ठा सा परा गतिः ॥७३॥

ऋषय ऊचुः

भगवन् देवतारिझ हिरएयाक्षनिसूदन । चन्वारो ह्याश्रमाः प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते ॥७६॥ कूर्म उवाच

सर्वकर्माणि संन्यस्य समाधिमचलं श्रितः। य ग्रास्ते निश्चलो योगी स संन्यासी च पञ्चमः ॥७५॥ सर्वेषामाश्रमाणान्तु द्वेविध्यं श्रुतिदर्शितम् । ब्रह्मचार्युवकुर्वाणो नैष्ठिको योऽवीत्य विधिवद्वेदान् गृहस्थाश्रममाव्रजेत् । उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ॥७८॥ उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् । कुदुम्बभरणायत्तः साधकोऽभौ गृही भवेत्।।७८॥ ऋणानि त्रीएयपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम् । एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः ॥७९॥ तपस्तप्यति योऽरएये यजेहेवान् जुहोति च । स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसो मतः ॥८०॥ तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत् । सांन्यासिकः स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः ॥५१॥ नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः । ज्ञानाय वर्त्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः ॥ २२॥ ग्रस्त्वात्मरतिरेव स्यात्रित्यतृप्तो महामुनिः । सम्यग्दर्शनसम्पन्नः स योगी भिक्षुरुच्यते ॥ ५३॥ केचिद्वेदसंन्यासिनोऽपरे । कर्मसंन्यासिनः केचित् त्रिविधाः पारमेष्ठिकाः ॥ ५४॥ ्योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः सांख्य एव च । तृतीयोऽन्त्याश्रमी प्रोक्तो योगमुत्तममाश्रितः ॥ ५॥। प्रथमा भावना पूर्वे सांख्ये त्वक्षरभावना । तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी ॥५६॥ तरमादेतद्विजानीध्वमाश्रमाणां चतुष्टयम् । सर्वेषु वेदशास्त्रेषु पञ्चमो नोपपद्यते ॥ ८७॥ एवं वर्णाश्रमान् सृष्ट्वा देवदेवो निरखनः । दक्षादीन् प्राह विश्वात्मा सृजध्वं विविधाः प्रजाः ॥५५॥ ब्रह्मणो वचनात् पुत्रा दक्षाद्या मुनिसत्तमाः । ग्रमृजन्त प्रजाः सर्वा देवमानुषपूर्विकाः ॥५९॥ ्रइत्येवं भगवान् ब्रह्मा स्नष्टत्वे संव्यवस्थितः । म्रहं वै पालयामीदं संहरिष्यिति गूनभृत्।।९ः।। तिस्रस्तु मूर्त्तयः प्रोक्ता ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिकाः। रजः-सत्त्व-तमोयोगात् परस्य परमात्मनः ॥९१॥ ्राम्यान्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविनः । म्रान्योन्यं प्रणताश्चैव लीलया परमेश्वराः ॥९२॥ ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना । तिस्रस्तु भावना रुद्रे वर्त्तन्ते सततं द्विजाः ॥९३॥ प्रवर्त्तते मय्यजस्रमाद्या त्वक्षरभावना । द्वितीया ब्रह्मणः प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना ॥९४॥ ग्रह्ञचैव महादेवो न भिन्नी परमार्थतः । विभज्य स्वेच्छयात्मानं सोऽन्तर्याभीश्वरःस्थितः॥९५॥ स्रष्टुं सदेवासुरमानुषम् । पुरुषः परतोऽव्यक्ताद ब्रह्मत्वं समुपागमत् ॥९६॥ तस्माद् ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वरः परः । एकस्यैव स्मृतास्तिस्रो मूर्त्तीः कार्यवशात् प्रभोः ॥९॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वन्द्याः पूज्याः विशेषतः । यदोच्छेदचिरात् स्थानं यत्तन्मोक्षाख्यमन्ययम् ॥९५॥

वर्णाश्रमप्रयुक्तेन धर्मेण प्रीतिसंयुतः । पूजयेद्भात्रयुक्तेन यावज्जीवं प्रतिज्ञया ॥९९॥ चतुर्णामाश्रमार्गान्तु प्रोक्तोऽयं विधिवहिजाः । ग्राश्रमो वैद्याचेयेदेतान् ब्रह्मित्रद्यापरायणः ॥१००॥ तिल्लङ्गधारी सततं तद्भक्तजनवत्सलः । ध्यायेदथाचेयेदेतान् ब्रह्मित्रद्यापरायणः ॥१०९॥ सर्वेषामेव भक्तानां शम्भोलिङ्गमनुत्तमम् । सितेन भस्मना कार्यं ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ॥१०२॥ यस्तु नारायणं देवं प्रवन्नः परमं पदम् । धारयेत् सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः ॥१०३॥ प्रवन्ना ये जगद्बीजं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । तेषां ललाटे तिलकं धारणीयन्तु सर्वदा ॥१०४॥ योऽसावनादिर्भूतादिः कालात्माऽसौ घृतो भवेत् । उपर्यधोभावयोगात् त्रिपुर्ण्डस्य तु धारणा ॥१०६॥ यत्तत् प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्म-विद्यु-शिवात्मकम् । घृतं त्रिशूलधरणाद्भवत्येव न संशयः ॥१०६॥ ब्रह्मतेजोमयं शुक्लं यदेतन्मर्ण्डलं रवेः । भवत्येत्र धृतं स्थानमैश्वरं तिलके कृते ॥१०७॥ तस्मात् कार्यं त्रिशूलाङ्कं तथा च तिलकं शुभम् श्रायुष्यश्वापि भक्तानां त्रयाणां विधिपूर्वकम् ॥२०६॥ यजेत जुह्यादग्नौ जपेह्द्याज्जतेन्द्रयः । शान्तो दान्तो जितकोधो वर्णाश्रमविधानवित् ॥१०९॥ एवं परिचरेह्वान् यावज्जीवं समाहितः । तेषां स्वस्थानमचलं सोऽचिरादिधगच्छित ॥११०॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे वर्णाश्रमवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्य।यः

ऋषय ऊचुः

वर्णा भगवतोद्दिष्टाश्चत्वारोऽप्याश्रमास्तथा । इदानीं क्रममस्माकमाश्रमाणां वद प्रभो ॥ १ ॥ कूम उवाच

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यितस्तथा । क्रमेणैवाश्रमाः प्रोक्ताः कारणादन्यथा भवेत् ॥ २ ॥ उत्पन्नज्ञानिवज्ञानो वैराग्यं परमं गतः । प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्यात् तु यदीच्छेत् परमां गितम् ॥ ३ ॥ यानिष्ट्वा विधिवदन्यथा विविधिमेषीः । यजेदुत्पादयेत् पुत्रान् विरक्तो यिद संन्यसेत् ॥ ४ ॥ ग्रानिष्ट्वा विविवधि तेत्त्रत्वाद्य तथात्मजान् । न गार्हस्थ्यं गृहीत्वा न संन्यसेद् बुद्धिमान् द्विजः ॥ ५ ॥ ग्राय्यवेगेण स्थातुं नोत्सहते गृहे । तत्रेव संन्यसेद्विद्वानिष्ट्वापि द्विजोत्तमः ॥ ६ ॥ तथापि विधिधैर्यज्ञैरिष्ट्वा वनमथाश्रयन् । तपस्तप्त्वा तपोयोगाद्विरक्तः संन्यसेद्विहः ॥ ७ ॥ वानप्रस्थाश्रमं गत्वा न गृहं प्रविशेत् पुनः । न संन्यासी वनश्वाथ ब्रह्मचर्यश्च साधकः ॥ द ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा द्विजः । प्रव्रजेत् तु गृही विद्वान् वनाद्वा श्रुतिचोदनात् ॥ ९ ॥ प्रवर्षामे व वराय्यं संन्यासे तु विधीयते । पतत्येवाविरक्तो यः संन्यासं कर्त्तु मिच्छिति ॥ १ ॥ सर्वेषामेव वराय्यं संन्यासे तु विधीयते । पतत्येवाविरक्तो यः संन्यासं कर्त्तु मिच्छिति ॥ १ ॥ एक्सिमञ्चयवा सम्यग्वर्तेतामरणान्तिकम् । श्रद्धावानाश्रमे युक्तः सोऽमृतत्वाय कत्यते ॥ १ ॥ व्यायागतधनः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः । स्वधर्मपालको नित्यं ब्रह्मभूयाय कत्यते ॥ १ ॥ ब्रह्मण्याधाय कर्माणि निःसङ्गः कामवर्जितः । प्रसन्तेतेव मनसा कुर्वाणो याति तत् पदम् ॥ १ ॥ ब्रह्मण्याधाय कर्माणि निःसङ्गः कामवर्जितः । प्रसन्तेतेव मनसा कुर्वाणो याति तत् पदम् ॥ १ ॥ व्रह्मणा दीयते देयं ब्रह्मणे सम्प्रदीयते । ब्रह्मव दीयते चेति ब्रह्मार्पणिस्तं परम् ॥ १ ॥ व्रह्मणे सर्वमेतद्व ब्रह्मवेत कृरते तथा । एतद्व ब्रह्मार्णं प्रोक्तमृष्विभस्तत्वर्दिक्विः ॥ १ ॥ १ ॥ वर्ते कर्तां सर्वमेतद्व वर्षां परम् ॥ १ ॥ वर्मणे सर्वसेतद्व वर्षां परम् ॥ १ वर्मणे प्रति देवं ब्रह्मवेत्व करते तथा । एतद्व ब्रह्मार्णं प्रोक्तमृष्विभस्तत्वर्विभिः ॥ १ ॥ १ । वर्मणे वर्षां पर्तेत्व वर्षां परम् । १ वर्षां पर्ताः वर्षां परम् परम् ॥ १ वर्षां परम् सर्वस्वात्वर्वात्वर्वात्वर्वात्वर्वात्वर्वात्वर्वर्वात्वर्वात्वर्वात्वर्वात्वर्वात्वर्वात्वर्वात्त्वर्वर्वत्वर्वात्वर्वर्वात्वर्वर्वात्वर्वर्वात्वर्वर्वर्वत्वर्वात्वर्वर्वत्वर्वर्वत्वर्वर्वात्वर्वर्वात्वर्वर्वर्वत्वर्वर्वत्वर्वर्वत्वर्वर्वर्वत्वर्वत्वर्वर्वर्वत्वर्वर्वत्वर्वर्वर्वर्वत्वर्वर्वत्व

प्रीगातु भगवानीशः कर्मणानेन शाश्वतः । करोति सततं बुद्ध्या ब्रह्मार्पण्मिदं परम् ॥१७॥ यद्वा फलानां संन्यासं प्रकुर्यात् परमेश्वरे । कर्मणामेतदप्याहु र्वह्मार्पण्मनुत्तमम् ॥१८॥ कार्यमित्येव 'यत् कर्म नियतं सङ्गविजितम् । क्रियते विदुषा कर्म तद्भवेदिप मोक्षदम् ॥१९॥ प्रन्यथा यदि कर्माण कुर्यान्नित्यान्यपि द्विजः । श्रकृत्वा फलसंन्यासं बध्यते तत्फलेन तु ॥२०॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा कर्माश्रितं फलम् । श्रविद्वानिप कुर्वीत कर्माश्रोति चिरात् पदम् ॥२१॥ कर्मणा क्षीयते पापमेहिकं पौर्विकं तथा । मनः प्रसादमन्वेति ब्रह्मविज्ञायते नरः ॥२२॥ कर्मणा सहिताज्ज्ञानात् सम्यग्योगोऽभिजायते । ज्ञानश्व कर्मसहितं जायते दोषविज्ञतम् ॥२३॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यत्र तत्राश्रमे रतः । कर्माणीश्वरतुष्ट्यर्थं कुर्यान्नैष्कर्मर्यमाप्नुयात् ॥२४॥ सम्प्राप्य परमं ज्ञानं नैष्कर्मर्यं तत्प्रसादतः । एकाको निर्ममः शान्तो जीवन्नेव विमुच्यते ॥२४॥ वीक्षते परमात्मानं परं ब्रह्म महेश्वरम् । नित्यानन्दी निराभासस्तिसन्नेव लयं वजेत् ॥२६॥ तस्मात् सेवेत सततं कर्मयोगं प्रसन्नवीः । तृप्तये परमेशस्य तत् पदं याति शाश्वतम् ॥२७॥ एतद्वः कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम् । न हचेतत् समितकस्य सिद्धि विन्दित मानवः॥२५॥ एतद्वः कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम् । न हचेतत् समितकस्य सिद्धि विन्दित मानवः॥२५॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे चातुराश्रम्यकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

स्त उवाच

श्रुत्वाऽश्रमिविधि कृत्स्नमृषयो हृष्टचेतसः । नमस्कृत्य हृषीकेशं पुनर्वचनमञ्जवन् ॥ १ ॥

ग्रुन्य ऊचुः

भाषितं भवता सर्वं चातुराश्रम्यमृत्तमम् । इदानीं श्रोतुमिच्छामो यथा सखायते जगत् ॥ २ ॥ कुतः सर्वमिदं जातं किस्मिश्च लयमेष्यति । नियन्ता कश्च सर्वेषां वदस्व पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥ श्रुत्वा नारायणो वावयमृषीणां कूर्मे हपधृक् । प्राह गम्भोरया वाचा भूतानां प्रभवाष्ययौ ॥ ४ ॥ कूम उवाच

महेरवरः परोऽव्यक्तश्चतुर्व्यू हः सनातनः । ग्रनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता सर्वतोमुखः ॥ ४ ॥ ग्रव्यक्तं कारणं यत्तित्रत्यं सदसदात्मकम् । प्रधानं प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥ ६ ॥ ग्रन्ध-वर्ण-रसैहीनं शब्द-स्पर्शविविजितम् । ग्रजरं घ्रु वमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् ॥ ७ ॥ जगद्योनिर्महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम् । विग्रहः सर्वभूतानामात्मनाऽधिष्ठितं महत् ॥ ६ ॥ ग्रमाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम् । ग्रसाम्प्रतमिवज्ञेयं ब्रह्माग्ने समवर्त्तत ॥ ९ ॥ ग्रुणसाम्ये तदा तस्मिन् पुरुषे चात्मिनि स्थिते । प्राकृतः प्रलयो ज्ञेयो यावद्विश्वसमुद्भवः ॥ १० ॥ ब्राह्मी रात्रित्यं प्रोक्ता ह्यहः मृष्टिस्दाहृता । ग्रहने विद्यते तस्य न रात्रिर्ह्युपचारतः ॥ ११ ॥ विद्यान्ते प्रतिबुद्धोऽसौ जगदादिरनादिमान् । सर्वभूतमयोऽव्यक्तो ह्यन्तर्यामीश्वरः परः ॥ १२ ॥ प्रहति पुरुषक्चेव प्रविश्याशु महेश्वरः । क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥ १३ ॥ यथा मदो नवस्त्रीणां यथा वा माधवोऽनिलः । ग्रनुप्रविष्टः क्षोभाय तथाऽसौ योगमूर्तिमान् ॥ १४ ॥

स एव क्षोभको विप्ताः क्षोभ्यश्च परमेश्वरः । स सङ्कोच-विकाशाभ्यां प्रधानत्वे व्यवस्थितः ॥१५॥ प्रधानात् क्षोभ्यमाणाच्च तथा पुसः पुरातनात् । प्रादुरासीन्महद्वीजं प्रधानपुरुषात्मकम् ॥१६॥ महानात्मा मित्र्बह्या पूर्वु द्धिः ख्यातिरीश्वरः । प्रज्ञा धृतिःस्मृतिःसंविदैश्वरं चेति तत् स्मृतम् ॥१७॥ वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चेव तामसः । त्रिविधोऽयमहङ्कारो महतः सम्बभूव ह ॥१५॥ ग्रहङ्कारोऽभिमानश्च कत्ता मन्ता च स स्मृतः । ग्रात्मा च मत्परो जीवो यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥१९॥ पञ्च भूतान्यहङ्कारात् तन्मात्राणि च जिज्ञरे । इन्द्रियाणि तथा देवाः सर्वं तस्यात्मजं जगत् ॥२०॥ मनस्त्वव्यक्तजं प्रोक्तं विकारः प्रथमः स्मृतः । येनासौ जायते कर्त्ता भूतादीश्चानुपश्यति ॥२१॥ वैकारिकादहङ्कारात् सर्गो वैकारिकोऽभवत् । तैजसानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश ॥२२॥ एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम् । भूततन्मात्रसर्गोऽयं भूतादेरभवदं द्विजाः ॥२३॥ भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह । ग्राकाशं ग्रुषि र तस्मादुत्पन्नं शब्दलक्षणम् ॥२४॥ ग्राकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शनात्रं ससर्ज ह । वायुष्त्वचते तस्मात् तस्य स्पर्शं गुणं विदुः ॥२५॥ वायुश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह । सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणितानि च ॥२७॥ ग्रापश्चापि विकुर्वाणं गन्धमात्रं ससर्ज ह । सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणितानि च ॥२७॥ ग्रापश्चापि विकुर्वाणा गन्धमात्रं ससर्ज ह । सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणितानि च ॥२७॥ ग्रापश्चापि विकुर्वाणा गन्धमात्रं ससर्ज ह । सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणितानि च ॥२७॥ ग्रापश्चापि विकुर्वाणा गन्धमात्रं ससर्जरे । सङ्घातो जायते तस्मात् तस्य गन्धो गुणो मतः ।

जायते पृथिवी तस्मात् सर्वाधारा सनातनी ॥२५॥

म्राकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् । द्विगुरास्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ॥२९॥ रूपं तथैवाविशतः शब्द-स्पर्शौ गुणाबुभौ । त्रिगुणः स्यात् ततो वह्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् ॥३०॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसमात्रं समाविशत् । तस्माचतुर्गुणा भ्रापो विश्वेयास्तु रसात्मिकाः ॥३१॥ शब्दः स्पर्शिश्च रूपश्च रसो गन्धं समाविशत् । तस्मात् पत्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु शब्दते ॥३२॥ शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृता । परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति एते सप्त महात्मानो ह्यन्योऽन्यस्य समाश्रयात् । नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः।।३४।। पुरुषाधिष्ठितत्वाच ग्रन्यक्तानुग्रहेण च । महदादयो विशेषान्ता ह्यएडमुत्पादयन्ति ते ॥३५॥ जलबुद्बुदवच तत् । विशेषभ्योऽएडमभवद् बृहत् तदुदकेशयम् ॥३६॥ ए कवालसमुत्पन्नं तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धं परमेष्ठिनः । प्राकृतेऽराडे विवृद्धे तु क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥३७॥ स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । भ्रादिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥३५॥ यमाहुः पुरुषं हंसं प्रधानात् परतः स्थितम् । हिरण्यगर्भं किपलं छन्दोमूर्त्तं सनातनम् ॥३९॥ मेरुरुत्वमभूत् तस्य जरायुश्चापि पर्वताः। गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन् परमात्मनः।।४०।। तिसमन्नग्डेऽभवद् विश्वं सदेवासुरमानुषम् । चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ॥४१॥ श्रद्भिर्दशगुणाभिश्च बाह्यतोऽएडं समावृतम् । ग्रापो दशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः ॥४२॥ तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् । श्राकाशेनाऽवृतो वायुः खन्तु भूतादिना वृतम्।

भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान् ॥४३॥
एते लोका महात्मानः सर्वे तत्त्वाभिमानिनः । वसन्ति तत्र पुरुषास्तदात्मानो व्यवस्थिताः ॥४४॥
ईश्वरा योगधर्माणो ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः । सर्वज्ञाः शान्तरजसो नित्यं मुदितमानसाः ॥४४॥
एतैरावरणैरएडं प्राकृतैः सप्तभिर्वृतम् । एतावच्छक्यते वक्तुं मायेषा गहना द्विजाः ॥४६॥
एतत्प्राधानिकं कार्यं यन्मया बीजमीरितम् । प्रजापतेः परामूर्त्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः ॥४७॥
ब्रह्माएडमेतत् सकलं सप्तलोकबलान्वितम् । द्वितीयं तस्य देवस्य शरीरं परमेष्टिनः ॥४६॥

हिरएयगर्भो भगवान् ब्रह्मा वै कनकाएडजः । तृतीयं भगवद्र्षं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः ॥४९॥ रजोगुणमयश्वान्यद्र्षं तस्यैव धीमतः । चतुर्मुखः स भगवान् जगत्सृष्टी प्रवर्त्तते ॥५०॥ सृष्टक्र पाति सकलं विश्वातमा विश्वतोमुखः । सत्त्वं गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरः स्वयम् ॥५१॥ श्रन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः । तमोगुणं समाश्रित्य रुद्रः संहरते जगत् ॥५२॥ एकोऽपि सन् महादेवस्त्रिधाऽसौ समवस्थितः । सर्गं - रक्षा - लयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरज्जनः ।

एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा गुणैः ॥५३॥ योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च । नानाकृति-क्रिया-रूप-नामवन्ति स्वलीलया ॥५४॥ हिताय चैव भक्तानां स एव ग्रसते पुनः । त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैकाल्ये सम्प्रवर्त्तते ।

मृजते ग्रसते चैव रक्षते च विशेषतः ॥ १ १ ॥

यस्मात् सृष्ट्वाऽनुगृह्णाति ग्रसते च पुनः प्रजाः । गुणात्मकत्वात् वैकाल्ये तस्मादेकः स उच्यते ॥ १ ॥

ग्राप्ते हरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतः सनातनः । ग्रादित्वादादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ॥ १ ७॥

पाति यस्मात् प्रजाः सर्वोः प्रजापतिरिति स्मृतः । देवेषु च महादेवो महादेव इति स्मृतः ॥ १ ०॥

वृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा परत्वात् परमेश्वरः । विशत्वाद्यवश्यत्वादीश्वरः परिभाषितः ॥ १ ९॥

ऋषिः सर्वत्रगत्वेन हरिः सर्वहरो यतः । ग्रनुत्पादाच्च पूर्वत्वात् स्वयम्भुरिति स स्मृतः ॥ ६ ०॥

नाराणामयनं यस्मात् तेन नारायणः स्मृतः । हरः संसारहरणाद्विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते ॥ ६ १॥

भगवान् सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः । सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात् सर्वः सर्वमयो यतः ॥ ६ २॥

शिवः स्यान्त्रिर्मेलो यस्माद्विभुः सर्वगतो यतः । तारणात् सर्वदुःखानां तारकः परिगीयते ॥ ६ ३॥

बहुनात्र किमुक्तेन सर्वं ब्रह्ममयं जगत् । ग्रनेकभेदिभन्नस्तु क्रीडते परमेश्वरः ॥ ६ ४॥

इत्येष प्राकृतः सर्गः संक्षेपात् कथितो मया । ग्रबुद्धिपूर्वकां विप्रा ब्राह्मीं सृष्टि निवोधत ॥ ६ ४॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे प्राकृतसर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

कूर्म उवाच

स्वयम्भुवोऽपि वृत्तस्य कालसंख्या द्विजोत्तमाः । न शवयते समाख्यातुं बहुवषेरिप स्वयम् ॥ १ ॥ कालसंख्या समासेन परार्द्वद्वयकित्पता । स एव स्यात् परः कालस्तदन्ते सृज्यते पुनः ॥ २ ॥ निजेन तस्य मानेन चायुर्वर्षशतं स्मृतम् । तत्परार्द्वं तद्वं वा परार्द्वमभिधीयते ॥ ३ ॥ काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः । काष्ठाविशत् कला विशतक्ता मौहूर्त्तिकी गितः ॥ ४ ॥ तावत्संख्येरहोरात्रं सुहूर्त्तमिनुषं स्मृतम् । अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः ॥ ५ ॥ तैः पङ्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे । अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानासुत्तरं दिनम् ॥ ६ ॥ दिन्यैर्वर्षसहस्तेस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् । चतुर्युगं द्वादशिमस्तिद्वभागं निबोधत ॥ ७ ॥ वत्वार्याद्वः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम् । तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च कृतस्य तु ॥ ६ ॥ विश्वती दिशती सन्ध्या तथा चैकशती क्रमात् । ग्रंशकं षट्शतं तस्मात् कृतसन्ध्यांशकैर्विना ॥ ९ ॥ विद्वचेकधा च साहस्रं विना सन्ध्यांशकेन तु । त्रेता द्वापर-तिष्याणां कानजाने प्रकीर्तितम् ॥१०॥ एतद् द्वादशसाहस्रं साधिकं परिकल्पितम् । तदेकसप्तितगुणं मनोरन्तरसुच्यते ॥११॥ एतद् द्वादशसाहस्रं साधिकं परिकल्पितम् । तदेकसप्तितगुणं मनोरन्तरसुच्यते ॥१॥

ब्रह्मणो दिवसे विष्रा मनवश्च चतुर्दश । स्वायम्भुवादयः सर्वे ततः सावर्णिकादयः ॥१२॥ तैरियं पृथिवी सर्वा सप्रद्वीपा सपर्वता । पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेक्वरैः ॥१३॥ मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाएयेवान्तराणि वै । व्याख्यातानि न सन्देहः कल्पे कल्पे न चैव हि ॥१४॥ ब्राह्ममेकमहः कल्पस्तावती रात्रिरिष्यते । चतुर्युगसहस्रन्तु कल्पमाहुर्मनीषिणः ॥१५॥ त्रीणि कल्पशतानि स्युस्तथा षष्टिर्द्विजोत्तमाः । ब्रह्मणो वत्सरस्तज्ज्ञैः कथितो वै द्विजोत्तमाः । स च कालः शतगुणः परार्द्धव्यौव तद्विदुः ॥१६॥

तस्यान्ते सर्वसत्त्वानां स्वहेतो प्रकृतौ लयः । तेनायं प्रोच्यते सिद्धः प्राकृतः प्रतिसंचरः ॥१७॥ ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्रकृतौ लयः । प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भवः ॥१८॥ एवं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽिष शाङ्करः । कालेनैव तु सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः ॥१९॥ ग्रमादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमरः । सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वरः ॥२०॥ ब्रह्माणो वहवो रुद्धा ह्यात्ये नारायणादयः । एको हि भगवानीशः कालःकविरिति श्रुतिः ॥२१॥ एकमत्र व्यतीतन्तु परार्द्धं ब्रह्माणो द्विजाः । साम्प्रतं वर्त्तते त्वर्द्धं तस्य कल्पोऽयमग्रजः ॥२२॥ योऽतीतः सोऽन्तिमः कल्पः पाद्म इत्युच्यते ब्रुधेः । वाराहो वर्त्तते कल्पस्तस्य वद्त्यामि विस्तरम्॥२३॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे कालसंख्याकथनं नाम पद्धमोऽध्यायः ॥ १ ॥

षष्टोऽध्यायः

कूर्म उवाच

श्रासीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् । शान्तवातादिकं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ॥ १ ॥ एकार्णवे तदा तिस्मन् नष्टे स्थावर-जङ्गमे । तदा समभवद ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ २ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः । ब्रह्मा नारायगाख्यस्तु सुष्वाप सिलले तदा ॥ ३ ॥ इमञ्जोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति । ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाव्ययम् ॥ ४ ॥ ग्रापो नारा इति प्रोक्ता ग्रापो वै नरसूनवः । ग्रयनं तस्य ता यस्मात् तेन नारायणः स्मृतः ॥ ५ ॥ ततस्तु युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः । शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥ ६ ॥ ततस्तु सिलले तिस्मन् विज्ञायान्तर्गतां महीम् । ग्रनुमानात् तदुद्धारं कर्जुकामः प्रजापितः ॥ ७ ॥ जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थितः । ग्रधृष्यं मनसाप्यन्यैर्वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञतम् ॥ ८ ॥ पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम् । दंष्ट्रयाभ्युज्जहारैनामात्मावारो घराघरः ॥ ९ ॥ स्थृवा दंष्ट्राग्रविन्यस्तां पृथ्वीं प्रथितपौरूषम् । ग्रस्तुवन् जनलोकस्थाः सिद्धा ब्रह्मर्थयो हिरम् ॥ १०॥ स्थृवा दंष्ट्राग्रविन्यस्तां पृथ्वीं प्रथितपौरूषम् । ग्रस्तुवन् जनलोकस्थाः सिद्धा ब्रह्मर्थयो हिरम् ॥ १०॥

ऋषय ऊचुः

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने । पुरुषाय पुराणाय शास्वतायाजराय च ॥११॥ नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्वष्ट्रे सर्वार्थवेदिने । नमो हिरएयगर्भाय वेधसे परमात्मने ॥१२॥ नमस्ते वासुदेवाय विष्णावे विश्वयोनये । नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे ॥१३॥ नमोऽस्तु ते चतुर्ववत्र-शार्ङ्क-चकासिधारिणे । सर्वभूतात्मभूताय क्टस्थाय नमो नमः ॥१४॥ नमो वेदरहस्थाय नमस्ते वेदयोनये । नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥१५॥

कूमपुराण्म्

नमोऽस्त्वानन्दरूपाय साक्षिणे जगतां नमः । श्रनन्तायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च ॥१६॥ नमस्ते पञ्चभूताय पञ्चभूतात्मने नमः । नमो मूलप्रकृतये मायारूपाय ते नमः ॥१०॥ नमोऽस्तु ते वराहाय नमस्ते मत्स्यरूपिणे । नमो योगाधिगम्याय नमः सङ्कर्षणाय ते ॥१८॥ नमाञ्जमूत्त्रये तुभ्यं त्रिधामने दिव्यतेजसे । नमः सिद्धाय पूज्याय गुणत्रयविभागिने ॥१९॥ नमोऽस्त्वादित्यरूपाय नमस्ते पद्मयोनये । नमोऽमूर्त्ताय मूर्वाय माधवाय नमो नमः ॥२०॥ स्वयैव सृष्टमिखलं स्वय्येव सकलं स्थितम् । पालयैतज्जगत् सर्वं त्राता त्वं शरणां गितः ॥२१॥ इत्थं स भगवान् विष्णुः सनकाद्यैरभिष्दुतः । प्रसादमकरोत् तेषां वराहवपुरीश्वरः ॥२२॥ ततः स्वस्थानमानीय पृथिवों पृथिवोपितः । मुमो व रूपं मनसा धारियत्वा धराधरः ॥२३॥ तस्योपिर जलौषस्य महतो नौरिव स्थिता । विततत्वाञ्च देहस्य न मही याति संप्लवम् ॥२४॥ पृथिवों स समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद् गिरीन् । प्राक्सर्गदग्धानिष्वलान् ततः । सर्गेऽदधन्मनः ॥२४॥ पृथिवों स समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद् गिरीन् । प्राक्सर्गदग्धानिष्वलान् ततः । सर्गेऽदधन्मनः ॥२४॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे पृथिव्युद्धारो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

कूर्म उवाच

सृष्टि चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा । अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ १ ॥ तमो मोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्घसंज्ञितः । श्रविद्या पञ्चपर्वेषा प्रादुभूता महात्मनः ॥ २॥ पद्भधाऽवस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः । संवृतस्तमसा चैव बीजकूम्भवदावृतः ॥ ३ ॥ बहिरन्तश्चाप्रकाशःस्तब्बो निःसङ्ग एव च । मुख्या नगा इति प्रोक्ता मुख्यसगैस्तु स स्मृतः ॥ ४ ॥ सर्गममन्यदपरं प्रभुः । तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक् स्रोतोऽभ्यवर्तात ।। ५ ।। यस्मात् तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक् स्रोतस्ततः स्मृतः । पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथप्राहिणो द्विजाः ॥ ६ ॥ तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यं ससर्जं ह । ऊद्ध्वस्त्रोत इति प्रोक्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः ॥ ७ ॥ सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः । प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद्देवसंज्ञिताः ॥ ५॥ ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा । प्रादुरासीत् तदा व्यक्तादर्शक्स्रोतस्तु साधकः ॥ ९॥ तत्र प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः । दुःखोत्कटाः सत्त्रयुता मनुष्याः परिकीर्त्तिताः ॥१०॥ दृष्टवा चापरं सर्गममन्यद्भगवानजः । तस्याभिध्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत् ॥११॥ ते परिग्रहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः । खादिनश्चाप्यजीलाश्च भूताद्याः परिकीर्त्तिताः ॥१२॥ इत्येते पद्ध कथिताः सर्गा वै द्विजपुङ्गवाः । प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मस्सु सः ॥१३॥ तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः । वैकारिकस्तृतीयस्त् सर्ग एन्द्रियकः स्मृतः ॥१४॥ इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः । मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः समृताः ॥१५॥ तिर्यंक् स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यं योन्यः स पञ्चमः । तथोद्ध्वं स्रोतसां षष्टो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥१६॥ ततोऽवींक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः । श्रष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्त्तितः ॥१७॥ नवमञ्चेव कौमारः प्राकृता वैकृतास्त्विम । प्राकृतास्तु त्रयः पूर्वे सर्गास्ते बुद्धिपूर्वकाः ॥१८॥ बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते मुख्याद्या मुनिपुङ्गवाः । श्रग्ने ससर्ज वे ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ॥१९॥ सनकं सनातनञ्चेव तथैव च सनन्दनम् । ऋभुं सनत्कुमारक्च पूर्वमेव प्रजापतिः ॥२०॥

पूर्वभागे सप्तमोऽध्यायः

पञ्चैते योगिनो विप्राः परं वैराग्यमाश्रिताः । ईश्वरासक्तमनसो न सृष्टौ दिघरे मतिम् ॥२१॥ तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ प्रजापितः । मुमोह मायया सद्यो मायिनः परमेष्टिनः ॥२२॥ सम्बोधयामास च तं जगन्मायो महामुनिः । नारायगो महायोगी योगिचित्तानुरञ्जनः ॥२३॥ बोधितस्तेन विश्वात्मा तताप परमं तपः । स तप्यमानो भगवान् न किञ्चित् प्रत्यपद्यत ॥२४॥ ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधोऽभ्यजायत । क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः॥२५॥ भृकुटीकुटिलात् तस्य ललाटात् परमेष्ठिनः । समुत्पन्नो महादेवः शरएयो नीललोहितः ॥२६॥ स एव भगवानीशस्तेजोराशिः सनातनः । यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः स्वात्मस्थं परमेश्वरम् ॥२७॥ भ्रोङ्कारं समनुस्मृत्य प्रणम्य च कृताञ्जलिः । तमाह भगवान् ब्रह्मा सृजेमा विविधाः प्रजाः ॥ २८॥ निशस्य भगवद्वावय शङ्करो धर्मवाहनः । स्रात्मना सहशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः ।

कपर्दिनो निरातङ्कांश्चिनेत्रान् नीललोहितान् ॥२९॥

तं प्राह भगवान् ब्रह्मा जन्ममृत्युयुताः प्रजाः । सृजेति सोऽब्रवीदीशो नाहं मृत्युजरान्विताः ॥३०॥ प्रजाः सक्ष्ये जगन्नाथ सृज त्वमशुभाः प्रजा । निवार्यं च तदा रुद्रं संसर्ज कमलोद्भवः ॥ स्थानाभिमानिनः सर्वान् गदतस्तान् निबोधत ॥३१॥

भ्रापोऽग्निरन्तरीक्षञ्च द्यौर्वायुः पृथिवी तथा । नद्यः समुद्राः शैलाश्च वृक्षा वीरुघ एव च ॥३२॥ लवाः काष्टाः कलारचैव मुहूर्त्ता दिवसाः क्षपाः । श्रर्द्धमासाश्च मासाश्च श्रयनाब्दयुगादयः ।

स्थानाभिमानिनः सृष्ट्वा साधकानसृजत् पुनः ॥३३॥ मरीचिभृग्विङ्गरसः पुलस्त्यं पुलहं कतुम् । दक्षमित्रं वसिष्ठक्च धर्मं सङ्कल्पमेव च ॥३४॥ प्रागाद ब्रह्माऽसृजद्क्षं चक्षुभ्यां च्र मरीचिकम् । शिरसोऽङ्गिरसं देवो हृदयाद भृगुमेव च ॥३५॥ नेत्राभ्यामित्रनामानं घर्मेञ्च व्यवसायतः । सङ्कल्पञ्चैव सङ्कल्पात् सर्वलोकिपितामहः ॥३६॥ पुलस्त्यक्च तथोदानाद् व्यानाच पुलहं मुनिम् । श्रपानात् कतु मव्यग्रं समानाच वसिष्ठकम् ॥३७॥ इत्येते ब्रह्मणा सृष्टाः साधका गृहमेधिनः । श्रास्थाय मानवं रूपं धर्मस्तैः सम्प्रवर्तितः ॥३८॥ ततो देवासुरिपतृत् मनुष्यांक्च चतुष्टयम् । सिसृक्षुर्भगवानीशः स्वमात्मानमयोजयत् ॥३९॥ युक्तात्मनस्तमोमात्रा हचुद्रिक्ताभूत् प्रजापतेः । ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जिसरे सुताः ॥४०॥ उत्समर्जामुरान् सृष्ट्वा तां तनुं पुरुषोत्तमः । सा चोत्सृष्टा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ।

सा तमोबहुला यस्मात् प्रजास्तस्यां स्वपन्त्यतः ॥४१॥ सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्तनुमन्यां गृहीतवान् । ततोऽस्य मुखतो देवा दीव्यतः सम्प्रजितरे ॥४२॥ त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद्गिम्। तस्मादहर्धर्मयुक्ता देवताः समुपासते ॥४३॥ सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् । वितृवन्मन्यमानस्य वितरः सम्प्रजितरे ॥४४॥ उत्सम्नर्जं पितृन् सृष्ट्वा ततस्तामपि विश्वहरू । सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या व्यजायत ॥४५॥ तस्मादहर्देवतानां रात्रिः स्याद्विविद्विषाम् । तयोर्मध्ये पितृणान्तु मूर्तिः सन्ध्या गरीयसी ॥४६॥ तस्माह्वामुराः सर्वे मुनयो मानवास्तदा । उपासते सर्वा युक्ता रात्र्यह्नोर्मध्यमां तनुम् ॥४७॥ रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा तनुमन्यां ततोऽस्जत् । ततोऽस्य जित्तरे पुत्रा मनुष्या रजसावृताः ॥४५॥ तामथाऽशु स तत्याज तत्रं सद्यः प्रजापतिः । ज्योत्स्रा सा चाभवद्विप्राः प्राक्सन्व्या याभिवीयते॥४९॥ ततः स भगवान् ब्रह्मा सम्प्राप्य द्विजपुङ्गवाः । सूर्ति तमोरजःप्रायां पुनरेवाभ्यपूजयत् ॥५०॥ भ्रन्थकारे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जित्तरे। पुत्रास्तमोरजःप्राया बलिनस्ते निशाचराः ॥५१॥ सर्पा यक्षास्तथा भूता गन्धर्वाः सम्प्रजितरे । रजस्तमोभ्यामाविष्टांस्ततोऽन्यानसृजत् प्रभुः ॥५२॥

वयांसि वयसः सृष्ट्वा ग्रवीन् वै वक्षसोऽसृजत् । मुखतोऽजान् ससर्जान्यान् उदराद् गाश्च निर्ममे॥५३॥ पद्भयाद्याश्वान् समातङ्गान् रासभान् गवयान् मृगान् । उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यङ्कृनन्याश्च जातयः॥५४॥ म्रोषध्यः फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जित्तरे । गायत्रक्च ऋचव्चैव त्रिवृत्स्तोमं रथन्तरम् ॥५५॥ भ्रग्निष्टोमञ्ज यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् । यज् िष त्रष्टुमं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा ॥५६॥ बृहत्साम तथोक्थन्त्र दक्षिणादम्जनमुखात् । सामानि जागतं छन्दः स्तोमं सप्तदशं तथा ॥५७॥ वैरूपमितरात्रक्च पश्चिमादसृजनमुखात् । एक्विंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव सवैराजमुत्तरादसृजनमुखात् । उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥५९॥ ग्रन्ष्ट्रभं ब्रह्मणो हि प्रजासर्गं सृजतस्तु प्रजापतेः । सृष्ट्वा चतुष्टयं सर्गं देवर्षिपितृमानुषम् ॥६०॥ ततोऽसृजच भूतानि स्थावराणि चराणि च । यक्षान् पिशाचान् गन्धवीस्तथैवाप्सरसः शुभाः ॥६१।। नर-किल्लर-रक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् । ग्रव्ययञ्च व्ययञ्चीव द्वयं स्थावरजङ्गमम् ॥६२॥ तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्टेः प्रतिपेदिरे । तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥६३॥ मृदुकूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात् तत्तस्य रोचते ॥६४॥ नानात्विमिन्द्रियार्थेषु मूर्त्तिषु । विनियोगळ्ळ भूतानां घातैव व्यदघात् स्वयम्।।६५।। महाभूतेष् नामरूपञ्च भूतानां प्राकृतानां प्रपञ्चनम् । वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेरवरः ॥६६॥ म्राषाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु सृष्ट्यः । शर्वर्यन्ते प्रस्तानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ॥६७॥ यावन्ति प्रतिलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥६८॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे सर्गकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

कूर्म उवाच

एवं भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च । यदास्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्द्धन्त घीमतः ।। १ ।। तमोमात्रावृतों त्रह्मा तदाशोचत दुःखितः । ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ॥ २ ॥ ग्रयात्मिन समद्राक्षीत् तमोमात्रां नियामिकाम्। रजः सत्त्वक्च संवृत्य वर्त्तमानां स्वधर्मातः॥३॥ तमस्तु व्यनुदत् पश्चाद्रजः सत्त्वेन संयुतः । तत् तमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत ॥ ४॥ ग्रधमिचरणो विप्रा हिंसा चाशुभलक्षणा । स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम्।। ५।। द्विधाकरोत् पुनर्देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् । ग्रार्द्धेन नारी पुरुषो विराजमस्जत् प्रभुः ।। ६ ॥ नारीञ्च शतरूपाख्यां योगिनीं समृजे शुभाम् । सा दिवं पृथिवीञ्चैव महिम्रा व्याप्य संस्थिता ॥ ७ ॥ ज्ञान - विज्ञानसंयुता । योऽभवत् पुरुषात् पुत्रो विराडव्यक्तजन्मनः ॥ द ॥ स्वायम्भुवो मनुर्देवः सोऽभवत् पुरुषो मुनिः । सा देवी शतरूपाख्या तपः कृत्वा सुदुश्चरम् ॥ ९ ॥ मनुमेवान्वपद्यत । तस्माच्च शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत ॥१०॥ भत्तोरं दोप्तयशसं कन्याद्वयमनुत्तमम् । तयोः प्रसूतिं दक्षाय मनुः कन्यां ददौ पुनः । ११॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रजापितरथाकूर्ति मानसो जगृहे रुचिः । ग्राकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य ६चेः शुभम् ॥१२॥ यज्ञश्च दक्षिणा चैव याभ्यां संविर्धतं जगत् । यज्ञस्य दक्षिणायाञ्च पुत्रा द्वादश जितरे ।।१३।। यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे । प्रसूत्याञ्च तथा दक्षश्चतस्रो विशति तथा । १४॥

ससर्ज वन्या नामानि तासां सम्यङ्निबोधत । श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा किया तथा ॥१५॥ बुद्धिलंजा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी । पत्न्यर्थं प्रतिजग्राहं धर्मी दाक्षायणीः शुभाः ॥१६॥ ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः । ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः समृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥१७॥ सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्ववा तथा । भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः ।।१८।। पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्राः परमधर्मीवत् । ग्रत्रिवसिष्ठो विह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम् ॥१९॥ ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो ज्ञानसत्तमाः । श्रद्धाया ग्रात्मजःकामो दर्पो लक्ष्मीमुतःसमृतः ॥२०॥ धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः सन्तोष उच्यते । पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः शमस्तथा ॥२१॥ कियायाश्चाभवत् पुत्रो दएडश्च नय एव च । बुद्धचा बोधः मुतस्तद्वदप्रमादोऽप्यजायत ॥२२॥ लज्जाया विनयः पुत्रो वपुषो व्यवसायकः । क्षेपः शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धरजायत ॥२३॥ यशः कीर्त्तिमुतस्तद्वदित्येत धर्मसूनवः। कामस्य हर्षः पुत्रोऽभूह्वानन्दोऽप्यजायत ॥२४॥ इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्तितः । जज्ञे हिंसा त्वधर्माद्वै निकृतिञ्चानृतं सुतम् ॥२४॥ निकृत्यनृतयोर्जज्ञे भयं नरकमेव च। माया च वेदना चैव मिथुनन्त्विदमेतयोः ॥२६॥ भयाज्जज्ञेऽथ वे माया मृत्युं भूतापहारिणम् । वेदना च सुतञ्चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ॥२७॥ मृत्योर्व्याधिर्जरा शोकौ तृष्णा क्रोधश्च जित्ररे । दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्गे चाधर्मलक्षणाः ॥२८॥ नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्गे ते ह्यू ईरेतसः । इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः । संक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिर्मुनिपुङ्गवाः ॥२९॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे मुख्यादिसर्गकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

स्त उवाच

एतच्छुत्वा तु वचनं नारदाद्या महर्षयः । प्रणम्य वरदं विष्णु पप्रच्छुः संशयान्त्रिताः ॥ १॥

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सर्गो मुख्य दीनां जनार्दन । इदानीं संशयञ्चेममस्माकं छेत्तुमर्हीस ॥ २ ॥ कथं स भगवानीशः पूर्वजोऽपि पिनाकधृक् । पुत्रत्वमगमच्शं भुर्त्रह्माणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ३ ॥ कथं स भगवानीशः पूर्वजोऽपि पिनाकधृक् । प्रयुद्धतो जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हीस ॥ ४ ॥ कथं व भगवान् जज्ञे ब्रह्मा कमलसम्भवः । ग्रयुद्धतो जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हीस ॥ ४ ॥

कूर्म उवाच

श्रृणुध्वमृषयः सर्वे शङ्करस्यामितीजसः। पुत्रत्वं ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनित्वमेव च।। १॥ श्रृतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत्त्रयम्। श्रासीदेकार्णवं घोरं न देवाद्या न चर्षयः॥ ६॥ श्रृतीतकल्पावसाने देवो निर्जने निरुपण्लवे। श्राश्रित्य शेषशयनं सुष्वाप पुरुषोत्तमः॥ ७॥ तत्र नारायणो देवो निर्जने निरुपण्लवे। श्राश्रित्य शेषशयनं सुष्वाप पुरुषोत्तमः॥ ७॥ सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात्। सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः॥ ६॥ पोतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्तिभः। महाविभूतियोगित्मा योगिनान्तु दयापरः॥ ९॥ कदाचित् तस्य सुप्तस्य लीलार्थं दिव्यमद्भुनम्। त्रैलोक्यसारं विमलं नाभ्यां पङ्कजमुद्धभौ॥ १०॥

.

वातयोजनविस्तीर्णं तह्णादित्यसिन्नभम् । दिव्यगन्धपयं पुरायं कर्शिका-कें परान्वितम् ॥११॥ तस्यैवं मुचिरं कालं वर्रामानस्य शार्ङ्गिणः । हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचकमे । १२॥ स तं करेण विश्वात्मा समुत्थाप्य सनातनम् । प्रोतात्र मञ्जूरं वाक्यं मायया तस्य मोहितः ॥१३॥ ग्रह्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते । एकाको को भवाञ्छेते बूहि मे पुरुषर्षम ॥१४॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्याः । उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरिनस्वनः ॥१५।। भो भो नारायगां देवं लोकानां प्रभवाव्ययम् । महायोगीश्वरं मां वै जानीहि पुरुषोत्तमम् ॥१६॥ मिय पश्य जगत् कृत्सनं त्वाञ्च लोकपितामहम् । सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तिभिवृतम् ॥१७। एवमाभाष्य विश्वातमा प्रोवाच पुरुषं हरिः । जानन्नपि महायोगी को भवानिति वेवसम् ॥१६॥ ततः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः । प्रत्युवाचाम्बुवाभाक्षं सस्मितं श्रुक्षणया गिरा ॥१९॥ ग्रहं धाता विधाता च स्वयम्भूः प्रपितामहः । मय्येत्र संस्थितं विश्वं ब्रह्माहं विश्वतोमुखः ।।२०।। श्रद्वा वाचं स भगवान् विष्णुः सत्यपराक्रमः । श्रवुज्ञाप्याथ योगेन प्रविष्टो ब्रह्मणस्तनूम् ॥२१॥ त्रैलोक्यमेतत् सकलं सदेवासुरमानुषम् । उदरे तस्य दे ।स्य दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥२२॥ तदास्य वक्त्रान्तिष्क्रम्य पन्नगेन्द्रारिकेतनः । श्रथापि भगवान् विष्णुः पितामहमयात्रवीत् ॥२३॥ भवानप्येवमेवाद्य शाहततं हि मनोदरम् । प्रविश्य लोकान् पश्येतान् विचित्रान् पुरुषर्षम ॥२४॥६ ततः प्रह्लादिनीं वाणीं श्रद्वा तस्याभियन्द्य च । श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश कुशध्वजः ॥२५॥ तानेव लोकान् गर्भस्थानपश्यत् सत्यविकामः । पर्यटित्वाथ देवस्य दहशेऽन्तं न व हरे:।।२६। ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि महात्मना । जनादंनेन ब्रह्मासी नाभ्यां द्वारपिनन्दत ॥२७॥ तत्र योगबलेनासी प्रविश्य कनकाएडजः । उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराचनुराननः ॥२८॥ विरराजारविन्दस्थः पद्मगभैसमद्यतिः । ब्रह्मा स्वयम्भूभगवान् जगद्योनिः पितामहः ॥२९॥ स मन्यमानो विश्वेशमात्मानं परमं पदम् । प्रोताच विष्णुं पुरुषं मेघगम्भीरया गिरा ॥३०॥ कृतं कि भवतेदानीमात्मनो जयकाङ्क्षया। एकोऽहं प्रवलो नान्यो मां वै कोऽभिभविष्यति ॥३१॥ श्रुत्वा नारायगो दाक्यं ब्रह्मणोक्तमतिन्द्रतः । सान्त्वपूर्विमदं वाक्यं बभाषे मध्रं हरिः ॥३२॥ भवान् धाता विधाता च स्त्रयमभूः प्रिपतामहः । न मात्सर्याभियोगेन द्वाराणि पिहितानि में ।।३३॥ किन्तु लीलार्थमेवैतन्त त्वां बाधितुमिच्छया । को हि बाधितुममन्त्रिच्छेद्देवदेवं पितामहम् ॥३४॥ न तेऽन्यथावगन्तव्यं मान्यो मे सर्वथा भवान् । सर्वं क्षमस्व कत्याण यन्मयापकृतं तव ॥३४॥ ग्रस्माच कारणाद् ब्रह्मन् पुत्रो भवतु मे भवान् । पद्मयोनिरिति ख्यातो मित्प्रयार्थं जगन्मय ॥३६॥ ततः स भगवान् देत्रो वरं दत्त्वा किरीटिने । प्रहर्षमतुलं गत्ता पुनर्विष्णुमभाषत ॥३७॥ भवान् सर्वात्मकोऽनन्तः सर्वेषां परमेश्वरः । सर्वभूतान्तरात्मा वै परं ब्रह्म सनातनम् ॥३८॥ श्रहं वै सर्वेलोकानामात्मा देवो महेश्वरः । मन्मयं सर्वमेवेदं ब्रह्माहं पुरुषः परः ॥३९॥ नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः । एका मूर्त्तिर्द्विधा भिन्ना नारायण पितामहौ ॥४०॥ तेनैवमुक्तो ब्रह्माणं वासुदेवोऽब्रवीदिदम् । इयं प्रतिज्ञा भवतो विनाशाय भविष्यति ॥४१॥ कि न पश्यमि योगेन त्रह्याचिपतिमव्ययम् । प्रधानपुरुषेशानं वेदाहं परमेश्वरम् ॥४२॥ यं न पश्यन्ति योगीन्द्राः सांख्या श्रिप महेश्वरम् । श्रनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं व्रज ॥४३॥ ततः कृद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् । भगवन् नूनमात्मानं वेद्यि तत् परमाक्षरम् ॥४४॥ ब्रह्माणं जगतामेकमात्मानं परमं पदम् । नावाभ्यां विद्यते त्वन्यो लोकानां परमेश्वरः ॥४५॥ सन्त्यज्य निद्रां विपुलां स्वमात्मानं विलोकय । तस्य तत् क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत ॥४६॥

पूर्वभागे नवमोऽध्यायः

मा मैवं वद कल्याण परीवादं महात्मनः । न मेऽस्त्यविदितं ब्रह्मन् नान्यथाहं वदामि ते ॥४७॥ किन्तु मोहयति ब्रह्मन् भवन्तं पारमेश्वरी । मायाऽशेषिवशेषाणां हेतुरात्मसमुद्मवा ॥४५॥ एताबदुक्ता भगवान् विष्णुस्तूष्णीं बभूव ह । ज्ञात्वा तत् परमं तत्त्वं स्वमात्मानं सुरेश्वरः ॥४९॥ ततो ह्यपरिमेयात्मा भूतानां परमेश्वरः । प्रसादं ब्रह्मणे कर्त्तुं प्रादुरासीत् ततो हरः ॥५०॥ देवो जटामण्डलमिएडतः । त्रिशूलपाणिभगवां तेजसां परमो निधिः ॥५१॥ ललाटनयनो विद्याविलासग्रथितां ग्रहै: सार्केन्द्रतारकै:। मालामत्यद्भुताकारां धारयन् पादलम्बिनीम् ॥५२॥ तं दृष्ट्वा देवमीशानं ब्रह्मा लोकपित।महः । मोहितो माययात्यर्थं पीतवाससमब्रवीत् ॥५३॥ शूलपाशिष्ठिलोचनः । तेजोराशिरमेयात्मा समायाति जनार्दन ॥५४॥ क एष प्रुषो नील: श्रुत्वा विष्णूदीनवमर्दनः । ग्रपश्यदीश्वरं देवं ज्वलन्तं विमलेऽम्भसि ॥५५॥ इात्वा तं परमं भावमैश्वरं व्रह्मभावनः । प्रोवाचोत्थाय भगवान् देवदेवं पितामहम् ॥५६॥ ग्रयं देवो महादेवः स्वयज्योतिः सनातनः । ग्रनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान् ॥५७॥ शङ्करः शम्भुरीशानः सर्वातमा परमेश्वरः । भूतानामिधपो योगी महेशो विमलः शिवः ॥५५॥ एष धाता विधाता च प्रधानपुरुषेश्वरः । यं प्रवश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेण भाविताः ॥५९॥ मृजत्येष जगत् कृत्स्नं पाति सं १रते तथा । कालो भूत्वा महादेवः केवलो निष्कलः शिवः ॥६०॥ ब्रह्माण विदये पूर्वं भवन्तं यः सनातनः । वेदांश्च प्रदरी तुभ्यं सोऽयमायाति शङ्करः ॥६१॥ ग्रस्यैव चापरां मूर्तिः विश्वयोनि सनातनीम् । वासुदेवाभिधानं मामवेहि प्रिपतामहः ॥६२॥ कि न पश्यिस यागेशं ब्रह्माधिपतिमन्ययम् । दिन्यं भवतु ते चक्षुर्येन द्रक्ष्यसि तत्परम् ॥६३॥ लब्ध्वा चैवं तदा चक्षुविष्णोर्लोकिपतामहः। बुबुधे परमेशानं पुरतः समवस्थितम् ॥६४॥ स लब्धा परमं ज्ञानमैश्वरं प्रिपतामहः। प्रपेदे शरणं देवं तमेव पितरं शिवम्।।६४॥ संस्तभ्यात्मानमात्मना । त्रथवशिरसा देवं तुष्टाव च कृताञ्जलिः ॥६६॥ ब्रोङ्कारं समन्सम्त्य संस्तुतस्तेन भगवान् ब्रह्मणा परमेश्वरः। ग्रवाप परमां प्रीतिं व्याजहार समयन्निव ॥६७॥ मत्समस्त्वं न सन्देहो वत्स भक्तश्च मे भवान् । मयैवोत्पादितः पूर्वं लोकसृष्ट्यर्थमन्ययः ॥६८॥ मम देहसमुद्भवः । वरं वरय विश्वात्मन् वरदोऽहं तवानघ ॥६९॥ त्वमात्मा ह्यादिपुरुषो देवदेवव वनं निशम्य कमलोद्भवः । निरोक्ष्य विष्णुं पुरुषं प्रणम्योवाच शङ्करम् ॥७०॥ महादेवाम्बिकापते । त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सहशं सुतम् ॥७१॥ भगवन भूतभव्येशं मोहितोऽस्मि महादेव मायया सूक्ष्मया त्वया । न जाने परमं भावं याथातथ्येन ते शिव ॥७२॥ त्त्रमेव देव भक्तानां माता भ्राता पिता सुहृत् । प्रसीद तव पादाब्जं नमामि शरणागतः ॥७३॥ श्रुत्वा जगन्नाथो वृषध्वजः । व्याजहार तदा पुत्रं समालोक्य जनार्दनम् ॥७४॥ स तस्य वचनं करिष्यामि पुत्रक । विज्ञानमैश्वरं दिव्यमुत्पत्स्यति तवानघ ॥७५॥ यदिथतं भगवता तत् सर्वभूतानामादिकर्ता नियोजितः । कुरुष्व तेषु देवेश मायां लोकपितामह ॥७६॥ तनुः । भविष्यति तवेशान योगक्षेमवहो हरिः ॥७७॥ एष नारायणोऽनन्तो ममैव परमा स परमेश्वरः । संस्पृश्य देवं ब्रह्माणं हरिं वचनमब्रवीत् ॥७५॥ एवं व्याहृत्य हस्ताभ्यां प्रोतः तुष्टोऽस्मि सर्गथाहं ते भक्तस्त्वश्च जगन्मय । वरं वृणीष्व न ह्यावां विभिन्नी परमार्थतः ॥७९॥ देववचनं विष्णुर्विश्वजगन्मयः । प्राह प्रसन्नया वाचा समालोक्य च तन्मुखम् ॥५०॥ एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं परमेश्वरम् । पश्यामि परमात्मानं भक्तिर्भवतु मे त्वयि ॥५१॥ महादेवः पुनर्विष्णुमभाषत । भवान् सर्वस्य कार्यस्य कत्तीहमधिदैवतम् ॥५२॥ त्वन्मयं मन्मयञ्चैव सर्वमेतन्न संशयः। भवान् सोमस्त्वहं सूर्यो भवान् रात्रिरहं दिनम्॥ ६३।।

कूमेपुराणम्

20

प्रकृतिरव्यक्तमहं पुरुष एव च । भवान् ज्ञानमहं ज्ञाता भवान् मायाहमीश्वरः । भवान् विद्यारिमका शक्तिः शक्तिमानहपीश्वरः ॥५४॥ योऽहं स निष्कलो देवः सोऽसि नारायणः प्रभुः । एकीभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिनः ॥५५॥ त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् न योगी मामुपेष्यति । पालयैतजगत् कृत्स्नं सदेवासुर - मानुषम् ॥५६॥ इतीदमुक्तवा भगवाननादिः स्वमायया मोहितभूतभेदः ।

जगाम जन्मद्धिविनाशहीनं धामैकमन्यक्तमनन्तशक्तिः ॥५७॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे पद्मो द्भवप्रादुर्भावो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९॥

दशमोऽध्यायः

कूर्म खवाच

गते महेश्वरे देवे भूय एव पितामहः। तदेव सुमहत् पद्मं भेजे नाभिसमुित्थतम्।।१।। भ्रथ दीर्घेण कालेन तत्राप्रतिमपौरुषौ । महासुरौ समायातौ भ्रातरौ मधु-कैटभौ ॥ २ ॥ मह्ताविष्टौ महापर्वतिविग्रहौ । कर्णान्तरसमुद्भूतौ देवदेवस्य शिङ्गिणः ॥ ३॥ तावागती समीक्ष्याह नारायणमजो विभुः । त्रैले वयकएटकावेतावसुरौ हन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ तदस्य वचनं श्रुत्वा हरिनरिायगाः प्रभुः । श्राज्ञापयामास तयोर्वधार्थं पुरुषावुमौ ॥ १ ॥ महद्युद्धं तयोस्ताभ्यामभूद्विजाः । व्यजयत् कैटभं जिष्णुर्विष्णुश्च व्यजयन्मधुम् ॥ ६॥ ततः पद्मासनासीनं जगन्नाथः पितामहम् । बभाषे मघुरं वाक्यं स्नेहाविष्टमना हरिः ॥ ७॥ प्रभो । नाहं भवन्तं शक्तोमि वोद्धं तेजोमयं गुरुम् ॥ ५॥ श्रस्मान्मयोह्यमानस्त्रं पद्मादवतर ततोऽवतीर्यं विश्वात्मा देहमाविश्य चिक्रणः । स्रवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूयाथ विष्णुना ॥ ९॥ तेन तयाविश्य शङ्ख चक्र-गदाधरः । ब्रह्मा नारायणाख्योऽमौ सुष्वाप सलिले तदा ॥१०॥ सोऽनुभूय चिरं कालमानन्दं परमात्मनः। ग्रनाद्यनन्तमद्वैतं स्वात्मानं त्रह्मसंज्ञितम् ॥११॥ ततः प्रभाते योगातमा भूत्वा देवश्चतुर्मुखः । ससर्जं सृष्टि तद्रूपां वैष्णानं भावमाश्चितः ॥१२॥ पुरस्तादसृद्देवः सनन्दं सनकं तथा। ऋभुं सनत्कुमारेच पूर्वजं तं सनातनम् ॥१३॥ ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः परं वैराग्यमास्थिता । विदित्वा परमं भावं ज्ञाने विदिधरे मितम् ॥१४॥ तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टो पितामहः । बभूव नष्टवेता वै मायया परमेष्ठिनः ॥१५॥ जगन्मूर्त्तः सनातनः । व्याजहारात्मनः पुत्रं मोहनाशाय पद्मजम् ॥१६॥ ततः प्राणपुरुषो

विष्णुरुवाच

कचित्रु विस्मृतो देवः शूलपाणिः सनातनः । यदुक्तो वै पुरा शम्भुः पुत्रत्वे भव शङ्कर ॥१७॥ भ्रवाप्य संज्ञां गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः । प्रजाः सब्दुपनास्नेपे तपः परमदुश्चरम् ॥१८॥ तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित् समवर्त्त । ततो दीर्घेगा कालेन दुःखात् क्रोघोऽभ्यजायत।।१९।। क्रोबाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः । ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूताः प्रेतास्तदाभवन्॥२०॥ सर्वास्तानग्रतो हष्ट्वा ब्रह्मातमाविन्दत । जही प्राणांश्च भगवान् कोघाविष्टः प्रजापति ।।२१।।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain

पूर्वभागे दशमोऽध्यायः

तदा प्राग्गमयो रुद्रः प्रादुरासीत् प्रभोर्मुखात् । सहस्रादित्यसङ्काशो युगान्तदहनोपमः ॥२२॥ रुरोद सुरुवरं घोरं देवदेवः स्वयं शिवः । रोदमानं ततो ब्रह्मा मा रोदोरित्यभाषत ॥२३॥ रोदनादुद्र इत्येवं लोके ख्याति गमिष्यसि । भ्रन्यानि सप्त नामानि पत्नीः पुत्रांश्च शाश्वतान्॥२४॥ स्थानानि तेषामष्टानां ददौ लोकपितामहः । भवः शर्वस्तथेशानः पश्चनां पतिरेव च । भीमञ्जोग्नो महादेवस्तानि नामानि सप्त व ॥२५॥

सूर्यो जलं मही विह्नर्वायुराकाशमेव च । दीक्षितो त्राह्मराश्चनद्र इत्येता श्रष्ट मूर्तियः ॥२६॥ स्थानेष्वेतेषु ये रेद्रान् ध्यायन्ति प्रणमन्ति च । तेषामष्टतनुर्देवो ददाति परमं पदम् ॥२७॥ सुवर्चला तथैवोमा विकेशी च गिवा तथा। स्वाहा दिशश्च दीक्षा च रोहिणी चेति पत्नयः।।२५॥ शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्को मनोजवः । स्कन्दःसगींऽथ संतानो बुधश्चैषां मुताःस्मृताः ॥२९॥ एवस्प्रकारो भगवान् देवदेवो महेश्वरः । प्रजा धर्मञ्च कामश्व त्यवत्वा वैराग्यमाश्रितः ॥३०॥ श्रात्मन्याधाय चात्मानमैश्वरं भावमास्थितः । पीत्वा तदक्षरं ब्रह्म शास्वतं परमामृतम् ॥३१॥ प्रजाः मुजेति चादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः । स्वात्मना सहशान् रुद्रान् ससर्जं मनसा शिवः ॥३२॥ कपर्दिनो निरातङ्कान् नीलकएठान् पिनाकिनः । त्रिशूनहस्तानुद्रिकान् सदानम्दांखिलोचनान्॥३३॥ महावृषभवाहनान् । वीतरागांश्च सर्वज्ञान् कोटिकोटिशतान् प्रभुः॥३४॥ जरामरण निम्कतान् तान् दृष्ट्वा विविधान् रुद्रान् निर्मलान् नीललोहितान्। जरामरणनिर्मुक्तान् व्याजहार हरं गुरुः ॥३५॥ मा स्नाक्षीरीहशीर्देव प्रजा मृत्युविवर्जिताः । अन्याः सृजस्व भूतेश जन्ममृत्युसमन्विताः ॥३६॥ ततस्तमाह भगवान् कपदी कामशासनः । नास्ति मे ताहुशः सगेंः सूज त्वविविधाः प्रजाः ॥३७॥ ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूते शुभाः प्रजाः । स्वात्मजैरेव तै रुद्रोनिवृत्तात्मा ह्यतिष्ठत ॥३८॥ स्थाणुत्वं तेन तस्यासीद्देवदेवस्य शूलिनः । ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा घृतिः ॥३९॥ द्रष्टृत्वमारमसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च । श्रव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शङ्करे ॥४०॥ स एव शङ्करः साक्षात् पिनाकी परमेश्वरः । ततः स भगवान् ब्रह्मा वीक्ष्य देवं त्रिलोचनम्॥४१॥ सहैव मानसैः रुद्रैः प्रीतिविस्फारलोचनः । ज्ञात्वा परतरं भावमैश्वरं ज्ञानचक्षुषा । तुष्टाव जगतामीशं कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ॥४२॥

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर । नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥४३॥ नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे । प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतये नमः ॥४४॥ नमः कालाय रुद्राय महाप्रासाय श्रूलिते । नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः ॥४६॥ नमस्तिमूर्त्ताये ब्रह्मविद्याप्रदायिने ॥४६॥ नमस्तिमूर्त्ताये कालकालाय ते नमः । वेदान्तसारसाराय नमो वेदान्तमूर्त्ताये ॥४९॥ नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः । प्रहीणशोकैर्विविधभूतैः परिवृताय ते ॥४९॥ नमो ब्रह्मायदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः । प्रहीणशोकैर्विविधभूतैः परिवृताय ते ॥४९॥ नमो ब्रह्मायदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः । त्र्वम्बकायादिदेवाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥४९॥ नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुएडाय दिएडने । भ्रनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ॥४९॥ नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगिर्द्धिहेतवे । नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः ॥४१॥ नमस्ते निष्प्रवृद्धाय निराभासाय ते नमः । ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने ॥४२॥ त्वयैव सृष्टमिखलं त्वय्येव सकलं स्थितम् । त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय ॥४३॥ त्वयैव सृष्टमिखलं त्वय्येव सकलं स्थितम् । त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय ॥४३॥ त्वयैव सृष्टमिखलं त्वय्येव सकलं स्थितम् । त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय ॥४३॥ त्वयैव सहादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः । परमेष्ठो शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः ॥४॥ त्वयीव्वरेवरे महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः । परमेष्ठो शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः ॥४॥

त्वमक्षरं परं ज्योतिस्तवं कालः परमेश्वरः । त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा ॥५५॥ भूमिरापोऽनलो वायुव्योमाहङ्कार एव च । यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मयंज्ञितम् ॥५६॥ यस्य द्यौरभवन्मूर्द्धा पादौ पृथ्वी दिशो भूजाः । स्राकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ॥५७॥ सन्तापयित यो नित्यं स्वभाभिभीसयन् दिशः । ब्रह्मतेजोमयं विश्वं तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥५८॥ हुट्यं वहति यो नित्यं रौद्रौ तेजोमयी तनुः । कव्यं पितृगसानाञ्च तस्मै वह्नचात्मने नमः ॥५९॥ म्राप्याययति यो नित्यं खधान्ना सकलं जगत् । पीयते देवतासंवैस्तस्मै चन्द्रात्मने नमः ॥६०॥ सर्वदा । शक्तिमहिरवरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥६१॥ बिभन्येशेषभूतानि यान्तश्चरित स्वकर्मानुरूपतः । ग्रात्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वनत्रात्मने नमः ॥६२॥ सजत्यशेषमेवदं यः यः शेते शेषशयते विश्वमावृत्य मायया । स्वात्मानुभूतियोगेन तस्मै विष्एवात्मने नमः ॥६३॥ विभक्ति शिरसा नित्यं द्विसप्तभुवनात्मकम् । त्रह्माएडं योऽखिलाधारस्तस्मै शेषात्मने नमः ॥६४॥ यः परान्ते परानन्दं पीत्वा देव्यैकसाक्षिकम् । नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मते नमः ॥६५॥ योऽन्तरा सर्वभूतानां नियन्ता तिष्ठतीश्वरः । तं सर्वसाक्षिणं देवं नमस्ये विश्वतस्तनुम् ॥६६॥ यं विनिद्रा जितश्वासाः सन्तुष्टाः समदर्शिनः । ज्योतिः पश्यन्ति युङ्गानास्तरमै योगात्मने नमः ॥६७॥ सन्तरते मार्या योगी संक्षीणकल्मषः। ग्रवारतरपर्यन्तां तस्मै विद्यात्मने नमः॥६८॥ भासा विभातीदमद्वयं तमस परम् । प्रपद्ये तत् परं तत्त्वं तद्रूपं पारमेश्वरम् ॥६९॥ नित्यानन्दं निराधारं निष्कलं परमं शिवम् । प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा तद्भावभावितः । प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ गृणन् ब्रह्म सनातनम् ॥७१॥ ततस्तस्मै महादेवो दिव्यं योगमनुत्तमम् । ऐश्वरं ब्रह्मसद्भावं वैराग्यं च ददौ हरः ॥७२॥ कराभ्यां सशुभाभ्याद्व संस्पृश्य प्रणातात्तिहा । व्याजहार स्मयन्नेत्र सोऽनुग्रह्य पितानहम् ॥७३॥ यत् त्वयाभ्यर्थितं ब्रह्मन् पुत्रत्वे भवता मम । कृतं मया तत् सकलं सृजस्व विविधं जगत्।।७४॥ त्रिया भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मत् ब्रह्म विष्णु हराख्यया । सर्ग-रक्षा-लयगुणैनिष्कलः स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः । ममैव दक्षिणादङ्गाद्वामाङ्गात् पुरुषोत्तमः ॥७६॥ देवाधिदेवस्यशम्भोर्हृदयदेशतः । सम्बभूवाथ रुद्रो वा सोऽहं तस्य परा ततुः ॥७७॥ ब्रह्म-विष्णु-शिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः । विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शङ्करः स्थितः॥७६॥ तथान्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि च । ग्ररूपः केवलः स्वस्थो महादेवः स्वभावतः ॥७९॥ य एभ्यः परतो देवस्त्रिमूर्त्तः परमा तनुः । माहेश्वरो त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा ॥५०॥ तस्या एव परां मूर्त्तः मामवेहि पितामह । शाश्वतैश्वर्यविज्ञान-तेजोयोगसमन्विताम् ॥५१॥ सोऽहं ग्रसामि सकलमधिष्ठाय तमोगुराम् । कालो भूत्वा न मनसा मामन्योऽभिभविष्यति ॥ दशा यदा यदा हि मां नित्यं विचिन्तयसि पद्मज । तदा तदा मे सान्निध्यं भविष्यति तत्रानघ ॥ ५३॥ एतावदुक्त्वा ब्रह्माणं सोऽभिवन्य गुरुं हरः । सहैव मानसैः पुत्रैः क्षणादन्तरधोयत ॥ ५४॥ सोऽपि योगं समास्थाय ससर्ज विविधं जगत् । नारायणाख्यो भगवान् यथापूर्वं प्रजापितः ॥ नप्र।। मरीचिभुग्विङ्गरसः पुलस्त्यं पुलहं कतुम् । दक्षमित्रं विषष्ठित्र सोऽस्जद् योगिवद्यया ॥६६॥ नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः । सर्वे ते ब्रह्मणा तुल्याः साधका ब्रह्मवादिनः ॥८॥ सङ्गुल्पञ्च व धर्मञ्च युगधर्माश्च शाश्वतान् । स्थानाभिमानिनः सर्वान् यथा ते कथितं पुरा ॥ इद।। इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे रुद्रमृष्टिर्नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकाद्शोऽध्यायः

कूर्म उवाच

एवं सृष्ट्वा मरीच्यादीन् देवदेव: पितामहः । सहैव मानसैः पुत्रैस्ततापं परमं तपः ॥१॥ तस्यैवं तपतो वनत्राद्धः कालाग्निसम्भवः । त्रिश्चलपाणिरीशानः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः ॥२॥ श्रर्द्धनारीश्वरवपुर्दुष्प्रे स्योऽतिभयंकरः । विभजात्मानिमत्युक्तवा ब्रह्मा चान्तर्दंधे भयात् ॥३॥ तथोक्तोऽसौ द्विया स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत् । बिभेद पुरुषत्वक्च दशधा चैकधा पुनः ॥४॥ रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः । कपालीशादयो विप्रा देवकार्ये नियोजिताः ॥५॥ कथिता सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वञ्च स प्रभुः । बिभेद बहुधा देवः स्वरूपैरसितैः सितैः ॥६॥ ता वै विभूतयो विष्ठा विश्वताः शक्तयो भूवि । लक्ष्म्यादयो याभिरीशा विश्वं व्याप्नोति शाङ्करी।।।।। वितामहसुवस्थिता ॥५॥ विभज्य पुनरीशानी स्वात्मांशमकरोद् द्विजाः । महादेविनयोगेन तामाह भगवान् ब्रह्मा दक्षस्य दुहिता भव । सापि तस्य नियोगेन प्रादुरासीत् प्रजापतेः ॥९॥ नियोगाद् ब्रह्मणो देवी ददौ रुद्राय तां सतीम् । दाक्षीं रुद्रोऽपि जग्राह स्वकीयामेव शूलभृत् ॥१०॥ प्रजापतिविनिर्देशात् कालेन परमेश्वरी । मेनायामभवत् पुत्री तदा हिमवतः सती ॥११॥ स चापि पर्वतवरो ददौ रुद्राय पार्वतीम् । हिताय सर्वदेवानां त्रैलोक्यस्यात्मनोऽपि च ॥१२॥ माहेरवरी देवी राङ्करार्धशरीरिणी। शिवा सती हैमवती सुरासुरनमस्कृता॥१३॥ प्रभावमतुलं सर्वे देवाः सवासवाः । वदन्ति सुनयो वेत्ति शङ्करो वा स्वयं हरिः ॥१४॥ पुत्रत्वं परमेष्ठिनः । ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं शंकरस्यामितौजसः ॥१५॥ कथितं विप्राः एतद्र: इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे देव्यवतारो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

स्त उवाच

इत्याकर्ण्याथ मुनयः कूर्मरूपेण भाषितम् । विष्णुना पुनरेवैनं पप्रच्छुः प्रणता हरिम् ॥१॥
ऋषय ऊचुः

कैषा भगवती देवी शंकरार्धशरीरिस्मी। शिवा सती हैमवती यथावद बूहि पृच्छताम् ॥२॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मुनीनां पुरुषोत्तमः । प्रत्युवाच महायोगी ध्यात्वा स्वं परमं पदम् ॥३॥

कूर्म उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं मे स्पृष्ठे सुशोभने । रहस्यमेतद्विज्ञानं गोपनीयं विशेषतः ॥४॥ सांख्यानां परमं सांख्यं ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम् । संसारार्णवमग्नानां जन्तूनामेकमोचनम् ॥४॥ या सा माहेश्वरी शक्तिज्ञानरूपातिलालसा । व्योमसंज्ञा परा काष्ठा सेयं हैमवती मता ॥६॥ शिवा सर्वंगतानन्ता गुणातीतातिनिष्कला । एकानेकविभागस्था ज्ञानरूपातिलालसा ॥७॥ श्रवन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता तस्य तेजसा । स्वाभाविकी च तन्मूला प्रभा भानोरिवामला ॥५॥

शक्तिरनेकोपाधियोगतः । परावरेएा रूपेएा क्रीडते तस्य सन्निधी ॥९॥ सेयं करोति सकलं तस्याः कार्यमिदं जगत् । न कार्यं नापि करणमीश्वरस्येति सूरयः।।१०।। चतस्रः शक्तयो देव्याः स्वरूपत्वेन संस्थिताः । श्रिधिष्ठानवशात् तस्याः श्रृण्ध्वं मुनिपुङ्गवाः ॥११॥ शान्तिर्विद्या प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः। चतुः वृत्द्र्वत्तो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः॥१२॥ परया देवः स्वात्मानन्दं समक्तुते । चतुष्विपि च वेदेषु चतुर्वृत्तिर्महेश्वरः ॥१३॥ महत् । तत्सम्बन्धादनन्तैषा रुद्रेण परमात्मना ॥१४॥ ग्रस्यास्त्वनादिसंसिद्धमैश्वर्यमत्लं सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्त्तिका। प्रोच्यते भगवान् कालो हरिः प्राणो महेश्वरः ॥१५॥ तत्र सर्विमदं प्रोतमोतञ्चैवाखिलं जगत् । स कालाग्निहरो देवो गीयते वेदवादिभिः ॥१६॥ कालः सृजित भूतानि कालः संहरते प्रजाः । सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशः ॥१७॥ प्रधानं पुरुषस्तत्त्वं महानात्मा त्वहङ्कृतिः। कालेनान्यानि तत्त्वानि समाविष्टानि योगिना १८॥ सर्वजगन्मूर्त्तः शक्तिमीयेति विश्रुता । तयेयं भ्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तमः ॥१९॥ सेषा मायात्मिका शक्तिः सर्वाकारा सनातनी । विश्वरूपं महेशस्य सर्वदा सम्प्रकाशयेत् ॥२०॥ ग्रन्याश्च शक्तयो मुख्यास्तस्य देवस्य निर्मिताः । ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम्॥२१॥ सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिताः । माययैवाथ विप्रेन्द्राः सा चानादिरनश्वरा ॥२२॥ सर्वशक्त्यात्मिका माया दुर्निवारा दुरत्यया। मायावी सर्वशक्तीशः कालः कालकरः प्रभुः॥२३॥ करोति कालः सकलं संहरेत् काल एव हि । कालः स्थापयते विश्वं कालाधीनमिदं जगत्॥२४॥ लब्ध्वा देवाधिदेवस्य सिन्निधि परमेष्ठिनः । ग्रनन्तस्याखिलेशस्य शंभोः कालात्मनः प्रभोः॥२५॥ प्रधानं पुरुषो माया मायी सैव प्रभिद्यते। एका सर्वगतानन्ता केवला निष्कला शिवा ॥२६॥ एका शक्तिः शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यते शिवः। शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः॥२०॥ परमार्थतः । स्रभेदञ्चानुपद्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः ॥२८॥ शक्ति - शक्तिमतोर्भेदं वदन्ति गिरिजा देवी शक्तिमानथ शङ्करः। विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः ॥२९॥ भोग्या विश्वेश्वरी देवी महेश्वरपतिव्रता । प्रोच्यते भगवान् भोक्ता कपदीं नीललोहितः ॥३०॥ मन्ता विश्वेश्वरो देवः शङ्करो मन्मथान्तकः । प्रोच्यते सद्भिरोशानी मन्तव्या च विचारतः ॥३१॥ इत्येतदिखलं विप्राः शक्ति - शक्तिमदुद्भवम् । प्रोच्यते सर्ववेदेषु मुनिभिस्तत्त्वदिशिभः ॥३२॥ एतत् प्रदर्शितं दिव्यं देव्या माहातम्यमुत्तमम् । सर्ववेदान्तवादेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभिः ॥३३॥ सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम् । योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्॥३४॥ स्रानन्दमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम् । योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्॥३५॥ शाश्वतं शिवमच्युतम् । श्रनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत् परमं पदम् ॥३६॥ परात्परतरं तत्त्वं शुभं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्जितम् । श्रात्मोपलव्धिविषयं देव्यास्तत् परमं पदम् ॥३७॥ सैष। घात्री विधात्री च परमानन्दिमच्छताम् । संसारतापानिखलान् निहन्तीश्वरसंश्रयात् ॥३८॥ तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम् । ग्राश्रयेत् सर्वभूतानामात्मभूतां शिवात्मिकाम्॥३९॥ लब्ध्वा च पुत्रीं सर्वाणीं तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । सभार्यः शरणं यातः पार्वतीं परमेश्वरीम् ॥४०॥ तां दृष्ट्वा जायमानाञ्च स्वेच्छ्येव वराननाम् । मेना हिमवतः पत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम् ॥४१॥ सेनोवाच

पश्य बालामिमां राजन् राजीवसहशाननाम् । हिताय सर्वभूतानां जाता च तपसावयोः ॥४२॥ सोऽपि हष्ट्वा ततो देवीं तरणादित्यसन्निभाम् । कपर्दिनीं चतुर्ववत्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम् ॥४३॥

२५

श्रष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम् । निर्गुणां सगुणां साक्षात् सदसद्वचित्तविर्जिताम्॥४४॥ प्रणस्य शिरसा भूमौ तेजसा चातिविह्वलः । भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम्॥४५॥

हिमवानुवाच

का त्वं देवि विशालाक्षि शशाङ्कावयवाङ्किते। न जाने त्वामहं वत्से यथावद् ब्रूहि पृच्छते ॥४६॥ गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी। व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा॥४७॥

देव्यवाच

मां विद्धि परमां शक्ति महेश्वरसमाश्रयाम्। भ्रनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः ॥४८॥ श्रहं हि सर्वभावानामात्मा सर्वात्मना शिवा । शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्त्तिः सर्वप्रवर्त्तिका ॥४९॥ श्चनन्तानन्तमहिमा संसारर्णवतारिगा। दिव्यं ददामि ते चक्षः पर्य मे रूपमैश्वरम् ॥५०॥ एतावदुक्तवा विज्ञानं दत्त्वा हिमवते स्वयम् । स्वं रूपं दर्शयामास दिव्यं तत् पारमेश्वरम् ॥५१॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं तेजोबिम्बं निराकुलम् । ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् ॥५२॥ दुर्द्वर्षं जटामग्डलमग्डितम् । त्रिशूलवरहस्तञ्च घोररूपं भयानकम् ॥५३॥ दंष्टाकरालं सौम्यवदनमनन्ताश्चर्यसंयुतम् । चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥५४॥ प्रशान्तं नूपुरैहपशोभितम् । दिव्यमाल्याम्बरघरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥५५॥ किरीटिनं गदाहस्तं शङ्खचकथरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम्। ग्रग्डस्थञ्चाग्डबाह्यस्थं बाह्यमाभ्यन्तरं परम्॥५६॥ सर्वशक्तिमयं गुभ्रं सर्वाकारं सनातनम् । ब्रह्मेन्द्रयोगीन्द्रैर्वन्द्यमानपदाम्बुजम् ।।५७। सर्वतः पारिएपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वमावृत्य तिष्ठन्तीं ददर्श परमेश्वरीम्।।५८॥ दृष्ट्वा तदीहर्शं रूपं देव्या माहेश्वरं परम्। भयेन च समाविष्टः स राजा हृष्टमानसः।।५९॥ ग्रात्मन्याधाय चात्मानमोङ्कारं समनुस्मरन् । नाम्नामष्टसहस्रे ए। तुष्टाव परमेशवरीम् ॥६०॥

हिमवानुवाच

शिवोमा परमा शक्तिरनन्ता निष्कलामला। शान्तामाहेश्वरी नित्या शास्वती परमाक्षरा।।६१ः। श्रचिन्या केवलानन्ता शिवात्मा परमात्मिका। ग्रनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा सर्वगाचला ॥६२॥ एकानेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला। महामाहेश्वरी सत्या महादेवी निरञ्जना।।६३।। काष्टा सर्वान्तरस्था च चिच्छिक्तिरितलालसा । नन्दा सर्वात्मिका विद्या ज्योतीरूपामृताक्षरा ॥६४॥ प्रतिष्ठा सर्वेषां निवृत्तिरमृतप्रदा। व्योममूर्त्तिव्योमलया व्योमाधाराच्युतामरा।।६४।। ग्रनादिनिधनाऽमोघा कारणात्मा कलाकुला। स्वतः प्रथमजा नाभिरमृतस्यात्मसंश्रया।।६६।। महामहिषघातिनी । प्राणेश्वरी प्राण्रारूपा प्रवानपुरुषेश्वरी ॥६७॥ प्राणेश्वरिपया माता च सर्वभूतेश्वरेश्वरी ॥६८॥ सर्वशक्तिः कलाकारा ज्योत्स्नेन्दोर्महिमास्पदा । सर्वकार्यनियन्त्री सर्वशक्तिसमुद्भवा । संसारपोता दुर्वारा दुर्निरीक्ष्या दुरासदा ॥६९॥ सकला प्राण्याशक्तिः प्राणिवद्या योगिनी परमा कता। महाविभूतिदुर्द्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा।। ७०।। परमाद्यापकर्षिणी । सर्गिस्थित्यन्तकरणी सुदुर्वाच्या दुरत्यया ॥७१॥ **ग्रनाद्यनन्ति**वभवा शब्दयोनिः शब्दमयो नादाख्या नादिवग्रहा। म्रनादिरव्यक्तगुणा महानन्दा सनातनी।।७२॥ महायोगेश्वरेश्वरी । महामाया सुदुष्पारा मूलप्रकृतिरीश्वरी ।।७३॥ **म्राकाशयोनिर्योगस्था** प्रधानपुरुषात्मिका । पुराणा चिन्मयी पुंसामादिपुरुषरूपिणी ॥७४॥ प्रधानपुरुषातीता

दक्षिणा

दान्ता

दहना

कूमंपुरागम्

ा क्टस्था महापुरुषसंजिता । जन्म - मृत्यु - जरातीता सर्वशक्तिसमन्विता ॥७५॥ चानविच्छन्ना प्रधानानुप्रवेशिनी । क्षेत्रज्ञशक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता ॥७६॥ व्यापिनी ग्रनादिमायासिम्भन्ना त्रितत्त्वा प्रकृतिग्रहा । महामायासमुत्पन्ना तामसी पौरुषी ध्रुवा ॥७७॥ व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्रा प्रसूतिका । अकार्या कार्यजननो नित्यं प्रसवधर्मिणी ॥७५॥ सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणो । ब्रह्मगर्भा चतुर्विशा पद्मनाभाच्युतात्मिका ॥७९॥ वैद्यती शाश्वती योनिजॅगन्मातेश्वरप्रिया। सर्वावारा महारूपा सर्वेश्वर्यसमन्विता ॥५०॥ विश्वेशेच्छानुवर्तिनी । महोयसी ब्रह्मयोनिर्महालक्ष्मीसमुद्भवा ॥५१॥ महागर्भा महानिद्रात्महेतुका । सर्वंसाधारणी सूक्ष्मा ह्यविद्या पारमार्थिको ॥ ५२॥ महाविमानमध्यस्था पुरुषमोहिनी । अनेकाकारसंस्थाना कालत्रयविवर्जिता ॥५३॥ देवी भ्रनन्तरूपानन्तस्था ब्रह्मजनमा हरेमू तिर्वह्म - विष्णु - शिवात्मिका । ब्रह्मेशविष्णुजननी ब्रह्माख्या ब्रह्म श्रंश्रया ॥ प्रा व्यक्ता प्रथमजा ब्राह्मी महती ब्रह्मरूपिएरे। वैराग्यैशवर्षधर्मात्मा ब्रह्मसूर्त्तिर्हृदि स्थिता ॥५५॥ स्वयम्भूतिर्मानसी तत्त्वसम्भवा। ईश्वराणा च सर्वाणी शङ्करार्द्धशरीरिणी ॥ ५६॥ भवानी चैव रुद्राणी महालक्ष्मीरथाम्बिका। महेश्वरसमुत्पन्ना भुक्ति - मुक्तिफलप्रदा ॥५०॥ सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या नित्यं मुदितमानसा। ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनिता शङ्करेच्छानुवर्त्तिनी ॥५५॥ महेश्वरपतिव्रता । सकृद्विभाता ईश्वराद्धीसनगता ्सर्वात्ति-समुद्रपरिशोषिणो ॥ ८९॥ हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी । गुणाढ्या योगजा योग्या ज्ञानमूर्त्तिर्विकाशिती ॥९०॥ सावित्री कमला लक्ष्मीः श्रीरनन्तोरिस स्थिता। सरोजनिलया गङ्गा योगनिद्राऽसुरार्हिनी ॥९१॥ सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठा सुमङ्गला। वाग्देवी वरदाऽवाच्या कीर्त्तिः सर्वाथसाधिका॥ ९२॥ योगीश्वरी ब्रह्मविद्या महाविद्या सुक्षोभना। गुह्मविद्यात्मविद्या च धर्मविद्यात्मभाविता ॥९३॥ स्वाहा विश्वम्भरा सिद्धिःस्वघा मेथा धृतिःश्रुतिः । नीतिः सुनीतिः सुकृतिर्माधनी नरवाहिगो ॥९४॥ पूज्या विभावती सौम्या भोगिनी भोगशायिनो । शोभा वंशकरो लाला मानिनो परमेष्ठिना ॥९४॥ त्रैलोक्यसुन्दरी रम्या सुन्दरी कामचारिणो। महानुभावा सत्त्वस्था महामहिषमिईंती ।।९६।। पापहरा विचित्रमुकुटाङ्गदा। कान्ता चित्राम्बरधरा दिन्याभरणभूषिता।।९७।। व्योमनिलया जगत्सृष्टिविवर्द्धिनी । नियन्त्री यन्त्रमध्यस्था नन्दिनी भद्रकालिका ॥९८॥ हंसाख्या कौमारी मयूरवरवाहना। वृषासनगता गौरी महाकाली सूराचिता ॥९९॥ विवाहना । विरूपाक्षी लेलिहाना महासुरविनाशिनी ॥१००॥ अदितिर्नियता रौद्री पद्मगर्भा विभावरी। विचित्ररत्नमुकुटा महाफलानदद्याङ्गी कामरूपा प्रणातात्तिंप्रभञ्जनी ॥१०१॥ कर्षणी रात्रिस्त्रिदशार्त्तिविनाशिनी। बहुरूपा स्वरूपा च िरूपा रूपवर्जिता।।१०२।। भवतापविनाशिनी । निर्गुणा नित्यविभवा निःसारा निरपत्रपा ॥१०३॥ भक्तार्तिशमनी भव्या सामगीतिर्भवाङ्कानिलयालया । दीक्षा विद्याघरी दीप्ता महेन्द्रारिनिपातिनी।।१०४।। त्रवस्वनी सर्वसिद्धित्रदायिनी । सर्वेश्वरिप्रया तार्की समुद्रान्तरवासिनी । सर्वातिशायिनी विद्या श्रकलङ्का निराधारा नित्यसिद्धा निरामया ॥१०५॥ मोहनाशिनी । निःसङ्कल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रिया॥१०६॥ कामधेनुबंहदगर्भा घोमतो देवदेवी मनोमयी। महाभगवती भर्गा वासुदेवसमुद्भवा ॥१०७॥ ज्वालामानासहस्राढ्या महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या परावरा । ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदान्तविषया गतिः ॥१०८॥

सर्वभूतनमस्कृता । योगमाया विभागज्ञा महामोहा गरीयसी ॥१०९॥

सर्वसमुद्भृतिवर्षं ह्मविद्याश्रयादिभिः । बीजाङ्करसमुद्भृतिर्महाशक्तिर्महामितः ॥११०॥ क्षान्तिः प्रज्ञा चितिः संविन्महाभोगीन्द्रशायिनी । विकृतिः शाङ्करी शान्तिर्गण-गन्धर्वसेविता ॥१११॥ महाशाला देवसेना गुहप्रिया । महारात्रिः शिवानन्दा शची दुःस्वप्ननाशिनी॥११२॥ इज्या पूज्या जगद्धात्री दुर्विनेया सुरूपिणी। गुहाम्बिका गुणोत्पत्तिर्महापीठा मरुत्सुता ॥११३:॥ हव्यवाहान्तरागादिर्हव्यवाहसमुद्भवा । जगद्योनिर्जगन्माता जन्म-मृत्यु-जरातिगा ॥११४॥ पुरुषान्तरवासिनी । तपस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिवि संस्थिता।।११५॥ बुद्धिमहाबुद्धिमती सर्वभूतहृदिस्थिता । संसारतारणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया ॥११६॥ सर्वेन्द्रियमनोमाता ब्रह्माग्गी बृहती बाह्मी ब्रह्मभूता भवारगी। हिरग्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्त्तिका ॥११।।। समालिनी सुरूपा च भाविनी हारिणी प्रभा । उन्मीलनी सर्वसहा सर्वप्रत्ययसाक्षिणी ॥११८॥ चन्द्रवदना ताएडवासक्तमानसा । सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्भलत्रयविनाशिनी ॥११९॥ सुसौम्या जगन्मूर्त्तिस्त्रमूर्त्तरमृताश्रया । निराश्रया निराहारा निरङ्कुशपदोद्भवा ॥१२०॥ जगितप्रया चक्रहस्ता विचित्राङ्को स्रिग्विणो पद्मधारिणो । परावरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा ॥१२१॥ विद्युद्धिद्युज्जिह्वा जितश्रमा । विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा ॥१२२॥ सहस्ररिम: सत्त्वस्था महेश्वरपदाश्रया । क्षालिनी मृन्मयी व्याप्ता तैजसी पद्मबोधिका ॥१२३॥ महादेवमनोरमा । व्योमलक्ष्मीः सिंहरथा चेकितानामितप्रभा ॥१२४॥ मान्या वीरेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनीं । ग्रनाहता क्एडलिनी नलिनी पद्मभासिनी ॥१२५॥ सदाकीर्त्तः सर्वभूताश्रयस्थिता । वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलारणी ॥१२६॥ ब्रह्म-विष्णु-शिवाग्रजा । व्योमशक्तिः क्रियाशक्तिज्ञीनशक्तिः परा गतिः । ब्रह्मश्रीर्वह्महद्या क्षोभिका बन्धिका भेदा भेदाभेदविर्जिता ॥१२७॥ ग्रभिन्ना भिन्नसंस्थाना विशनी वंशकारिएगी। गुह्मशक्तिर्गुएगतीता सर्वेदा सर्वतोमुखी।।१२८।। भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालकारिणी । सर्वेवित् सर्वेतोभद्रा गुह्यातीतागुहारणी । प्रक्रिया योगमाता च गङ्गा विश्वश्वरेश्वरी ॥१२९॥ कपिला कापिला कान्ता कमलाभा कलान्तरा । पुराया पुष्करिणी भोनत्री पुरन्द्ररपुरःसरा ॥१३०॥ परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा । पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिः परमार्थार्थविग्रहा ॥१३१॥ धर्मोदया भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा । मनोरमा मनोरस्का तापसी वेदरूपिणी ॥१३ २॥ वेदविद्याप्रकाशिनी । योगेश्वरेश्वरी माता महाशक्तिर्मनोमयी ॥१३३॥ वेदशिकवेंदमाता विश्वावस्था वियन्मूर्त्तिर्विद्युन्माला विहायसी । किन्नरी मुरिभर्विद्या नन्दिनी नन्दिवल्लभा ॥१३४॥ परापरविभेदिका । सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी ॥१३५॥ परमानन्दा भूलेखा कनकप्रभा । कूष्माएडी धनरत्नाढ्या मुगन्धा गन्धदायिनी ॥१३६॥ श्चचिन्त्यानन्तविभवा घनुष्पारिष: शिवोदया । सुदुर्लभा घनाध्यक्षा घन्या पिङ्गललोचना ॥१३७॥ त्रिविक्रमपदोद्भता शान्तिः प्रभावती दीप्तिः पङ्कजायतलोचना । ग्राद्या हत्कमलोद्भृता गवां माता रणिप्रया ॥१३८॥ सित्कया गिरिशा शुद्धिर्नित्यपुष्टा निरन्तरा । दुर्गा कात्यायनी चर्गडी चर्चिताङ्गा सुविग्रहा ॥१३९॥ जगती जगद्यन्त्रप्रवर्त्तिका । मन्द्रराद्रिनिवासा च शारदा स्वर्णमालिनी ॥१४०॥ हिरएयवर्णा रत्नगर्भा पृष्टिविंश्वप्रमाथिनी । पद्मानना पद्मिनभा नित्यतुष्टाऽमृतोद्भवा ॥१४१॥ रत्नमाला धुन्वती दुष्प्रकम्पा च सूर्यमाता हषद्वती । महेन्द्रभगिनी सीम्या वरेएया वरदायिका ॥१४२॥ कल्याणी कमलावासा पञ्चचूडा वरप्रदा । वाच्याऽमरेश्वरी वन्द्या दुर्जया दुरतिक्रमा ॥१४३॥

कूर्मपुराणम्

कालरात्रिमहावेगा वीरभद्रप्रिया हिता । भद्रकाली जगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी ।।१४४॥ कराला पिङ्गलाकारा कामभेदा महास्वना । यशस्विनी यशोदा च षडध्वपरिवर्त्तिका ॥१४४॥ शिङ्घिनी पिद्मिनी सांख्या सांख्ययोगप्रविर्त्तिका । चैत्रा संवत्सरारूढा जगत्सम्पूरणीन्द्रजा ॥१४६॥ शुम्भारिः खेचरी स्वस्था कम्बुग्रीवा कलिप्रिया । खगध्वजा खगारूढा वाराही पूगमालिनी ॥१४७॥ विरक्ता गरुडासना । जयन्ती हृद्गुहागम्या शंकरेष्ट-गणाप्रणी: ॥१४८॥ संकल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी । कलिः कल्कविहन्त्री च गुह्योपनिषदुत्तमा ॥१४९॥ निष्ठा दृष्टिः स्मृतिव्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः कियावती । विश्वामरेश्वरेशाना मुक्तिर्मुक्तिः शिवाऽमृता ॥१५०॥ लोहिता सर्पमाला च भीषणी नरमालिनी । अनन्तशयनानन्ता नरनारायणोद्भवा ॥१५१॥ नुसिही दैत्यमथनी शङ्खचकगदाधरा । संकर्षणसमुत्पत्तिरम्बिका पादसंश्रया ॥१५२॥ महाज्वाला महाभूतिः सुमूर्त्तः सर्वकामधुक् । सुप्रभा सुस्तना सौरी धर्मकामार्थमोक्षदा ॥१५३॥ भ्रमध्यनिलया पूर्वा पुराणपुरुषारिएाः । महाविभूतिदा मध्या सरोजनयना समा ॥१८४॥ नीलोत्पलदलप्रभा । सर्वशक्त्यासनारूढा धर्माधर्मविवर्जिता ॥१५५॥ ग्रष्टादशभूजाऽनाद्या वैराग्यज्ञाननिरता निरालोका निरिन्द्रिया । विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी ॥१५६॥ स्थानेश्वरी निरानन्दा त्रिशूलवरधारिएगो । श्रशेषदेवतामूर्त्तिर्देवता गणाम्बिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिपातिनी । ग्रवर्णा वर्णरिहता त्रिवर्णा जीवसम्भवा ॥१५८॥ श्रनन्तवर्गाऽनन्यस्था शाङ्करी शान्तमानसा । श्रगोत्रा गोमती गोप्त्री गुह्यरूपा गुणोत्तरा ॥१५९॥ गौर्गीर्गव्यित्रया गौणी गणेश्वरनमस्कृता । सत्यभामा सत्यसन्या त्रिसन्ध्या सन्विवर्जिता१६०॥ सर्ववादाश्रया संख्या सांख्ययोगसमुद्भवा । श्रसंख्येयाप्रमेयाख्या श्रूत्या शुद्धकुलोद्भवा ॥१६१॥ बिन्दुनादसमुत्पत्तिः शम्भुवामा शशिप्रभा। पिशङ्गा भेदरिहता मनोज्ञा मधुसूदनी।।१६२॥ महाश्रीः श्रीसमुत्पत्तिस्तमः पारे प्रतिष्ठिता । त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसंश्रया ॥१६३॥ शान्त्यतीता मलातीता निर्विकारा निराश्रया । शिवाख्या चित्तनिलया शिवज्ञानस्वरूपिणी॥१६४॥ काश्यपी कालकर्णिका । शास्त्रयोनिः क्रियामूर्त्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका ॥१६५॥ दैत्यदानवनिर्मध्नी नारायणी नरोद्भृतिः कौमुदो लिङ्गधारिणी । कामुकी कलिता भावा परावरिवभूतिदा ॥१६६॥ परार्द्धजातमिहमा वडवा वामलोचना । सुभद्रा देवकी सीता वेदवेदाङ्गपारगा ।।१६७॥ मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा । ग्रमन्युरमृतास्वादा पुरुहूता मनस्विनी पुरुष्टता ॥१६८॥ श्रशोच्या भिन्नविषया हिरएयरजतिष्रया। हिरएयरजनी हैमी हेमाभरणभूषिता॥१६९॥ दुर्जेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा । महानिद्रासमुद्भृतिरनिद्रा सत्यदेवता ॥१७०॥ दीर्घा ककुद्मिनी हृद्या शान्तिदा शान्तिवर्द्धनी । लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्त्तिका ॥१७१॥ षडूर्मिपरिवर्जिता । सुधामा कर्मकरणी युगान्तदहनात्मिका ॥१७२॥ जन्या सङ्कर्षणी जगद्धात्री कामयोनिः किरीटिनी । ऐन्द्री त्रैलोक्यनिमता वैष्णवी परमेश्वरी ॥१७३॥ युग्मदृष्टिखिलोचना । मदोत्कटा हंसगितः प्रचएडा चएडविक्रमा ॥१७४॥ प्रद्यम्रदियता दात्री वियन्मात्रा विन्ध्यपर्गतवासिनो । हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनो ॥१७५॥ नीतिज्ञा कामरूपिणी। वेदवेद्या व्रतस्नाता ब्रह्मशैलनिवासिनी॥१७६॥ चाण्रहन्तृतनया महाकामसमुद्भवा । विद्याधरप्रिया सिद्धा विद्यावरनिराकृतिः॥१७७॥ वीरा म्राप्यायनी हरन्ती च पावनी पोषणी कला । मातृका मन्मथोद्भृता वारिजा वाहनप्रिया ।।१७८॥ वीणावादनतत्परा । सेविता सेविका सेव्या सिनीवाली गरुत्मती॥१७९॥ करीषिणी सुघावाणी

अरुन्धती हिरएयाक्षी मृगाक्षी मानदायिनी । वसुप्रदा वसुमती वसोद्धारा वसुन्वरा ॥१८०॥ वरारोहा चराचरसहस्रदा। श्रीफला श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा शिवप्रिया॥१८१॥ श्रीघरा श्रीकरो कल्या श्रीघरार्द्धशरीरिणी । ग्रनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा घनदिप्रया ॥१८२॥ निहन्त्री दैत्यसङ्घानां सिहिका सिहवाहना । सुवर्चला च सुश्रोणी सुकीर्त्ताश्चित्रसंशया ॥१८३॥ रसज्ञा रसदा रामा लेलिहानाऽमृतस्रवा । नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुका मृतजोवनी ॥१८४॥ वज्जतुराडा वज्जजिह्वा वैदेही वज्जविग्रहा । मङ्गल्या मङ्गला माला निर्मला मलहारिस्सी।।१६५।। गान्थर्वी गारुडी चान्द्री कम्बलाश्वतरिपया । सौदामिनी जनानन्दा भृकूटीकूटिलानना ॥१८६॥ कर्शिकारकरा कक्ष्या कंसप्राणापहारिगो। युगन्वरा युगावर्त्ता त्रिसन्ध्या हर्षवर्द्धनी ॥१८७॥ प्रत्यक्षदेवता दिव्या दिव्यगन्धाधिवासना । शकासनगता शाकी साध्या चारुशरासना ॥१८८॥ इष्टा विशिष्टा शिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता । शतरूपा शतावर्त्ता विनता सूरिभः सूरा ॥१८९॥ सुरेन्द्रमाता सुद्युमा सुपुम्णा सूर्यसंस्थिता । समीक्षा सत्प्रतिष्ठा च निवृत्तिर्ज्ञानपारगा ॥१९०॥ धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञा धर्मवाहना । धर्माधर्मविनिमित्री धार्मिकाएां शिवप्रदा ॥१९१॥ धर्मशक्तिः धर्ममयो विधमो विश्वधर्मिणी । धर्मान्तरा धर्ममयी धर्मपूर्वा धनावहा ॥१९२॥ धर्मोपदेष्ट्री धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा । कपालीशा कलामूर्त्तिः कालाकलितविग्रहा ॥१९३॥ सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता सर्वशक्त्याश्रयाश्रया । सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सूक्ष्मज्ञानस्वरूपिणी ॥१९४॥ प्रधानपुरुषेशेशा महादेवैकसाक्षिणी । सदाशिवा वियन्मूर्त्तिर्वेदमूर्त्तिका ॥१९४॥ एवं नाम्नां सहस्रे ए। स्तुत्वासौ हिमवान् गिरिः । भूयः प्रणम्य भीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः ॥१९६॥ यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरि । भीतोऽस्मि साम्प्रतं ह्य्वा रूपमन्यत् प्रदश्य ॥१९७॥ एवमुक्ताथ सा देवी तेन शैलेन पार्वती । संहत्य दर्शयामास स्वं रूपमपरं पुनः ॥१६८॥ नीलोत्पलस्गन्धि च । द्विनेत्रं द्विभुजं सीम्यं नीलालकविभूषितम् ॥१९९॥ नीलोत्पलदलप्रख्यं रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकरपल्लवम् । श्रीमद्विलाससद्वृत्तं ललाटतिलकोज्ज्वलम् ॥२००॥ भूषितं चारुसर्वाङ्गं भूषणैरतिकोमलम् । दधानमुरसा मालां विशालां हेमनिर्मिताम् ॥२०१॥ सुविम्बोष्ठं नूपुरारावसंयुतम् । प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम् ॥२०२॥ ईषत्स्मितं तदीदृशं समालोक्य स्वरूपं शैलसत्तमः । भीति सन्त्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम्।।२०३।।

हिमवानुवाच

ग्रद्य मे सफलं जन्म ग्रद्य मे सफलं तपः । यन्मे साक्षात् त्वमन्यक्ता प्रपन्ना दृष्टिगोचरम् ॥२०४॥ त्वया सृष्टं जगत् सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम् । त्वय्येव लीयते देवि त्वमेव परमा गितः ॥२०६॥ वदन्ति केचित् त्वामेव प्रकृति प्रकृतेः पराम् । ग्रपरे परमार्थज्ञाः शिवेति शिवसंश्रयात् ॥२०६॥ त्वयि प्रधानं पुरुषो महान् ब्रह्मा तथेश्वरः । ग्रविद्या नियतिर्मायां कलाद्याःशतशोऽभवन्॥२०७॥ त्वं हि सा परमा शक्तिरनन्ता परमेष्ठिनी । सर्वभैदिविनिर्मुक्ता सर्वभैदाश्रयाश्रया ॥२०६॥ त्वामिष्ठश्य योगेश्चि महादेवो महेश्वरः । प्रधानाद्यं जगत् सर्वं करोति विकरोति च ॥२०९॥ त्वयेव सङ्गतो देवः स्वात्मानन्दं समरनुते । त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी ॥२१९॥ त्वमक्षरं परं व्योम महज्ज्योतिर्निरञ्जनम् । शिवं सर्वंगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ॥२१९॥ त्वं शकः सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामिस । वायुर्वेलवतां देवि योगिनां त्वं कुमारकः ॥२१२॥ ऋषीणाञ्च विसष्ठस्त्वं व्यासो वेदविदामिस । सांख्यानां किपलो देवो ख्रागामिस शङ्करः॥२१२॥

म्रादित्यानामुपेन्द्रस्त्वं वसूनाञ्चैव पावकः । वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री च्छन्दसामिस ॥२१४॥ मध्यात्मिवद्या विद्यानां गतोनां परमा गतिः । माया त्वं सर्वशक्तीनां कालः कलयतामिस ॥२१४॥ म्रोंकारः सर्वगुह्याणां वर्णानाश्व द्विजोत्तमः । भ्राश्रमाणां ग्रहस्थस्त्वमीश्वराणां महेश्वरः ॥२१६॥ पुंसां त्वमेकः पुरुषः सर्वभूतहृदि स्थितः । सर्वोपिनषदां देवि गुह्योपिनषदुच्यसे ॥२१०॥ ईशानश्वासि कत्पानां युगानां कृतमेव च । म्रादित्यः सर्वमार्गाणां वाचां देवी सरस्वती ॥२१०॥ त्वं लक्ष्मीश्वारुष्टपाणां विष्णुमीयाविनामिस । म्राह्यती सतीनां त्वं सुपर्णः पततामिस ॥२१९॥ स्कानां पौरुषं सूक्तं साम ज्येष्ठश्व सामसु । सावित्री चासि जाप्यानां यजुषां शतरुद्रियम् ॥२२०॥ पर्वतानां महामेरुरनन्तो भोगिनामिष । सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वभेव हि ॥२२१॥

निर्मलमेकरूपम् । तवाशेषविकारहीनमगोचरं रूपं श्रनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमसः परस्तात् ॥२२२॥ यदेव पश्यन्ति जगत्प्रमूर्ति वेदान्तिवज्ञानिविनिश्चितार्थाः । म्रानन्दमात्रं प्रणवाभिघानं तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये ॥२२३॥ श्रशेषभूतान्तरसन्निविष्टं प्रधान - प्रयोगवियोगहेत्म् । तेजोमयं जन्म - विनाशहीनं प्राणाभिधानं प्रणतोऽमि रूपम् ॥२२४॥ श्राद्यन्तहोनं जगदात्मरूपं विभिन्नसस्थं प्रकृतेः परस्तात् । कूटस्थमव्यक्तवपृत्तवैव नमामि रूपं प्रवाभिधानम् ॥२२५॥ सर्वाश्रयं सर्वाजगद्विधानं सर्वात्रगं जन्म - विनाशहेतुम् । सुक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं नतोऽस्मि ते रूपमरूपभेदम् ॥२२६॥ म्राद्यं महान्तं पुरुषाभिधानं प्रकृत्यवस्थं त्रिगुगात्मबीजम् । ऐश्वर्यविज्ञानविरागगधर्मेः समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपम् ॥२२७॥ द्विसप्तलोकात्मकमम्बुसंस्थं विचित्रभेदं पूरुपैकनाथम् । श्रनेकभेदैरिववासितं ते नतोऽस्मि रूपं जगदराडमंज्ञम् ॥२२५॥ पूरितलोकभेदम् । श्रशेषवेदात्मकमेकमाद्यं स्वतेजसा त्रिकालहेतुं परमेष्ठिसंज्ञं नमामि रूपं रिवमएडलस्थम् ॥२२९॥ सहस्रमूद्धीनमनन्तर्शक्ति सहस्रबाहं पुरुषं प्राणम् । शयानमन्तः सलिले तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥२३०॥ दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवन्दां युगान्तकालानलकत् रूपम् । ग्रशेषभूतार्डिवनाशहेतुं नमामि रूपं तव कालसंज्ञम् ॥२३१॥ फ्णासहस्रेण विराजमानं भोगीन्द्रमुख्यैरिप पूज्यमानम्। जनाईनारूढतनुप्रमुप्तं नतोऽस्मि रूपं तव शेषसंज्ञम् ॥२३२॥ श्रव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं ब्रह्मामृतानन्दरसञ्चमेकम् । युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं नतोऽस्मि रूपं तव रद्रसंज्ञम् ॥२३३॥ प्रविहीनरूपं सुरासुरैरर्चितपादपद्मम् । मुकोमलं देवि विभासि शुभ्रं नमामि ते रूपमिदं भवानि ॥२३४॥

नमस्तेऽस्तु महादेवि नमस्ते परमेश्वरि । नमो भगवतीशानि शिवाये ते नमो नमः ॥२३५॥ त्वन्मयोऽहं त्वदाधारस्त्वमेव च गतिर्मम । त्वामेव शरणं यास्ये प्रसीद परमेश्वरि ॥२३६॥

मया नास्ति समो लोके देवो वा दानवोऽपि वा। जगन्मातैव मत्पुत्री सम्भूता तपसा यतः ॥२३०॥ एषा तवाम्बिके देवि किलाभूत् पितृकन्यका। मेनाऽशेषजगन्मातुरहो मे पुर्यगौरवम् ॥२३८॥ पाहि माममरेशानि मेनया सह सर्गदा। नमामि तव पादाव्जं व्रजामि शरणं शिवाम्॥२३९॥ स्रहो मे सुमहद्भाग्यं महादेवीसमागमात्। स्राज्ञापय महादेवि कि करिष्यामि शंकरि ॥२४०॥ एतावदुवत्वा वचनं तदा हिमगिरीश्वरः। सम्प्रेक्षमार्गो गिरिजां प्राञ्जलिः पाश्व गोऽभवत्॥२४१॥ स्रथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोऽरिगः। सिस्मतं प्राह पितरं स्मृत्वा पशुपति पतिम्॥२४२॥

देव्युवाच

श्रृणुष्व चैतत् प्रथमं गुह्यमीश्वरगोचरम् । उपदेशं गिरिश्रेष्ठ सेवितं ब्रह्मवादिभिः ॥२४३॥ यनमे साक्षात् परं रूपमैश्वरं दृष्टमद्भुतम् । सर्वशक्तिसमायुक्तमनन्तं प्रेरकं परम् ॥२४४॥ समाहितमना मानाहङ्कारविज्ञतः । तिन्नष्ठस्तत्परो भूत्वा तदेव शरणं वर्ज ॥२४४॥ भक्तघा त्वनन्यया तात मद्भावं परमाश्रितः । सर्वयज्ञतपोदानैस्तदेवार्चय तदेव मनसा पश्य तद् ध्यायस्व यजस्व तत् । ममोपदेशात् संसारं नाशयामि तवानघ ॥२४७॥ श्रहं त्वां परया भक्त्या ऐश्वरं योगमास्थितम् । संसारसागरादस्मादुद्धराम्यचिरेण ध्यानेन कर्मयोगेण भवत्या ज्ञानेन चैव हि । प्राप्याहं ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥२४९॥ श्रुति स्मृत्युदितं सम्यक् कर्म वर्णाश्रमात्मकम् । श्रध्यात्मज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु ॥२५०॥ धर्मात् सञ्जायते भक्तिर्भक्त्या सम्प्राप्यते परम् । श्रुति-स्मृतिभ्यामुदितो धर्मो यज्ञादिको मतः ॥२५१॥-नान्यतो जायते धर्मो वेदाद्धभौ हि निर्बंभौ । तस्मान्मु युक्षु धर्मार्थी मद्रूपं वेदमाश्रयेत् ॥२४२॥ ममैगेषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी । ऋग्यजुःसामरूपेएा सर्गादौ सम्प्रवर्त्तते ॥२५३॥ तेषामेव च गुप्त्यर्थं वेदानां भगवानजः । ब्राह्मासादीन् ससर्जाथ स्वे स्वे कर्मस्ययोजयत् ॥२५४॥ ये न कुर्वन्ति तद्धर्मं तदर्थं ब्रह्मनिर्मितम् । तेषामधस्तान्नरकांस्तामिस्रादोनकल्पयत् ॥२४४॥ न च वेदाहते किञ्चिच्छास्त्रं धर्माभिधायकम् । योऽन्यत्र रमते सोऽसी न सम्भाष्यो द्विजातिभिः॥२५६॥ यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन् विविधानि तु । श्रुति स्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी॥२५७ भैरवञ्चेव यामलं वाममार्हतम् । कापिलं पाश्वरात्रख्न डामरं मोहनात्मकम् । एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानि तानि तु ॥२५८॥

ये कुशास्त्राभियोगेन मोहयन्तीह मानवान् । मया सृष्टानि शास्त्राणि मोहायेषां भवान्तरे॥२५९॥ वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत् स्मृतं कर्म वेदिकम् । तत् प्रयत्नेन कुर्वन्ति मित्रयास्ते हि ये नराः॥२६०॥ वर्णानामनुकम्पार्थं मित्रयोगाद्विराट् स्वयम् । स्वायम्भुवो मनुर्धमीन् मुनीनां पूर्वमुक्तवान्॥२६१॥ श्रुत्वा चान्येऽपि मुनयस्तन्मुखाद्धर्ममुत्तमम् । चकुर्धमप्रतिष्ठार्थं धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥२६२॥ श्रुत्वा चान्येऽपि मुनयस्तन्मुखाद्धर्ममुत्तमम् । चकुर्धमप्रतिष्ठार्थं धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥२६२॥ श्रष्टादश पुराणानि व्यासेन कथितानि तु । नियोगाद् ब्रह्मणो राजस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः ॥२६४॥ श्रम्यान्युपपुराणानि तिच्छव्यः कथिताति तु । युगेयुगेऽत्र सर्वेषां कर्त्ता वै धर्मशास्त्रवित् ॥२६४॥ श्रास्ता कल्पो व्याकरणं निरुवतं छन्द एव च । ज्योतिःशास्त्रं न्यायिवद्या सर्वेषामुपबृंहणम् ॥२६६॥ एवं चतुर्दशैतानि तथा हि द्विजसत्तमाः । चतुर्वेदैः सहोक्तानि धर्मो नान्यत्र विद्यते ॥२६९॥ एवं वेतामहं धर्मं मनुव्यासादयः परम् । स्थापयन्ति ममादेशाद्यावदाभूतसंप्लवम् ॥२६९॥ ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसश्वरे । परस्यान्तं कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ॥२६९॥ ब्रह्मणा सह ते सर्वे सम्प्राप्ते प्रतिसश्वरे । परस्यान्तं कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ॥२६९॥

तस्मात् सर्वाप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत् । धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ॥२७०॥ ये तु सङ्गान् परित्यज्य मामेव शरणं गताः । उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरमास्थिताः ॥२७१॥ सर्वभूतदयावन्तः शान्ता दान्ता विमत्सराः । स्रमानिनो बुद्धिमन्तस्तापसाः शंसितव्रताः ॥२७२॥ मिचता मद्गतप्राणा मज्ज्ञानकथने रताः। संन्यासिनो गृहस्थाश्च वनस्था ब्रह्मचारिणः॥२७३॥ तेषां नित्याभियुक्तानां मायातत्त्वं समुत्थितम् । नाशयामि तमः कृत्सनं ज्ञानदीपेन मा चिरात्।। २७४।। ते सुनिद्ध ततमसो ज्ञानेनैकेन मन्मयाः। सदानन्दास्तु संसारे न जायन्ते पुनः पुनः॥२७४॥ तस्मात् सर्विष्रकारेण मद्भक्तो मत्परायगाः। मामेवार्च्य सर्वित्र मनसा वारणं गतः॥२७६॥ अशक्तो यदि मे ध्यातुमैश्वरं रूपमव्ययम् । ततो मे परमं रूपं कालाढ्यं शरणं वर्ज ॥२७७॥ तद्यत् स्वरूपं मे तात मनसो गोचरं तव । तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदर्चनपरो भव ॥२७५॥ यत् तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवम् । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृतं परम् ॥२७९॥ ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं क्लेशेन परमं पदम् । ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो मामेव प्रविश्चान्ति ते ॥२५०॥ तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः । गच्छन्त्यपुनरावृत्ति ज्ञाननिधूतकत्मषाः ॥१८१॥ मामनाश्चित्य परमं निर्वाणममलं पदम् । प्राप्यते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज ॥२५२॥ एकत्वेन पृथक्त्वेन तथा चोभयथापि वा । मामुपास्य महीपाल ततो यास्यसि तत् पदम्।।२५३।। मामनाश्चित्य तत् तत्वं स्वभावविमलं शिवम् । ज्ञायते न हि राजेन्द्र ततो मा शरणं वज ॥२५४॥ तस्मात् त्वमक्षरं रूपं नित्यं वा रूपमैश्वरम् । श्राराध्य प्रयत्नेन ततो बन्धं प्रहास्यासि ॥२५४॥ कर्मणा मनसा वाचा शिवं सर्वत्र सर्वदा । समाराध्य भावेन ततो यास्यसि तत्पदम् ॥२५६॥ न वै पश्यन्ति तत् तत्त्वं मोहिता मम मायया । भ्रनाद्यनन्तं परमं महेश्वरमजं शिवम् ॥२५७॥ सर्गभूतात्मभूतस्थं सर्वोधारं निरखनम् । नित्यानन्दं निराभासं निर्गुणं तमसः परम् ॥२८८॥ **अद्वेतमचलं ब्रह्म** निष्कलं निष्प्रपश्चकम् । स्वसंवेद्यमवेद्यं तत् परे व्योम्नि व्यवस्थितम् ॥२८८॥ सूक्ष्मेण तमसा नित्यं वेष्टिता मम मायया । संसारसागरे घोरे जायन्ते च पुनः पुनः ॥२९०॥ भक्त्या त्वनन्यया राजन् सम्यग्जानेन चैव हि । ग्रन्वेष्टव्यं हि तद् ब्रह्म जन्म बन्धनिवृत्तये ॥२९१॥ ग्रहङ्कारच मात्सयं कामं क्रोधं परिग्रहम् । ग्रथमाभिनिवेशव्य त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितः ॥२९२॥ सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मिन । श्रवेक्ष्य चात्मनात्मानं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२९३॥ सर्वभूताभयप्रदः । ऐश्वरीं परमां भक्ति विन्देतानन्यभाविनीम्॥२९४॥ प्रसन्नात्मा वीक्ष्यते तत् परं तत्त्वमैश्वरं ब्रह्मे निष्कलम् । सर्गसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मएयेवावतिष्ठते ॥२९४॥ ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठेयं परस्य परमः शिवः । ग्रनन्यश्चाव्ययश्चैकश्चात्माघारो महेश्वरः ॥२९६॥ ज्ञानेन कर्मयोगेण भक्त्या योगेन वा नृप । सर्वसंसारमुक्त्यर्थमीश्वरं शरणं व्रज ॥२९ ।। एष गुह्योपदेशस्ते मया दत्तो गिरीश्वर । ग्रन्वीक्ष्य चैतदिखलं यथेष्टं कत्तु महीस ॥२९८॥ ग्रहं वे याचिता देवैः सङ्जाता परमेश्वरात् । विनिन्द्य दक्षं पितरं महेश्वरविनिन्दकम् ॥२९९॥ धर्मसंस्थापनार्थाय तवाराधनकारए। त् । मेनादेहसमुत्पन्ना त्वामेव पितरं श्रिता ॥३००॥ स त्वं नियोगाद् देवस्य ब्रह्मणः परमात्मनः । प्रदास्यसे मां रुद्राय स्वयंवरसमागमे ॥२०१॥ तत्सम्बन्धान्तरे राजन् सर्वे देवाः सवासवाः । त्वां नमस्यन्ति वै तात प्रसींदति च शंकरः॥३०२॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मां विद्धीश्वरगोचराम् । सम्पूज्य देवमीशानं शरएयं शरणं व्रज ॥३०३॥ स एवमुक्तो हिमवान् देवदेव्या गिरीश्वरः । प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरत्रवीत् ॥३०४॥ विस्तरेण महेशानि योगं माहेश्वरं परम्। ज्ञानं वै चात्मनो योगं साधनानि प्रचक्ष्व मे ॥३०५॥ तस्यैतत् परमं ज्ञानमात्मनो योगमूत्तमम्। यथावद् व्याजहारेशा साधनानि च विस्तरात्॥३०६॥ निशम्य वदनामभो जाद् गिरोन्द्रो लोकपूजितः । लोकमातुः परं ज्ञानं योगासक्तोऽभवत् पुनः ॥३०७॥ प्रदरी च महेशाय पार्वतीं भाग्यगौरवात् । नियोगाद् ब्रह्मणः साध्वीं देवानाञ्चेव सन्त्रियो॥३०८॥ य इमं पठतेऽध्यायं देव्या माहात्म्यकोत्तीनम् । शिवस्य सन्तिधौ भक्त्या शुचिस्तद्भावभावितः ॥३०९॥ सर्वपापविनिर्मृक्तो दिन्ययोगसमन्वितः । उल्लङ्घ्य ब्रह्मणो लोकं देन्याः स्थानमवाष्नुयात्॥३१०॥ यश्चैतत् पठते स्तोत्रं ब्राह्मणानां समीपतः । समाहितमनाः सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३११॥ नाम्नामष्टसहस्रन्तु देव्या यत् सम्दोरितम् । ज्ञात्वार्कमग्डनगतामावाह्य परमेश्वरीम् ॥३१२॥ गन्वपृष्पाद्यैर्भिक्तयोगसमन्वितः । संस्मरन् परमं भावं देव्या माहेश्वरं परम् ॥३१३॥ ग्रनन्यमानसो नित्यं जपेदामरणाद् द्विजः। सोऽन्तकाले स्मृति लब्ध्वा परं ब्रह्माधिगच्छिति ॥३१४॥ अथवा जायते विप्रो बाह्यणस्य शुची कुले । पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात् ॥३१५॥ सम्प्राप्य योगं परमं दिव्यं तत् पारमेश्वरम् । शान्तः सुसंयतो भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥३१६॥ नामानि जुहुयात् सवनत्रयम् । महामारोकृतैर्दोषैर्प्रहदोषैश्च संवत्सरमतिन्द्रतः । श्रोकामः पार्वतीं देवीं पूजियत्वा विधानतः ॥३१८॥ जपेद्वाऽहरहर्नित्यं सम्पूज्य पार्वितः शम्भुं त्रिनेत्रं भक्तिसंयुतः । लभते महतीं लक्ष्मीं महादेवप्रसादतः ॥३१४॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जप्तन्यं हि द्विजातिभिः । सर्वपापापनोदार्थं देन्या नामसहस्रकम् ॥३२०॥

स्त उवाच

प्रसङ्गात् कथितं विष्रा देव्या माहात्म्यमुत्तमम् । ग्रतः परं प्रजासर्गं भृग्वादीनां निबोधत ॥३२१॥ इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे देवीमाहात्म्ये देव्या नामसहस्रकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

सूत उवाच

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया । देवी धाताविधातारी मेरोर्जामातरी गुभौ ॥ १ ॥ भ्रायितिर्न्यितिश्चेव मेरोः कन्ये महात्मनः । धाताविधात्रोस्ते भार्ये तयोर्जाती सुताबुभौ ॥ २ ॥ प्राणश्चेव मृकग्डुश्च मार्कग्डेयो मृकग्डुतः । तथा वेदिधारा नाम प्राणस्य द्युतिमान्सुतः ॥ ३ ॥ मरीचेरिव सम्भूतिः पूर्णमासमस्यत । कन्याचनुष्टयं चैव सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ४ ॥ तृष्टिर्न्येष्ठा तथा वृष्टिः कृष्टिश्चापचितिस्तथा । विरजाः पर्वतश्चेव पूर्णमासस्य तौ सुतौ ॥ ४ ॥ क्षमा तु सुषुत्रे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापतेः । कर्दभञ्च वरीयांसं सिह्ण्णुं भृतिसत्तमम् ॥ ६ ॥ क्षमा तु सुषुत्रे पुत्रान् तपोनिध्तकत्मषाम् । ग्रनस्या तथेवात्रेर्ज्ञे पुत्रानकत्मषान् ॥ ७ ॥ सोमं दुर्वाससञ्चेव दत्तात्रेयश्च योगिनम् । स्मृतिश्चाङ्गिरसः पुत्री जज्ञे लक्षणसंयुता ॥ ५ ॥ सोमं दुर्वाससञ्चेव राकामनुमतोमिव । प्रीत्यां पुलस्त्यो भगवान् दत्तोलिमसृजत् प्रभुः ॥ ९ ॥ पूर्वजन्मिन योऽगस्त्यः स्मृतः स्वायमभुवेऽन्तरे । देवबाहुस्तथा कन्या द्वितीया नाम नामतः ॥१०॥ पूर्वजन्मिन योऽगस्त्यः स्मृतः स्वायमभुवेऽन्तरे । देवबाहुस्तथा कन्या द्वितीया नाम नामतः ॥१०॥

पुत्राणां षष्टिसाहस्रं सन्नतिः सुषुवे कतोः । ते चोध्वरितसः सर्वे बालखिल्या इति स्मृताः ॥११॥ विसिष्ठश्च तथोणीयां सप्त पुत्रानजीजनत् । कन्याञ्च पुराडरीकाक्षां सर्वशोभासमिन्वतास् ॥१२॥ रजोमात्रोध्वंबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा । सृतपाः शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः ॥१३॥ योऽसो रुद्रात्मको विद्वर्षद्व्वत्या हिजाः । स्वाहा तस्मात् सुताँल्लेभे त्रीनुद्रारान् महौजसः॥१४॥ पावकः पवमानश्च शुचिरिनस्त्र रूपतः । निर्मथ्यः पवमानः स्याद्वेद्युतः पावकः स्मृतः ॥१४॥ यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरिनस्त्रवसौ स्मृतः । तेषान्तु सन्ततावन्ये चत्वारिशच्च पश्च च ॥१६॥ पवमानः पावकश्च शुचिरतेषां पिता च यः । एते चैकोनपश्चाशद्वह्वयः परिकोत्तिताः ॥१७॥ सर्वे तपित्वनः प्रोक्ताः सर्वे यशेषु भागिनः । रुद्रात्मकाः स्मृताः सर्वे त्रिपुराङ्गाङ्कृतमस्तकाः ॥१८॥ श्रयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः सुताः । श्रयनिष्वात्ता बिह्यदो द्विधा तेषां व्यवस्थितिः ॥१९॥ स्मृतः स्वधा सुतां जज्ञे मेनां वैधारिणीं तथा । ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ मुनिसत्तमाः ॥२०॥ श्रमूत मेना मेनाकं क्रीश्वं तस्यानुजं तथा । गङ्गा हिमवतो जज्ञे सर्वलोकैपावनी ॥२१॥ स्वयोगाग्निबलाह्वी पुत्रीं लेभे महेश्वरीम् । यथावत् कथितं पूर्वं देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ॥२२॥ एषा दक्षस्य कन्यानां मयापत्यानुसन्तिः । व्याख्याता भवतां सद्यो मनोः सृष्टि निबोधत ॥२३॥

इति श्रीकीर्मे महापुराणे पूर्वभागे भृग्वादिसर्गकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

स्त उवाच

प्रियत्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य तु । धर्मज्ञौ तौ महावीयाँ शतह्रपा व्यजीजनत् ॥ १ ॥ तत्रत्त्तानपादस्य घ्रुवो नाम सुतोऽभवत् । भक्त्या नारायणे देवे प्राप्तवान् स्थानमुत्तमम् ॥ २ ॥ घ्रुवाच्छिष्टिश्च भव्यश्च भव्याच्छम्भुःर्यजायत । शिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पृत्रानकल्मषान् ॥ ३ ॥ विसष्ठवचनाद्देवी तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । श्राराध्य पुरुषं विष्णुं शालग्रामे जनार्दनम् ॥ ४ ॥ रिपुं रिषुख्यं विप्रं वृक्तलं वृक्ततेजसम् । नारायणपरान् शुद्धान् स्वधर्मपरिपालकान् ॥ ४ ॥ रिपोराधत्त महिषी चक्षुषं सर्वतेजसम् । सोऽजीजनत् पुष्करिण्यां सुरूपं चाक्षुषं मनुम् ॥ ६ ॥ प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः । मनोरजायन्त दश नङ्वलायां महौजसः ॥ ७ ॥ कन्यायां सुमहावीयां वैराजस्य प्रजापतेः । ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् शुच्चः ॥ ६ ॥ श्राम्नष्टुदितरात्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः । ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाबलान् ॥ १ ॥ श्रङ्गं सुमनसं ख्याति कृतुमाङ्गिरसं शिवम् । श्रङ्गाद्वेणोऽभवत् पश्चाद्वेणयो वेणादजायत ॥ १०॥ योऽसौ पृथुरिति ख्यातः प्रजापालो महाबलः । येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकाम्यया । नियोगाद् बृह्यणः सार्द्वं देवेन्द्रेण महौजसा ॥ १ ॥ ।

वेणपुत्रस्य वितते पुरा पैतामहे मखे । सूतः पौरािणको जज्ञे मायारूपः स्वयं हिरः ॥१२॥ प्रवक्ता सर्वशास्त्राणां धर्मज्ञो गुरुवत्सलः । तं मां वित्त मुनिश्रेष्ठाः पूर्वोद्भृतं सनातनम् ॥१३॥ ग्रिस्मिन् मन्वन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम् । श्रावयामास मां प्रीत्या पुराणपुरुषो हिरः ॥१४॥ मदन्वये तु ये सूताः सम्भूता वेदविजताः । तेषां पुराणवक्तृत्वं वृत्तिरासीदजाज्ञया ॥१॥

स च बैएयः पृथुर्धीमान् सत्यसन्धो जितेन्द्रियः । सार्वभौमो महातेजाः स्वधर्मपरिपालकः ॥१६॥ तस्य बाल्यात् प्रभृत्येव भक्तिर्नारायणेऽभवत् । गोवर्धनगिरि प्राप्तस्तपस्तेपे जितेन्द्रियः ॥१७॥ तपसा भगवान् प्रतः शङ्ख - चक्र - गदाधरः । स्रागत्य देवो राजानं प्राह दामोदरः स्वयम् ॥१८॥ धार्मिकौ रूपसम्पन्नौ सर्वशस्त्रभृतां वरौ । मत्प्रसादादसन्दिग्धं पुत्रौ तव भविष्यतः । एवम्बस्त्वा हृषीकेशः स्वकीयां प्रकृति गतः ॥१९॥

सोऽपि कृष्णे महातेजा निश्चलां भक्तिमुद्रहन् । सोऽपालयत् स्वकं राज्यं चिन्तयन् मधुसूदनम्॥२०॥ श्रचिरादेव तन्वङ्गी भार्या तस्य शुचिस्मिता । शिखिएडनं हिवद्धीनमन्तर्द्धानं व्यजायत ॥२१॥ शिखिएडनोऽभवत् पुत्रः सुशील इति विश्रुतः । धार्मिको रूपसम्पन्नो वेदवेदाङ्गपारगः ॥२२॥ सोऽधीत्य विधिवद्वेदान् घर्मेण तपसि स्थितः । मित चक्रे भाग्ययोगात् संन्यासं प्रति घर्मवित्॥२३॥ स कृत्वा तीर्थसंसेवां स्वाध्याये तपिस स्थितः । जगाम हिमवत्पृष्ठं कदाचित् सिद्धसेवितम् ॥२४॥ तज्ञ धर्मपदं नाम धर्मिसिद्धिप्रदं वनम् । ग्रपश्यद्योगिनां गम्यमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम् ॥२५॥ तत्र मन्दाकिनी नाम सूप्र्या विमला नदी । पद्मीत्पलवनीपेता सिद्धाश्रमविभूषिता ॥२६॥ स तस्या दक्षिणे तीरे मुनीन्द्रैयोंगिभिर्युतम् । सुपुर्यमाश्रमं रम्यमपश्यत् प्रीतिसंयुतः ॥२७॥ मन्दाकिनीज़ले स्नात्वा सन्तर्यं पितृ - देवताः । अर्चियत्वा महादेवं पुष्पैः पद्मोत्पलादिभिः ॥२८॥ ध्यात्वाऽकर्सस्थमीशानं शिरस्याधाय चाञ्चलिम् । सम्प्रेक्षमाणो भास्वन्तं तुष्टाव परमेश्वरम् ॥२९॥ रुद्राध्यायेन गिरिशं रुद्रस्य चिरतेन च । ग्रन्यैश्च विविधैः स्तोत्रैः शाम्भवैर्वेदसम्भवैः ॥३०॥ श्रथास्मिन्नन्तरेऽपर्यत् समायान्तं महामुनिम् । स्वेताश्वतरनामानं महापाञ्चपतोत्तमम् ॥३१॥ भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादनान्वितम् । तपसा कर्शितात्मानं गुक्रयज्ञोपवीतिनम ॥३२॥ समाप्य संस्तवं शम्भोरानन्दास्राविलेक्षराः । ववन्दे शिरसा पादौ प्राख्नलिविनयमब्रवीत् ।।३३॥ घन्योऽस्मचनु गृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वरः । योगीश्वरोऽच भगवान् दृष्टो योगविदांवरः ॥३४॥ श्रहो में सुमहद्भाग्यं तपांसि सफलानि में । किं करिष्यामि शिष्योऽहं तव मां पालयानघ।।३४।। सोऽनुगृह्याथ राजानं सुशीलं शीलसंयुतम् । शिष्यत्वे प्रतिजगाह तपसा क्षीणकल्मषम् ॥३६॥ सांन्यासिकं विधि कृत्स्नं कारियत्वा विचक्षराः। ददौ तदैश्वरं ज्ञानं स्वशाखाविहितव्रतम् ॥३७॥ श्रशेषं वेदसारं तत् पशुपाशविमोचनम् । श्रन्त्याश्रममिति ख्यातं ब्रह्मादिभिरनुष्ठितम् ॥३५॥ उवाच शिष्यान् सम्प्रेक्ष्य ये तदाश्रमवासिनः । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ब्रह्मचर्यपरायणाः ॥३९॥ मया प्रवित्ततां शाखामधीत्यैवेह योगिनः । समासते महादेवं ध्यायन्तो निष्कलं शिवम् ॥४०॥ देवो महादेवो रममाणः सहोमया । ग्रध्यास्ते भगवानीशो भक्तानामनुकम्पया ॥४१॥ इहाशेषजगद्धाता पुरा नारायणः स्वयम् । म्राराधयन् महादेवं लोकानां हितकाम्यया।।४२॥ इहैव देवमीशानं देवानामिप दैवतम् । श्राराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देव-दानवाः ॥४३॥ इहैव मुनयः सर्वे मरीच्याद्या महेश्वरम् । दृष्ट्वा तपोबलाज् ज्ञानं लेभिरे सर्वकालिकम्॥४४॥ तस्मात् त्वमिप राजेन्द्र तपोयोगसमन्वितः । तिष्ठ नित्यं मया सार्द्धं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि॥४५॥ एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम् । ग्राचचक्षे महामन्त्रं यथावत् सर्वसिद्धये ॥४६॥ विमुक्तिदम् । ग्रग्निरित्यादिकं पुर्यमृषिभिः सम्प्रवित्ततम्॥४७॥ वेदसारं सोऽपि तद्वचनाद्राजा सुशीलः श्रद्धयान्वितः । साक्षात् पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत्॥४८॥ भस्मोद्धलितसर्वाङ्गः कन्द - मूल - फलाशनः । शान्तो दान्तो जितक्रोधःसंन्यासविधिमाश्रितः॥४९॥ हविद्धिनस्तथाग्नेय्यां जनयामास वै सुतम् । प्राचीनबहिषं नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगम् ॥५०॥

प्राचीनबहिर्भगवान् सर्वशस्त्रभृतांवरः । समुद्रतनयायां वै दश पुत्रानजीजनत् ॥५१॥ प्रचेतसस्ते विख्याता राजानः प्रथितौजसः । ग्रधीतवन्तः स्वं वेदं नारायणपरायणाः ॥५२॥ दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापितः । दक्षो जन्ने महाभागो यः पूर्वं ब्रह्मणः सुतः ॥५३॥ स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धोमता । कृत्वा विवादं रुद्रेण शप्तः प्राचेतसोऽभवत् ॥५४॥ समायातं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः । दृष्ट्वा यथोचितां पूजां दक्षाय प्रददी स्वयम् ॥५४॥ तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः । पूजामनर्हामन्विच्छन् जगाम कृपितो यहम् ॥५६॥ कदाचित् स्वयहं प्राप्तां सतीं दक्षः सुदुर्मनाः । भत्रां सह विनिन्द्येनां भत्स्यामास वै रुषा ॥५६॥ ग्रन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्तुस्तव पिनाकिनः । त्वमप्यसत्सुतास्माकं गृहाद् गच्छ यथागतम् ॥५९॥ ग्रम्य पशुभतीरं भर्तारं कृत्तिवाससम् । विनिन्द्य पितरं दक्षं ददाहात्मानमात्मना ॥५९॥ प्रणम्य पशुभतीरं भर्तारं कृत्तिवाससम् । हिमवद्दुहिता साभूत् तपसा तस्य तोषिता ॥६०॥ जात्वा तु भगवान् रुद्रः प्रपन्नातिहरो हरः । शशाप दक्षं कृपितः समागत्याथ तद्यहम् ॥६१॥ त्यवत्वा देहिममं ब्राह्मं क्षत्रियाणां कुले भव । स्वस्यां सुतायां मूढात्मा पुत्रमुत्पादिष्ठियसि ॥६२॥ एवमुक्त्वा महादेवो ययो कैलासपर्वतम् । स्वायम्भुवोऽपि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत् ॥६३॥ एतदः कथितं सर्वं मनोः स्वायम्भुवस्य तु । निसर्गं दक्षपर्यन्तं श्र्यत्वां पापनाकानम् ॥६४॥

इति श्रीकीर्मे महापुराणे पूर्वभागे स्वायम्भुवमनुसर्गकथनं नाम चतुर्दशोऽध्याय; ॥१४॥

पञ्चद्शोऽध्यायः

नैमिषेया ऊचुः

देवानां दानवानास्त्र गन्धर्वोरगरक्षसाम् । उत्यक्ति विस्त्राद् ब्रहि सूत वैवस्वतेऽन्तरे ॥ १ ॥ स शक्षः शम्भुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः । किमकार्षीन्महाबुद्धे श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम् ॥ २ ॥

स्त उवाच

वक्ष्ये नारायणेनोवतं पूर्वकल्पानुषिङ्गिकम् । त्रिकालबद्धपापन्नं प्रजासर्गस्य विस्तरम् ॥ ३॥ स्व श्वाः शम्भुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः । विनिन्द्य पूर्ववैरेण गङ्गाद्वारेऽयजद्धरिम् ॥ ४॥ देवाश्च सर्वे भागार्थमाहूता विष्णुना सह । सहैव मुनिभिः सर्वेरागता मुनिपुङ्गवाः ॥ ४॥ हष्ट्वा देवकुलं कृत्स्नं शङ्करेण विनागतम् । दधीचो नाम विप्रिषः प्राचेतसमथात्रवीत् ॥ ६॥

द्धीच उवाच

ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यस्याज्ञानुविघायिनः । स देवः साम्प्रतं रद्रो विधिना कि न पूज्यते ॥ ७॥

दक्ष उवाच

सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु न भागः परिकल्पितः । न मन्त्रा भार्यया सार्द्धं शङ्करस्येति नेज्यते ॥ ८ ॥ विहस्य दक्षं कुपितो वचः प्राह महामुनिः । श्रुएवतां सर्वदेवानां सर्वज्ञानमयः स्वयम् ॥ ९ ॥

द्धीच उवाच

यतः प्रवृत्तिर्विश्वातमा यश्चाकौ परमेश्वरः। सम्पूज्यते सर्वयज्ञैर्विदित्वा कि न शङ्करः॥१०॥

दक्ष उवाच

न ह्ययं शङ्करो रुद्रः संहत्तां तामसो हरः । नग्नः कपाली विदितो विश्वात्मा नोपपद्यते ॥११॥ ईश्वरो हि जगत्स्रष्टा प्रभुनीरायएो हरिः । सत्त्वात्मकोऽसौ भगवानिज्यते सर्वकर्मस् ॥१२॥

द्धीच उवाच

र्कि त्वया भगवानेषु सहस्रांशुर्न हश्यते । सर्वलोर्केकसंहर्त्ता कालात्मा परमेश्वरः ॥१३॥ यं ग्रणन्तीह विद्वांसो धार्मिका ब्रह्मवादिनः । सोऽयं साक्षी तीव्ररोचिः कालात्मा शाङ्करी तनुः॥१४॥ एष रुद्रो महादेवः कपाली च घृणी हरः । म्रादित्यो भगवान् सूर्यो नीलग्रीवो विलोहितः॥१४॥ संस्तूयते सहस्रांशुः सामगाध्वर्युहोतृभिः । पश्यैनं विश्वकर्माणं रद्रमूर्तिं त्रयीमयीम् ॥१६॥

दक्ष उवाच

य एते द्वादशादित्या आगता यज्ञभागिनः । सर्वे सूर्या इति ख्याता न ह्यन्यो विद्यते रविः॥१७॥ एवमुक्ते तु मुनयः समायाता दिदृक्षवः । वाढमित्यब्रुवन् दक्षं तस्य साहाय्यकारिणः ॥१८॥ पर्यन्तो वृषध्वजम् । सहस्रशोऽय शतशो बहुशो भूय एव हि ॥१९॥ तमसाविष्टमनसो न निदन्तो वृदिकान् मन्त्रान् सर्वभूतपित हरम् । श्रपूजयन् दक्षवाक्यं मोहिता विष्णुमायया ॥२०॥ देवाश्च सर्वे भागार्थमागता वासवादयः। नापश्यन् देवमीशानमृते नारायणं हरिम् ॥२१॥ हिर्एयगर्भो भगवान ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः । पश्यतामेव सर्वेषां क्षणादन्तरधीयत ॥२२॥ ग्रन्तिहिते भगवित दक्षी नारायणं हिन्म्। रक्षकं जगदां देवं जगाम शरणं स्वयम् ॥२३॥ प्रवर्तयामास च तं यज्ञं दक्षोऽथ निर्भयः । रक्षको भगवान् विष्णुः शरणागतरक्षकः ॥२४॥ पुनः प्राह च तं दक्षं दधीचो भगवानृषिः । सम्प्रेक्ष्यिषग्णान् देवान् सर्वान् वै रुद्रविद्विषः ॥२५॥ ग्रपूज्यपूजने चैव पूज्यानाश्वाप्यपूजने । नरः पापमवाप्नोति महद्दै नात्र संशयः ॥२६॥ श्रसतां प्रग्रहो यत्रं सताञ्चैव विमानना । दर्हो दैवकृतस्तत्र सद्यः पति दारुएः ॥२७॥ एवमुक्त्वाथ विप्रिषः शशापेश्वरिविद्विषः । समागतान् ब्राह्मणांस्तान् दक्षसाहायकारिणः ॥२८॥ यस्माद् बहिष्कृतो वेदाद् भविद्धः परमेश्वरः । विनिन्दितो महादेवः शङ्करो लोकविन्दितः ॥२९॥ भविष्यन्ति त्रयोबाह्याः सर्वेऽपीश्वरविद्विषः । निन्दन्तीहैश्वरं मार्गं कुशास्त्रासक्तचेतसः ॥३०॥ मिथ्याधीतसमाचारा मिथ्याज्ञानप्रलापिनः । प्राप्य घोरं कलियुगं कलिजैः परिपीडिताः ॥३१॥ त्यक्तवा तपोवलं कृत्स्नं गच्छध्वं नरकान् पुनः। भविष्यति हृषीकेशः स्वाश्रितोऽपिपराङ्मुखः॥३२॥ एवमुक्त्वाथ विप्रिषिविरराम तपोनिधिः । जगाम मनसा रुद्रमशेषाघविनाशनम् ॥३३॥ एतस्मिन्नन्तरे देवी महादेवी महेश्वरी। पति पशुपति देवं ज्ञात्वैतत् प्राहः सर्वहर् ॥३४॥

देव्युवाच

दक्षो यज्ञेन यजते पिता मे पूर्वजन्मिन । विनिन्दा भवतो भावमात्मान चापि शङ्कर ॥३१॥ देवा महर्षयश्चासंस्तत्र साहायकारिएाः । विनाशयाशु तं यज्ञं वरमेतं वृशोम्यहम् ॥३६॥ एवं विज्ञापितो देव्या देवदेवः परः प्रभुः । ससर्ज सहसा रुद्रं दक्षयज्ञिष्णांसया ॥३७॥

सहस्रशीर्षपादश्व सहस्राक्षं महाभुजम् । सहस्रपाणि दुर्द्वर्षं युगान्तानलपित्रभम् ॥३८॥ दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं शङ्काचकथरं प्रभुम् । दण्डहस्तं महानादं शाङ्किणां भूतिभूषणम् ॥३९॥ वीरभद्र इति स्यातं देवदेवसमित्वषम् । स जातमात्रो देवशमुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥४०॥ तमाह दक्षस्य मखं विनाशय शिवोस्त्वित । विनिन्द्य मां स यजते गङ्काद्वारे गणेश्वरः ॥४१॥ ततो बन्वप्रमुक्तेन सिंहनेवेत्य लीलया । वीरभद्रेण दक्षस्य विनाशमगमत् कृतुः ॥४२॥ सन्थना चोमया सृष्टा भद्रकाली महेश्वरो । तया च सार्धं वृषमं समारुद्ध ययी गर्याः ॥४२॥ प्रत्ये सहस्रशो रुद्रा निस्ष्टास्तेन धीमता । रोमजा इति विख्यातास्तस्य साहायकारिणः ॥४४॥ यूल-शक्ति-गदाहस्ता दण्डोपलकरास्तथा । कालाग्निरुद्रसङ्काशा नादयन्तो दिशो दश ॥४५॥ सर्वे वृषममारुद्धाः समार्याश्चातिभीषणाः । समावृत्य गण्श्रेष्टं ययुर्दक्षमखं प्रति ॥४६॥ सर्वे सम्प्राप्य तं देशं गङ्काद्वारमिति श्रुतम् । दहशुर्यज्ञदेशं वै दक्षस्यामिततेजसः ॥४०॥ देवाङ्कासहस्राद्ध्यप्यरेगीतनादितम् । वीणावेणुनिनादाद्ध्यं वेदवादाभिनादितम् ॥४८॥ स्र्वे सर्विभिदेवैः समासीनं प्रजापतिम् । उवाच भद्रया रुद्रवीरभद्धः सम्प्रत्व ॥४९॥ वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः । भागार्थं लिप्सया प्राप्ता भागान् यच्छत्वभीप्सितान् ॥४०॥ वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः । भागार्थं लिप्सया प्राप्ता भागान् यच्छत्वभीप्सितान् ॥४०॥ प्रय चेत् कस्यचिदयमाज्ञा मुनिवरोत्तमाः । भागो भवद्भचो देयस्तु नास्मभ्यमिति कथ्यताम् ।

तं ब्रुताज्ञापयित यो वेत्स्यामो हि वयं ततः । ५१॥ गणेशेन प्रजापतिपुरःसराः । देवा ऊचुर्यज्ञभागे न च मन्त्रा इति प्रभो ॥५२॥ मन्त्रा अनुः सुरा यूयं तनीपहतचेतसः । ये नाध्वरस्य राजानं पूजयेयुर्महेश्वरम् ॥५३॥ ईश्वरः सर्वभूतानां सर्वदेवतनुर्हरः । पूज्यते सर्वयज्ञेषु सर्वाभ्युदयसिद्धिदः ॥५४॥ एवम्बत्वा महेशानं मायया नष्टचेतनाः । न मेनिरे ययुर्मन्त्रा देवान् मुक्त्वा स्वमालयम्॥५५॥ ततः स भद्रो भगवान् सभार्यः सगणेश्वरः । स्पृशन् कराभ्यां विप्रिषिदंधीचं प्राह देवताः ॥५६॥ मन्त्राः प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलदर्पितः । यस्मात् प्रसह्य तस्माद्वो नाशयाम्यद्य गर्वितान् ॥५७॥ इत्युक्तवा यज्ञशालां तां ददाह गरापुङ्गवः । गणेश्वराश्च संकृद्धा यूपानुत्पाट्य चिक्षिपुः ॥५८॥ प्रस्तोत्रा सह होत्रा च ग्रश्व चव गणेश्वराः । गृहीत्वा भीषणाः सर्वे गङ्गास्रोतिस चिक्षिपुः ॥५९॥ वीरभद्रोऽपि दीप्तात्मा शक्रस्येवोद्यतं करम् । व्यष्टम्भददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम् ॥६०॥ भगस्य नेत्रे चोत्पाटच करजाग्रेण लोलया । निहत्य मुष्टिना दन्तान् पूष्णश्चेवमपातयत् ॥६१॥ तथा चन्द्रमसं देवं पादाङ्गुष्टेन लीलया। घर्षयामास बलवान् स्मयमानो गणेश्वरः॥६२॥ वह्ने हैंस्तद्वयं छित्वा जिह्वामुत्पाटच लीलया । जघान मूर्द्धि पादेन मुनीनिप मुनीश्वराः ॥६३॥ तथा विष्णुं सगरुडं समायान्तं महाबलः । विव्याध निशितैर्वागीः स्तम्भियत्वा सुदर्शनम् ॥६४॥ समालोक्य महाबाहुरागत्य गरुडो गणम् । जघान पक्षः सहसा ननादाग्बुनिधिर्यथा ॥६५॥ ततः सहस्रशो भद्रः ससर्जं गरुडान् स्वयम् । वैनतेयादभ्यधिकान् गरुडं ते प्रदुद्र्वुः ॥६६॥ तात् हृष्ट्वा गरुडो घीमात् पलायत महाजवः । विसृज्य माधवं वेगात् तदद्भुतिमवाभवत् ॥६७॥ ग्रन्तिं वैनतेये भगवान् पद्मसम्भवः । श्रागत्य वारयामास वीरभद्रक्च केशवम् ॥६८॥ प्रसादयामास च तं गौरवात् परमेष्ठिनः । संस्तूय भगवानीशं शम्भुस्तत्रागमत् स्वयम् ॥६६॥ वीक्ष्य देवाधिदेवं तं साम्बं सर्वगुणैयुतम् । तुष्टाव भगवान् ब्रह्मा दक्षः सर्वे दिवीकसः॥७०॥ विशेषात् पार्वतीं देवीमीश्वरार्द्धशरीरिणीम् । स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः प्रणम्य च कृताञ्जलिः ॥७१॥ ततो भगवती देवी प्रहसन्ती महेश्वरम् । प्रसन्नमनसा रुद्रं वचः प्राह घृणानिधिः ॥७२॥

त्वमेव जगतः स्रष्टा शासिता चैव रक्षिता । भ्रनुपाह्यो भगवता दक्षश्चापि दिवौकसः । ७३॥ ततः प्रहस्य भगवान् कपर्दी नीललोहितः । उवाच प्रणतान् देवान् प्राचेतसमथो हरः ॥७४॥ गच्छध्वं देवताः सर्वाः प्रसन्नो भवतामहम् । सम्पूज्यः सर्वयज्ञेषु न निन्द्योऽहं विशेषतः।।७५।। त्वचापि श्रुणु मे दक्ष वचनं सर्वरक्षणम्। त्यन्तवा लोकैषणामेतां मद्भक्तो भव यत्नतः॥७६॥ भविष्यसि गणेशानः कल्पान्तेऽनुग्रहान्मम । तावत् तिष्ठ ममादेशात् स्वाधिकारेषु निर्वृतः॥७०॥ एवमुबत्वा तु भगवान् सपत्नीकः सहानुगः । श्रदर्शनमनुप्राप्तो वक्षस्यामिततेजसः ॥७५॥ अन्तर्हिते महादेवे शङ्करे पद्मसम्भवः । व्याजहार स्वयं दक्षमशेषजगतो हितम ॥७९॥

ब्रह्मोबाच

कि तवापगतो मोह प्रसन्ने वृषभध्वजे । यदाचष्ट स्वयं देवः पालयैतदतन्द्रितः ॥५०॥ भूतानां हृद्येष वसतीश्वरः । पश्यन्ति यं ब्रह्मभूता विद्वांसो वेदवादिनः ॥५१॥ स चात्मा सर्वभूतानां स बीजं परमा गितः । स्तूयते वैदिकैर्भन्त्रैर्देत्रदेवो महेश्वरः ॥ दशा तमर्चयन्ति ये रुद्र स्वात्मना च सनातनम् । चेतसा भावयुक्तेन ते यान्ति परमं पदम् ॥५३॥ तस्मादनादिमध्यान्तं विज्ञाय परमेश्वरम् । कर्मणा मनसा वाचा समाराधय यत्नतः ॥ ५ ॥ । यत्नात् परिहरेशस्य निन्दां स्वात्मविनाशनीम् । भवन्ति सर्वदोषाय निन्दकस्य क्रिया हि ताः॥ ५ ॥। यस्तवैष महायोगी रक्षको विष्णुरव्ययः। स देवो भगवान् रुद्रो महादेवो न संशयः।। ५६।। मन्यन्ते ये जगद्योनि विभिन्नं विष्णुमीश्वरात् । मोहादवेदनिष्ठत्वात् ते यान्ति नरकं नराः ॥ 🕬। वेदानुवर्त्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा । एकीभावेन पश्यन्ति मृक्तिभाजो भवन्ति ते ॥ ५ ॥ यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः । इति मत्वा भजेदेवं स याति परमां गतिम् ॥५९॥ सुजत्येष जगत् सर्वं विष्णुस्तत् पश्यतीश्वरः । इत्थं जगत् सर्वमिदं रुद्र - नारायणोद्भवम् ॥९०॥ तस्मात् त्यक्तवा हरेर्निन्दां हरे चापि समाहितः । समाश्रय महादेवं शरएयं ब्रह्मवादिनाम् ॥९१॥ उपश्रत्याथ वचनं विरिश्वस्य प्रजापतिः । जगाम शरणं देवं गोपति कृत्तिवाससम् ॥९२॥ येऽन्ये शापाग्निनिर्दग्धा दधीचस्य महर्षयः । द्विषन्तो मोहिता देवं सम्बभूतुः कलिष्वथ ।।९३॥ त्यवत्वा तपोबलं कृत्सनं विप्राणां कुलसम्भवाः । पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मणो वचनादिह ॥९४॥ मुक्तशापास्ततः सर्वे कल्पान्ते रीरवादिषु । निपात्यमानाः कालेन सम्प्राप्यादित्यवर्चसम् ॥९५॥ जगतामीशमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा । समाराध्य तपोयोगादीशानं त्रिदशाधिपम् । भविष्यन्ति यथापूर्वं शङ्करस्य प्रसादतः ॥९६॥ एतद्र:

कथितं सर्वं दक्षयज्ञितसूदनम् । श्रृणुध्वं दक्षपुत्रीणां सर्वासाञ्चैव सन्तितम् ॥९७॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५॥

80

कूमंपुराणम्

षोडशोऽध्यायः

स्त उवाच

प्रजाः सृजेति सन्दिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा । सप्तर्ज देवान् गन्धर्वानृषींश्चैवासुरोरगान् ॥ १॥ यदास्य सृजतः पूर्वं न व्यवर्धन्त ताः प्रजाः । तदा ससर्जं भूतानि मैथुनेनैव धर्मतः ॥ २॥ असिकचां जनयामास वीरणस्य प्रजापतेः । सुतायां धर्मयुक्तायां पुत्राणान्तु सहस्रकम् ॥ ३॥ पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य तु । षष्टि दक्षोऽसृजत् कन्या वैरिएयां वै प्रजापितः॥ ४॥ ददो स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । विशत् सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये ॥ ५॥ द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय घीमते । द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत् तासां वक्ष्येऽथ विस्तरम्॥ ६॥ मरुत्वती वसुर्यामी लम्बा भानुररुम्धती। सङ्कल्पा च मृहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भामिनी॥७॥ धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तासां पुत्रान् निबोधत । विश्वेदेवास्तु विश्वायां साध्या साध्यानजीजनत्॥ ५॥ मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसवोऽष्टी वसोः सुताः । भानोस्तु भानवश्चीव मुहूर्त्तास्तु मुहूर्त्तजाः ॥ ९ ॥ लम्बायाश्चाथ घोषो वे नागवीथी तु यामिजा । पृथिवीविषयं सर्वेमरुन्धत्यामजायत ॥१०॥ संकल्पायास्तु संकल्पो धर्मपुत्रा दश स्मृताः । ये त्वनेकवसुप्रागा देवा ज्योतिःपुरोगमाः ॥११॥ वसवोऽष्टो समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् । श्रापो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चेवानिलोऽनलः ॥१२॥ प्रत्यूषञ्च प्रभासञ्च वसवोऽष्टी प्रकोत्तिताः । ग्रापस्य पुत्रो वैतग्ह्यःश्रमःशान्तो ध्वनिस्तथा॥१३॥ भ्रवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः । सोमस्य भगवान् वर्चा धरस्य द्रविणः सूत: ॥१४॥ मनोजवोऽनिलस्यासीदविज्ञातगतिस्तथा । कुमारो ह्यनलस्यासीत् सेनापतिरिति स्मृतः ॥१४॥ देवलो भगवान् योगी प्रत्यूषस्याभवत् सुतः । विश्वकर्मा प्रभासस्य शिल्पकर्त्ता प्रजापतिः ॥१६॥ म्रदितिर्दितिर्देनुस्तद्वदिरष्टा सुरसा खसा। सुरिभर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा त्विरा। कद्रम्निश्च धर्मज्ञा तत्पुत्रान् व निबोधत ॥१७॥ ग्रंशो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा । विवस्वान् सविता पूषा ह्यं शुमान् विष्णुरेव च।।१६।। तुषिता नाम ते पूर्वं चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते म्रादित्याश्चादितेः सुताः॥१९॥ दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपाद्वलगर्वितम् । हिरण्यकिशपुं ज्येष्ठं हिरएयाक्षं तथानुजम् ॥२०॥ हिरएयकशिपुर्देत्यो महाबलपराक्रमः । श्राराध्य तपसा देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । हृष्वा लेभे वरान् दिव्यान् स्तुत्वाऽमौ विविधैः स्तवैः ॥२१॥ म्रथ तस्य बलाहेवाः सर्व एव महर्षयः । बाधितास्ताडिता जन्मुर्देवदेवं पितामहम् ॥२२॥ शर्गयं शरणं देवं शम्भुं सर्वजगन्मयम् । त्रह्माणं लोककत्तारं त्रातारं पुरुषं परम् । क्टरथं जगतामेकं पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥२३॥ सं याचितो देववरैर्मुनिभिश्च मुनीश्वराः । सर्वदेविहतार्थीय जगाम कमलासनः ॥२४॥ प्रगातिर्मुनीन्द्रेरमरैरपि । क्षीरोदस्योत्तरं कूलं यत्रास्ते हरिरीश्वरः ॥२५॥ संस्त्रयमानः हृष्या देवं जगद्योनि विष्णुं विश्वगुरं शिवम् । ववन्दे चरणी सूर्झा कृताञ्जलिरभाषत ॥२६॥

व्रह्मोवाच

त्वं गतिः सर्वभूतानामनन्तोऽस्यखिलात्मकः । व्यापी सर्वामरवपुर्महायोगी सनातनः ॥२७॥ त्वामात्मा सर्वभूतानां प्रधानं प्रकृतिः परा । वैराग्यैश्वर्यनिरतो वागतीतो निरखनः ॥२५॥

त्वं कर्त्ता चैव भर्त्ता च निहन्ता च सुरद्विषाम् । त्रातुमर्हस्यनन्तेश त्रातासि परमेश्वरः ॥२९॥ इत्थं स विष्णुर्भगवान् ब्रह्मणा सम्प्रबोधितः । प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षः पीतवासाः सुरान् द्विजाः॥३०॥ किमर्थं सुमहावीर्याः सप्रजापतिकाः सुराः । इमं देशमनुप्राप्ताः किं वा कार्यं करोमि वः॥३१॥

देवा ऊचुः

हिरएयकशिपुर्नाम ब्रह्मणो वरदिर्पतः । बाधते भगवन् दैत्यो देवान् सर्वान् महिषिभिः॥३२॥ श्रवध्यः सर्वभूतानां त्वामृते पुरुषोत्तमम् । हन्तुमहिस सर्वेषां त्रातासि त्वं जगन्मय ॥३३॥ श्रुत्वा तद्देवतेरुक्तं स विष्णुर्लोकभावनः । वधाय दैत्यमुख्यस्य सोऽसृजत् पुरुषं स्वयम् ॥३४॥ मेरपर्वतवष्माणं घोररूपं भयानकम् । शङ्ख-चक्र-गदापाणि तं प्राह गरुडध्वजः ॥३५॥ हत्वा तं दैत्यराजानं हिरएयकशिषुं पुनः । इमं देशं समागन्तुं क्षिप्रमहिस पौरुषात् ॥३६॥ निशम्य वैष्णवं वावयं प्रणम्य पुरुषोत्तमम् । महापुरुषमन्यक्तं ययौ दैत्यमहापुरम् ॥३७॥ विमुद्धन् भैरवं नादं शङ्ख - चक्र - गदाधरः । ग्रारुह्म गरुडं देशे महामेरुरिवापरः ॥३८॥ ग्राक्त्य दैत्यप्रवरा महामेघरवोपमम् । समद्ध चिक्ररे नादं तथा दैत्यपतेर्भयात् ॥३९॥

असुरा ऊचुः

कश्चिदागच्छिति महान् पुरुषो देवनोदितः । विमुञ्चन् भैरवं नादं तं जानीमो जनार्दनम् ॥४०॥ ततः सहासुरवरैहिरएयकशिपुः स्वयम् । सन्नद्धेः सायुधैः पुनैः प्रह्रादाद्यैस्तदा ययो ॥४१॥ दृष्ट्वा तं गरुडारूढं सूर्यकोटिसम्प्रभम् । पुरुषं पर्वताकारं नारायणिमवापरम् ।

दुद्वुः केचिदन्योन्यमूचुः सम्भ्रान्तलोचनाः ॥४२॥

श्रयं स देवो देवानां गोप्ता नारायणो रिपुः । श्रस्माकमन्ययो तूनं तत्सुतो वा समागतः ॥४३॥ इत्युक्तवा रास्त्रवर्षिण समृजुः पुरुषाय ते । स तानि चाक्षतो देवो नारायामास लीलया ॥४४॥ तदा हिरएयकशिपोश्चत्वारः प्रथितौजसः । पुत्रा नारायणोद्भूतं युयुधुर्मेघनिस्वनाः ॥४५॥

प्रहादश्चानुहादश्च संहादो हाद एव च ॥४६॥

प्रहादः प्राहिणोद् बाह्मण्नुहादोऽथ वैष्णवम् । संहादश्चापि कौमारमाग्नेयं हाद एव च ॥४७॥ तानि तं पुरुषं प्राप्य चत्वार्यक्षाणि वैष्णवम् । न रोकुश्चालितुं विष्णुं वासुदेवं यथातथम् ॥४६॥ स्वयासौ चतुरः पुत्रान् महाबाहुर्महाबलः । प्रगृह्य पादेषु करैश्चिक्षेप च ननाद च ॥४९॥ विमुक्तेष्वथ पुत्रेषु हिरएयकशिपुः स्वयम् । पादेन ताडयामास वेगेनोरिस तं बली ॥४०॥ स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरेडेन सहानुगः । ग्रहर्यः प्रययो तूर्णं यत्र नारायणः प्रभुः ॥४१॥ गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमिखलं तदा । सिन्नन्त्य मनसा देवः सर्वज्ञानमयोऽमलः ॥४२॥ नरस्यार्धतनुं कृत्वा सिहस्यार्धतनुं तथा । नृसिहवपुरव्यक्तो हिरएयकशिपोः पुरे ॥४३॥ म्याविर्वभूव सहसा मोहयन् दैत्य-दानवान् । दंष्ट्राकरालो योगात्मा युगान्तदहनोपमः ॥४४॥ समारुह्यात्मनः शक्ति सर्वसंहारकारिकाम् । भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यन्दिने रिवः॥४४॥ हष्ट्रवा नृसिहं पुरुषं प्रहादं ज्येष्ठपुत्रकम् । वधाय प्रेरयामास नरसिहस्य सोऽसुरः ॥४६॥ इमं नृसिहं पुरुषं प्रहादं ज्येष्ठपुत्रकम् । सहैव तेऽनुजैः सर्वेर्नाशाशु मयेरितः ॥४॥ स तिन्नयोगादसुरः प्रहादो विष्णुमव्ययम् । युयुषे सर्वयत्नेन नरसिहेन निजितः ॥४५॥ ततः सश्चोदितो दैत्यो हिरएयाक्षस्तदानुजः । ध्यात्वा पशुफ्तेरस्नं ससर्जं च ननाद च ॥४९॥ ततः सश्चोदितो दैत्यो हिरएयाक्षस्तदानुजः । ध्यात्वा पशुफ्तेरस्नं ससर्जं च ननाद च ॥४९॥

तस्य देवाधिदेवस्य विष्णोरिमततेजसः । न हानिमकरोदस्रं यथा देवस्य शूनिनः॥६०॥ कृष्वा पराहतं त्वस्त्रं प्रह्नादो भाग्यगौरवात् । मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम् ॥६१॥ सन्त्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेन चेतसा । ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम् ॥६२॥ स्तुत्वा नारायणं स्तोत्रैऋंग्यजुःसामसम्भवैः । निवार्यं पितरं भ्रात्नु हिरएयाक्षं तदाऽत्रवीत्॥६३॥ श्रयं नारायणोऽनन्तः शाश्वतो भगवानजः। पुराणः पुरुषो देवो महायोगी जगन्मयः।।६४।। अयं धाता विधाता च स्वयंज्योतिरिङ्कनः । प्रधानं पुरुषं तत्त्वं सूलप्रकृतिरव्यया ॥६५॥ सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिगः। गच्छध्वमेनं शरणं विष्णुमन्यक्तमच्यतम् ॥६६॥ एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिहिरएयकशिपुः स्वयम् । प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया ॥६७॥ श्रयं सर्वात्मना वध्यो नृसिहोऽल्पपराक्रमः । समागतोऽसमद्भवनिमदानीं कालचोदितः ॥६८॥ विहस्य पितरं पुत्रो वचः प्राह महामितः । मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम् ॥६९॥ कथं देवो महादेवः शाश्वतः कालवर्जितः । कालेन हन्यते विष्णुः कालात्मा कालरूपधृक्॥७०॥ ततः सुवर्णकशिपुर्दुरात्मा कालचोदित:। निवारितोऽपि पुत्रेण युयुधे हरिमन्ययम्।।७१।। हिरएयनयनाग्रजम् । नखैर्विदारयामास प्रहादस्यैत हते हिरएयकशिपौ हिरएयाक्षो महाबलः । विसृज्य पुत्रं प्रहादं दुद्रवे भयविह्नलः ॥७३॥ अनुह्रादादयः पुत्रा अन्ये च शतशोऽसुराः । नृसिंहदेहसम्भूतैः सिहैर्नीता यमक्षयम् ॥७४॥ ततः संहत्य तद्र्षं हरिर्नारायणः प्रभुः । स्वमेव परमं रूपं ययौ नारायणाह्वयम् ॥७५॥ गते नारायणे दैत्यः प्रह्नादोऽसुरसत्तमः । ग्रभिषेकेण युक्तेन हिरएयाक्षमयोजयत् ॥७६॥ स बाधयामास सुरान् रणे जित्वा मूनीनिष । लब्बा उन्चकं महापूत्रं तपसाराध्य शङ्करम् ॥७७॥ देवाज् जित्वा सदेवेन्द्रान् बध्वा च घरणीमिमाम् । नीत्वा रसातलं चक्र वेदान् वै निष्प्रभास्तथा ॥ ८५॥ ततः सन्नह्मका देवाः परिम्लानमुखश्रियः। गत्वा विज्ञापयामासुर्विष्णवे हरिमन्दिरम्॥७९॥ स चिन्तियत्त्रा विश्वातमा तद्वधोपायमन्ययः । सर्वदेवमयं शुभ्रं वाराहं गत्त्रा हिरएयतयनं हत्त्रा तं पृक्षोत्तमः । दंष्ट्रयोद्धारयामास कल्पादौ धरणीिममाम् ॥६१॥ त्यक्त्वा वाराहसंस्थानं संस्थाण्यैवं सुरद्विषः । स्वामेव प्रकृति दिव्यां ययौ विष्णुः परं पदम् ॥ दशा तस्मित् हतेऽमररिपौ प्रहादो विष्णुतत्परः । ग्रपालयत् स्वकं राज्यं भावं त्यक्तवा तदासुरम् ॥५३॥ इयाज विधिवद् देवान् विष्णोराराधने रतः । निःसपत्नं सदा राज्यं तस्यासीद्विष्णुवैभवात् ॥५४॥ ततः कदाचिदसुरो ब्राह्मणं गृहमागतम् । तापसं नार्चयामास देवानाञ्चेव मायया ॥ ५५॥ स तेन तापसोऽःयर्थं मोहितेनावमानितः। शशापासुरराजं तं क्रोधसंरक्तलोचन: ॥५६॥ समाश्रित्य ब्राह्म गानवमन्यसे । सा शक्तिवेंष्णवी दिव्या विनाशं ते गमिष्यति ॥ ५७॥ इत्युक्तवा प्रययौ तूर्णं प्रहादस्य गृहाद् द्विजः । मुमोह राज्यसंसक्तः सोऽपि शापबलात् ततः ॥ ५८॥ वाधयामास विप्रेन्द्रान् न विवेद जनार्दनम् । पितुर्वधमनुस्मृत्य क्रोधं चक्रे हरि प्रति ॥६९॥ तयोः समभवद् युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् । नारायणस्य देवस्य प्रह्रादस्यामरद्विषः। कृत्वा स सुमहद् युद्धं विष्णुना तेन निर्जित: ॥९०॥

पूर्वसंस्कारमाहारम्यात् परिस्मिन् पुरुषे हरौ । सञ्जातं तस्य विज्ञानं शरएयं शरणं ययौ ॥९१॥ ततः प्रभृति दैरथेन्द्रो ह्यनन्यां भक्तिमुद्धहन् । नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे ॥९२॥ हिरएयकशिपोः पुत्रे योगसंसक्तचेतिस । ग्रवाप तन्महद्राज्यमन्धकोऽसुरपुङ्गवः ॥९३॥ हिरएयनेत्रतनयः शम्भोर्देहसमुद्भवः । मन्द्ररस्थामुमां देवीं चकमे पर्वतात्मजाम् ॥९४॥

पुरा दारुवने पुरुषे सुनयो गृहमेधिनः । ईश्वराराधनार्थाय तपश्चे हः ततः कदाचिन्महती कालयोगेन दुस्तरा । ग्रनावृष्टिरतीवोग्रा ह्यासीद्भृतविनाशिनी ॥९६॥ समेत्य सर्वे मुनयो गौतमं तपसां निधिम् । ग्रयाचन्त क्षुघाविष्टा ग्राहारं प्राणधारणम् ॥९७॥ स तेभ्यः प्रददावन्नं मृष्टं बहुतरं बुवः । सर्वे बुभुजिरे विप्रा निर्विशाङ्कोन चेतसा ॥९८॥ गते च द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शङ्करी । बभूव वृष्टिर्महतो यथापूर्वमभूज्जगत् ॥९९॥ ततः सर्वे मृनिवराः समामन्त्र्य परस्परम् । महर्षि गौतमं प्रोचुर्गच्छाम इति वेगतः ॥१००॥ निवारयामास च तान् कञ्चित् कालं यथासुखम्। उषित्वा मद्गृहेऽवश्यं गच्छध्वमिति परिडताः॥१०१॥ ततो मायामयीं सृष्ट्वा कृष्णां गां सर्वं एव ते । समीपं प्रापयामासुर्गीतमस्य महात्मनः ॥१०२॥ सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः । गोष्ठे तां बन्धयामासं स्पृष्टमात्रा ममार सा ॥१०३॥ स शोकेनाभिसन्तप्तः कार्याकार्यं महामुनिः । न पश्यति स्म सहसा तमृषि मुनयोऽब्र्वन् ॥१०४॥ गोवध्येयं द्विजश्रेष्ठ यावत् तव शरीरगा । तावत् तेऽन्नं न भोक्तव्यं गच्छामो वयमेव हि ॥१०५॥ तेन तेःनुमताः सन्तो देवदारुवनं शुभम् । जग्मुः पापवशं नीतास्तपश्चत्तुं यथा पुरा ॥१०६॥ स तेषां मायया जातां गोवध्यां गौतमो मुनिः । केनापि हेतुना ज्ञात्वा शशापातीव कोपतः ॥१०७॥ भविष्यध्वं त्रयीवाह्या महापातिकभिः समाः । बहुशस्ते तथा शापाज् जायमानाः पुनः पुनः॥१०८॥ सर्वे सम्प्राप्य देवेशं शंकरं विष्णुमन्ययम् । ग्रस्तुवल् लीकिकैः स्तोत्रैशच्छिष्टा इव सर्वगौ ॥१०९॥ देवदेवी महादेवी भक्तानामात्तिनाशनी । कामवृत्त्या महायोगी पापान्नस्त्रातुमर्हतः ॥११०॥ तदा पः इर्वस्थितं विष्णुं सम्प्रेक्ष्य वृषभध्वजः । किमेतेषां भवेत् कार्यं प्राह पुरायेषिणामिति ॥१११॥ ततः स भगवान् विष्णुः शरएयो भक्तवत्सलः । गोपति प्राहं विष्रेन्द्रानालोक्य प्रएतान् हरिः॥११२॥ न वेदबाह्ये पुरुषे पुरायलेशोऽपि शंकर। सङ्गच्छते महादेव धर्मा वेदाद्विनिर्वभौ॥११३॥ तथापि भक्तवात्सत्याद्रक्षितव्या महेश्वर । ग्रस्माभिः सर्व एवैते गन्तारो नरकानपि ॥११४॥ तस्माद्धि वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम् । विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामो वृषध्वज ॥११५॥ एवं सम्बोधितो रुद्रो माधवेन मुरारिएगा । चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरितः ॥११६॥ कापालं नाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम् । पाछ्चरात्रं पाशुपतं तथान्यानि सहस्रशः ॥११७॥ सृष्ट्वा तानाह निर्वेदाः कुर्वाणाः शास्त्रचोदितम् । पतन्तो नरके घोरे बहून् कल्यान् पुनःपुनः ॥११८॥ जायन्तो मानुषे लोके क्षीणपापचयास्ततः । ईश्वराराधनबलाद् गच्छध्वं सुकृतां गतिम् ॥११९॥ वर्त्तध्वं मत्प्रसादेन नान्यथा निष्कृतिर्हि वः । एवमीश्वर - विष्णुभ्यां चोदितास्ते महर्षयः । म्रादेशं प्रत्यपद्यन्त शिवस्यासुरविद्विषः ॥१२०॥ चकुरतेऽन्यानि शास्त्राणि तत्र तत्र रताः पुनः । शिष्यानध्यापयामासुर्दर्शियत्वा फलानि च ॥१२१॥ इमं लोकमवतीर्य महीतले । चकार शंकरो भिक्षां हितायैषां द्विजैः सह ॥१२२॥ प्रेतभस्मावगुरि्ठतः । विमोह्यँलोकिममं जटामग्डलमग्डितः ॥१२३॥ निक्षिप्य पार्वतीं देवीं विष्णाविमततेजिस । नियोज्य भगवान् रुद्रो भैरवं दुष्टिनग्रहे ॥१२४॥ दत्त्वा नारायणे देव्या नन्दनं कुलनन्दनम् । संस्थाप्य तत्र च गणान् देवानिन्द्रपुरोगमान्॥१२५॥ प्रस्थिते च महादेवे विष्णुर्विश्वतनुः स्वयम् । स्त्रोरूपधारी नियतं सेवते स्म महेश्वरीम् ॥१२६॥ ब्रह्मा हुताशनः शको यमोऽन्ये सुरपुङ्गवाः । सिषेविरे महादेवीं स्त्रीरूपं शोभनं गताः ॥१२७॥ नन्दीश्वरश्च भगवान् शम्भोरत्यन्तवत्लभः । द्वारदेशे गणाध्यक्षो यथापूर्वमितष्ठत ॥१२८॥ एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो ह्यन्धको नाम दुर्मतिः । ग्राहर्तुकामो गिरिजामाजगामाथ मन्दरम् ॥१२९॥

कूर्मपुरागाम्

सम्प्राप्तमन्धकं दृष्ट्वा शङ्करः कालभैरवः। न्यषेधयदमेयात्मा कालरूपधरो हरः॥१३०॥ तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षग्राम् । शूलेनोरिस तं दैत्यमाजघान वृषध्वजः ।।१३१।। ततः सहस्रशो दैत्यः ससर्जान्धकसंज्ञितान् । नन्दीश्वरादयो दैत्यैरन्धकैरिभनिर्जिताः ॥१३२॥ घरटाकर्णो मेघनादश्चराडेशश्चराडतापनः । विनायको मेघवाहः सोमनन्दी च वैद्युतः ॥१३३॥ सर्वेऽन्धकं दैत्यवरं सम्प्राप्यातिबलान्विताः । युगुघुः शूल - शक्त्यृष्टि-शिरिकूटपरश्रधेः ॥१३४॥ भ्रामियत्वा तु हस्ताभ्यां गृहीत्वा चरणद्वये । दैत्येन्द्रेणातिवलिना क्षिप्तास्ते शतयोजनम् ॥१३५॥ ततोऽन्धकनिसृष्टा ये शतशोऽथ सहस्रशः। कालसूर्यप्रतीकाशा भैरवद्धाभिदुद्रवुः ॥१३६॥ हा हेति शब्दः सुमहान् बभूवातिभयङ्करः । युयुधे भैरवो देवः शूलमादाय भीषणम् ॥१३७॥ दृष्वान्धकानां सुबलं दुर्जय निर्जितो हरः । जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम् ॥१३८॥ सोऽसृजद्भगवान् विष्णुर्दवीनां शतमुत्तमम् । देवीपार्श्वस्थितो देवो विनाशाय सुरिद्धषाम्।।१३९॥ देवीभिर्यमसादनम् । नीतं केशवमाहात्म्याल्लीलयैव रणाजिरे ॥१४०॥ तदान्धकसहस्रन्तु दृष्ट्वा पराहतं सैन्यमन्धकोऽपि महासुरः। पराङ्मुखो रणात् तस्मात् पलायतं महाजवः॥१४१॥ ततः क्रीडां महादेवः कृत्वा द्वादशवार्षिकीम् । हिताय भक्तलोकानामाजगामाथ मन्दरम् ॥१४२॥ सम्प्राप्तमीश्वरं ज्ञात्वा सर्वं एव गणेश्वराः । समागम्योपतिष्ठन्त भानुमन्तिमव द्विजाः ॥१४३॥ प्रित्रय भवनं पुरायमयुक्तानां दुरासदम् । ददर्श निन्दनं देवं भैरवं केशवं शिवः ॥१४४॥ प्रसामप्रवणं देवं सोऽनुग्रह्याथ निन्दनम् । प्रीत्यैनं पूर्वमीशानः केशवं परिषस्वजे ॥१४५॥ हष्ट्वा देवी महादेवं प्रीतिविस्फारितेक्षणा । ननाम शिरसा तस्य पादयोरीश्वरस्य च ॥१४६॥ न्यवेदयज् जयं तस्मै शङ्करायाथ शङ्करः । भैरवो विष्णुमाहात्म्यं प्रतीतः पार्श्वगोऽभवत्।।१४७।। श्रत्वा तं विजयं शम्भुविक्रमं केशवस्य च । समास्ते भगवानीशो देव्या सह वरासने ॥१४८॥ ततो देवगणाः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजाः । भ्राजग्मुर्मन्दरं द्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम् ॥१४९॥ येन तिद्विजितं पूर्वं देवीनां शतमुत्तमम् । समागतं दैत्यसैन्यमीशदर्शनकाङ्क्षया ॥१५०॥ दृष्ट्वा वरासनासीनं देव्या चन्द्रविभूषण्म् । प्रणेमुरादराद् देव्यो गायन्ति स्मातिलालसा।।१५१॥ प्रणेमुर्गिरिजां देवीं वामपार्क्वे पिनाकिनः । देवासनगतं देवं नारायरामनामयम् ॥१५२॥ हष्ट्वा सिंहासनासीनं देव्या नारायणेन च । प्रणम्य देवमीशानं पृष्टवत्यो वराङ्गनाः ॥१५३॥

कन्या ऊचुः

कस्त्वं विश्राजसे कान्त्या केयं बाला रिवप्रभा। को न्वयं भाति वपुषा पङ्कायतलोचनः ॥१५४॥ निशम्य तासां वचनं वृषेन्द्रवरवाहनः। व्याजहार महायोगी भूताविपतिरव्ययः ॥१५५॥ अयं नारायणो गौरी जगन्माता सनातनः। विभज्य संस्थितो देवः स्वात्मानं बहुधेश्वरः ॥१५६॥ न मे विदुः परं तत्त्वं देव्याश्च न महर्षयः। एकोऽयं वेद विश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च ॥१५७॥ श्रहं हि निःस्पृहः शान्तः केवलो निष्परिग्रहः। मामेव केशवं प्राहुर्लक्ष्मीं देवीमथाम्बिकाम् ॥१५६॥ एष धाता विधाता च कारणं कार्यमेव च । कत्ती कारियता विष्णुर्भुक्ति मुक्तिफलप्रदः ॥१५९॥ भोक्ता पुमानप्रमेयः संहर्त्ता कालरूपधृक् । स्रष्टा पाता वासुदेवो विश्वात्मा विश्वतोमुखः ॥१६०॥ कूटस्थो ह्यक्षरो व्यापी योगी नारायएगोऽव्ययः। तारकः पुरुषो ह्यात्मा केवलं परमं पदम् ॥१६१॥ सेषा माहेश्वरी गौरी मम शक्ति निरद्धना । शान्ता सत्या सदानन्दा परंपदिमिति श्रुतिः ॥१६२॥ श्रस्याः सर्विमदं जातमत्रैव लयमेष्यति । एषैव सर्वभूतानां गतीनामुक्तमा गितः ॥१६३॥

तयाहं सङ्गतो देव्या केवलो निष्कलः परः । प्रयाम्यशेषमेवाहं परमात्मानमव्ययम् ॥१६४॥ तस्मादनादिमद्वैतं विष्णुमात्मानमीश्वरम् । एकमेव विजानीश्व ततो यास्यथ निर्वृतिम् ॥१६४॥ मन्यन्ते विष्णुमव्यक्तमात्मानं श्रद्धयान्विताः । ये भिन्नहृष्ट्या चेशानं पूजयन्तो न मे प्रिया ॥१६६॥ द्विषन्ति ये जगत्सूर्ति मोहिता रौरवादिषु । पच्यमाना न मुच्यन्ते कल्पकोटिशतैरिष ॥१६७॥ तस्मादशेषभूतानां रक्षको विष्णुरव्ययः । यथावदिह विज्ञाय ध्येयः सर्वापदि प्रभुः ॥१६५॥ श्रुत्वा भगवतो वावयं देवाः सर्वे गणेश्वराः । नेमुर्नारायणं देवं देवीश्व हिमशैलजाम् ॥१६९॥ प्रार्थयामासुरीशाने भक्ति भक्तजनिषये । भवानीपादयुगले नारायणपदाम्बुजे ॥१७०॥ ततो नारायणं देवं गणेशा मातरोऽपि च । न पश्यन्ति जगत्सूर्ति तदद्भुतिमवाभवत् ॥१७१॥ तदन्तरे महादैत्यो ह्यन्थको मन्मथान्धकः । मोहितो गिरिजां देवीमाहर्जुं गिरिमाययौ ॥१७२॥ ग्रथानन्तवपुः श्रीमान् योगी नारायणोऽमलः । तत्रैवाविरभूद् दैत्यैर्युद्धाय पुक्षोत्तमः ॥१७३॥

कृत्वाथ पार्श्वे भगवन्तमीशो युद्धाय विष्णुं गरादेवमुख्यैः ।
शिलादपुत्रेण च मातृकाभिः सकालख्द्रोऽपि जगाम देवः ॥१७४॥
त्रिशूलमादाय कृशानुकल्पं स देवदेवः प्रययौ पुरस्तात् ।
तमन्वयुस्ते गणराजवर्या जगाम देवोऽपि सहस्रबाहुः ॥१७५॥
रराज मध्ये भगवान् सुरागां विवाहनो वारिजपर्णवर्णः ।
तदा सुमेरोः शिखराधिरूढिस्रलोकदृष्टिर्भगवानिवार्कः ॥१७६॥
जयन्ननादिर्भगवानमेयो हरः सहस्राकृतिराविरासीत् ।
त्रिश्रुलपाणिर्गगने सुघोषः पपात देवोपिर पुष्पवृष्टिः ॥१७७॥
समागतं वीक्ष्य गणेशराजं समावृतं दैत्यिरपुं गणेशैः ।
युयोध शक्रेण स मातृकाभिर्गणेरशेषैरमरप्रधानैः ॥१७५॥
विजित्य सर्वानिप बाहुवीर्यात् स संयुगे शम्भुरनन्तधामा ।
समाययौ यत्र स कालख्दो विमानमारुह्य विहीनसत्तः ॥१७९॥

हम्तुमहीस दैत्येशमन्यकं लोककएटकम् । त्याजहार महादेवं भैरवं भूतिभूषएाम् ॥१८०॥ हन्तुमहीस दैत्येशमन्यकं लोककएटकम् । त्वामृते भगवान् शक्तो हन्ता नान्योऽस्य विद्यते॥१८९॥ त्वं हर्ता सर्वलोकानां कालात्मा ह्यं श्वरी तनुः । स्तूयसे विविधेर्मन्त्रेवेंदविद्भिर्विचक्षणेः ॥१८२॥ स वासुदेवस्य वचो निशम्य भगवान् हरः । निरीक्ष्य विष्णुं हनने दैत्येन्द्रस्य मति दघो ॥१८३॥ जगाम देवतानीकं गणानां हर्षवर्द्धनम् । स्तुवन्ति भैरवं देवमन्तरीक्षचरा जनाः ॥१८४॥ जयानन्त महादेव कालमूर्त्ते सनातन । त्वमिनः सर्वभूतानामन्तिस्तष्ठिस सर्वगः ॥१८५॥ त्वमन्तको लोककर्ता त्वं धाता हरिरव्ययः । त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम् ॥१८६॥ स्रोङ्कारमूर्त्तिर्योगात्मा त्रयीनेत्रिस्त्रलोचनः । महाविभूतिर्विश्वेशो जयानन्त जगत्पते ॥१८५॥ ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ यहीत्वान्धकमीश्वरः । त्रिश्रुलाग्रेषु विन्यस्य प्रनन्त्तं सतां गतिः ॥१८५॥ हष्ट्वान्धकं देवगणाः शूलप्रोतं पितामहः । प्ररोमुरीश्वरं देवं भैरवं भवमोचनम् ॥१८९॥ स्रस्तुवन् मुनयः सिद्धा जगुर्गन्धर्वं - किन्नराः । श्रन्तरीक्षेऽप्सरःसङ्घा नृत्यन्ति स्म मनोहराः॥१९०॥ संस्थापितोऽथ शूलाग्रे सोऽन्यको दग्धिकित्वषः । उत्पन्नाखिलविज्ञानस्तुष्टाव परमेश्वरम् ॥१९१॥

कूर्मपुराणम्

अन्धक उवाच

नमामि मूर्झा भगवन्तमेकं समाहिता यं विदुरीशतत्त्वम्। पुरातनं पुरायमनन्तरूपं कालं कवि योग-वियोगहेतुम् ॥१९२॥ दंष्ट्राकरालं दिवि नृत्यमानं हुताशवक्त्रं ज्वलनार्करूपम् । सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुनतं भवन्तमेकं प्रणमामि जयादिदेवामरपूजिताङ्घे विभागहीनामलतत्त्वरूप। त्वमग्निरेको बहुधाभिपूज्यो वाय्त्रादिभेदैरखिलात्मरूपः ॥१९४॥ त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्गं तमसः परस्तात्। त्वं पश्यमीदं परिपास्यजस्रं त्वमन्तको योगिगएगानुजुष्टः ॥१९५॥ एकोऽन्तरात्मा बहुधा निविष्टो देहेषु देहादिविशेषहीनः। त्वमात्मतत्त्वं परमात्मशब्दं भवन्तमाहः शिवमेव केचित्।।१९६।। त्वमक्षरं ब्रह्म परं पवित्रमानन्दरूपं प्रगावाभिधानम् । प्रसिद्धः स्त्रायम्भुवोऽशेषविशेषहीनः ॥१९७॥ त्वमीश्वरो वेदविदां त्विमन्द्ररूपो वरुणोऽग्निरूपो हंसः प्राणो मृत्युरन्तोऽधियज्ञः । प्रजापतिर्भगवानेकरूपो नीलग्रीवः स्तूयसे वेदविद्भिः॥१९८॥ नारायणस्त्वं जगतामनादिः पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च । वेदान्तगुह्योपनिषत्मु गीतः सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥१९९॥ नमः परस्मै तमसः परस्तात् परात्मने पञ्चनवान्तराय। सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय ॥२००॥ त्रिशक्त्यतीताय निरञ्जनाय त्रिमूर्त्तयेऽनन्तपरात्ममूर्त्त जगन्निवासाय नमो जनानां हृदि संस्थिताय फग्गीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥२०१॥ मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादपद्म ऐश्वर्यधर्मासनसंस्थिताय। भवोद्भवाय सहस्रवन्द्रार्कसहस्रमूर्ते ॥२०२॥ परान्ताय नमः नमोऽस्तु सोमाय सुमध्यमाय नमोऽस्तु देवाय हिरएयबाहो। नमोऽग्निचन्द्रार्कविलोचनाय नमोऽम्बिकायाः पतये मृडाय ॥२०३॥ गुह्याय गुहाम्तराय वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय। त्रिकालहीनामलघामघाम्ने नमो महेशाय नमः शिवाय ॥२०४॥

एवं स्तुतः स भगवान् शूलाग्रादवतार्थं तम् । तुष्टः प्रोवाच हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वा च परमेश्वरः ।।२०४॥ प्रीतोऽहं सर्वथा देत्य स्तवेनानेन साम्प्रतम् । सम्प्राप्य गाण्यत्यं मे सिन्नधाने सदा वस ।।२०६॥ ग्ररोगिश्छन्नसन्देहो देवैरिप सुपूजितः । नन्दीश्वरस्यानुचरः सर्वदुःखविवर्जितः ।।२०७॥ एवं व्याहृतमात्रे तु देवदेवेन देवताः । गणेश्वरं महादेत्य मन्वकं देवसिन्नधौ ।।२००॥ सहस्रसूर्यसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्रचिह्नितम् । नीलकग्ठं जटामीलि शूलासक्तं महाकरम् ।।२०९॥ हष्ट्वा तं तुष्टुवुदेत्यमाश्चर्यं परमं गताः । उवाच भगवान् विष्णुदेवदेवं स्मयन्तिव ॥ २१०॥ स्थाने तव महादेव प्रभावः पुरुषो महान् । नेक्षते ज्ञातिजान् दोषान् यह्नाति च गुणानिप ॥२११॥ इतीरितोऽथ भैरवो गणेशदेवपुङ्गवः । सकेशवः सहान्धको जगाम शङ्करान्तिकम् ॥२१२॥

निरीक्ष्य देवमागतं स शङ्करः सहान्धकम् । समाघवं समानृकं जगाम निर्वृति हरः ॥२१३॥ प्रयह्म पारिग्निक्वरो हिरएयलोचनात्मजम् । जगाम यत्र शेलजा विमानमीशवल्लभा ॥२१४॥ विलोक्य सा समागतं पित भवात्तिहारिणम् । उवाच सान्धकं मुखं प्रसादमन्धकं प्रति ॥२१४॥ प्रथान्धको महेश्वरीं ददर्श देवपार्ख्गाम् । प्रयात दएडवत् क्षितौ ननाम पादपद्मयोः ॥२१६॥ नमामि देववल्लभामनादिमद्रिजामिमाम् । यतः प्रधानपूरुषौ निहन्ति याऽखिलं जगत् ॥२१७॥ विभाति या शिवासने शिवेन साकमन्यया । हिरएमयेऽतिनिर्मले नमामि तां हिमाद्रिजाम् ॥२१८॥ यदन्तराखिलं जगज् जगन्ति यान्ति सङ्क्षयम् । नमामि यत्र तामुमामशेषभेदवर्जिताम् ॥२१८॥ व जायते न हीयते न वर्द्धते च तामुमाम् । नमामि तां गुणातिगां गिरीशपृत्रिकामिमाम् ॥२२०॥ क्षमस्व देवि शैलजे कृतं मया विमोहितम् । सुरासुरैर्नमस्कृतं नमामि ते पदाम्बुजम् ॥२२१॥ इत्थं भगवती देवी भक्तिनम्रोण पार्वती । संस्तुता दैत्यपितना पुत्रत्वे जयहेऽन्धकम् ॥२२२॥ ततः स मातृभः सार्द्धं भैरवो छ्रसम्भवः । जगामानृज्ञया शम्भोः पातालं परमेश्वरः ॥२२३॥ यत्र सा तामसी विष्णोमूर्त्तः संहारकारिका । समास्ते हरिरव्यक्तो नृसिहाकृतिरोश्वरः ॥२२३॥ यत्र सा तामसी विष्णोमूर्त्तः संहारकारिका । समास्ते हरिरव्यक्तो नृसिहाकृतिरोश्वरः ॥२२४॥ ततोऽनन्ताकृतिः शम्भुः शेषेणापि सुपूजितः । कालाग्निछ्दो भगवान् युयोजात्मानमात्मिन ॥२२४॥ युव्वतस्तस्य देवस्य सर्वा एवाथ मातरः । बुमुक्षिता महादेवं प्रणम्याहिष्कलोचनम् ॥२२६॥ युव्वतस्य देवस्य सर्वा एवाथ मातरः । बुमुक्षिता महादेवं प्रणम्याहिष्कलोचनम् ॥२२६॥

मातर ऊचुः

बुभुक्षिता महादेव त्वमनुज्ञातुमर्हिस । त्रैलोक्यं भक्षयिष्यामो नान्यथा तृप्तिरस्ति नः॥२२७॥ एताबदुक्त्वा वचनं मातरो विष्णुसम्भवाः । भक्षयाश्विकिरे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥२२५॥ ततः स भैरवो देवो नृसिहवपुषं हिरम् । दध्यौ नारायणं देवं प्रणम्य च कृताञ्जलिः ॥२२९॥ उमेशचिन्तितं ज्ञात्वा क्षणात् प्रादुरभूद्धरिः । विज्ञापयामास च तं भक्षयन्तीह मातरः ।

निवारयाशु त्रैलोक्यं त्वदीया भगवित्तित ॥२३०॥
संस्मृता विष्णुता देव्यो नृसिहतपुषा पुतः । उपतस्थुर्महादेवं नरसिंहाकृतिं ततः ॥२३१॥
सम्प्राप्य सिन्निधि विष्णोः सर्वाः संहारकारिकाः । प्रददुः शम्भवे शिक्तं भैरवायातितेजसे ॥२३२॥
प्रवश्यस्ता जगत्सूर्ति नृसिंहमितभैरवम् । क्षणादेकत्वमापन्नं शेषाहिन्द्वःपि मातरः ॥२३३॥
व्याजहार हृषाकेशो ये भक्ताः शूलपाएगे । ये च मां संस्मरन्तीह पालनीयाः प्रयत्नतः ॥२३४॥
ममैव मूर्त्तिरतुना सर्वसंहारकारिका । महेश्वराङ्गसम्भूता भृक्ति-मुक्तिप्रदायिनी ॥२३४॥
प्रनन्तो भगवान् कालो द्विवावस्था ममैव तु । तामसी राजसी मूर्त्तिदेवदेवश्वतुर्मुखः ॥२३६॥
सोऽहं देवो दुराधर्षः कालो लोकप्रकालनः । भक्षयिष्यामि कल्पान्ते रौद्रेण निखिलं जगत् ॥२३७॥
या सा विमोहिनी मूर्त्तिर्मम नारायणाह्न्या । सत्त्वोद्रिक्ता जगत् सर्वं संस्थापयित नित्यदा ॥२३८॥
स विष्णुः परमं ब्रह्म परमात्मा परा गितः । मूलप्रकृतिर्व्यक्ता सदानन्देति कथ्यते ॥२३९॥
इत्येवं बोधिता देव्यो विष्णुना विष्णुमातरः । प्रपेदिरे महादेवं तमेव शरणं परम् ॥२४९॥
पतदः कथितं सर्वं मयान्धकनिसूदनम् । माहात्म्यं देवदेवस्य भैरवस्यामितौजसः ॥२४१॥

इति श्रीकीमें महापुराएो पूर्वभागे दक्षसुतावंशकीर्त्तनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६॥

कूर्मपुरागम्

सप्तद्शोऽध्यायः

स्त उवाच

भ्रन्थके निग्होते वै प्रहादस्य महात्मनः । विरोचनो नाम बली बभूव नृपितः सुतः ॥ १॥ देवाज् जित्वा सदेवेन्द्रात् बहून् वर्षान् महासुरः। पालयामास धर्मेण त्रैलोक्यं सचराचरम्।। २॥ तस्यैवं वर्त्तमानस्य कदाचिद्विष्णुचोदितः । सनत्कुमारो भगवान् पुरं प्राप महामुनिः ॥ ३ ॥ हष्ट्वा सिंहासनगतो ब्रह्मपुत्रं महासुरः । नानामोत्थाय शिरसा प्राञ्जलिवीक्यमब्रवीत् ॥ ४॥ धन्योऽस्म्यानुगृहीतोऽस्मि सम्प्राप्तो मे पूरोत्तमम् । योगीश्वरोऽद्य भगवान् यतोऽसौ ब्रह्मवित् स्वयम्।।५॥ किमर्थमागतो ब्रह्मन् स्वय देवः पितामहः । ब्रह्मि मे ब्रह्मणः पुत्र किं कार्यं करवार्यहम् ॥ ६ ॥ सोऽब्रवीद्भगवान् देवो धर्मयुक्तं महासुरम् । द्रष्टुमभ्यागतोऽहं वै भवन्तं भाग्यवानसि ॥ ७॥ मुदुर्लभा नीतिरेषा दैत्यानां दैत्यसत्तम । त्रिलोके धार्मिको नूनं त्वाहशोऽन्यो न विद्यते।। ५ ॥ इत्युक्तोऽमुरराजोऽसौ पुनः प्राह महामुनिम् । धर्माणां परमं धर्मं ब्र्हि मे ब्रह्मवित्तम ॥ ९ ॥ सोऽब्रवीद्भगवान् योगी दैत्येन्द्राय महात्मने । सर्वगृह्यतमं धर्ममात्मज्ञानमन्तमम् ॥१०॥ स लब्ध्वा परमं ज्ञानं दत्त्वा च गुरुदक्षिगाम् । निधाय पूत्रे तद्राज्यं योगाभ्यासरतोऽभवत् ॥१ ॥ स तस्य पुत्रो मितमान् बलिनीम महासुरः । ब्रह्मएयो धार्मिकोऽत्यर्थं विजिग्येऽथ पुरन्दरम्॥१२॥ कृत्वा तेन महद्यद्धं शकः सर्वामरैर्वृतः । जगाम निर्जितो विष्णुं देवं शरणमच्युतम् ॥१३॥ तदन्तरेऽदितिर्देवी देवमाता सुदुःखिता । दैत्येन्द्राणां वधार्थाय पुत्रो मे स्यादिति स्वयम् ॥१४॥ तताप सुमहाघोरं तपोराशिं ततः परम् । प्रपन्ना विष्णुमन्यक्तं शरएयं शरएां हरिम् ॥१५॥ कृत्वा हृत्पद्मिक्कल्के निष्कलं परमं पदम् । वासुदेवमनाद्यन्तमानन्दं व्योम केवलम् ॥१६॥ प्रसन्नो भगवान् विष्णुः शङ्खं - चक्र - गदाधरः । म्राविर्बभूव योगात्मा देवमातुः पुरो हरिः ॥१७॥ हृष्वा समागतं विष्णुमदितिर्भक्तिसंयुता । मेने कृतार्थमात्मानं तोषयामास केशवम् ॥१८॥

अदितिरुवाच

जयाशेषदुः खीघनाशैकहेतो जयानन्तमाहात्म्य योगाभियुक्त । जयानादिमध्यान्त विज्ञानमूर्त्ते जयाकाशकत्पामलानन्दरूप ॥१९॥ नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं नमो नारसिंहाय शेषाय तुभ्यम् । नमः कालरुदाय संहारकर्त्रे नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते ॥२०॥ नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम् । नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते ॥२१॥ नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्त्ते नमो वेदविज्ञानधर्माभगम्य । नमो भूषरायाप्रमेयाय तुभ्यं प्रभो विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते ॥२२॥ नमः शम्भवे सत्यनिष्ठाय तुभ्यं नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम् । नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते ॥२३॥ नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते ॥२३॥

एवं स भगवान् विष्णुर्देवमात्रा जगन्मयः । तोषितरछन्दंयामास वरेण प्रहसन्निव ॥२४॥ प्रणम्यकेशिरसा भूमो सा वन्ने वरमुत्तमम् । त्वामेव पुत्रं देवानां हिताय वरये वरम् ॥२४॥ तथास्त्वित्याह भगवान् प्रपन्नजनवत्सलः । दत्त्वा वरानप्रमेयस्तत्रैवान्तरधीयत ॥२६॥

88

ततो बहुतिथे काले भगवन्तं जनार्दनम् । दघार गर्भं देवानां माता नारायगां स्वयम् ॥२७॥ समाविष्टे हृषीकेशे देवमातुरथोदरम् । उत्पाता जित्तरे घोरा बलेवेरोचनेः पुरे ॥२८॥ निरक्षिय सर्वानुत्पातान् दैत्येन्द्रो भयविह्वलः । प्रह्लादमसुरं वृद्धं प्रणम्याह पितामहम् ॥२९॥

बलिस्वाच

पितामह महाप्राज्ञ जायन्तेऽस्मत्पुरेऽधुना । किमुत्पाता भवेत् कार्यमस्माकं कि निमित्तकाः ॥३०॥ निशम्य तस्य वदनं चिरं ध्यात्वा महासुरः । नमस्कृत्य ह्षीकेशमिदं वचनमत्रवीत् ॥३१॥

प्रहाद उवाच

यो यज्ञैरिज्यते विष्णुर्यस्य सर्वमिदं जगत् । दघारासुरनाशार्थं माता तं त्रिदिवौकसाम् ॥३२॥ यस्मादभिन्नं सकलं भिराते योऽखिलादपि । स वासुदेवो देवानां मातुर्देहं समाविशत् ॥३३॥ न यस्य देवा जानन्ति स्वरूपं परमार्थतः । स विष्णुरिदतेर्देहं स्वेच्छ्याद्यं समाविशत् ॥३४॥ यस्माद्भवन्ति भूतानि यत्र संयान्ति संक्षयम् । सोऽवतीर्णो महायोगी पुरारापुरुषो हरि: ॥३५॥ न यत्र विद्यते नाम - जात्यादिपरिकल्पना । सत्तामात्रात्मरूपोऽसौ विष्णूरंशेन जायते ॥३६॥ यस्य सा जगतां माता शक्तिस्तद्धर्मधारिणी । माया भगवती लक्ष्मीः सोऽवतीर्णो जनार्दनः ॥३७॥ यस्य सा तामसी मूर्त्तः शङ्करो राजसी तनुः । ब्रह्मा सङ्घायते विष्णुरंशेनैकेन सत्त्वधृक् ॥३५॥ इति सिब्बिन्त्य गोविन्दं भक्तिनम्रेण चेतसा । तमेव गच्छ शरणं ततो यास्यसि निर्वृतिम् ॥३९॥ प्रह्लादवचनाद्वलिवेंरोचनिहंरिम् । जगाम शरगां विश्वं पालयामास घर्मतः ॥४०॥ काले प्राप्ते महाविष्णुं देवानां हर्षवर्द्धनम् । श्रसूत कश्यपाच्चैनं देवमाताऽदितिः स्वयम् ॥४१॥ चतुर्भुजं विशालाक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् । नीलमेघप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रिया वृतम् ॥४२॥ उपतस्थुः सुराः सर्वे सिद्धाः साध्याश्च चारणाः । उपेन्द्रिमन्द्रप्रमुखा ब्रह्मा चिषगगौर्वृतः ॥४३॥ कृतोपनयनो वेदानध्येष्ट भगवान् हरिः । सदाचारं भरद्वाजात् त्रिलोकाय प्रदर्शयन् ॥४४॥ एवञ्च लौकिकं मार्गं प्रदर्शयति स प्रमुः । स यत्प्रमार्गं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥४५॥ ततः कालेर मतिमान् बलिवेरोचिनः स्वयम् । यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विष्णुमर्चयामास सर्वगम् ॥४६॥ ब्राह्मणान् पूजयामास दत्त्वा बहुतरं धनम् । ब्रह्मर्षयः समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः ॥४७॥ विष्णूर्भगवान् भरद्वाजप्रचोदितः । ग्रास्थाय वामनं रूपं यज्ञदेशमथागमत् । ४८॥ विज्ञाय कृष्णाजिनोपत्रीताङ्ग स्राषाढेन विराजितः । ब्राह्मणो जिटलो वेदानुद्गिरन् सुमहाद्युतिः ॥४९॥ सम्प्राप्यासुरराजस्य समीपं भिक्षुको हरिः । स्वपद्भ्यां क्रमितं देशमयाचत बर्लि त्रिभिः ॥५०॥ चरणी विष्णोर्वलिभविसमन्वितः। ग्राचामयित्वा भृङ्गारमादाय स्वर्णानिर्मितम्। ५१॥ प्रक्षाल्य

दास्ये तथेदं भवते पदत्रयं प्रीणातु देवो हरिरव्ययाकृतिः। विचिन्त्य देवस्य कराप्रपल्लवे निपातयामास मुशीतलं जलम् ॥५२॥ विचक्रमे पृथिवीमेष चैतामथान्तरीक्षं दिवमादिदेवः। व्यपेतरागं दितिजेश्वरं तं प्रकर्त्तुंकामः शरगं प्रपन्नम् ॥५३॥ म्राक्रम्य लोकत्रयमीशपादः प्राजापत्याद् ब्रह्मलोकं जगाम। प्रग्रोमुरादित्यमुखाः सुरेन्द्रा ये तत्र लोके निवसन्ति सिद्धाः॥५४॥

क्रम्पुराणम्

श्रथोपतस्ये भगवाननादिः पितामहस्तोषयामास विष्णुम्। भित्त्वा तदराङस्य कपालमूर्द्धं जगाम दिव्याभरणोऽथ भूयः।।५५॥ ग्रथाएडभेदान्त्रिपपात शीतलं महाजलं तत् पूर्यकृद्भिश्च जुष्टम्। प्रवित्तता चापि सरिद्वरा सा गङ्गेत्युक्ता ब्रह्मणा व्योमसंस्था।।५६॥ गत्वा महान्तं प्रकृति ब्रह्मयोनि ब्रह्माणमेकं पुरुषं विश्वयोनिम्। श्रतिष्ठदीशस्य पदं तदव्ययं दृष्ट्वा देवास्तत्र तत्र स्तूवन्ति ॥५७॥ श्रालोक्य तं पुरुषं विश्वकायं महान् बलिर्भक्तियोगेन विष्णुम्। नारायएामेकमव्ययं स्वचेतसा यं प्रणमन्ति वेदाः ।।५८। तमब्रवीद्भगवानादिकर्ता भूत्वा पुनर्वामनो वासुदेवः। ममैव दैत्याधिपतेऽधूनेदं लोकत्रयं भवता भावदत्तम् ॥५९॥ प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो निपातयामास जलं कराग्रे। दास्ये त्वात्मानमनान्तधाम्ने त्रिविक्रमायामितविक्रमाय।।६०।। प्रगृह्य सूनोरिप सम्प्रदत्तं प्रहादसूनोरथ शङ्खपाणिः। जगाद वश्यं जगदन्तरात्मा पातालमूलं प्रविशेति भूयः ॥६१॥ समास्यता भवता तत्र नित्यं भुक्तवा भोगान् देवतानामलभ्यान्। ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात् प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्भाम् ॥६२॥

उक्दैवं दैत्यिंसहं तं विष्णुः सत्यपराक्रमः । पुरन्दराय त्रैलोवयं ददौ जिष्णुरुहक्रमः ॥६३॥ संस्तुवन्ति महायोगं सिद्धा देवींष - किन्नराः । ब्रह्मा शक्रोऽथ भगवान् रुद्रादित्य-मरुद्गणाः ॥६४॥ कृत्वेतदद्धतं कर्म विष्णुर्वामनरूपधृक् । पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥६५॥ सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान् पातालं प्राप नोदितः । प्रह्लादेनासु रवरैविष्णुभक्तस्तु तत्परः ॥६६॥ श्रृष्टुच्छिद्विष्णुमाहात्म्यं भक्तियोगमन्त्तमम् । पूजाविधानं प्रह्लादं तदाहासौ चकार सः ॥६७॥

म्रथ रथचरणाब्जशङ्खपाणि सरसिजलोचनमीशमप्रमेयम् । शरणमुपययौ स भावयोगात् प्रणयगतिं प्रणिधाय कर्मयोगम् ॥६८॥

एष वः कथितो विप्रा वामनस्य पराक्रमः । स देवकार्याणि सदा करोति पुरषोत्तमः ॥६९॥

इति श्रीकोर्मे महापुरागो पूर्वभागे दक्षसूतावंशानुकीर्तने त्रिविकमचरितं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टाद्शोऽध्यायः

स्त उवाच

बलेः पुत्रशतन्त्वासीन्महाबलपराक्रमम् । तेषां प्रवानो द्युतिमान् बाग्गो नाम महाबलः ॥ १ ॥ सोऽतीव शङ्करे भक्तो राजा राज्यमपालयत् । त्रेलोक्यं वशमानीय बाधयामास वासवम् ॥ २ ॥ ततः शकादयो देवा गत्वोचुः कृत्तिवाससम् । त्वदीयो बाधते ह्यस्मान् बाणो नाम महासुरः ॥ ३ ॥ व्याहृतो दैवतैः सर्वेदंवदेवो महेश्वरः । ददाह बाणस्य पुरं शरेणैकेन लीलया ॥ ४ ॥ दह्यमाने पुरे तिस्मन् बाग्गो छः त्रिशुलिनम् । ययो शरणमीशानं गोपितं नीललोहितम् ॥ ४ ॥ मूर्द्वन्याधाय तिल्लङ्गं शाम्भवं रागर्वाजतः । निर्गत्य तु पुरात् तस्मात् तुष्टाव परमेशवरम् ॥ ६ ॥ संस्तुतो भगवानीशः शङ्करो नीललोहितः । गाणपत्येन बाणं तं योजयामास भावतः ॥ ७ ॥ प्रथेवञ्च दनोः पुत्रास्ताराद्याश्चातिभीषणाः । तारस्तथा शम्बरश्च किपलः शङ्करस्तथा । स्वर्भानुर्वृषपर्वा च प्राधान्येन प्रकीत्तिताः ॥ ८ ॥ मुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणामभवद् द्विजाः । ग्रनेकिशरसां तद्वत् खेवराणां महात्मनाम् ॥ ९ ॥ म्रिरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणामभवद् द्विजाः । ग्रनेकिशरसां तद्वत् खेवराणां महात्मनाम् ॥ ९ ॥ म्रिरशा जनयामास पर्चर्वाणां सहस्रकम् । ग्रनन्ताद्या महानागाः काद्रवेयाः प्रकीत्तिताः ॥ १०॥ ताम्रा च जनयामास पर्वाणां सहस्रकम् । ग्रनन्ताद्या महानागाः काद्रवेयाः प्रकीत्तिताः ॥ १०॥ ताम्रा च जनयामास पर्वाणां सहस्रकम् । इरा वृक्षलतावली-तृगाजातीश्च सर्वशः ॥ १२॥ वास्तथा जनयामास सुरभिर्महिषोस्तथा । इरा वृक्षलतावली-तृगाजातीश्च सर्वशः ॥ १२॥ खसा वै यञ्च-रक्षांसि मृनिरप्यसस्तथा । रक्षोगणं क्रोधवशा जनयामास सत्तमाः ॥ १३॥

विनतायाश्च पुत्रौ द्वौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ । तयोश्च गरुडो घीमान् तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । प्रसादाच्छलिनः प्राप्तो वाहनत्वं हरेः स्वयम् ॥१४॥

ग्राराध्य तपसा देवं महादेवं तथारुणः । सारथ्ये किल्पतः पूर्वं प्रीतेनार्कस्य शम्भुना ॥१५॥ एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः । वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् श्र्यपवतां पापनाशनाः ॥१६॥ सप्तिवंशसुताः प्रोक्ताः सोमपत्त्यश्च सुवताः । ग्रारष्टनेमिपत्नीनामपत्यानां ह्यनेकशः ॥१७॥ बहुपुत्रस्य विदुषश्चत्वारो वैद्युताः स्मृताः । प्रत्यिङ्गरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मिषसत्कृताः ॥१८॥ कृशाश्वस्य तु देवर्षेदेव-प्रहरणाः सुताः । एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि । मन्वन्तरेषु नियतं तुल्यकार्यः स्वनामिः ॥१९॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे दक्षसुतावंशनुकीर्त्तनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

स्त उवाच

एतानुत्वाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात् । कश्यपः पुत्रकामस्तु चचार सुमहत् तपः ॥ १ ॥ तस्यैवं तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौ सुताविमौ । वत्सरश्चासितश्चेव ताबुभौ ब्रह्मवादिनौ ॥ २ ॥ वत्सरान्नेश्चुवो जज्ञे रैभ्यश्च सुमहायशाः । रैभ्यस्य जित्तरे शूदाः पुत्रा द्युतिमतां वराः ॥ ३ ॥ च्यवनस्य सुता भार्या नैध्रुवस्य महात्मनः । सुमेघा जनयामास पुत्रान् वे कुएडपायिनः ॥ ४ ॥

श्रीसतस्यैकपणियां ब्रह्मणी समपद्यत । नाम्ना वै देवलः पुत्रो योगाचार्यो महातपाः ॥ ५ ॥ शाण्डिल्योऽप्यपरः श्रीमान् सर्वतत्त्रार्थविच्छुचिः । प्रसादात् पार्वतीशस्य योगमुत्तममाप्तवान् ॥ ६ ॥ शाण्डिल्यो नैध्नुवो रैभ्यस्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः । नवप्रकृतयो विप्राः पुलस्त्यस्य वदामि वः ॥ ७ ॥ तृण्विन्दोः सुता विप्रा नाम्ना त्विलविला स्मृता । पुलस्त्याय तु रार्जावस्ता कन्यां प्रत्यपादयत् ॥ ६ ॥ शृष्विस्त्वेलविलस्तस्यां विश्रवाः समपद्यत । तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलविध्वाः ॥ ९ ॥ पुष्पोत्कटा च वाका च ककसी देवर्वाणनी । कालावएयसम्पन्नास्तासाञ्च प्रृणुत प्रजाः ॥ १ ॥ उपेष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देवर्वाणनी । केकस्यजनयत् पुत्रं रावणं राक्षसाधिपम् ॥ १ १॥ कृम्भकर्णं शूर्पण्खां तथीव च विभाषणम् ॥ पुष्पोत्कटाप्यजनयत् पुत्रान् विश्रवसः ग्रुभान् ॥ १ १॥ महोदरं प्रहरतञ्च महापाद्यं खरं तथा । कुम्भोनसीं तथा कन्यां वाकायाः श्रुणुत प्रजाः ॥ १ ॥ विश्रारा दूषणश्चेव विद्युक्तिह्वो महाबलः । इत्येते कूष्कर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दशः ॥ १ ॥ सर्वे तपोबलोत्कृष्टा छ्रमक्ताः सुभीषणाः । पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः ॥ १ ॥ भूताः पिशाचा ऋक्षाश्च शूकरा हस्तिनस्तथा । श्रनपत्यः क्रतुस्तिमन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे । मरीचेः कश्यपः पुत्रः स्वयमेव प्रजापितः ॥ १ ॥ ।

भृगोरथाभवच्छुको दैत्याचार्यो महातपाः । स्वाध्याययोगितरतो हरभक्तो महाद्युतिः ॥१७॥ स्रवेः पुत्रोऽभवद्विद्धः सोदर्यस्तस्य नैध्रुवः । कृशाश्वस्य तु वित्रवेधृ ताच्यािनित नः श्रुतम् ॥१८॥ स तस्यां जनयामास स्वस्त्यत्रेयान् महौजसः । वेदवेदाङ्गिनरतांस्तपसा हतिकिल्विषान् ॥१८॥ नारदस्तु विसष्ठाय ददौ देवीमस्न्धतीम् । ऊर्ध्वरेतास्तु तत्रैव शापाद्द्धस्य नारदः ॥२०॥ हर्यं क्षेषु तु नष्टेषु मायया नारदस्य तु । शशाप नारदं दक्षः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२१॥ यस्मान्मम सुताः सर्वे भवता मायया द्विज । क्षयं नीतास्त्वशेषेण् निरपत्यो भविष्यसि ॥२२॥ सम्मान्मम सुताः सर्वे भवता मायया द्विज । क्षयं नीतास्त्वशेषेण् निरपत्यो भविष्यसि ॥२२॥ स्वस्वत्यां विसष्टस्तु शक्तिमुत्पादयत् सुतम् । शक्तेः पराश्चरः श्रीमान् सर्वज्ञस्तपतां वरः ॥२३॥ स्वाराध्य देवदेवेशमीशानं त्रिपुरान्तकम् । लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं कृष्णाद्वैपायनं प्रभुम् ॥२४॥ द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शङ्करः । स्रंशाशेनावतीर्योद्यां स्वं प्राप परमं पदम् ॥२४॥ सुक् यास्याभवन् पुत्राः पञ्चात्यन्ततपस्वनः । भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः॥२६॥ कृत्या कीक्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता । एतेऽत्रिवंशाः कथिता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनाम् । स्रत अध्वः निबोधःव कथ्यपाद्राजसन्ततिम ॥२७॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे ऋषिवंशकीर्त्तं नामैकोर्नावंशोऽध्यायः ॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

स्त उवाच

श्रदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपात् प्रभुम् । तस्यादित्यस्य चैत्रासीद्भार्याणान्तु चतुष्ट्रयम्॥ १ ॥ संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया पुत्रांस्तासां निबोधत । संज्ञा त्वाब्ट्री तु सुषुवे सूर्यान्मनुमनुत्तमम् ॥ २ ॥ यमश्च यमुनाश्चैव राज्ञी रेवन्तमेव च । प्रभा प्रभातमादित्याच्छाया सार्वाणमात्मजम्॥ ३ ॥ शनिश्च तपतीश्चैव विष्टिश्चैव यथाक्रमम् । मनोस्तु प्रथमस्यासन् नव पुत्रास्तु तत्समाः॥ ४॥

इक्ष्वाकुर्श्येव नाभागो घृष्टः शर्यातिरेव च । निर्वानित्र नाभागो ह्यारिष्टः कर्वस्वया ॥ १ ॥ पृषध्य महातेजा नवैते शक्तमित्रभाः । इला ज्येष्ठा विरिष्ठा च सोमवंशं व्यवर्धयत् ॥ ६ ॥ ख्रथ्य गत्वा भवनं सोमपुत्रेण सङ्गता । ग्रसूत सोमजाहेवी पुरूरवसमुत्तमम् ॥ ७ ॥ पितृणां तृष्ठिकत्तारं बुधादिति हि नः श्रुतम् । प्राप्य पत्रं सुविमलं सुद्युन्न इति विश्रुतः ॥ ६ ॥ इला पुत्रत्रयं लेभे पुनः स्त्रीत्वमिवन्दत । उत्कलन्त्र गयन्त्रैव विनतन्त्र तथैव च ॥ ९ ॥ सर्वे तेऽप्रतिमप्रख्याः प्रपन्नाः कमलोद्भवम् । इक्ष्वाकोन्धाभवद्वीरो विकुक्षिनीम पार्थिवः ॥ १०॥ ज्येष्ठपुत्रः स तस्यासीह्श पन्त च तत्सुताः । तेषां ज्येष्ठः ककुत्स्थोऽभूत् काकुत्स्थरतु सुयोधनः॥ ११॥ सुयोधनात् पृथुः श्रीमान् विश्वकश्च पृथोः सुतः । विश्वकादार्दको घोमान् युवनाश्च्य तत्सुतः ॥ १२॥ स गोक्णीननुप्राप्य युवनाश्वः प्रतापवान् । हृष्टासौ गौतमं विप्रं तपन्तमनलप्रभम् ॥ १३॥ प्रणस्य दराडवद्भमौ पुत्रकामो महीपतिः । ग्रपृच्छत् कर्मणा केन धार्मिकं प्राप्नुयात् सुतम्॥ १४॥ प्रणस्य दराडवद्भमौ पुत्रकामो महीपतिः । ग्रपृच्छत् कर्मणा केन धार्मिकं प्राप्नुयात् सुतम्॥ १४॥

गौतम उवाच

श्राराध्य पुरुषं पूर्वं नारायणमनामयम् । श्रनादिनिधनं देवं धार्मिकं प्राप्नुयात् सुतम् ॥१५॥ यस्य पुत्रः स्वयं ब्रह्मा पौत्रः स्यान्नोललोहितः । तमादिकृष्णमीशानमाराध्याप्नोति तत्सुतम् ॥१६॥ न यस्य भगवान् ब्रह्मा प्रभावं वेत्ति तत्त्वतः । तमाराध्य हृषीकेशं प्राप्नुयाद्धार्मिकं सुतम् ॥१७॥ स गौतमवचः श्रुत्वा युवनाश्वो महीपतिः । ग्राराधयन् हृषीकेशं वासुदेवं सनातनम् ।। (८।। तस्य पुत्रोऽभवद्वीरः श्रावस्तिरिति विश्रुतः । निर्मिता येन श्रावस्तीगाँडदेशे महापुरी ॥१९॥ तस्माच वृहदश्वोऽभूत् तस्मात् कुवलप्राश्वकः । घुन्धुमारः समभवद्धः धुं हत्वा महासुरम् ॥२०॥ धुन्धुमारस्य तनयास्त्रयः प्रोक्तां द्विजोत्तमाः । हढाश्वंश्चेत्र देएडाश्वः किपलाश्वस्तशैव च ॥२१॥ हढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः । हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात् संहताश्वकः ॥२२॥ कुशाश्वोऽथारुणाश्वश्च संहताश्वस्य वै सुतौ । युवनाश्वोऽस्ए।श्वस्य शकत्त्यबलो युधि ॥२३॥ कृत्वा त् वाहणीमिष्टिमृषीणां वै प्रसादतः। लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं विष्णूभक्तमनुत्तमम्।।२४।। मान्यातारं महाप्राज्ञं सर्वशस्त्रभुनां वरम्। मान्यातुः पुरुक्तुत्सोऽभूदम्बरीषश्च वीर्यवान्।।२५॥ मुचुकुन्दश्च पुरायातमा सर्वे शक्रसमा युधि । श्रम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः ॥२६॥ हरितो युवनाश्वस्य हारितस्तत्सुतोऽभवत् । पुरुकुत्सस्य दायादस्नसदस्युर्महायशाः ॥२७॥ नर्मदायां समुतान्नः सम्भूतिस्तत्सुतः स्मृतः । विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य त्वनर्थयोऽभवत् ततः॥२८॥ ह्रयंश्वस्तत्सुतोऽभवत् । सोऽतीव धार्मिको राजा कर्दमस्य प्रजापतेः। बृहदश्वोऽनरएयस्य

प्रसादाद्धार्मिकं पुत्रं लेभे सूयंपरायग्गम् ॥२९॥
स तु सूर्यं समभ्यच्यं राजा वसुमनाः शुभम् । लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं त्रिधन्वानमरिन्दमम् ॥३०॥
प्रयजच्चाक्वमेधेन शत्रूत्र् जित्वा द्विजोत्तमाः । स्वाध्यायवान् दानशीलस्तितिक्षुर्धर्मतत्परः ॥३१॥
ऋषयस्तु समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः । वसिष्ठ-कश्यपमुखा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥३२॥
तान् प्रणम्य महाराजः पप्रच्छ विनयान्वितः । समाष्य विधिवद्यज्ञं वसिष्ठादीन् द्विजोत्तमान् ॥३३॥

वसुमना उवाच

कि हि श्रेयस्करतरं लोकेऽस्मिन् ब्राह्मणार्षभाः । यज्ञस्तपो वा संन्यासो ब्रूत मे सर्ववेदिनः ॥३४॥ वसिष्ठ उवाच

ग्रधीत्य वेदान् विधि तत् सुतां श्रोत्पाद्य यत्नतः । इष्ट्वा यज्ञोरवरं यज्ञौर्णच्छेद्वनमथात्मवान् ॥३४॥

28

कूर्मपुराणम्

पुलस्त्य उवाच

श्राराध्य तपसा देवं योगिनं परमेश्वरम् । प्रव्रजेद्विधिवद्यशैरिष्ट्वा पूर्वं सुरोत्तमान् ॥३६॥
पुलह उवाच

यमाहुरेकं पुरुषं पुराणं परमेश्वरम्। तमाराध्य सहस्रांशुं तपसा मोक्षमाप्नुयात् ॥३७॥ जमदिश्ररुवाच

श्रजो विश्वस्य कत्ता यो जगद्बीजं सनातनः । श्रन्तर्यामी च भूतानां स देवस्तपसेज्यते ॥३८॥ विश्वामित्र उवाच

योऽग्निः सर्वात्मकोऽनन्तः स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः । स रुद्रस्तपसोग्रेण पूज्यते नेतरैर्मकैः ॥३९॥

भरद्वाज उवाच

यो यज्ञीरिज्यते देवी वासुदेवः सनातनः। स सर्वदैवततनुः पूज्यते परमेश्वरः॥४०॥
अत्रिरुवाच

यतः सर्विमिदं जातं यस्यापत्यं प्रजापितः । तपः सुमहदास्थाय पूज्यते स महेर्वरः ॥४१॥
गौतम उवाच

यतः प्रधान - पुरुषौ यस्य शक्तिरिदं जगत् । स देवदेवस्तपसा पूजनीयः सनातनः ॥४२॥
कर्यप उवाच

सहस्रनयनो देवः साक्षी शम्भुः प्रजायितः । प्रसीदित महायोगी पूजितस्तपसा परः ॥४३॥

क्रतुरुवाच

प्राप्ताध्ययनयज्ञस्य लब्बपुत्रस्य चैव हि । नान्तरेण तपः कश्चिद्धमीः शास्त्रेषु दृश्यते ॥४४॥ इत्याकर्ण्यं स राजर्षिस्तान् प्रर्णम्यातिहृष्ट्यीः । विसर्जियत्वा सम्पूज्य त्रिधन्वानमथाद्मवीत् ॥४५॥ प्राराधिष्ये तपसा देवमेकाक्षराह्मयम् । प्रार्णा वृहन्तं पुरुषमादित्यान्तरसंस्थितम् ॥४६॥ त्वन्तु धर्मरतो नित्यं पालयेतदतन्द्रितः । चातुर्वर्ण्यसमायुक्तमशेषं क्षितिमराङ्कम् ॥४०॥ एवमुक्त्वा स तद्राज्यं निधायात्मभवे नृपः । जगामाररण्यमनधन्तपस्तप्तुमनुत्तमम् ॥४९॥ हिमविज्ञ्खरे रम्ये देवदाख्वनाश्यये । कन्द - मूत्र - फलाहारैख्त्यन्तरम् ॥४९॥ संवत्सरशतं साग्रं तपोनिद्धत्तिकिल्वषः । जजाप मनसा देवीं सावित्रीं वेदमातरम् ॥४०॥ तस्यैवं जपतो देवः स्वयम्भः परमेश्वरः । हिरर्ण्यगर्भो विश्वात्मा त देशमगमत् स्वयम्॥४१॥ इष्ट्वा देवं समायान्तं ब्रह्माएां विश्वतोमुखम् । ननाम शिरसा तस्य पादयोनीम कीर्तयन् ॥४२॥ नमो देवाधिदेवाय ब्रह्मारो परमात्मने । हिरर्ण्यमूर्त्तीय तुभ्यं सहस्राक्षाय वेधसे ॥४३॥ नमो वात्रे विषात्रे च नमो देवात्ममूर्त्तये । सांख्ययोगाधिगम्याय नमस्ते ज्ञानमूर्त्तये ॥४॥ नमस्तिमूर्त्तये तुभ्यं स्रष्ट्ये सर्वार्थवेदिने । पुरुषाय पुराणाय योगिनां गुरवे नमः ॥४५॥ ततः प्रसन्नो भगवान् विरिश्वो विश्वभावनः । वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥४६॥

राजोवाच

जपेयं देवदेवेश गायत्रीं वेदमातरम् । भूयो वर्षशतं साग्रं तावदायुर्भवेन्मम ॥५७॥ वाढिमित्याह विश्वातमा समालोक्य नराधिपम् । स्पृष्ट्वा कराभ्यां सुप्रीतस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५५॥

सोऽपि लब्धवरः श्रीमात्र् जजापातिप्रसन्नधीः । शान्तिस्त्रिषवणस्नायी कन्द - मूल - फलाशनः ॥५९॥ तत्सम्पूर्णे वर्षशते भगवानुप्रदीधितिः । प्रादुरासीन्महायोगी भानोर्मग्डलमध्यगः ॥६०॥ तं हष्ट्वा वेदवपुषं मण्डलस्थं सनातनम् । स्वयम्भुवमनाद्यन्तं ब्रह्मागां विस्मयं गतः ॥६१॥ तुष्टाव वैदिकैर्भन्त्रैः सावित्र्या च विशेषतः । क्षणादपश्यत् पुरुषं तमेव परमेश्वरम् ॥६२॥ चतुर्मुखं जटामौलिमष्टहस्तं त्रिलोचनम् । चन्द्रावयवलक्ष्मार्गं नरनारीतनुं हरम्।।६३॥ भासयन्तं जगत् कृत्स्नं नीलकग्ठं स्वरश्मिभः । रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥६४॥ तद्भावभावितो हुष्ट्वा सद्भावेन परेण हि । ननाम शिरसा रुद्रं सावित्र्यानेन चैव हि ॥६४॥ नमस्ते नीलकण्ठाय भास्त्रते परमेष्ठिने । त्रयीमयाय रुद्राय कालरूपाय हेतवे ॥६६॥ तदा प्राह महादेवो राजानं प्रीतमानसः । इमानि मे रहस्यानि नामानि प्राण चानघ ॥६७॥ सर्ववेदेप गीतानि संसारशमनानि तु । नमस्कुरुष्व नृपते एभिमी सततं श्चिः ॥६८॥ श्रध्यायं शतस्द्रीयं यजुषां सारमुद्धृतम् । जपस्वानन्यचेतस्को मय्यासक्तमना नृप ॥६९॥ ब्रह्मचारी मिताहारो भस्मिनिष्ठः समाहितः। जपेदामरणाद्रुद्रं स याति परमं पदम्।। ७०।। इत्युवत्वा भगवान् रुद्रो भक्तानुग्रहकाम्यया । पुनः संवत्सरशतं राज्ञे ह्याग्रुरकल्पयत् ॥७१॥ दत्त्वास्मै तत् परं ज्ञानं वैराग्यं परमेश्वरः । क्षर्णादन्तर्दधे स्द्रस्तदद्भुतिमवाभवत् ॥७२॥ राजापि तपसा रुद्रं जजापानन्यमानसः । भस्मच्छन्नस्त्रिषवर्गं स्नात्वा शान्तःसमाहितः॥७३॥ जपतस्तस्य नृपतेः पूर्णे वर्षशते पुनः । योगप्रवृत्ति रभवत् कालात् कालपरं पदम् ॥७४॥ विवेशैतद्वेदसारं स्थानं वे परमेष्ठिनः । भानोः स मएडलं शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम्॥७५॥ पठेच्छणुयाद्वापि राज्ञश्चरितमुत्तमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥७६॥

इति श्री कौर्मे महापुराणे पूर्वभागे राजवंशकीर्त्तनं नाम विशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्य।यः

स्रत उवाच

त्रिवन्ता राजपुत्रस्तु धर्मेणापालयन्महीम् । तस्य पुत्रोऽभविद्वद्वांस्रय्यारुण इति श्रुतः ॥ १ ॥ तस्य सत्यवतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः । भार्या सत्यवना नाम हरिश्चन्द्रमजीजनत् ॥ २ ॥ हिरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूदोहितो नाम वीर्यवान् । हिरितो रोहितस्याथ धुन्धुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ ३ ॥ विजयश्च सुदेवश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः । विजयस्याभवत् पुत्रः कारुको नाम वीर्यवान् ॥ ४ ॥ कारुकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद्वाहुरजायत । सगरस्तस्य पुत्रोऽभूदाजा परमधार्मिकः ॥ ४ ॥ द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा । ताभ्यामाराधितो विह्नः प्रददौ वरमुत्तमम् ॥ ६ ॥ एकं भानुमती पुत्रमयह्वादसमञ्जसम् । प्रभा षष्टि नहस्रन्तु पुत्राणां जग्रहे शुभा ॥ ७ ॥ प्रसमञ्जसपुत्रोऽभूदंशुमान् नाम पार्थिवः । तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात् तु भगीरथः ॥ ५ ॥ यन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता । प्रसादाहेवदेवस्य महादेवस्य धीमतः ॥ ९ ॥ भगीरथस्य तपसा देवः प्रीतमना हरः । बभार शिरसा गङ्गां सोमान्ते सोमभूषणः ॥ १०॥

भगीरथमुतञ्चापि श्रुतो नाम बभूव ह । नाभागस्तस्य दायादः सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ॥१२॥ अयुतायुः सुतस्तस्य ऋतुपर्गो महाबलः । ऋतुपर्गास्य पुत्रोऽभूत् सुदासो नाम धार्मिकः ॥१२॥ सौदासस्तस्य तनयः ख्यातः कल्माषपादकः । वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे काल्माषपादके ॥१३॥ भ्रदमकं जनयामास तमिक्ष्वाकुकुलध्वजम् । भ्रश्मकस्योत्कलायान्तु नकुलो नाम पार्थिवः॥१४॥ स हि रामभयाद्राजा वनं प्राप सदुःखितः । दधत् स नारीकवचं तस्माच्छतरथोऽभवत् ॥१५॥ तस्मादिलिविलिः श्रीमान् वृद्धशर्मा च तत्सुतः । तस्माद्विश्वसहस्तस्मात् खट्वाङ्ग इति विश्रुतः ॥१६॥ सुतस्तस्माद्रघुस्तस्भादजायत । रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथस्ततः ॥१७॥ रामो दाशरिथर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्र्तः। भरतो लक्ष्मणश्चीत शत्रुत्रश्च महाबलः॥१८॥ सर्वे शक्तसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्तिताः। जज्ञे रावरानाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वभुक्।।१९॥ रामस्य भार्या सुभगा जनकस्यात्मजा सुता । सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता ॥२०॥ तपसा तोषिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा । प्रायच्छज्जानकीं सीतां राममेवाश्रितां पितम् ॥२१॥ भगवानीशिक्षशूली नीललोहितः। प्रददौ शत्रुनाशार्थं जनकायाद्भृतं स राजा जनको धीमान् दातुकामः सुतामिमाम् । ग्रघोषयदमित्रह्मो लोकेऽस्मिन् द्विजपुङ्गवाः ॥२३॥ इदं घनुः समादातुं यः शक्तोति जगत् त्रये । देवो वा दानवो वापि स सीतां लब्धुमहिति ॥२४॥ विज्ञाय रामो बलवाज् जनकस्य गृहं प्रभुः। भञ्जयामास चादाय गृतवासौ लीलयव हि ॥२५॥ उद्दावाहाथ तां कन्यां पार्वतीमिव शङ्करः । रामः परमधर्मात्मा सेनामिव च षएमुखः ॥२६। ततो बहुतिथे काले राजा दशरथः स्वयम् । रामं ज्येष्ठसुतं वीरं राजानं कत्त्रमारभत् ॥२७॥ तस्याथ पत्नी सुभगा कैकेयी चारुहासिनी । निवारयामास पति प्राह सम्भ्रान्तमानसा ॥२८॥ भरतं वीरं राजानं कर्त्तु महीस । पूर्वमेव वरो यस्माह्तो मे भवतानघ ॥२९॥ स तस्या वचनं श्रुत्वा राजा दुःखितमानसः । वाढिमित्यव्रवीद्वाक्यं तथा रामोऽपि धर्मवित्।।३०।। प्रणम्याथ पितुः पादौ लक्ष्मगोन सहाच्युतः । ययौ वनं सपत्नीकः कृत्वा समयमात्मवान् ॥३१॥ संवत्मराणां चत्वारि दश चैव महाबलः। उवास तत्र भगवान् लक्ष्मगोन सह प्रभुः ॥३२॥ कदाचिद्वसतोऽ राये रावणो नाम राक्षसः । परिव्राजकवेषेण सीतां हृत्वा ययौ पूरीम् ॥३३॥ श्रदृष्ट्वा लक्ष्मणो रामः सीतामाकुलितेन्द्रियौ । दुःखशोकाभिसन्तप्तौ बभूवतुरिन्दमो ॥३४॥ ततः कदाचित् कपिना सुग्रीवेण द्विजोत्तमाः । वानराणामभूत् सख्यं रामस्याक्तिष्टकर्मणः ॥३५॥ सुग्रीवस्यानुगो वीरो हनूमान् नाम वानरः । वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत् प्रियः सदा ॥३६॥ स कृत्वा परमं घैर्यं रामाय कृतिन्श्चयः । श्रानियष्यामि तां सीतामित्युवत्वा विचवार ह ॥३७॥ सागरपर्यन्तां सीतादर्शनतत्तरः । जगाम रावणपुरीं लङ्कां सागरसंस्थिताम् ॥३८॥ तत्राथ निर्जने देशे वृक्षमूले शुचिस्मिताम् । श्रपश्यदमलां सीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥३९॥ श्रश्रुपूर्णेक्षर्णां हृद्यां संस्मरन्तीमनिन्दिताम् । रामिनन्दीवरश्यामं लक्ष्मणञ्चातमसंस्थितम् ॥४०॥ निवेदियत्वा चात्मानं सीताय रहिस प्रभुः । भ्रसंशयाय प्रददावस्ये रामाङ्गलीयकम् ॥४१॥ हुष्ट्वाङ्गुलीयकं सीता पत्युः परमशोभनम् । मेने समागतं रामं प्रीतिविस्फुरितेक्षणा ॥४२॥ समाश्वास्य तदा सीतां दृष्ट्वा रामस्य चान्तिकम्। नियष्ये त्वां महाबाहुमुक्तवा रामं ययौ पुनः ॥४३॥ निवेदियत्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान् । तस्थौ रामेण पुरतो लक्ष्मणेन च पूजितः ॥४४॥ ततः स रामो बलवान् सार्द्धं हनूमता स्वयम् । लक्ष्मणेन च युद्धाय बुद्धं चक्रे हि रक्षसा ॥४५॥ वानरशतैर्लङ्कामार्गं महोदधेः । सेतुं परमधर्मात्मा रावणं हतवान् प्रभुः ॥४६॥ **बृ**त्वाथ

49

हि समुतं सभातृकमरिन्दमः। ग्रानयामास तां सीतां वायुपुत्रसहायवान् ॥४७॥ सेतुमध्ये महादेवमीशानं कृत्तिवाससम् । स्थापयामास लिङ्गस्थं पूजयामास राघवः ॥४८॥ तस्य देवो महादेवः पार्वत्या सह शङ्करः । प्रत्यक्षमेव भगवान् दत्तवान् वरमुत्तमम् ॥४९॥ ये त्वया स्थापितं लिङ्गं द्रक्ष्यन्तीदं द्विजातयः । महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनंक्ष्यति ॥५०॥ श्रन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ । दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः ॥५१॥ यावत् स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी । यावत् सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः॥५२॥ स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वं भवतु चाक्षयम् । स्मर्गादेव लिङ्गस्य दिनपापं प्रणव्यति ॥५३॥ इत्युक्तवा भगवाज् छम्भू: परिष्वज्य तु राघवम् । सनन्दी सग्गो रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत् ॥५४॥ रामोऽपि पालयामास राज्यं धर्मपरायणः । श्रिभिषक्तो महातेजा भरतेन महाबलः ॥५५॥ विशेषाद् ब्राह्मणान् सर्वान् पूजयामास चेश्वरम् । यज्ञेन यज्ञहन्तारमञ्जमधेन राङ्करम् ॥५६॥ रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः । लवश्च सुमहाभागः सर्वतत्त्वार्थवित् सुधीः ॥५७॥ ग्रतिथिस्तु कुशाजज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत् । नलश्च निषधस्यासीन्नभास्तस्मादजायत ॥५८॥ नभसः पुराडरीकाक्षः क्षेमधन्वा तु तत्सुतः । तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान् ॥५९॥ श्रहीनगुस्तस्य सुतो महस्वांस्तत्सुतोऽभवत् । तस्माचन्द्रावलोकस्तु तारापीडश्च तत्सुतः ॥६०॥ तारापीडाच्चन्द्रगिरिर्भानुवित्तस्ततोऽभवत् । श्रुतायुरभवत् तस्मादेते चेक्ष्वाकुवंशजाः । सर्वे प्राधान्यतः प्रोक्ताः समासेन द्विजोत्तमाः ॥६१॥ इमं श्रुणुयान्नित्यिमक्ष्वाकोवैशपुत्तमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो देवलोके महीयते ॥६२॥ इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे सूर्यवंशे इक्ष्वाकुवंशकथनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

स्त उवाच

ऐलः पुरूरवाश्चाथ राजा राज्यमपालयत् । तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षिडन्द्रसमतेजसः ॥ १ ॥ श्रायुमियुरमायुश्च विश्वायुश्चेव वीर्यवान् । शतायुश्च श्रुतायुश्च दिव्याश्चेवोर्वशीसुताः ॥ २ ॥ श्रायुषस्तनया वीराः पञ्चेवासन् महौजसः । स्वर्भानुतनयायां वै प्रभायामिति नः श्रुतम् ॥ ३ ॥ नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः । नहुषस्य तु दायादाः पञ्चन्द्रोपमतेजसः । उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महाबलाः ॥ ४ ॥ यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पञ्चमोऽश्वनः । तेषां ययातिः पञ्चानां महाबलपराक्रमः ॥ ५ ॥ देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः । शमिष्ठामासुरीञ्चेव तनयां वृषपर्वणः ॥ ६ ॥ यदुञ्च तुर्वसुञ्चेव देवयानी व्यजायत । द्रुह्यञ्चानुश्च पूरुञ्च शर्मिष्ठा चाप्यजीजनत् ॥ ७ ॥ सोऽभ्यिषञ्चदितकम्य ज्येष्ठं यदुमिनिन्दतम् । पूरुमेव कतीयांसं पितुर्वचनपालकम् ॥ ६ ॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं पुत्रमादिशत् । दक्षिणपरयो राजा यदुं श्रेष्ठं न्ययोजयत् ॥ ९ ॥ प्रतीच्यामुत्तरायाञ्च द्रुह्युञ्चानुमकल्पयत् । तैरियं पृथिवी सर्वा धर्मतः परिपालिता ॥ १ ॥ प्रतीच्यामुत्तरायाञ्च द्रुह्युञ्चानुमकल्पयत् । तैरियं पृथिवी सर्वा धर्मतः परिपालिता ॥ १ ॥

राजापि दारसिहतो वनं प्राप महायशाः । यदोरप्यभवन् पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः ॥११॥ सहस्रजित् तथा श्रेष्ठः क्रोब्दुर्नीलो जिनो रघुः । सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः ॥१२॥ सुताः शतजितोऽप्यासंस्रयः परमधार्मिकाः । हैहयश्च हयश्चेत्र राजा वेणुहयश्च यः ॥१३॥ हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्म इत्यभिविश्चतः । तस्य पुत्रोऽभविद्वप्राः धर्मनेत्रः प्रतापवान् ॥१४॥ धर्मनेत्रस्य कीर्त्तिस्तु सिख्यतस्तर्त् तोऽभवत् । मिहष्मान् सिख्यतस्याभूद्भवश्ययस्तदन्वयः ॥१४॥ भद्रश्चेष्यस्य दायादो दुर्मदो नाम पार्थिवः । दुर्मदस्य सुतो घीमानन्धको नाम वीर्यवान् ॥१६॥ श्चन्यकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसम्मताः । कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथेव च ॥१०॥ कृतीजाश्च चतुर्थोऽभूत् कार्त्तवीर्यस्तयार्जुनः । सहस्रबाहुर्द्युतिमान् धनुर्वेदविदांवरः ॥१८॥ तस्य राम ऽभवन्मृत्युर्जामदग्न्यो जनार्दनः । तस्य पुत्रशतान्यासन् पञ्च तत्र महारथाः ॥१९॥ कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्त्रनः । शूरश्च शूरसेनश्च कृष्णो धृष्णस्तथैव च ।

जयध्वजञ्च बलवान् नारायणपरो नृपः ॥२०॥

पूर्वे चत्वारः प्रथितौजसः । रुद्रभक्ता महात्मानः पूजयन्ति सम शङ्करम् ॥२१॥ श्रसेनादयः जयध्वजस्तु मतिमान् देवं नारायणं हरिम् । जगाम शरणं विष्णुं दैवतं धर्मतत्परः ॥२२॥ तमुच्रितरे पूत्रा नायं धर्मस्तवानघ । ईश्वराराधनरतः पितास्माकमिति श्रुतिः ॥२३॥ तानब्रवीन्महातेजा ह्योष धर्मः परो मम । विष्णोरंशेन सम्भूता राजानो यन्महीतले ॥२४॥ राज्यं पालियतावश्यं भगवान् पुरुषोत्तमः । पूजनीयो यतो विष्णुः पालको जगतां हरिः॥२५॥ सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च स्वयम्भुवः । तिसस्तु मूर्त्तयः प्रोक्ताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः ॥२६॥ सत्त्वात्मा भगवान् विष्णुः संस्थापयित सर्वदा । सृजेद ब्रह्मा रजोमूर्तिः संहरेत् तामसो हरः ॥२७॥ तस्मान्महीपतीनान्त् राज्यं पालयतामिदम् । श्राराध्यो भगवान् विष्णुः केशवः केशिमर्दनः ॥२८॥ निशम्य तस्य वचनं भ्रातरोऽन्ये मनस्विनः । प्रोचुः संहारको रुद्रः पूजनीयो मुमुक्ष्भिः ।।२९॥ श्रयं हि भगवान् हद्रः सर्वं जगदिदं शिवः । तमोगुरां समाश्रित्य कालान्ते संहरेत् प्रभुः ॥३०॥ या सा घोरतमा मूर्तिरस्य तेजोमयी परा । संहरेद्विद्यया पूर्व संसारं शूलभृत् तया ॥३१॥ ततस्तानब्रवीद्राजा विचिन्त्यासी जयध्वजः । सत्त्वेन मुच्यते जन्तुः सत्त्वात्मा भगवान् हरिः ॥३२॥ तमूचुर्भ्नातरो रुद्रः सेवितः सात्त्विकैर्जनैः । मोचयेत् सत्त्वसंयुक्तः पूजयेच ततो हरम् ॥३३॥ श्रयाब्रवीद्राजपुत्रः प्रहसन् वै जयध्वजः । स्वधर्मो मुक्तये पन्या नान्यो मुनिभिरुच्यते ॥३४॥ तथा च वैष्णवीं शक्ति नृपाणां दधतां सदा । श्राराधनं परो धर्मो मुरारेरिमतौजसः ॥३५॥ तमब्रवीद्राजपुत्रः कृष्णो मितमतां वरः। यदर्जुनोऽस्मज्जनकः स धर्मं कृतवानिति ॥३६॥ एवं विवादे वितते शूरसेनोऽब्रवीद्वचः । प्रमाणमृषयो ह्यत्र ब्रूयुस्ते यत् तथैव तत् ॥३७॥ ततस्ते राजशाद् लाः पप्रच्छुर्त्रह्मवादिनः । गत्वा सर्वे सुसंरब्धाः सप्तर्षीणां तदाश्रमम् ॥३८॥ तानब्रवंस्ते मुनयो वसिष्ठाचा यथार्थतः । या यस्याभिमता पुंसः सा हि तस्यैव देवता ॥३९॥ किन्तुं कार्यविशेषेण पूजिता चेष्टदा नृणाम् । विशेषात् सर्वदा नायं नियमो ह्यन्यथा नृपाः ॥४०॥ नुपाणां दैवतं विष्णुस्तथैव च पुरन्दरः ! विष्राणामिग्नरादित्यो ब्रह्मा चैव पिनाकधृक् ॥४१॥ देवानां दैवतं विष्णुदीनवानां त्रिशुलभृत्। गन्धर्वाणां तथा सोमो यक्षाणामपि कथ्यते ॥४२॥ विद्याधराणां वाग्देवी सिद्धानां भगवान् हरिः । रक्षसां शङ्करो रुद्रः किन्नराणाञ्च पार्वती ॥४३॥ ऋषीणां भगवान् ब्रह्मा महादेविश्वशूलभृत्। मान्या स्त्रीणामुमा देवी तथा विष्ण्वीशभास्कराः।।४४।। गृहस्थानाञ्च सर्वे स्युर्नेह्म वै ब्रह्मचारिणाम् । वैखानसानामर्कः स्याद्यतीनाञ्च महेश्वरः ॥४५॥ स्तानां भगवान् रुद्रः कुष्माएडानां विनायकः । सर्वेषां भगवान् ब्रह्मा देवदेवः प्रजापितः ॥४६॥ इत्येवं भगवान् ब्रह्मा स्वयं देवोऽभ्यभाषत । तस्माज् जयध्वजो नूनं विष्एवाराधनमहीति ॥४७॥ किन्तु रुद्रेण तादातम्यबुद्ध्या पूज्यो हरिर्नरैः । भ्रन्यथा नृपतेः शत्रून् न हरिः संहरेद्यतः ॥४८॥ तान् प्रएाम्याथ ते जग्मुः पुरीं परमशोभनाम् । पालयाञ्चिकरे पृथ्वीं जित्वा सर्वान् रिपून् रणे॥४९॥ ततः कदाचिद्विप्रेन्द्रा विदेहो नाम दानवः । भीषणः सर्वसत्त्वानां पुरी तेषां समाययौ ॥५०॥ दॅष्ट्राकरालो दीप्तात्मा युगान्तदहनोपमः । शूलमादाय सूर्याभं नादयन् वै दिशो दश ॥५१॥ तन्नादश्रवणान्मर्त्यास्तत्र ये निवसन्ति ते । तत्यजुर्जीवितन्त्वन्ये द्द्रवुर्भयविह्वनाः ॥५२॥ ततः सर्वे सुसंयत्ताः कार्त्तवीर्यात्मजास्तदा । शूरसेनादयः पञ्च राजानस्तु महाबलाः। युद्धाय कृतसंरम्भा विदेहन्त्वभिदुद्रवुः ॥५३॥ शूरोऽस्त्रं प्राहिणोद्रीद्रं शूरसेनस्तु वारुएम्। प्राजापत्यं तथा कृष्णो वायव्यं घृष्ट एव च ॥५४॥ कौबेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च । भञ्जयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः ॥५५॥ ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम् । स्पृष्टमात्रेण तरसा चिक्षेप च ननाद च ॥५६॥ सम्प्राप्य सा गदास्योरो विदेहस्य शिलोपमम् । न दानवं चालियतुं शशाकान्तकसन्निभम् ॥५७॥ दुदुवुस्ते भयग्रस्ता दृष्ट्वा तस्यातिपौरुषम् । जयध्धजस्तु मितमान् सस्मार जगतः पितम्॥५५॥ विष्णुं जयिष्णुं लोकादिमश्रमेयमनामयम् । त्रातारं पुरुषं पूर्वं श्रीपति पीतवाससम् ॥५९॥ प्रादुरभूचकं सूर्यायुत्तसमप्रभम् । श्रादेशाद्वासुदेवस्य भक्तानुग्रहकारणात् ॥६०॥ जग्राह जगतां योनि समृत्वा नाराय एां नृपः । प्राहिणोद्वे विदेहाय दानवेभ्यो यथा हरिः ॥६१॥ सम्प्राप्य तस्य घोरस्य स्कन्धदेशं सुदर्शनम् । पृथिव्यां पातयामास शिरोऽद्रिशिखराकृति ॥६२॥ तिद्धं चक्रं पुरा विष्णुस्तपसाराध्य शङ्करम् । यस्मादवापं तत् तस्मादसुराणां विनाशकम् ॥६३॥

विश्वामित्र उवाच

तिसमन् हते देवरिपौ शूराद्या भ्रातरो नृपाः । समाययुः पृरीं रम्यां भ्रातरश्वाष्यपूजयन् ॥६४॥ श्रुत्वा जगाम भगवान् जयध्वजपराक्रमम् । कार्तवीर्यसुतं द्रष्टुं विश्वामित्रो महामुनिः ॥६५॥ तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तलोचनः । समावेद्यासने रम्ये पूजयामास भावतः ॥६६॥ उवाच भगवन् घोरः प्रसादाद्भवतोऽसुरः । निपातितो मया सोऽथ विदेहो दानवेश्वरः ॥६७॥ त्वद्वावयाच्छिन्नसन्देहो विष्णुं सत्यपराक्रमम् । प्रयन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः ॥६५॥ यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षराम् । कथं केन विधानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वरः ॥६९॥ कोऽयं नारायणो देवः किम्प्रभावश्च सुव्रत । सर्वमेतन्यमाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ॥७०॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां यस्मिन् सर्वं यतो जगत् । स विष्णुः सर्वभूतात्मा तमाश्चित्य विमुच्यते ॥७१॥ यमक्षरात् परतरात् परं प्राहुर्गुहाशयम् । ग्रानन्दं परमं व्योम स वै नारायणः स्मृतः ॥७२॥ नित्योदितो निर्विकल्पो नित्यानन्दो निरञ्जनः । चतुःर्यूह्धरो विष्णुरःयूहः प्रोच्यते स्त्रयम् ॥७३॥ परमात्मा परं घाम परं व्योम परं पदम् । त्रिपादमक्षरं ब्रह्म तमाहुर्बह्मत्रादिनः ॥७४॥ स दासुदेवो विश्वात्मा योगात्मा पुरुषोत्तमः । यस्यांशसम्भवो ब्रह्मा रुद्रोऽपि परमेश्चरः ॥७४॥ स्ववर्णश्चमधर्मेण पुंसायं पुरुषोत्तमः । ग्रकामहत्तभावेन समाराध्यो न चान्यथा ॥७६॥ एतावदुक्त्वा भगवान् विश्वामित्रो महातपाः । श्रूराद्यौः पूजितो विष्रो जगामाथ स्वमाश्चमम् ॥७७॥ श्रथ श्रूरादयो देवमयजन्त महेश्वरम् । यज्ञेन यज्ञगम्यं तं निष्कामा रुद्रमन्ययम् ॥७५॥

तान् विसष्ठस्तु भगवान् याजयामास धर्मवित् । गौतमोऽगस्तिरित्रश्च सर्वे रुद्रपरायणाः ॥७९॥ विश्वामित्रस्तु भगवान् जयध्वजमित्रस्म् । याजमामासं भूतादिमादिदेवं जनार्दनम् ॥५०॥ जयध्वजोऽिष तं विष्णुं रुद्रस्य परमां तनुम् । इत्येवं स तदा बुद्ध्वा यत्नेनार्चयदच्युतम् ॥५१॥ तस्य यज्ञे महायोगी साक्षादेवः स्वयं हिरः । ग्राविरासीत् स भगवांस्तदद्धतिमवाभवत् ॥५२॥ य इमं श्रृणुयान्तित्यं जयध्वजपराक्रमम् । सर्वपापिविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छिति ॥५३॥ इति श्रीकौर्मे महापुराएो पूर्वभागे सोमवंशानुकीर्त्तंनं नाम द्वाविशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

स्त उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत् तालजङ्घ इति स्मृतः । शतं पुत्रास्तु तस्यासन् तालजङ्घा इति स्मृताः॥ १॥ तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवनृषः । वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवाः पुरायकर्मिणः ॥ २ ॥ वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः । मधोः पुत्रशतन्त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशभाक् ॥ ३ ॥ वीतिहोत्रसूत्रश्चापि विश्वतोऽनन्त इत्यतः । दुर्जयस्तस्य पुत्रोऽसूत् सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ४ ॥ तस्य भार्या रूपवती गुर्गैः सर्वेरलंकृता । पतिव्रतासीत् पतिना स्वधर्मपरिपालिका ॥ ५ ॥ स कदाचिन्महाराजः कालिन्दीतीरसंस्थिताम् । अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरस्यराम् ॥ ६ ॥ कामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै। प्रोवाच सूचिरं कालं देवि रन्तुं मयार्हसि ॥ ७॥ सा देवी नृपति हब्ट्वा रूपलावरायसंयुतम् । रेमे तेन चिरं कालं कामदेविमवापरम् ॥ ६॥ कालात् प्रबुद्धो राजासावुर्वशीं प्राह शोभनाम् । गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्ती साववीद्वचः ।। ९ ।। ह्य तेनोपभोगेन भवतो राजसुन्दर । प्रीतिः सञ्जायते मह्यं स्थातव्यं वत्सरं पूनः ॥१०॥ तामब्रवीत् स मतिमान् गत्वा शीव्रतरं पुरीम् । श्रागमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञात्महैसि ॥११॥ तमब्रवीत् सा सुभगा तथा कुरु विशांपते । नान्ययाऽप्सरसा तावद्रन्तन्यं भवता पुनः ॥१२॥ भ्रोमित्युक्तवा ययौ तूर्णं पुरीं परमशोभनाम् । गत्वा पतिव्रतां पत्नीं हष्ट्वा भीतोऽभवन्नृपः ॥१३॥ सम्प्रेक्ष्य सा गुरावती भार्या तस्य पतिव्रता । भीतं प्रसन्नया प्राह वाचा पीनपयोधरा ॥१४॥ स्वामिन् किमत्र भवतो भीतिरद्य प्रतत्ति । तद् बृहि मे यथातत्त्वं न भयं कर्तुमहिसि ॥१५॥ स तस्या वाक्यमाकर्णयं लज्जावनतमानसः । नोवाचे किञ्चिन्नृपतिर्ज्ञानदृष्ट्या विवेद सा ॥१६॥ न भेतव्यं त्वया राजन् कार्यं पापिवशोधनम् । भीते त्विय महाराज राष्ट्रं ते नाशमेष्यित ॥१७॥ सतः स राजा द्यतिमान् निर्गत्य तु पुरात् ततः । गत्वा कएवाश्रमं पुएयं हब्ट्वा तत्र महामुनिम्।।१८।। निशम्य कर्ववदनात् प्रायश्चित्तविधि शुभम्। जगाम हिमवत्रृष्टं समुद्दिश्य महाबलः ॥१९॥ सोऽवश्यत् पथि राजेन्द्रो गन्धर्ववरमुत्तमम् । भ्राजमानं श्रिया व्योम्नि भूषितं दिव्यमालया॥२०॥ वीक्ष्य मालामित्रहाः सस्माराप्सरसां वराम् । उर्वशीं तां मनश्चके तस्या एवेयमहीत ॥२१॥ सोऽतीव कामुको राजा गन्वर्वेणाथ तेन हि । चकार सुमहद् युद्धं मालामादातुमुद्यतः ॥२२॥ विजित्य समरे मालां गृहीत्वा दुर्जयो द्विजाः । जगाम तामप्सरसं कालिन्दीं द्रष्टुमादरात् ॥२३॥ श्रदृष्टवाडम्सरसं तत्र कामवास्पाभिपीडित:। बभ्राम सकलां पृथ्वीं सप्तद्वीपसमन्विताम् ॥२४॥

हिमवरपार्वमुर्वशीदर्शनोत्स् कः । जगाम शैलप्रवरं हेमकूटिमिति श्रुतम् ॥२४॥ तत्र तत्राप्तरोवर्गा दृष्या तं विहिविकमम् । कामं सन्दिधरे घोरं भूषितं चित्रमालया ।।२६।। संस्मरन्नुवंशीवावयं तस्यां संसक्तमानसः । न पश्यति स्म ताः सर्वा गिरेः श्रुङ्गाणि जिन्मवान् ॥२०॥ तत्राप्यप्सरसं दिव्यामदृष्ट्वा कामपीडितः । देवलोकं महामेरुं ययौ देवपराक्रमः ॥२५॥ स तत्र मानसं नाम सरस्त्रैलोवयविश्रुतम् । भेजे श्रृङ्गमितिकस्य स्वबाहुबलभावितः ॥२९॥ स तस्य तीरे सुभगां चरन्तीमतिलालसाम् । दृष्टवाननवद्याङ्गीं तस्यै मालां ददौ पुनः ॥३०॥ स मालया तदा देवीं भूषितां प्रेक्ष्य मोहितः । रेमे कृतार्थमात्मानं जानानः सुचिरं तया ॥३१॥ अयोर्वशी राजवर्यं रतान्ते वाक्यमज्ञवीत् । कि कृतं भवता वीर पुरीं गत्वा तदा नृप ॥३२॥ स तस्ये सर्वमाचष्ट पत्न्या यत् समुदीरितम् । कर्ग्वस्य दर्शनञ्चेव मालापहरणं तथा ।।३३॥ श्रुत्वैतद्व्याहृतं तेन गच्छेत्याह हितैषिग्री। शापं दास्यति ते कग्वो ममापि भवतः प्रिया।।३४।। तयाऽसकुन्महाराजः प्रोक्तोऽपि मदमोहितः । न तत्याजाथ तत्पाद्यं तत्र संन्यस्तमानसः ॥३५॥ तदोवंशी कामरूपा राज्ञे स्वं रूपमुत्कटम् । मुरोमशं पिङ्गलाक्षं दर्शयामास सर्वदा ॥३६॥ त्रयां विरक्तचेतस्कः स्मृत्वा कर्गवाभिभाषितम् । धिङ्गामिति विनिश्चित्य तपः कर्त्तुं समारभत् ॥३७॥ कन्दमूलफलाशनः । भूय एव द्वादशकं वायुभक्षोऽभवन्नृपः ॥ द्वा गत्वा करावाश्रमं भीत्या तस्मै सर्वं न्यवेदयत् । वासमप्सरसा भूयस्तवोयोगमनुत्तमम् ॥३९॥ वीक्ष्य तं राजशादू लं प्रसन्नो भगवानृषिः । कर्त्तुकामो हि निर्वीजं तस्याविमदमन्नवीत् ॥४०॥

कण्य उवाच

गच्छ वारग्णसीं दिन्यामीश्वराध्युषितां पुरीम् । श्रास्ते मोचियतुं लोकं तत्र देवो महेश्वरः ॥४१॥ स्नात्वा सन्तर्प्य विधिवद् गङ्गायां देवताः पितृत् । दृष्ट्वा विद्वेश्वरं लिङ्गं किल्विषान्मोक्ष्यसे क्षणात्॥४२॥ प्रणम्य शिरसा क्रग्वमनुज्ञाप्य च दुर्जयः । वाराग्णस्यां हरं दृष्ट्वा पापान्मुक्तेऽभवत् ततः ॥४३॥ जगाम स्वपुरीं शुभ्रां पालयामास मेदिनीम् । याजयामास तं क्रगो याचितो घृण्या मुनिः ॥४४॥ तस्य पुत्रोऽथ मितमान् सुप्रतीक इति स्मृतः । अभ्रव जातमात्रं तं राजानमुपतिस्थरे ॥४४॥ उर्वद्याद्य महावीर्याः सप्त देवसुतोपमाः । कन्या जयिहरे सर्वा गन्धव्यों दियता द्विजाः ॥४६॥ एष वः कथितः सम्यक् सहस्रजित उत्तमः । वंशः पापहरो नॄणां क्रोष्टोरिप निबोधत ॥४७॥

इति श्रीकौर्मे महापुराएो पूर्वभागे सोमवंशानुकीर्तनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विशोऽध्यायः

स्त उवाच

कोष्टोरेकोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवानिति श्रुतः । तस्य पुत्रोऽभवत् ख्यातिःकुशिकस्तत्मुतोऽभवत् ॥ १ ॥ कुशिकादभवत् पुत्रो नाम्ना चित्ररथो बली । ग्रथ चैत्ररथिलोंके शशबिन्दुरिति स्मृतः ॥ २ ॥ तस्य पुत्रः पृथुयशा राजाभूद्धमैतत्परः । पृथुकर्मा च तत्पुत्रस्तस्मात् पृथुजयोऽभवत् ॥ ३ ॥ पृथुकीत्तिरभूत् तस्मात् पृथुदानस्ततोऽभवत् । पृथुश्रवास्तस्य पुत्रस्तस्यासीत् पृथुसत्तमः ॥ ४ ॥

उशना तस्य पुत्रोऽभून्छितेपुस्तत्सुतोऽभवत् । तस्माद्दै रुक्मकवचः परावृत्तश्च यत्सुतः ॥ ५ ॥ परावृत्तस्तो जज्ञे ज्यामघो लोकविश्र्तः । तस्माद्विदर्भः सञ्जज्ञे विदर्भात् कथ कौशिकौ । लोमपादस्ट्रतीयस्तु बभ्रस्तस्यात्मजो नृपः ॥ ६ ॥ धृतिस्तस्याभवत् पूत्रः स्वेतस्तस्याप्यभूत् सुतः । स्वेतस्य पुत्रो बलवान् नाम्ना विश्वसहः स्मृतः ॥ ७ ॥ तस्य पुत्रो महावीर्यः प्रजावान् कौशिकस्ततः । ग्रभूत् तस्य मुतो घीमान् सुमन्तुश्च ततो नलः।। प्र ॥ कौशिकस्य सुतश्चेदिश्चैद्यास्तस्याभवन् सुताः । तेषां प्रवानो द्यतिमान् वपुष्मांस्तत्सुतोऽभवत् ॥९॥ वपुष्मती बृहन्मेघाः श्रीदेवस्तत्सुतोऽभवत्। तस्य वीतरथो विप्रा रुद्रभक्तो महाबलः।।१०॥ कथस्याप्यभवत् कुन्तिर्धृष्टिस्तस्याभवत् सुतः । धृष्टेर्नाधृतिरुत्पन्नो दशार्हस्तत्सुतो द्विजाः ॥११॥ दशाह्युत्रो व्योमा स्याजीमूतस्तत्सुतोऽभवत् । तस्य भीमरथः पुत्रस्तस्मान्नवरथः स्मृतः ॥१२॥ सत्यशीलपरायणः । ग्रथ भैमरथिर्वीरो विक्वतिः परवीरहा ॥१३॥ दानधर्मरतो नित्यं कदाचिन्मृगयां यातो दृष्ट्वा राक्षसमूर्जितम् । दुद्राव महताविष्टो भयेन मुनिपुङ्गवाः ॥१४॥ ग्रन्वधावत संक्रुद्धो राक्षसस्तं महाबलः । दुर्योधनोऽग्निसङ्काशः गूलासक्तमहाकरः ॥१४॥ राजा नवरथो भीतो नातिदूरादवस्थितम् । ग्रपश्यत् परमं स्थानं सरस्वत्याः सुगोपितम् ॥१६॥ स तहेगेन महता सम्प्राप्य मितमान् नृपः । ववन्दे शिरसा दृष्ट्वा साक्षाहेवीं सरस्वतीम् ॥१७॥ वाग्भिरिष्टाभिर्बद्धाञ्जलिरमित्राजत् । पपात दग्डवद्भूमौ त्वामहं शरणं गतः ॥१८॥ नमस्यामि महादेवीं साक्षाद्वेवीं सरस्वतीम् । वाग्देवतामनाद्यन्तामीश्वरीं ब्रह्मचारिणीम् ॥१९॥ नमस्ये जगतां योनि योगिनीं परमां कलाम् । हिरएयगर्भसम्भूतां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ॥२०॥ नमस्ये परमानन्दां चित्कलां ब्रह्मरूपिणीम् । पाहि मां परमेशानि भीतं शरणमागतम् ॥२१॥ एतस्मिन्नन्तरे क्र्द्धो राजानं राक्षसेव्वरः । हन्तुं समागतः स्थानं यत्र देवी सरस्वती ॥२२॥ समुद्यम्य तदा शूलं प्रविष्टो बलगर्वितः । त्रिलोकमातुर्हि स्थानं शाशाङ्कादित्यसिन्नभम् ॥२३॥ महद्भृतं युगान्तादित्यसन्त्रिभम् । शूलेनोरसि निर्मिच पातयामास तं भुवि ॥२४॥ गच्छेत्याह महाराज न स्थातव्यं त्वया पुनः । इदानीं निर्भयस्तूणं स्थानेऽस्मिन् राक्षसो हतः॥२४॥ ततः प्रणम्य हृष्टात्मा राजा नवरथः पराम् । पुरीं जगाम विप्रेन्द्राः पुरन्द्ररपुरोपमाम् ॥२६॥ स्थापयामास देवेशीं तत्र भक्तिसमन्वितः। ईजे च विविधैर्यज्ञैहींमैदेवीं सरस्वतीम्॥२७॥ तस्य चासीद्दशरथः पुत्रः परमधार्मिकः । देव्या भक्तो महातेजाः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥२८॥ तस्मात् करम्भः सम्भूतो देवरातोऽभवत् ततः । ईजे स चारत्रमेधेन देवदत्तश्च तत्सुतः ॥२९॥ मधुस्तस्य तु दायादस्तस्मात् कुरुरजायत । पुत्रद्वयमभूत् तस्य सुत्रामा चानुरेव च ॥३०॥ श्रनोस्तु पुरुकुत्सोऽभूदंशुस्तस्य च रिक्थभाक् । श्रथांशोः सत्त्वतो नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् ॥३१॥ महात्मा दान्तिरतो धनुर्वेदिवदां वर:। स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चने शास्त्रं प्रवर्तयामास कुएडगोलादिभिः श्रितम् । तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्वतानाञ्च शोभनम् ॥३३॥ प्रवर्तते महच्छास्त्रं कुएडादीनां हितावहम् । सात्वतस्तस्य पुत्रोऽभूत् सर्वशास्त्रविशारदः ॥३४॥ प्राथश्लोको महाराजस्तेन वै तत् प्रवर्त्तितम् । सात्त्वतान् सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या सुष्वे सुतान्।।३४।। म्रन्धकं वै महाभोजं वृष्णिं देवावृधं नृपम् । ज्येष्ठश्व भजमानाख्यं धनुर्वेदविदां वरम् ॥३६॥

तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः। पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति प्रभुः॥३७॥

भजमानाः श्रियं दिव्यां भजमानाद्विज्ञित्तरे । तेषां प्रवानी निष्यातौ निमिः कृकण एव च ॥३९॥

तस्य बभुरिति ख्यातः पुर्पयश्लोकोऽभवन् नृपः । धार्मिको रूपसम्पन्नस्तत्वज्ञानरतः

महाभोजकुले जाता भोजा वैमातृकास्तथा। वृष्णेः सुमित्रो बलवाननिमत्रः शिनिस्तथा॥४०॥ ग्रनिवादभूतिहो निहास्य द्वी बभूवतुः । प्रसेनस्त् महाभागः सत्राजिन्नाम चोत्तमः ॥४१॥ श्रनमित्राच्छिनेर्जज्ञे किनष्टाद् वृष्णिनन्दनात् । सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तत्सुतोऽभवत् ॥४२॥ सात्यिकर्युयुधानस्तु तस्यासङ्गोऽभवत् सुतः । कुिण्सितस्य मुतो धीमांस्तस्य पुत्रो युगन्धरः ॥४३॥ मार्ग वृष्णः मुतो जज्ञे वृष्णे वे यदुनन्दनः । जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तु हि ॥४४॥ श्वफल्कः काशिराजस्य मुतां भार्यामिविन्दत । तस्यामजनयत् पुत्रमकूरं नाम धार्मिकम् ॥४५॥ उपमङ्गुं तथा मङ्गुमन्ये च बहवः सुताः । श्रक्रूरस्य स्मृतः पुत्रो देववानिति विश्रुतः ॥४६॥ ग्रश्वप्रीवः कुकुरं भजमानव्य शमीकं बलगर्वितम् । कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयोऽभवत् ॥४९॥ कपोतरोमा विख्यातस्तस्य पुत्रो विलोमकः । तस्यासीत् तुम्बुरुसखा विद्वान् पुत्रस्तमः किल । प्त्रस्तथैवानकदुन्दुभिः ॥५०॥ न्मस्याप्यभवत् स गोवर्धनमासाद्य तताप विपुलं तपः । वरं तस्मै ददौ देवो ब्रह्मा लोकमहेश्वरः ॥५१॥ वंशस्य चाक्षयां कीर्त्तिं ज्ञानयोगं तथोत्तमम् । गुरोरप्यधिकं विप्राः कामरूपित्वमेव च।।५२॥ स लब्ध्वा वरमव्यम्रो वरेग्यो वृषवाहनात् । पूजयामास गानेन स्थाणुं त्रिदशपूजितम् ॥५३॥ गानरतस्याथ भगवानिम्बकापितः। कन्यारत्नं ददौ देवो दुर्लभं त्रिदशैरिप ॥५४॥ तया स सङ्गतो राजा गानयोगमनुत्तमम् । ग्रशिक्षयदमित्रघ्नः प्रियां तां भ्रान्तलोचनाम् ॥५५॥ तस्यामुत्पादयामास सुभुजं नाम शोभनम् । रूपलावएयसम्पन्नां ह्रीमतीमिति कन्यकाम् ॥५६॥ ततस्तं जननी पुत्रं बाल्ये वयसि शोभनम् । शिक्षयामास विधिवद्गानविद्याद्ध कन्यकाम् ॥५७॥ कृतोपनयनो वेदानधीत्य विधिवद् गुरोः । उद्ववाहात्मजां कन्यां गन्धर्वाणान्तु मानसीम् ॥५५॥ तस्यामुत्पादयामास पञ्च पुत्राननुत्तमान् । वीगावादनतत्त्वज्ञान् गानशास्त्रविज्ञारदान् ॥५९॥ पुत्रैः पौत्रैः सपत्नीको राजा गानविशारदः । पूजयामास गानेन ह्रीमतीं चारुसर्वाङ्गीं श्रीमिवायतलोचनाम् । सुबाहुनामा गन्धर्वस्तामादाय ययौ पुरीम् ॥६१॥ तस्यामप्यभवन् पुत्रा गन्धर्वस्य सुतेजसः । सुषेण - वेरा - सुग्रीव - सुभोज - नरवाहनाः॥६२॥ ग्रथासीदभिजित् पुत्रश्चन्दनोदकदुन्दुभेः । पुनर्वमुश्चाभिजितः सम्बभूवाहुकस्ततः ॥६३॥

ग्राहकस्योग्रसेनश्च देवकश्च सुदेवो देवरक्षितः ॥६४॥ देववान्पदेवश्च भजमानादभूत् पुत्रः प्रख्यातोऽसौ विदूरथः । तस्य गूरः समिस्तस्मात् प्रतिक्षत्रश्च तत्सुतः॥६८॥ स्वयंभोजस्ततस्तरमाद् घृतिकः शत्रुतापनः। कृतवर्माथ तत्पुत्रो देवलस्तत्सुतः स्मृतः।

स शूरस्तत्सुतो घीमान् वसुदेवोऽथ तत्सुतः ॥६९॥

रोहिएगी च महाभागा वसुदेवस्य शोभना । श्रसूत पत्नी सङ्कर्षं रामं ज्येष्ठं हलायुषम् ॥७१॥

वसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगद्गुरुः । बभूव देवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः ॥७०॥

स एव परमात्मासी वासुदेवो जगन्मयः । हलायुधः स्वयं साक्षाच्छेषः सङ्कर्षंगाः प्रभुः ॥७२॥

देवात्मा तयोर्विश्वप्रमाथिनौ । चित्रकस्याभवत् पुत्रः पृथुर्विपृथुरेव च ॥४७॥ मुबाहुश्च सुपारवंक - गवेषणी । श्रन्धकात् काश्यदुहिता लेभे च चतुरः सुतान्॥४८॥

> देवं त्रिपुरनाशनम् ॥६०॥ द्विजोत्तमाः । देवकस्य सुता वीरा जिज्ञरे त्रिदशोपमाः ।

तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ । घृतदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता ॥६४॥ श्रीदेवा शान्तिदेवा च सहदेवा च सुव्रता । देवकी चापि तासान्तु वरिष्ठाभूत् सुमध्यमा ॥६६॥ उप्रमेनस्य पुत्रोऽभून्न्यप्रोधः कंस एवं च । सुभूमी राष्ट्रपालश्च तुष्टिमान् रांकुरेव च ॥६७॥

भृगुशापच्छलेनैव मानयन् मानुषीं तनुम् । बभूत्र तस्यां देवक्यां रोहिरापामिप माधवः ॥७३॥ उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी । नियोगाद्वासुदेवस्य यशोदातनया व्वभूत् ॥७४॥ ये चान्ये वसुदेवस्य वासुदेवाग्रजाः सुताः । प्रागेव कंसस्तान् सर्वान् जवान मुनिसत्तमाः ॥७५॥ तथोदाविभंद्रसेनो महाबलः । ऋजुदासो भद्रदासः कीर्त्तिमानवि पूजितः ॥७६॥ सर्वेषु रोहिणी वसुदेवतः । ग्रसूत रामं लोकेशं बलभद्रं हलायुधम् ॥७७॥ हतेष्वेतेषु जातेऽथ रामे देवानामादिमात्मानमच्यतम् । ग्रमूत देवको कृष्णं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥७५॥ रेवती नाम रामस्य भायाऽसीत् सुगुगान्विता । तस्यामुत्पादयामास पुत्रौ द्वौ निशठोत्मुकौ ॥७९॥ षोडरा - स्त्रीसहस्राणि कृष्णस्याक्तिष्टकर्मणः । बभूवुश्चात्मजास्तासु शतशोऽथ सहस्रशः ॥५०॥ चारुदेण्एः सूचारुश्च चारुवेशो यशोधरः। चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्यम्नः साम्ब एव च ॥५१॥ महाबलपराक्रमाः । विशिष्टाः सर्वपुत्राणां सम्बभूवुरिमे सुताः ॥ ५२॥ वासुदेवस्य तान् हष्ट्रा तनयान् वीरान् रौक्मिणेयान् जनार्दनात् । जाम्बवत्यत्रवीत् कृष्णं भार्या तस्य शुचिस्मिता।।५३।। मम त्वं पुगडरीकाक्ष विशिष्टगुण्यत्तरम् । सुरेशसम्मितं पुत्रं देहि दानवसूदन ॥ ५४॥ जाम्बवत्या वचः श्रुत्वा जगन्नाथः स्वयं हरिः । समारेभे तपः कर्त्तः तपोनिधिररिन्दमः ॥ ५५॥ तच्छुणुध्वं मुनिश्रेष्ठा यथासौ देवकीसुतः । हष्ट्वा लेभे सुतं रुद्रं तब्स्वा तीत्रं महत् तपः ॥५६॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे सोमवंशे यदुवंशानुकीर्तिवर्णनं नाम चतुर्विशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

स्त उवाच

ग्रय देवो हृषीकेशो भगवान् पुरुषोत्तमः । तताप घोरं पुत्रार्थं निघानं तपसस्तपः ॥ १॥ स्वेच्छयाप्यवतीर्णोऽसौ कृतकृत्योऽिष विश्वधृक् । चचार स्वातमनो मूलं बोधयन् परमेश्वरम् ॥ २॥ जगाम योगिभिज् ष्टं नानापक्षिसमाकुलम् । म्राश्रमन्तूपमन्योवें मुनीन्द्रस्य महात्मनः ॥ ३॥ पतित्रराजमारूढः सुपर्णमितितेजसम् । शङ्खं - चक्रं - गदापाणिः श्रीवत्सकृतलक्षणः ॥ ४॥ नानाद्रुमलताकीणं नानापुष्पोपशोभितम् । ऋषीणामाश्रमैज् ष्टं वेदघोषनिनादितम् ॥ ५॥ सिहक्षॅशरभाकीण शादू लगजसंयुतम् । विमलस्वादुपानीयैः सरोभिरुपशोभितम् ॥ ६॥ ग्रारामैर्विविधेज् ष्टं देवतायतनैः शुभैः । ऋषिभिऋषिपुत्रैश्च महामुनिगणैस्तथा ॥ ७॥ वेदाध्ययनसम्पन्नैः सेवितद्धाग्निहोत्रिभिः । योगिभिध्यनिनिरतैर्नासाप्रन्यस्तलोचनैः उपेतं सर्वतः पुरायं ज्ञानिभिस्तत्वदिशिभः। नदीभिरिभतो जुष्टं जापकैर्व्रह्मवादिभिः॥ ९॥ तापसं: पुर्यरीशाराधनतत्वरैः । प्रशान्तैः सत्यसङ्कर्त्वानःशोकैनिस्पद्रवैः ॥१०॥ रुद्रजाप्यपरायणैः । मुग्डितैर्जटिलैः शुद्धैस्तथान्यश्च शिखाजटै:। भस्मावदातसर्वाङ्गै सेवितं तापसेर्नित्यं ज्ञानिभिन्नह्मवादिभिः ॥११॥ सिद्धाश्रमविभूषिते। गङ्गा भगवती नित्यं वहत्येवाघनाशिनी॥१२॥ रम्ये स तत्र वीक्ष्य विश्वारमा तापसान् वीतकल्मषान् । प्रणामेनाथ वचसा पूजयामास माधवः ॥१३॥

तं ते दृष्ट्वा जगद्योनि शङ्ख-चक्र-गदाधरम् । प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनां परमं

स्तुवन्ति वैदिकैर्मन्त्रैः कृत्वा हृदि सनातनम् । प्रोचुरन्योन्यमव्यक्तमादिदेवं महामुनिम् ॥१५॥ अयं स भगवानेकः साक्षी नारायगाः परः । आगच्छत्यधुना देवः प्रधानपुरुषः स्वयम् ॥१६॥ अयमेवाव्ययः स्रष्टा संहर्ता चैव रक्षकः । अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा मुनीन् द्रष्टुमिहागतः ॥१७॥ एष धाता विधाता च समागच्छिति सर्वगः । श्रतादिरक्षयोऽनन्तो महाभूतो महेश्वरः ॥१८॥ श्रुत्वा बुद्ध्वा हरिस्नेषां वचांसि वचनातिगः । ययौ स तूर्णं गोविन्दः स्थानं तस्य महात्मनः ॥१९॥ उपस्पृत्याथ भावेन तीर्थे तीर्थे स यादवः । चकार देवकी सूनुर्देव र्षिपितृतर्पणम् ॥२०॥ नदीनां तीरसंस्थानि स्थापितानि मुनीश्वरैः । लिङ्गानि पूजयामास् शम्भोरमिततेजसः ॥२१॥ हष्ट्वा हष्ट्वा समायान्तं तत्र तत्र जनार्दनम् । पूजयाश्विकरे पुष्वेरक्षतैस्तन्निवासिनः ॥२२॥ समीक्ष्य वासुदेवं तं शार्ङ्गशङ्कासिधारिए। तस्थिरे निश्चलाः सर्वे शुभाङ्गं तन्त्रिवासिनः ॥२३॥ यानि तत्रारुरक्षणां मानसानि जनार्दनम् । हष्ट्वा समाहितान्यासन् न निष्क्रामन्ति चाङ्गतः॥२४॥ अथावगाह्य गङ्गायां कृत्वा देविषतर्पणम् । श्रादाय पुष्पवर्याणि मुनीन्द्रस्याविशद् गृहम् ॥२४॥ दृष्ट्वा तं योगिनां श्रेष्ठं भस्मोद्ध्लितविग्रहम् । जटाचीरधरं शान्तं ननाम शिरसा मुनिम् ॥२६॥ म्रालोक्य कृष्णमायान्तं पूजयामास तत्त्ववित् । म्रासने वासयामास योगिनां प्रथमातिथिम् ॥२७॥ उवाच वचसां योनि जानीमः परमं पदम् । विष्णुमन्यक्तसंस्थानं शिष्यभावेण संस्थितम् ॥२८॥ स्वागतं ते हृषीकेश सफलानि तपांसि नः । यत् साक्षादेव विश्वात्मा मद्गेहं विष्णुरागतः॥२९॥ त्वां न पश्यन्ति मुनयो यतन्तोऽपीह योगिनः । तादृशस्यात्रभवतः किमागमनकारणम् ॥३०॥ श्रुत्वोपमन्योस्तद्वाक्यं भगवान् देवकीमृतः । व्याजहार महायोगी प्रसन्नं प्रणिपत्य तम ॥३१॥

कृष्ण उवाच

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि गिरीशं कृत्तिवाससम् । सम्प्राप्तो भवतः स्थानं भगवद्-दर्शनोत्सुकः ॥३२॥ कथं स भगवानीशो हरयो योगविदां वरः । मयाऽचिरेण कुत्राहं द्रक्ष्यामि तमुमापतिम् ॥३३॥ प्रत्याह भगवान् को हश्यते परमेश्वरः । भक्त्यैवोग्रेण तपसा तत् कुरूवेह संयतः ॥३४॥ मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिन: । ध्यायन्त्याराधयन्त्येनं योगिनस्तापसाश्च ये ॥३४॥ इहेश्वरं देवदेवं इह देवः सपत्नीको भगवान् वृषभध्वजः। क्रीडते विविधैभूतैर्योगिभिः परिवारितः ॥३६॥ इहाश्रमे पुरा रुद्रं तपस्तप्त्वा सुदारुणम् । लेभे महेश्वराद्योगं वसिष्ठो भगवानृषिः ॥३७॥ इहैव भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायतः स्वयम् । हष्ट्वा तं परमेशानं लब्धवान् ज्ञानमेश्वरम् ॥३६॥ इहाश्रमपदे रम्ये तपस्तप्तवा कपर्दिनः । प्रविन्दन् पुत्रकान् रुद्रात् सूरयो भक्ति.संयुताः ॥३९॥ इहैव देवताः सर्वाः कालाद्भीता महेश्वरम् । दृष्टवत्यो हरं देवं निर्भया निर्वृति ययः ॥४०॥ इहाराध्य महादेवं सावर्णिस्तपतां वरः । लब्धवान् परमं योगं ग्रन्थकारत्वमुत्तमम् ॥ १॥ प्रवर्त्तयामास शुभां कृत्वा वै संहितां द्विजाः । पौराणिकीं सुपुर्यार्थं सिन्छिष्येषु द्विजोत्तमाः॥ द्वा इहैव संहितां हष्ट्वा कापेयः शांशपायनः । महादेवं चकारेमां पौराणीं तिन्नयोगतः ॥४३॥ द्वादरीव सहस्राणि श्लोकानां पुरुषोत्तम । इह प्रवर्तिता पुर्या द्वचष्टसाहसिकोत्तरा ॥४४॥ वायवीयोत्तरं नाम पुराणं वेदसम्मितम् । इहैव ख्यापितं शिष्यैः शांशपायनभाषितम् ॥४५॥ याज्ञवल्क्यो महायोगो दृष्ट्वात्र तपसा हरम् । चकार तिलयोगेन योगशास्त्रमनुत्तमम् ॥४६॥ इहैव भुगुएगा पूर्व तप्तवाऽपूर्व महातपः । शुक्रो महेश्वरात् पुत्रो लब्धो योगविदां वरः ॥४७॥ तस्मादिहैव देवेश तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्। द्रष्टुमहीस विश्वेशमुग्रं भीमं कपर्दिनम्।।४५॥

एवमुक्त्वा ददौ ज्ञानमुपमन्युर्महामुनिः । व्रतं पाशुपतं योगं कृष्णायाऽक्तिष्ठकर्मणे ॥४९॥ स तेन मुनिवर्येण व्याहृतो मधुसूदनः । तत्रैव तपसा देवं रुद्रमाराधयत् प्रभुः ॥५०॥ भस्मोद्ध्वितसर्वाङ्गो मुगडो वल्कलसंयुतः । जजाप रुद्रमनिशं शिवेकाहितमानसः ॥५१॥ ततो बहुतिथे काले सोमः सोमार्द्धभूषणः । श्रदृश्यत महादेवो व्योन्नि देव्या महेश्वरः ॥५२॥

किरीटिनं गदिनं चित्रमालं पिनाकिनं शूलिनं देवदेवम् । शादू लचमम्बरसंवृताङ्गं देव्या महादेवमसौ ददर्श। ११३।। प्रभुं पुराणं पुरषं पुरस्तात् सनातनं योगिनमीशितारम्। श्रणोरणीयांसमनन्तरात्ति प्राणेश्वरं शम्भूमसौ त्रिनेत्रं नृसिंहचमिवृतभस्मगात्रम्। परव्यासक्तक रं समुद्गिरन्तं प्रणवं बृहन्तं सहस्रसूर्यप्रतिमं न यस्य देवा न पितामहोऽपि नेन्द्रो न चाग्निवंरुणो न मृत्युः। प्रभावमद्यापि वदन्ति रुद्रं तमादिदेवं पुरतो ददर्श।।५६॥ तदान्वपश्यद् गिरिशस्य वामे स्वात्मानमध्यक्तमनन्तरूपम्। बहुभिर्वचोभि: शङ्खासिचक्रान्वितह्स्तमाद्यम् ॥५७॥ स्तुवन्तमीशं कृतार्ञ्जाल दक्षिणतः सुरेशं हंसाधिरूढं पुरुषं ददर्श। स्तुवानमीशस्य परं प्रभावं पितामहं लोकगुरुं दिविष्ठम् ॥५५॥ गणेश्वरानर्कसहस्रकल्पान् नन्दीश्वरादीनिमतप्रभावान्। त्रिलोकभत्तुः पुरतोऽन्वपश्यत् कुमारमग्निप्रतिमं विशाखम् ॥५९॥ मरीचिमत्रि पुलहं पुलस्त्यं प्रचेतसं दक्षमथापि कएवम्। पराशरं तत्पुरतो विसष्ठं स्वायमभुवञ्चापि मनुं ददशँ॥६०॥ मन्त्रेरमरप्रधानं बद्धाञ्जलिविष्णुरुदारबुद्धिः। प्रगम्य देव्या गिरिशं स्वशक्त्या स्वात्मन्यथात्मानमसौ विचिन्त्य ॥६१॥

कृष्ण उवाच

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने ब्रह्माधिषं त्वामृषयो वदन्ति।
तपश्च सत्त्वश्च रजस्तमश्च त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः ॥६२॥
त्वं ब्रह्मा हरिरथ विश्वयोनिरिग्नः संहत्तां दिनकरमग्डलाधिवासः।
प्राणस्त्वं हुतवहवासवादिभेदस्त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम् ॥६३॥
सांख्यास्त्वां त्रिगुणमथाहुरेकरूपं योगास्त्वां सततमुपासते हृदिस्थम्।
वेदास्त्यामभिद्यतीह रुद्रमीडचं त्वामेकं शरणभुपैमि देवमीशम् ॥६४॥
त्वत्पादे कुमुममथापि पत्रमेकं दत्त्वासो भवति विमुक्तविश्ववन्धः।
सर्वांचं प्रणुदिति सिद्धयोगिजुष्टं स्मृत्वा ते पदयुगलं भवत्प्रसादात् ॥६४॥

थस्याशेषिवभागहीनममलं हृद्यन्तराविस्थतं तत्त्वं ज्योतिरनन्तमेकमचलं सत्यं परं सर्वगम् । स्थानं प्राहुरनादिमध्यनिघनं यस्मादिदं जायते नित्यं त्वाहमुपैिम सत्यिवभवं विश्वेश्वरं तं शिवम्।।६६।। अ नमो नीलकर्णाय त्रिनेत्राय च रंहसे । महादेवाय ते नित्यमीशानाय नमो नमः ॥६७॥ नमः पिनािकने तुभ्यं नमो मुण्डाय दिग्डने । नमस्ते बहुहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने ॥६॥।

नमो भैरवनादाय कालरूपाय दंष्ट्रिणे । नागयज्ञोपत्रीताय नमस्ते विह्निरेतमे ॥६९॥ नमोऽस्तु ते गिरीशाय स्वाहाकाराय ते नमः । नमो मुक्ताट्टहासाय भीमाय च नमो नमः ॥७०॥ नमस्ते वामनाशाय नमः कालप्रमाथिने । नमो भैरववेषाय हराय च निषङ्गिरो ॥७१॥ नमोऽस्तु ते त्र्यम्बकाय नमस्ते कृत्तिवामसे । नमोऽम्बिकाधिपतये पञ्चनां पत्ये नमः ॥७२॥ नमस्ते व्योमरूपाय व्योमाधिपतये नमः । नरनारी गरीराय सांख्ययोगप्रवर्त्तिने ॥७३॥ देशानुगतलिङ्गिने । कुमारगुरवे तुभ्यं देवदेवाय ते नमः ॥७४॥॥ भैरवनाथाय नमो यज्ञाधिपतये नमस्ते ब्रह्मचारिए। मृगव्याधाय महते ब्रह्माधिपतये नमः॥ अर्।। नमो हंसाय विश्वाय मोहनाय नमो नमः । योगिने योगगम्याय योगमायाय ते नमः ॥७६॥ नमस्ते प्राणपालाय घराटानादप्रियाय च । कपालिने नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ॥७७॥ नमो नमो नमस्तुभ्यं भूय एव नमो नमः । मह्यं सर्वात्मना कामान् प्रयच्छ परमेश्वर ॥७५॥

स्त उवाच

एवं हि भक्त्या देवेशमभिष्टूय स माचनः । पपात पादयो निप्रा देन-देव्योः स दग्डवत् ॥७६॥ उत्थाप्य भगवान् सोमः कृष्णां केशिनिसूदनम् । बभाषे मधुरं वावयं मेघगम्भीरनिस्वनः ॥८०॥ किमर्थं पुराडरीकाक्ष तप्यते भवता तपः । त्वमेव दाता सर्वेषां कामानां कामिनामिह ॥ ६१॥ त्वं हि सा परमा मूर्त्तिर्मम नारायगाह्वया । न विना त्वां जगत् सर्वं विद्यते पुरुषोत्तम ॥ ६२॥ नारायणानन्तमात्मानं परमेश्वरम्। महादेवं महायोगं स्वेन योगेन केंशव ॥८३॥ श्रुत्वा तद्वचनं कृष्णः प्रहसन् वै वृषध्वजम् । उवाचाम्बीक्ष्य विश्वेशं देवीञ्च हिमशैलजाम ॥५४॥ जातं हि भवता सर्वं स्वेन योगेन शङ्करं। इच्छाम्यारमसमं पुत्रं त्वद्भवतं देहि शङ्करं ॥ न्या। तथास्त्वित्याह विश्वात्मा प्रहृष्टमनसा हरः । देवीमालोक्य गिरिजां केशवं परिषस्वजे ॥ ६६।। ततः सा जगतां माता शङ्करार्धशरीरिएरी। व्याजहार हृषीकेशं देवी हिमिगरीन्द्रजा ॥८७॥ ग्रहं जाने तवानन्त निश्चलां सर्वदाच्युत । ग्रनन्यामीश्वरे भक्तिमात्मन्यपि च केशव ॥ ८ ॥ त्वं हि नारायणः साक्षात् सर्वात्मा पुरुषे त्तमः । प्रार्थितो दैवतैः पूर्वं सञ्जातो देवकीसुतः ॥=६॥ पश्य त्वमारमनारमानमारमानं मम सम्प्रति । नावयोविद्यते भेद एकं पश्यन्ति सूरयः॥९०॥ इमानिह वरानिष्टान् मत्तो गृह्णीष्य केशव । सर्वज्ञत्वं तथाश्वरं ज्ञानं तत् पारमेश्वरम् । ईश्वरे निश्चलां भक्तिमात्मन्यपि परं बलम् ॥९१॥ एवमुक्तस्तया कृष्णो महादेग्या जनार्दनः । श्राशिषः शिरसाऽयुक्ताद्देवोऽप्याह महेश्वरः ॥९२॥

प्रयहा कृष्णं भगवानथेशः करेण देव्या सह सम्पूज्यमानो मुनिभिः सुरेशैर्जगाम कैलासगिरि गिरीशः॥९३॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे सोमवंशे यदुवंशानुकीर्त्तने श्रीकृष्णतपश्चरणं नाम पञ्चविशोऽध्यायः ॥२५॥

85

कूर्मपुराणभ्

षड्विंशोऽध्यायः

स्त उवाच

प्रविच्य मेरुशिखरं कैलासं कनकप्रभम्। रराम भगवान् सोमः केशवेन महेश्वरः॥१॥ श्रपश्यंस्ते महात्मानं कैलाशगिरिवासिनः । पूजयाश्विकरे कृष्णं देवं नारायणं प्रभुम् ॥ २ ॥ चतुर्वाहम्दाराङ्गं कालमेघसमप्रभम् । किरीटिनं शार्ङ्कपाणि श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥ ३ ॥ दीघंबाहुं विशालाक्षं पीतवाससमन्यूतम् । द्यानमूरसा मालां वैजयन्तीमनूत्तमाम् ॥ ४ ॥ भाजमानं श्रिया देव्या युवानमतिकोमलम् । पद्माङ्घि पद्मनयनं सस्मितं सद्गतिप्रदम् ॥ ५॥ कदाचित् तत्र लीलार्थं देवकीनन्दवर्द्धनः । भ्राजमानः श्रिया कृष्णश्चचार गिरिकन्दरे ॥ ६॥ गन्वर्वाप्सरसां मुख्या नागकन्याश्च कृत्स्रशः । सिद्धा यक्षाश्च गन्धर्वा देवास्तञ्च जगन्मयम् ॥ ७ ॥ हष्ट्वाश्चर्यं परं गत्वा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि तस्य मूर्छि महात्मनः ॥ ८ ॥ गन्धर्वकन्यका दिव्यास्तद्वदप्सरसो वराः । दृष्ट्वा चकिमरे कृष्णं स्रस्तवस्त्रविभूष्णाः ॥ ९ ॥ काश्चिद् गायन्ति विविधं गानं गीतविशारदाः । सम्प्रेक्ष्य देवकीसूनं सुन्दरं काममोहिताः ।।१०॥ काश्चिद्विलासबहुला नृत्यन्ति स्म तदप्रतः । सम्प्रेक्ष्य सस्मितं काश्चित् पपुस्तद्वदनामृतम् ॥११॥ काश्चिद्भृषणवर्याणि स्वाङ्गादादाय सादरम् । भूषया चिक्ररे कृष्णं कामिन्यो लोकभूषणम् ॥१२॥ काश्चिद्भृषण्वयाणि समादाय तदङ्गतः । स्वात्मानं भूषयामासुः स्वात्मकैरि माधवम् । १३॥ काचिदागत्य कृष्णस्य समीपं काममोहिता । चुचुम्ब वदनाम्भोजं हरेर्मुग्धमृगेक्षणा ॥१४॥ प्रयह्म काचिद् गोविन्दं करेण भवनं स्वकम् । प्राप्यामास लोकादि मायया तस्य मोहिता ॥१५॥ तासां स भगवान् कृष्णः कामान् कमललोचनः । बहूनि कृत्वा रूपाणि पूरयामास लीलया । १६॥ एवं वे सुचिरं कालं देवदेवपुरे हरिः। रेमे नारायणः श्रीमान् मायया मोहयज् जगत्॥१७॥ बहुतिथे काले द्वारवत्या निवासिनः । बभूवुर्विकला भीता गोविन्दविरहे जनाः ॥१८॥ ततः सुपर्णो बलवान् पूर्वमेव विसर्जितः। स कृष्एां मार्गमाणस्तु हिमवन्तं ययौ गिरिम् ॥१९॥ <mark>अहष्ट्वा तत्र गोविन्दं प्रणम्य शिरसा मुनिम् । ग्राजगामोपमन्युं तं पुरीं द्वारवतीं पुनः ॥२०।।</mark> तदन्तरे महादैत्या राक्षसावत्रातिभीषसाः। ग्राजग्मुद्वरिकां शुभ्रां भीषयन्तः सहस्रवाः।।२१॥ स तान् सुपर्णो बलवान् कृष्णातुल्यपराक्रमः । हत्वा युद्धेन महता रक्षति स्म पुरी शुभाम् ॥२२॥ एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः। हष्ट्वा कैलासशिखरे कृष्णं द्वारवतीं गतः॥२३॥ ते दृष्ट्वा नारदमृषि सर्वे तत्र निवासिनः । प्रोचुर्नारायणो नाथः कुत्रास्ते भगवान् हरिः ॥२४॥ स तानुवाच भगवान् कैलासशिखरे हरिः । रमतेऽद्य महायोगी तं हष्ट्वाऽहमिहागतः ॥२५॥ तस्योपश्रुत्य वचनं सुपर्णः पततां वरः। जगामाकाशगो विप्राः कैलासं गिरिमुत्तमम्।।२६॥ भवने रत्नमिएडते । वरासनस्थं गोविन्दं देवदेवान्तिके हरिम् ॥२७॥ देवकीसून् उपास्यमानमभरैर्दिव्यश्लीभिः समन्ततः। महादेवगगौः सिद्धैयोगिभिः परिवारितम् ॥२८॥ प्रणम्य दराडवद्भूमौ सुपर्णः शङ्करं शिवम् । निवेदयामास हरि प्रवृत्तं द्वारकापुरे ॥२९॥ ततः प्रणम्य शिरसा शङ्करं नीललोहितम् । ग्राजगाम पुरीं कृष्णः सोऽनुज्ञातो हरेण तु ॥३०॥ कश्यपसुतं स्त्रीगरीरिभपूजितः । वचोभिरमृतास्वादैमीनितो मधुसूदनः ॥३१॥ वीक्ष्य यान्तमित्रघ्नं गन्धर्वाप्सरसां वराः । भ्रन्वगच्छन् महायोगं शङ्ख-चक्र-गदाधरम् ॥३२॥

विसर्जियत्वा विश्वातमा सर्वा एवाङ्गना हरिः । ययो स तुर्णं गोविन्दो दिव्यां द्वारवतीं पुरीम्।।३३।। गते देवेऽसुररिपी न कामिन्यो मुनीश्वराः । निशेव चन्द्ररिहता विना तेन चकाशिरे ॥३४॥ श्रुत्वा पौरजनास्तूर्णं कृष्णागमनमुत्तमम् । मग्डयाञ्चिकिरे दिव्यां पुरीं द्वारवतीं शुभाम् ॥३४॥ पताकाभिविशालाभिध्वंजैरन्तर्वहिष्कृतैः । मालादिभिः पुरीं रम्यां भूषयाञ्चिकरे जनाः ॥३६॥ श्रवादयन्त विविधान् वादित्रान् मधुरस्वनान् । रुद्धान् सहस्रशो दध्मुर्वीणावादान् वितेनिरे ॥३७॥ प्रविष्टमात्रे गोविन्दे पुरीं द्वारवती शुभाम् । ग्रगायन् मध्रं गानं खियो यौवनशोभिताः ॥३८॥ ह^६ट्वा ननृतुरीज्ञानं स्थिताः प्रासादमूर्द्वसु । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि वसुदेवसुतोपरि ॥३९॥ प्रविच्य भवनं कृष्णस्त्वाशीर्वादाभिवर्द्धितः । वरासने महायोगी भाति देवीभिरन्वितः ॥४०॥ सुरम्ये मएडपे जुभ्ने शङ्घाद्यैः परिवारितः । श्रात्मजैरिभतो मुख्यैः स्त्रीसहस्रेश्च संवृतः ॥४१।। तत्रासनवरे रम्ये जाम्बवत्या सहाच्यतः । भ्राजते चोमया देवो यथा देव्या समन्वितः ॥४२। श्राजग्मुर्देव - गन्धर्वा द्रष्टुं लोकादिमन्ययम् । महर्षयः पूर्वजाता मार्कग्डेयादयो द्विजाः ॥४३॥ ततः स भगवान् कृष्णो मार्कराडेयं समागतम् । ननामोत्थाय शिरसा स्वासनञ्च ददो हरिः । ४४॥ सम्पूज्य तान्षिगणान् प्रणामेन सहान्गः । विसर्जयामास हिर्दित्वा तदभिवाञ्छितान् ॥४५॥ तदा मध्याह्नसमये देवदेवः स्वयं हरिः। स्नातः गुक्ताम्बरो भानुमुपतिष्ठन् कृताञ्जलि ॥४६॥ जजाप जाप्यं विधिवत् प्रेक्षमाणो दिवाकरम् । तर्पयामास देवेशो देवान् पितृगर्गान् मुनीन् ॥४७॥ प्रविश्य देवभवनं मार्कग्डेपेन चैव दि । पूजयामाम लिङ्गस्थं भूतेशं भूतिभूषगाम् ॥४५॥ समाप्य नियमं सर्वं नियन्ता स स्वयं नृणाम् । भोजियत्वा मुनिवरं ब्राह्मणानभिपूज्य च ॥४९॥ कुत्वात्मयोगं विप्रेन्द्रा मार्कग्डेयेन चार्च्युतः । कथां पौराणिकीं पुग्यां चक्रे पुत्रादिभिर्वृतः ॥५०॥ प्रथ तत् सर्वमिखलं हण्ट्वा कर्म महामुनिः । मार्कएडेयो हसन् कृष्णं बभाषे मधुरं वचः ।।५१॥

मार्कण्डेय उवाच

कः समाराध्यते देवो भवता कर्मभिः शुभैः । ब्रूहि त्वं कर्मभिः पूज्यो योगिनां ध्येय एव च ।।५२॥ त्वं हि तत् परमं ब्रह्म निर्वाणमैमलं पदम् । भारावतरलार्थाय जातो वृष्णिकुले प्रभुः ॥५३॥ तमब्रवीन्महाबाहुः कृष्णो ब्रह्मविदां वरः । प्र्युग्वतामेव पुत्राणां सर्वेषां प्रहसन्निव ॥५४॥

कृष्ण उवाच

भवता कथितं सर्वं तथ्यमेव न संशयः। तथापि देवमीशानं पूजयामि सनातनम् ॥१५॥ न मे विप्रास्ति कर्ताव्यं नानावाप्तं कथञ्चन । पूजयामि तथापीशं जानन् वे परमं शिवम् ॥१६॥ न वै पश्यन्ति तं देवं मायया मोहिता जनाः। तत्रश्चेवात्मनो मूलं ज्ञापयन् पूजयामि तम् ॥५७॥ न च लिङ्गार्चनात् पुर्यं लोके दुर्गतिनाशनम् । तथा लिङ्गे हितायैषां लोकानां पूजयेच्छिवम्॥१५॥ योऽहं तिल्लङ्गिमित्याहुर्वेदवादविदो जनाः। ततोऽहमात्मनीशानं पूजयाम्यात्मनैव तु ॥१९॥ तस्यैव परमा मूर्तिस्तन्मयोऽहं न संशयः। नावयोविद्यते भेदो वेदेष्वेवं विनिश्चयः॥६०॥ एष देवो महादेवः सदा संसारभोहिमः ध्येयः पूज्यश्च वन्द्यश्च ज्ञेयो लिङ्गे महेश्वरः॥६१॥

मार्कण्डेय उवाच

कि तल्लिङ्गं सुरश्रेष्ठ लिङ्गे सम्पूज्यते च कः । ब्रूहि कृष्ण विशालांश गहनं ह्ये तदुत्तमम् ॥६२॥

कृष्ण उवाच

श्रव्यक्तं लिङ्गिमित्याहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम् । वेदा महेश्वरं देवमाहुर्लिङ्गिनमव्ययम् ॥६३॥ पुरा चैकार्णवे घोरे नष्टे स्थावर-जङ्गमे । प्रबोधार्थं ब्रह्मणो मे प्रादुर्भूतो महाशिवः ॥६४॥ तस्मात् कालात् समारभ्य ब्रह्मा चाहं सदैव हि । पूजयावो महादेवं लोकानां हितकाम्यया ॥६४॥

मार्कण्डेय उवाच

कथं लिङ्गमभूत् पूर्वमैश्वरं परमं पदम् । प्रबोधार्थं स्वयं कृष्ण ववतुमहिस साम्प्रतम् ॥६६॥

कृष्ण उवाच

म्रासीदेशाणवं घोरमिवभागं तमोमयम्। मध्ये चैशाणवे तस्मिञ्छङ्ख चक्र गदाधरः ॥६०॥
महस्रशीर्षा भूत्वाहं सहस्राक्षः सहस्रात् । सहस्रवाहुः पुरुषः शियतोऽहं सनातनः ॥६०॥
एतिस्मन्नन्तरे दूरे पश्यामि स्मामितप्रभम् । कोटिसूर्यप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रियावृतम् ॥६९॥
चतुर्ववं महायोगं पुरुषं कारणं प्रभुम् । कृष्णाजिनधरं देवमृग्यजुःसामिभः स्तुतम् ॥७०॥
निमेषमात्रेण स मां प्राप्तो योगविदां वरः । व्याजहार स्वयं ब्रह्मा स्मयमानो महाद्युतिः । ७१॥
कस्त्वं कृतो वा किञ्चह तिष्ठसे वद मे प्रभो । ग्रहं कत्ती हि लोकानां स्वयम्भः प्रितामहः॥७२॥
एवं विवादे वितते मायया परमेष्ठिनः । प्रबोधार्थं परं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम् ॥७४॥
कालानलसमप्रक्यं ज्वालामालासमाकुलम् । क्षय - वृद्धिविनिमुक्तमादिमध्यान्तर्वाजतम् ॥७४॥
ततो मामाह भगवानधो गच्छ त्वमाशु वे । ग्रन्तमस्य विजानीष्व ऊर्ध्वं गच्छेऽहिमित्यजः ॥७६॥
ततो मामाह भगवानधो गच्छ त्वमाशु वे । ग्रन्तमस्य विजानीष्व ऊर्ध्वं गच्छेऽहिमित्यजः ॥७६॥
ततो ममम कृत्वा गतावूद्धमधन्न तौ । पितामहोऽप्यहं नान्तं ज्ञातवन्तौ समेत्य तौ ॥७७॥
ततो विस्मयमापन्नौ भीतौ देवस्य शूलिनः । मायया मोहितौ तस्य ध्यायन्तौ विश्वमीश्वरम्॥७६॥
श्रुतवन्तौ महानादमोङ्कारं परमं पदम् । तं प्राञ्जलिपुटौ भूत्वा शमभुं तुष्टवतुः परम् ॥७९॥

ब्रह्म-विष्णू ऊचतुः

म्रनादिमूलसंसार - रोगवैद्याय शम्भवे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गभूर्त्ताये ॥५०॥ प्रलयोद्भितिहेतवे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूत्तंये ॥ ६१॥ प्रलयागितसंस्थाय ज्वालामालावृताङ्गाय ज्वलनःतम्भरूपिणे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये । दराः म्रादिमध्यान्तहीनाय स्वभावामलदोप्तये । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्ताये ॥५३॥ महते ज्योतिषेऽनन्ततेजसे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥ प्रशा महादेवाय वेधसे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥५५॥ प्रवानपुरुषेशाय **ट्योमरू**पाय नित्यायातुलतेजसे । नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्ग मूर्त्तये ॥६६॥ निविकाराय सत्याय धीमते। नमः शिवाय शान्तःय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥५७॥ वेदान्तसाररूपाय कालरूपाय एवं संस्त्यमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महेश्वरः । भाति देवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ प्रा वक्त्रकोटिसहस्रे ए। ग्रसमान इवाम्बरम् । सहस्रहस्तचरएाः सूर्यसोमाग्निलोचनः ॥८९॥ विनाकपाणिभंगवान् कृत्तिवासास्त्रिशूलधृक्। व्यालयज्ञोपवीतश्च मेघदुन्दुभिनिःस्वनः ॥९०॥ प्रीतोऽहं सुरसत्तमी । पश्यतं मां महादेवं भयं सर्वं प्रमुच्यताम् ॥११॥ श्रथोवाच महादेवः

युवां प्रसूती गात्रभयो मम पूर्वं सनातनी । ग्रयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकिपतामहः ॥९२॥ वामपार्श्वे च मे विष्णुः पालको हृदये हरः । प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दिन्न यथेप्सितम् ॥९३॥ एवमुवत्वाथ मां देवो महादेवः स्वयं शिवः । ग्रालिङ्ग्य देवं ब्रह्माणं प्रसादाभिमुखोऽभवत्॥९४॥ ततः प्रहृष्टमनसी प्रणिपत्य महेश्वरम् । ऊचतुः प्रेक्ष्य तद्वक्त्रं नारायणः-पितामहौ ॥९४॥ यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ । भक्तिभवतु नौ नित्यं त्विय देव महेश्वरे ॥९६॥ ततः स भगवानीशः प्रहसन् परमेश्वरः । उवाच मां महादेवः प्रीतं प्रीतेन चेतसा ॥९७॥

महादेव उवाच

प्रलय - स्थित - सर्गाणां कत्ती त्वं घरणीपते । वत्स वत्स हरे विश्वं पालयैतच्चराचरम् ॥९८॥ त्रिघा भिन्नोऽस्म्यहं विष्णो ब्रह्म-विष्णु-हराख्यया । सर्गं - रक्षा - लयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरक्कनः ॥९९॥ सम्मोहं त्यज भो विष्णो पालयैनं पितामहम् । भविष्यत्येव भगवांस्तव पुत्र सनातनः ॥१००॥ श्रहन्त्र भवतो वक्त्रात् कल्पान्ते घोररूपधृक् । शूलपाणिर्भविष्यामि क्रोधजस्तव पुत्रकः ॥१०१॥ एवम्बस्वा महादेवो ब्रह्म।एां म्निसत्तम । ग्रनुगृह्य च मां देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१०२॥ ततः प्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता । लिङ्गं तल्लयनाद् ब्रह्मत् ब्रह्मणः परमं वपः ।१०३॥ एतिल्लङ्गाय माहात्म्यं भाषितं ते मयानघ । एतद् बुध्यन्ति योगज्ञा न देवा त च दानवाः ११०४।। एतद्धि परमं ज्ञानमन्यक्तं शिवसंज्ञितम् । येन सूक्ष्ममिचन्त्यं तत् पश्यन्ति ज्ञानचक्ष्रपः॥१०५॥ तस्मे भगवते नित्यं नमस्कारं प्रकुर्महे । महादेवाय देवाय देवदेवाय लिङ्गिने ॥१०६॥ नमो वेदरहस्याय नीलकराठाय वै नमः। विभीषणाय शान्ताय स्थाणवे योगिने नमः॥१०७॥ वामदेवाय त्रिनेत्राय महीयसे । शङ्कराय महेशाय गिरीशाय शिवाय च ॥१०८॥ नमस्कुरुव सततं ध्यायस्व च महेश्वरम् । संसारसागरादस्मादचिरादुद्धरिष्यति वासुदेवेत व्याहृतो मुनिपुङ्गवः । जगाम मनसा देवमीशानं विश्वतोमुखम् ॥११०॥ प्रणम्य शिरसा कृष्णमनुज्ञातो महामुनिः। जगाम चेप्सितं देशं देवदेवस्य शूलिनः॥१११॥ य इमं श्रावयेन्नित्यं लिङ्गाध्यायमनुत्तमम् । श्रृणुयाद्वा पठेद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥११२॥ सक्तदिप ह्योतत् तपश्च 'णमुत्तमम् । वासुदेवस्य विप्रेन्द्राः पापं मुश्वित मानवः ॥११३॥ महीयते । एवमाह महायोगी कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ॥११४॥ ब्रह्म लोके जपेद्वाऽहरहर्नित्यं

इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे सोमवंशे यदुवंशानुकीर्तने कृष्णतपस्यायां लिङ्गाविभीवो नाम षड्विशोऽध्यायः ।। २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

सूत उवाच

ततो लब्धवरः कृष्णो जाम्बवत्यां महेश्वरात् । म्रजीजनन्महात्मानं साम्बमात्मजमुत्तमम् ॥ १ ॥ प्रद्युम्नस्य ह्यभूत् पुत्रो ह्यनिरुद्धो महाबलः । ताबुभी गुर्गसम्पन्नो कृष्णस्यैवापरे तन् ॥ २ ॥ हत्वा च कंसं नरकमन्यांश्च शतशोऽमुरान् । विजित्य लीलया शकं जित्वा बाणं महासुरम् ॥ ३ ॥ स्थापयित्वा जगत् कृत्स्नं लोके धर्माश्च शाश्वतान् । चक्रे नारायणो गन्तुं स्वस्थानं बुद्धिभृत्तमाम् ॥ ४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विप्रा भुग्वाद्याः कृष्णमीश्वरम् । ग्राजग्मुद्धारकां द्रष्टुं कृतकार्यं सनातनम् ॥ ४ ॥ स तानुवाच विश्वातमा प्रिश्चित्याभिषुज्य च । ग्रासनेषूपविष्ठान् वै सह रामेण धीमता ॥ ६ ॥ गमिष्यामि परं स्थानं स्वकीयं विष्णुपंज्ञितम् । कृतानि सर्वकार्याणि प्रसीदध्वं मुनीश्वराः ॥ ७॥ इदं कलियुगं घोरं सम्प्राप्तमधुनाऽशुभम् । भविष्यन्ति जनाः सर्वे ह्यस्मिन् पापान्वर्त्तिनः॥ ५॥ हितावहम् । येनेमे कलिजैः पापैम् च्यन्ते हि द्विजोत्तमाः ॥ ९॥ प्रवर्त्तयध्वं विज्ञानमज्ञानाञ्च ये मां जनाः संस्मरन्ति कली सक्वदिष प्रभूम् । तेषां नश्यति तत् पापं भक्तानां पृष्षोत्तमे ॥१०॥ येऽर्चियष्यन्ति मां भक्त्या नित्यं कलियुगे द्विजाः । विधिना वेददृष्टेन ते गमिष्यन्ति तत्पदम् ॥११॥ ये ब्राह्मणा वंशजाता युष्माकं वै सहस्रशः । तेषां नारायणे भक्तिर्भविष्यति कलौ युगे ॥१२॥ परात्परतरं यान्ति नारायणपरा जनाः । न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महैश्वरम् ॥१३॥ ध्यानं योगस्तपस्तप्तं ज्ञानं यज्ञादिको विधिः । तेषां विनव्यति क्षिप्रं ये निन्दन्ति महेश्वरम् ॥१४॥ यो मां समर्चयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रितः । विनिन्दन् देवमीशानं स याति नरकायुतम् ॥१५॥ तस्मात् सम्परिहर्तव्या निद्रा पशुपतेर्द्विजाः । वर्मणा मनसा वाचा मद्भवतेष्विप यत्नतः ॥१६॥ ये च दक्षाध्वरे शप्ता दधीचेन द्विजोत्तमाः । भविष्यन्ति कलौ भवतैः परिहार्याः प्रयत्नतः ॥१७॥ द्विषन्तो देवमीशानं युष्माकं वंशसम्भवाः । शप्ताश्च गीतमेनोव्यां न सम्भाष्या द्विजोत्तमैः ॥१८॥ एवमुक्ताश्च कृष्णेन सर्वे ते वै महर्षयः । श्रोमित्युक्तवा ययुस्तूर्णं स्वानि स्थानानि सत्तमाः ॥१९॥ ततो नारायणः कृष्णो लीलयैव जगन्मयः । संहत्य स्वकुलं सर्वं ययौ तत् परमं पदम् ॥२०॥ इत्येष वः समासेन राज्ञां वंशः सुकीत्तितः । न शक्यो विस्तराद्ववतुं कि भूयः श्रोतुमिच्छथ ॥२१॥ यः पठेच्छणुयाद्वापि वंशानां कथनं शुभम् । सर्वेपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके

इति श्रीकौर्मेमहापुराणे पूर्वभागे राजवंशानुकीर्तनं नाम सप्तविशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचु:

कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम्। एषां प्रभावं सूताद्य कथयस्व समासतः॥ १ ॥

स्त उवाच

गते नारायणे कृष्णे स्वमेव परमं पदम् । पार्थः परमधमित्मा पाएडवः शत्रुतापनः ॥ २ ॥ कृत्वा चैवोत्तरिविधि शोकेन महतावृतः । ग्रपश्यत् पथि गच्छन्तं कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥ ३ ॥ शिष्यैः प्रशिष्यैरिभतः संवृतं ब्रह्मवादिनम् । पपात दएडवङ्ग्मौ त्यक्तवा शोकं तदार्जुनः ॥ ४ ॥ उवाच परमप्रीत्या कस्माद् देशान्महामुने । इदानीं गच्छिसि क्षिप्रं कं वा देशं प्रति प्रभो ॥ ५ ॥ सन्दर्शनाद्वे भवतः शोको मे विपुलो गतः । इदानीं मम यत् कार्यं ब्रहि पद्मदलेक्षण् ॥ ६ ॥ तमुवाच महायोगी कृष्णद्वेपायनः स्वयम् । उपविश्य नदीतीरे शिष्यैः परिवृतो सुनिः ॥ ७ ॥

व्यास उवाच

इदं किलयुगं घोरं सम्प्राप्तं पागडुनन्दन । ततो गच्छामि देवस्य पुरीं वाराग्यसीं गुभाम् ॥ द ॥ ग्रिस्मिन् किलयुगे घोरे लोकाः पापानुवर्त्तिनः । भविष्यन्ति महाबाहो वर्णाश्रमविवर्णिताः ॥ ९ ॥ नान्यत् पश्यामि जन्तूनां मुक्त्वा वाराग्यसीं पुरीम् । सर्वपापोपशमनं प्रायश्चित्तं कलौ युगे ॥१०॥ कृतं त्रेता द्वापरश्च सर्वेष्वेतेषु ते नराः । भविष्यन्ति महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः । ११॥ त्वं हि लोकेषु विष्यातो धृतिमान् जनवत्सलः । पालयाद्य परं धर्मं स्वकीयं मुच्यसे भयात् ॥१२॥ एवमुक्तो भगवता पार्थः परपुरद्धयः । पृष्टवान् प्रणिपत्यासौ युगधर्मान् द्विजोत्तमाः ॥१३॥ तस्मै प्रोवाच सकलं मुनिः सत्यवतीसुतः । प्रणम्य देवमीशानं युगधर्मान् सनातनान् ॥१४॥

व्यास उवाच

वक्ष्यामि ते समासेन युगधर्मान् नरेश्वर । न शक्यते मया राजन् विस्तरेणाभिभाषितुम् ॥१५॥ श्राद्यं कृतयुगं प्रोक्तं ततस्त्रेतायुगं बुधैः । तृतीयं द्वापरं पार्थं चतुर्थं कलिरुच्यते ॥१६॥ ध्यानं तपः कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते । द्वापरे यज्ञमेवाहृदीनमेकं कलौ युगे ॥१७॥ ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रिवः । द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः ॥१८॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्यः सर्वं एवं कलाविप । पूज्यन्ते भगवान् रद्वश्चतुष्वंप पिनाकघृक् ॥१९॥ श्राद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः प्रकीत्तितः । त्रेतायुगे त्रिपादः स्याद् द्विपादो द्वापरे स्थितः ।

त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सतामात्रेण तिष्ठति ॥२०॥

कृते तु मिथुनोत्पत्तिर्वृत्तिः साक्षादलोलुपा । प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सदानन्दाश्च भोगिनः ॥२१॥ ग्रथमोत्तमता नासां निर्विशेषाः पुरत्वय । तुल्यमायः सुखं रूपं तासां तस्मिन् कृते युगे ॥२२॥ विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तबहुलास्तथा । ध्यानिनष्ठास्तपोनिष्ठा महादेवपरायणाः ॥२३॥ ता वै निष्कामचारिएयो नित्यं मुदितमानसाः । पर्वतोदिधवासिन्यो ह्यनिकेताः परन्तप ॥२४॥ रसोल्लासः कालयोगात् त्रेताख्ये नञ्यति द्विजाः । तस्यां सिद्धौ प्रनष्टायामन्या सिद्धिरवर्त्तत ॥२५॥ श्रपां सौख्ये प्रतिहते तदा मेघात्मना तु वै । मेघेभ्यः स्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम् ॥२६॥ सकृदेव तया वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले । प्रादुरासंस्तथा तासां वृक्षा वै गृहसंज्ञिताः ॥२७॥ सर्वैः प्रत्युपयोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते । वर्त्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायूगमुखे प्रजाः ॥२८॥ ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात् । रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याँकस्मिकोऽभवत् ।।२९॥ विपर्ययेण तासान्तु तेन तत्कालभाविताः । प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंजिताः ॥३०॥ ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रान्ता मैथुनोद्भवाः । ग्रभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥३१॥ प्रादुर्बभूबुस्तासान्तु वृक्षास्ते गृहवंज्ञिताः। वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च ॥३२॥ तेष्वेव जायते तासां गन्ध-वर्ण-रसान्वितम् । स्रमाक्षिकं महात्रीर्यं पुटके पुटके मधु ॥३३॥ तेन ता वर्त्तायन्ति स्म त्रेतायुगमुखे प्रजाः । हृष्टाः पृष्टास्तथा सिद्धा सर्वा वै विगतज्वराः ॥३४॥ पुनः कालान्तरेणैव ततो लोभावृतास्तदा । वृक्षांस्तान् पर्यगृह्णन्त मधु चामाक्षिकं बलात् ॥३५॥ तासां तेनाप वारेण पुनलों भक्कतेन वै । प्रनष्टा मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षाः कचित् कचित् ॥३६॥ शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्तास्ततो दुःखिता भृशम् । द्वन्द्वेः सम्पीडयमानास्तु चक्रुरावरणानि च ॥३७॥ कृत्वा द्वन्द्वप्रतीघातान् वार्त्तोपायमचिन्तयन् । नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा ॥३८॥

ततः प्रादुरभूत् तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः । वात्तीयाः साधकास्तस्या वृष्टिग्तासां निकामतः ॥३९॥ तासां बृष्ट्यदकानीह यानि निम्नगतानि तु । ग्रभवन् वृष्टिमन्तत्या स्रोतः स्थानानि निम्नगाः ॥४०॥ ये पुनःतदपां स्तोका ग्रापन्नाः पृथिवीतले । ग्रपां भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन् ॥४१॥ त्रकालकृष्ट आन्त्रा ग्राम्यारएयाश्चतुर्दंश । ऋतुपुष्पफलेश्चेव वृक्षगुल्माश्च जित्रे ॥४२॥ ततः प्रादुरभूत् तासां रागो लोभश्च मर्वशः । अवश्यम्भावितार्थेन त्रेतायुगवशेन ततस्ताः पर्यग्रह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् । वृक्षगुरुभौषधीरचैव प्रसह्य त् यथाबलम् ॥४४॥ विपर्ययेगा तासां ता म्रोषध्यो विविशुर्महीम् । पितामहिनयोगेन दुदोह पृथिवीं पृथुः ॥४५॥ ततम्ता जगृहः सर्वा ह्यन्योयं कोधमूर्च्छिताः । श्राप्तदारधनाद्यास्तु बलात् कालबलेन च ॥४६॥ प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वैतद्भगवानजः । ससर्जं क्षत्रियान् ब्रह्मा ब्राह्मणानां हिताय वै ॥४७॥ वर्णाश्रमन्यवस्थाश्व त्रेतायां कृतवान् प्रभुः । यज्ञप्रवर्त्तान्श्वैव पशुहिंस।विवर्जितम् ॥४८॥ द्वापरेऽप्यथ विद्यन्ते मितभेदात् सदा नृणाम् । रागो लोभस्तथा युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ॥४९॥ एको वेदश्चतुष्पादस्त्रिधा त्विह विभाव्यते । वेदव्यासैश्चतुर्द्धा च व्यस्यते द्वापरादिषु ॥५०॥ ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः । मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥५१॥ संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतिषिभः । सामान्यावैष्टताश्चैव दृष्टिभेदैः कचित् कचित् ॥५२॥ ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि ब्रह्मप्रवचनानि च। इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सुव्रत ।। १३॥ तथैव व्याध्युपपद्रवाः । वाङ्मनःकायजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते नृषाम् ॥५४॥ निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा । विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद् दोषदर्शनम् ॥५५॥ दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः। एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिवे द्वापरे द्विजाः ।५६।। श्राचे इते तु घमौँऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्त्तते । द्वापरे व्याकुलीभूय प्रणश्यति कली युगे ॥५७॥ इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे युगधर्मानुकीर्तानं नामाष्टाविकोऽध्यायः ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

व्यास उवाच

तिष्ये मायामस्याश्व वधश्वेव तपिस्वनाम् । साधयिन्त नरा नित्यं तमसा व्याकुलीकृताः ॥१॥ कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयं तथा । ग्रनावृष्टिभयं घोरं देशानाश्व विपर्ययः ॥२॥ ग्राधिमका निराहारा महाकापाल्पतेजसः । ग्रनृत ब्रुवते लुब्धास्तिष्ये जाताः सुदुष्प्रजाः ॥३॥ दुरिष्टैर्दुर्घ तेश्च दुराचारैर्दुरागमेः । विप्राणां कर्मदापेश्च प्रजानां जायते भयम् ॥४॥ नाधीयते तदा वेदान् न यजन्ति द्विजातयः । यजन्ति यज्ञान् वेदाश्च पठन्ते चाल्पबृद्धयः ॥५॥ श्रूद्धाणां मन्त्रयोगेश्च सम्बन्धो ब्राह्मणेः सह । भविष्यति कलौ तिसमञ्खयनासनभोजनेः ॥६॥ राजानः शृद्धभूयिष्ठा ब्राह्मणान् बाधयन्ति च । भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायेत नरेदवरे ॥७॥ सनानं होमं जपं दानं देवतानां तथार्चनम् । तथान्यानि च कर्माणि न कुर्वन्ति द्विजातयः ॥६॥ विनिन्दन्ति महादेवं ब्राह्मणान् पुरुषोत्तमम् । ग्राम्नायधर्मशास्त्राणि पुराणानि कलौ गुगे ॥९॥ कुर्दन्त्यवेदहष्टानि कर्माणि विविधानि च । स्वधर्मे तु रुषिनेव ब्राह्मणानां प्रजायते ॥१०॥

कुशीलचर्या पाषएडैर्वृथारूपैः समावृताः । बहुयाचनका लोका भविष्यन्ति परःपरम् ॥२१॥ शिवशूलाश्चतुष्पथाः । प्रमदाः केशशूनाश्च भविष्यन्ति कलौ युगे ॥१२॥ जनपदाः शुक्लदन्ता जिनाख्याश्च मूग्डाः काषायवाससः । शूदा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥१३॥ शस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चेलाभिमिष्णः । चौराचौराश्च हत्तारो हर्त्तहन्ता तथापरः ॥१४॥ सरोगता । ग्रधम्माभिनिवेशित्वं तमोवृत्तं कलौ समृतम् ॥१५॥ दु:खप्रचुरताऽल्पायुर्देहोत्सादः काषायिएगोऽय निर्म्रन्थास्तथा कापालिकाश्च ये । वेदविक्रियणश्चान्ये तीर्थविक्रियणः परे ।।१६॥ ग्रासनस्थान् द्विजान् दृष्टा चालयन्त्यल्पबुद्धयः । ताडयन्ति द्विजेन्द्रांश्च शूदा राजोपजीविनः ॥१७॥ उच्चासनस्थाः शृदाश्च द्विजमध्ये परन्तप । द्विजामानकरो राजा कलौ कालबलेन तु ॥१८॥ पुष्पैश्च भूषणैश्चीव तथान्यैमञ्जलिद्धिजाः । श्द्रान् परिचरन्त्यल्प श्रुतभाग्यबलात्विताः ॥१९॥ न प्रेक्षन्तेऽर्चिचताश्चापि शूद्रा द्विजवरान् नृप । सेवावसरमालोक्य द्वारे तिष्ठन्ति च द्विजाः ॥२०॥ वाहनस्थान् समावृत्य शूदान् शूद्रोपजीविनः । सेवन्ते ब्राह्मणास्तांस्तु स्तुवन्ति स्तुतिभिःकलौ।।२१।। ग्रध्यापयन्ति वै वेदान् शूदान् शूदोपजीविनः । एवं निर्वेदकानर्थान् नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः ॥२२॥ तपोयज्ञफलानान्तु विकेतारो द्विजोत्तमाः । यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ॥२३॥ नाशयन्तः स्वकं धर्मं नाधिगच्छन्ति तत्यदम् । गायन्ति लीकिकैगनिदेवतानि नराधिप ॥२४॥ वामाः पाजुपताचारास्तथा वै पाञ्चरात्रिकाः । भविष्यन्ति कलौ तस्मिन् ब्राह्मणाःक्षत्रियास्तथा॥२५॥ ज्ञाने कर्मग्यपगते लोके निष्क्रियतां गते । कीट-मूषिक-सर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मान्षान् ॥२६॥ कुर्वन्ति चावताराणाि ब्राह्मणानां कुलेषु वै। दधोचशापनिर्दग्धाः पुरा दक्षाध्वरे द्विजाः ॥२७॥ महादेवं तमसाविष्टचेतसः । वृथा धम्मं चरिष्यन्ति कलौ तस्मिन् युगान्तिमे ॥२५॥ ये चान्ये शापनिर्देग्धा गौतमस्य महामनः । सर्वे तेऽवतिरुष्यन्ति ब्राह्मणास्तासु योनिषु ॥२९॥ विनिन्दन्ति हृषीकेशं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः। वेदबाह्मव्रताचारा दुराचारा वृथाश्रमाः॥३०॥ मोहयन्ति जनान् सर्वान् दर्शयित्वा फलानि च । तमसाविष्टमनसो बैंडालव्रतिकाधमाः ॥३१॥ कली रुद्रो महादेवो लोकानामी श्वरः परः । तदेव साधयेन्नूणां देवतानाञ्च दैवतम् ॥३२॥ करिष्यत्यवताराणि शङ्करो नीललोहितः । श्रीतस्मात्तंप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया ॥३३॥ उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम् । सर्ववेदान्तसारं हि धर्मान् वेदिनदिर्शितान् ॥३४॥ ये तं प्रीता निषेवन्ते येन केनोपचारतः । विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति ते परमं पदम्॥३४॥ सुमहत् पुरायमाप्तोति मानवः । अनेकदोषदुष्टस्य कलेरेको महान् गुणः ॥३६॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्राप्य माहेश्वरं युगम् । विशेषाद् ब्राह्मणो रुद्रमीशानं शरणं व्रजेत् ॥३७॥ ये नमन्ति विरूपाक्षमीशानं कृत्तिवाससम् । प्रसन्तचेतसो रुद्रं ते यान्ति परमं पदम् ॥३८॥ यथा रुद्रनमस्कारः सर्वकामफलो ध्र्वः। अन्यदेवनमस्कारान्न तत् फलमवाष्नुयात्।।३९॥ कलियुगे दोषाणामेव शोधनम् । महादेवनमस्कारो ध्यान दानमिति श्रुतिः ॥४०॥ तस्मादधीश्वरानन्यांस्त्यक्त्वा देवं महेरवरम् । समाश्रयेद्विरूपाक्षं यदीच्छेत् परमं पदम् ॥४१॥ नार्चयन्तीह ये रुद्रं शिवं त्रिदशवन्दितम् । तेषां दानं तपो यज्ञो वृथा जीवितमेव च ॥४२॥ महते देवदेवाय श्लिने । त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय योगिनां गुरवे नमः ॥४३॥ महादेवाय वेधसे । शम्भवे स्थाणवे नित्यं शिवाय परमेष्ठिने ।।४४॥ नमोऽस्त देवदेवाय सोमाय रुद्राय महाग्रासाय हेतवे । प्रपद्येऽहं विरूपाक्षं शरएयं ब्रह्मचारिणम् ॥४५॥

महायोगमीशानश्वाम्बिकापतिम् । योगिनां योगदातारं योगमायासमावृतम् ॥४६॥ महादेवं योगिनां गुरुमाचार्यं योगगम्यं पिनाकिनम् । संसारनाशकं रुद्रं ब्रह्माणं ब्रह्मसाोऽधिपम् ॥४७॥ शारवतं सर्वगं शान्तं ब्रह्मएयं ब्राह्मणित्रयम् । कर्पादनं कलामूर्त्तिमम्र्तिममरेश्वरम् ।।४८।। एकमूर्ति महासूर्ति वेदवेदां दिवस्पतिम् । नीलकर्ण्ठं विश्वसूर्तिं व्यापिनं विश्वरेतसम् ॥४९॥ कालाग्निं कालदहनं कामदं कामनाशनम् । नमस्ये गिरिशं देवं चन्द्रावयवभूषएगम् ॥५०॥ विलोहितं लेलिहानं मादित्यं परमेष्टिनम् । उग्नं पशुर्पात भीमं भास्करं तमसः परम् ॥५१॥ इत्येतलक्षणं प्रोक्तं युगानां वे समासतः । श्रतीतानागतानां वे यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥५२॥ मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाएयेवान्तराणि वै। व्याख्यातानि न संदेहः कल्पः कल्पेन चैव हि ॥५३॥ चैतेषु अतीतानागतेषु वै । तूल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत् ॥५४॥ मन्बन्तरेषु एवम्को भगवता किरीटी इवेतवाहनः । बभार परमां भक्तिमीशानेऽव्यभिचारिएगीम् ॥५५॥ तमृषि कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् । सर्वज्ञं सर्वकत्तारं साक्षाद्विष्णुं व्यवस्थितम् ॥५६॥ पुनर्व्यासः पार्थं परपुरख्यम् । कराभ्यां सुशुभाभ्याञ्च संस्पृश्य प्रणतं मुनिः ॥५७॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽसि त्वाहशोऽन्यो न विद्यते । त्रैलोक्ये शङ्करे नूनं भक्तः परपुरञ्जयः ॥५८॥ हष्टवानिस तं देवं विश्वाक्षं विश्वतो मुखम् । प्रत्यक्षमेव सर्वेषां रुद्रं सर्वजगन्मयम् ॥५९॥ ज्ञानं तदैरुवरं दिव्यं यथावद्विदितं त्वया । स्वयमेव हृषीकेशः प्रीत्योवाच सनातनः ॥६०॥ गच्छ गच्छ स्वकं स्थानं न शोकं कत्त महीस । व्रजस्व परया भक्त्या शरएयं शरणं शिवम् ॥६१॥ एवमुक्त्वा स भगवाननुग्रह्याजु[°]नं प्रभुः। जगाम शङ्करपुरीं समाराघयितुं भवम्॥६२॥ पार्डवेयोऽि तद्वाक्यात् सम्प्राप्य शरणं शिवम् । सन्त्यज्य सर्वकर्माणि ज्ञात्वा तत्परमोऽभवत् ॥६३॥ नाजु नेन समः शम्भोर्भवत्या भूतो भविष्यति । सुवत्वा सत्यवतीसूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥६४॥ तस्मै भगवते नित्यं नमः शान्ताय घीमते । पाराशयीय मुनये व्यासायामिततेजसे ॥६५॥ साक्षाद्विष्णुरेव सनातनः । को ह्यन्यस्तत्वतो रुद्रं वेत्ति तं परमेश्वरम् ॥६६॥ नमस्कुरुध्वं तमृषि कृष्णं सत्यवतीसुतम् । पाराशर्यं महात्मानं योगिनं विष्णुमन्ययम् ॥६७॥ एवमुक्तास्तु मुनयः सर्वं एव समाहिताः । प्रणेमुस्तं महात्मानं व्यासं सत्यवतीसृतम् ॥६८॥ इति श्री कीर्मे महापूराणे पूर्वभागे व्यासाजु नसंवादे युगवर्मीनामैकोनित्रशोऽध्याय: ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

प्राप्य वाराणसीं दिव्यां कृष्णद्वेपायनो मुनिः । किमकार्षीन्महाबुद्धिः श्रोतुं कौतूहलं हि नः ॥१॥
सूत उवाच

प्राप्य वाराणसी दिन्यामुपस्पृश्य महामुनिः । पूजयामास जाह्नव्या देवं विश्वेश्वरं शिवम् ॥२॥ तमागतं मुनि हष्ट्वा तत्र ये निवसन्ति वै । पूजयाश्विकरे व्यासं मुनयो मुनिपुङ्गवम् ॥३॥ पप्रच्छुः प्रणताः सर्वे कथां पापप्रणाशिनीम् । महादेवाश्रयां पुएयां मोक्षवर्मात् सनातनान् ॥४॥ स चापि कथयामास सर्वं भगवानृषिः । माहात्म्यं देवदेवस्य धर्मात् वेदनिदर्शितान् ॥५॥ तेषां मध्ये मुनीन्द्राणां व्यासशिष्यो महामुनिः । पृष्टवान् जैमिनि व्यसं पूढमर्थं सनातनम् ॥६॥

जैमिनिरुवाच

भगवन् संशयश्वैकं छेतुमहीस सर्ववित्। न विद्यते ह्यविदितं भवता परमर्षिणा ॥७॥ केचिद्धयानं प्रशंसित्त धर्ममेवापरे जनाः। ग्रन्ये सांख्यं तथा योगं तपश्चान्ये महर्षयः॥६॥ ब्रह्मचर्यमथो मीनमन्ये प्राहुर्महर्षयः। ग्राहिसा सत्यमप्यन्ये संन्यासमपरे विदुः॥९॥ केचिद्दयां प्रशंसित्त दानमध्ययनं तथा। तीर्थयात्रां तथा केचिदन्ये चेन्द्रियनिग्रहम्॥१०॥ किमेषाश्च भवेच्छ्रेयः प्रबृहि मुनिपुङ्गव । यदि वा विद्यतेऽप्यन्यद् गुह्यं तद्वक्तुमहीस ॥१९॥ श्रुत्वा स जैमिनेर्वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः। प्राह गम्भोरया वाचा प्रणम्य वृषकेतनम्॥१२॥

व्यास उवाच

साधु साधु महाभाग यत् पृष्टं भवता मुने । वक्ष्ये गुह्यतमाद् गुह्यं श्रृग्वन्त्वन्ये महर्षयः ॥१३॥ ईश्वरेग् पुरा प्रोक्तं ज्ञानमेतत् सनातनम् । गूढमप्राज्ञविद्विष्टं सेवितं सूक्ष्मदर्शिभिः ॥१४॥ नाश्रद्धाने दातव्यं नाभवते परमेष्टिनः । नावेदविदुषे देयं ज्ञानानां ज्ञानम्त्तमम् ॥१५॥ मेरुशुङ्को पुरा देवमीशानं त्रिपुरद्विषम् । देवासनगता देवी महादेवमपृच्छत ॥१६॥

देव्युवाच

देवदेव महादेव भक्तानामार्तिनाशन । कथं त्वां पुरुषो देवमिचरादेव पश्यित ॥१७॥ सांख्ययोगस्तपो ध्यानं कर्मयोगश्च वैदिकः । स्रायासबहुलान्याहुर्यानि चान्यानि शङ्कर ॥१८॥ येन विश्वान्तिचित्तानां विज्ञानां योगिनामिष । दृश्यो हि भगवान् सूक्ष्मः सर्वेषामिष देहिनाम् ॥१९॥ एतद् गुह्यतमं ज्ञानं गूढं ब्रह्मादिभेवितम् । हिताय सर्वभक्तानां ब्रूहि कामाङ्गनाशन ॥२०॥

ईश्वर उवाच

भवाच्यमेतद् गूग़र्थं ज्ञानमज्ञैर्वहिष्कृतम् । वक्ष्ये तव यथातत्त्वं यदुक्तं परमिषिभः ॥२१॥ परं गुह्यतमं क्षेत्रं मम वाराणसी पुरी । सर्वेषामेव भूतानां संसाराणकतारिणी ॥२२॥ तिस्मन् भक्ता महादेवि मदीयं व्रतमास्थिताः । निवसन्ति महात्मानः परं निश्चयमास्थिताः ॥२३॥ उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामृत्तमञ्च यत् । ज्ञानानामृत्तमं ज्ञानमिवमुक्तं परं मम ॥२४॥ स्थानान्तरे पिवत्राणि तीर्थान्यायतनानि च । रमशाने संस्थितान्येव दिवि भूमिगतानि च ॥२६॥ भूलोंके नैव संलग्नमन्तरीक्षे ममालयम् । स्रविमुक्ता न पश्यन्ति मुक्ताः पश्यन्ति चेतसा ॥२६॥ रमशानमेतिहृष्ट्यातमिवमुक्तमिति स्मृतम् । कालो भूत्वा जगिददं संहराम्यत्र सुन्दिर ॥२०॥ देवीदं सर्वगृह्याणां स्थानं प्रियतमं मम । मद्भक्ता यत्र गच्छन्ति मामेव प्रविशन्ति ते ॥२६॥ दत्तं जप्तं हृतन्त्रेष्टं तपस्तप्तं कृतन्त्र यत् । ध्यानमध्ययनं ज्ञानं सर्वं तत्राक्षयं भवेत् ॥२९॥ जन्मान्तरसहस्रेषु यत् पापं पूर्वसन्ति । स्रविमुक्ते प्रविष्टस्य तत् पूर्वं व्रजति क्षयम् ॥३०॥ ब्राह्मणाः क्षत्रया वैश्याः श्रद्धा ये वर्णसङ्कराः । स्त्रियो म्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः ॥३१॥ क्रियाः विपीलिकाश्चेत्र ये चान्ये मृग-पक्षिणः । कालेन निधनं प्राप्ता व्यविमुक्ते वरानने ॥३२॥ चन्द्रिक्षमोलयत्स्युक्षा महावृष्यभवाहनाः । शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवाः ॥३२॥ नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्वषो । ईश्वरानुग्रहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥३४॥ मोक्षं सुदुर्लभं ज्ञात्वा संसारश्चातिभीषणम् । स्रश्मना चरणौ हत्वा वाराणस्यां वसेन्नरः ॥३४॥ मोक्षं सुदुर्लभं ज्ञात्वा संसारश्चातिभीषणम् । स्रश्मना चरणौ हत्वा वाराणस्यां वसेन्नरः ॥३४॥

दुर्लभा तपसा चापि पूतस्य परमेश्वरि । यत्र तत्र विपन्नस्य गतिः संसारमोक्षणी ॥३६॥ प्रसादाह्ह्यते ह्यं तो मम शैलेन्द्रनिन्दित । ग्रत्राबुधा न पश्यन्ति मम मायाविमोहिताः ॥३७॥ ग्राबुधा न पश्यन्ति मूढा ये तमसावृताः । विग्मूत्ररेतसां मध्ये संविशन्ति पुनः पुनः ॥३०॥ हन्यमानोऽपि यो देवि विशेद्विष्ठगतैरिष । स याति परमं स्थान यत्र गत्वा न शोचिति ॥३९॥ जन्म-मृत्यु-जरामृक्तं परं याति शिवालयम् । ग्रपुनर्मरणानां हि सा गतिमींभकाङ क्षिणाम् ॥४०॥ यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्येत पिएडतः । न दानैर्ने तपोभिश्च न यज्ञैनीपि विद्यया ॥४१॥ प्राप्यते गतिहत्कृष्टा याऽविमुक्ते तु लभ्यते । नानावर्णा विवर्णाश्च चएडालाद्या जुगुप्स्ताः ॥४२॥ प्राप्यते पर्तेहत्व ये प्रकृष्टे स्तापकैस्तथा । भेषजं परमं तेषामिवमुक्तं विदुर्बुद्याः ॥४२॥ ग्रावमुक्तं परं ज्ञानमिवमुक्तं परं पदम् । ग्रावमुक्तं परं तत्वमिवमुक्तं परं शिवम् ॥४५॥ कृत्वा वै नैष्ठिकीं दीक्षामिवमुक्तं वसन्ति ये । त्यां तत् परमं ज्ञानं ददाम्यन्ते परं पदम् ॥४५॥ प्रयागं नैमिषं पुग्यं श्रीशैलोऽय हिमालयः । केदारं भद्रकर्णञ्च गया पृष्करमेव च ॥४६॥ कृत्रक्षेत्रं स्व्रकोटिर्नर्मदा हाटकेश्वरम् । शालप्रामञ्च कुब्जाम् कोकामुलमदुत्तमम् ॥४७॥ प्रभासं विजयेशानं गोकर्णं शङ्कुकर्णकम् । एतानि पुग्यस्थानानि त्रैलोक्ये विश्रुतानि च ।

न यास्यन्ति परं मोक्षं वाराणस्यां यथा मृताः ॥४८॥ वाराग्रस्यां विशेषेग् गङ्गा त्रिपथगामिनी । प्रविष्टा नाशयेत् पापं जन्मान्तरशतैः कृतम् ॥४९॥ भ्रत्यत्र सुलभा गङ्गा श्राद्धं दानं तथा जगः । व्रतानि सर्वमेवैतद्वाराए।स्यां सुदुलभम् ॥५०॥ यजेत् तु जुहुयान्नित्यं ददात्य च्चयतेऽपरान् । वायुभक्षश्च सततं वाराणस्यां स्थितो नरः ॥५१॥ यदि पापो यदि शठो यदि चाधार्मिको नरः । वारासासी समासाद्य पुनाति स कुलत्रयम् ॥१२॥ वाराणस्यां महादेवं ये स्तुवन्त्यर्चयन्ति च । सर्वपापविनिम् कास्ते विज्ञेया गणेश्वराः । ५३॥ यन्यत्र योगाज् ज्ञानाद्वा संन्यासादयवाऽन्यतः । प्राप्यते तत् परं स्थानं सहस्रे णैव जन्मना ॥५४॥ ये भक्ता देवदेवेशे वाराणस्यां वसन्ति वै। ते विन्दन्ति परं मोक्षमेकेनैव तु जन्मना ॥५५॥ यत्र योगस्तथा ज्ञानं मुक्तिरेकेन जन्मना । श्रविमुक्तं समासाद्य नान्यद् गच्छेत् तपोवनम् ॥५६॥ यतो मया न मुक्तं तदविमुक्तमिति स्मृतम् । तदेवं गुद्धां गुद्धानामेतद्विज्ञाय मुच्यते ॥५७॥ ज्ञान-ध्याननिविष्टानां परमानन्दिमच्छताम् । या गतिर्विहिता सुभु साविमुक्ते मृतस्य तु ॥ १५॥ यानि कान्यविम् कानि देवै रुक्तानि नित्यशः । पुरी वाराणसी तेभ्यः स्थानेभ्योऽप्यधिका शुभा।। ५९।। यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः । व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तथैव ह्यविमुक्तकम् ॥६०॥ यत् तत् परतरं तत्त्वमिवमुक्तमिति स्मृतम् । एकेन जन्मना देवि वाराणस्यां तदाप्यते ॥६१॥ भ्रमध्ये नाभिमध्ये च हृदयेऽपि च मूर्द्धनि । यथाविम्क्तमादित्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम् ॥६२॥ वरणायास्तथा चास्या मध्ये वाराणसी पुरी । तत्रैव संस्थितं तत्त्वं नित्यमेवाविमक्तकम् ॥६३॥ वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति । यथा नारायणो देवो महादेवादिवेश्वरात् ॥६४॥ तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः । उपासते मां सततं देवदेवः पितामहः ॥६५॥ महापातिकनो ये च ये तेभ्यः पापकृत्तमाः । वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम्।।६६॥ तस्मान्मुसुर्नियतो वसेच्चामर्णान्तिकम् । वाराणस्यां महादेवि ज्ञानं लब्ध्वा विमूच्यते ॥६७॥ किन्तु विद्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसाम् । ततो नैव चरेत् पापं कायेन मनसा गिरा ॥६८॥ एतद्रहस्यं वेदानां पुराणानां द्विजोत्तमाः । ग्रविमुक्ताश्रयं ज्ञानं न किन्चिद्वेद्यि तत्परम् ॥६९॥ देवतानामृषीएााञ्च श्राग्वतां परमेष्ठिनाम् । देव्ये देवेन कथितं सर्वपापविनाशनम् ॥७०॥

यथा नारायणः श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तमः । यथेश्वराणां गिरिशः स्थानानाञ्चैतदुत्तमम् ॥७१॥
यैः समाराधितो रुद्रः पूर्विस्मन्नेव जन्मिन । ते विन्दिन्त परं क्षेत्रमिवमुक्तं शिवालयम् ॥७२॥
किलकत्मषसम्भूता येषामुपहता मितः । न तेषां वीक्षितुं शवय स्थानं तत् परमेष्टिनः ॥७३॥
ये स्मरिन्त सदा कालं विन्दिन्त च पुरीमिमाम् । तेषां विनश्यित क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम् ॥७४॥
यानि चेह प्रकुर्वन्ति पातकानि कृतालयाः । नाशयेत् तानि सर्वाणि देवः कालतनुः शिव ॥७४॥
ग्रागच्छतामिदं स्थानं सेवितुं मोक्षकाङ्क्षिणाम् । मृतानां वै पुनर्जन्म न भूयो भवमागरे ॥७६॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः । योगी वाष्यथवाऽयोगी पापी वा पुण्यकृत्तमः ॥७७॥
न लोकवचनात् पित्रोर्न चैव गुरुवादतः । मित्रस्कमणीया स्यादिवमुक्तागितं प्रति ॥७६॥

स्त उवाच

एवमुक्त्वाथ भगवान् व्यासो वेदविदां वरः । सहैव शिष्यप्रवरैर्वाराणस्यां चचार ह ॥७९॥ इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे वाराणसीमाहात्म्यं नाम त्रिशोऽध्यायः ॥३०॥

एकोत्रिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

स शिष्यैः संवृतो धीमान् गुरु द्वेपायनो मुनिः । जगाम विपुलं लिङ्गमोङ्कारं मुक्तिदायकम् ॥ १॥ तत्राभ्यर्च्य महादेवं शिष्यैः सह महामुनिः । प्रोवाच तस्य माहात्म्यं मुनीनां भावितात्मनाम्॥ २ ॥ इदं तद्विमलं लिङ्गमोङ्कारं नाम शोभनम् । ग्रस्य स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ३॥ एतत् तत् परमं ज्ञानं पञ्चायतनमृत्तमम् । श्रचितं मुनिभिर्नित्यं वाराणस्यां विमोक्षदम् ॥ ४ ॥ पञ्चायतनविग्रहः । रमते भगवान् रुद्रो जन्तूनामपवर्गदः ॥ ५॥ साक्षान्महादेव: यत्तत् पाजुपतं ज्ञानं पञ्चार्थमिति कथ्यते । तदेतद्विमलं लिङ्गमोङ्कारे समवस्थितम् ॥ ६॥ शान्त्यतीता परा शान्तिविद्या चैव यथाक्रमम् । प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च पञ्चार्थं लिङ्गमैश्वरम् ॥ ७॥ पञ्चानामि देवानां ब्रह्मादीनां यदाश्रयम् । ग्रोङ्कारबोधितं लिङ्गं पञ्चायतनमुच्यते ॥ ६॥ पञ्चायतनमन्ययम् । देहान्ते तत् परं ज्योतिरानन्दं विशते पुनः ॥ ९॥ संस्मरेदैश्वरं लिङ्गं श्रत्र देवर्षयः पूर्वं सिद्धा ब्रह्मर्षयस्तथा । उपास्य देवमीशानं प्राप्तत्रन्तः परं पदम् ॥१०॥ मत्स्योदर्यास्तटे पूर्णं स्थानं गुह्यतमं शुमम् । गोचर्ममात्रं विप्रेन्द्रा द्योङ्कारेश्वरमुत्तमम् ॥११॥ लिङ्गं मध्यमेश्वरम्त्तमम् । विश्वेश्वरं तथोङ्कारं कपर्दीश्वरम्त्तमम् ॥१२॥ एतानि गुद्यलिङ्गानि वाराणस्यां द्विजोत्तमाः । न कश्चिदिः जानाति विना शम्भोरनुग्रहात् ॥१३॥ एवम्बस्वा ययौ कृष्णः पाराशयौ महाम्बिः। कृत्तिवामेश्वरं लिङ्गं द्रष्टुं देवस्य श्लिनः।।१४।। समभ्यच्यं तथा शिष्यैमीहात्म्यं कृत्तिवाससः । कथयामास विप्रेभ्यो भगवान् ब्रह्मवित्तमः ॥१४॥ श्रिमिन् स्थाने पूरा दैत्यो हस्ती भूत्वा भवान्तिकम्। ब्राह्मणान् हन्तुमायातो येऽत्र नित्यमुपासते ॥१६॥ तेषां लिङ्गान्महादेवः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः । रक्षणार्थं द्विजश्रेष्ठा भक्तानां भक्तवत्सलः ॥१७॥ हुत्वा गजाकृति दैत्यं श्लेनावज्ञया हरः। वासस्तस्याकरोत् कृत्ति कृत्तिवासेश्वरस्ततः ॥१६॥ प्रत्र सिद्धि परां प्राप्ता सुनयो सुनिपुङ्गवाः । तेनैव च शरीरेण प्राप्तास्तत् परमं पदम् ॥१९॥ विद्या विद्येश्वरा रुद्धाः शिवा ये च प्रकीर्तिताः । कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं नित्यमावृत्य संस्थिताः ॥२०॥ ज्ञात्वा किल्युगं घोरमधर्मबहुलं जनाः । कृत्तिवासं न मुश्चिन्ति कृतार्थास्ते न संशयः ॥२१॥ जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षोऽन्यत्राप्यते न वा । एकेन जन्मना मोक्षः कृत्तिवासे तु लभ्यते ॥२२॥ प्रालयः सर्वसिद्धानामेतत् स्थानं वदन्ति हि । गोपितं देवदेवेन महादेवेन शम्भुना ॥२३॥ पुगे युगे ह्यत्र दान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः । उपासते महादेवं जपन्ति शतरुद्धियम् ॥२४॥ स्तुवन्ति सततं देवं महादेवं त्रियम्बकम् । ध्यायन्तो हृदये नित्यं स्थाणुं सर्वोत्तमं शिवम्॥२४॥

गायन्ति सिद्धाः किल गीतकानि वाराणसीं ये निवसन्ति विप्राः ।
तेषामथैकेन भवेन मुक्तिर्ये कृत्तिवासं शरगं प्रपन्नाः ॥२६॥
सम्प्राप्य लोके जगतामभीष्टं सुदुर्लभं विप्रकुलेषु जन्म ।
ध्यानं समादाय जपन्ति छदं ध्यायन्ति चित्ते यतयो महेशम् ॥२७॥
ग्राराधयन्ति प्रभुमीशितारं वाराणसी-मध्यगता मुनीन्द्राः ।
यजन्ति यज्ञैरभिसन्धिहीनाः स्तुवन्ति छदं प्रणमन्ति शम्भुम् ॥२८॥
नमो भवायामलभावधाम्ने स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम् ।
समरामि छदं हृदये निविष्टं जाने महादेवमनेकरूपम् ॥२९॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे वाराणसीमाहात्म्यं नाम एकत्रिशोऽध्यायः॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

समाभाष्य मनीन् धीमान् देवदेवस्य शूलिनः । जगाम लिङ्गं तद् द्रष्टुं कपर्दिश्वरमव्ययम् ॥ १॥ स्नात्वा तत्र विघानेन तर्पयत्वा पितृन् द्विजाः । पिशाचमोचने तीर्थे पूजयामास शूलिनम् ॥ २॥ तत्राश्चर्यमपद्यंस्ते मुनयो गुरुणा सह । मेनिरे क्षेत्रमाहात्म्यं प्रणेमुर्गिरिशं हरम् ॥ ३॥ कश्चिदभ्यागमत् तूर्णं शार्दूलो घोररूपधृक् । मृगीमेकां भक्षयितुं कपर्दीश्वरम्त्तमम्।। ४॥ तत्र सा भीतहृदया कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणम् । धावमाना सुसम्भ्रान्ता व्याघस्य वशमागता ॥ ५॥ तां विदार्यं नखैस्तीक्ष्णैः शार्दुलः सुमहाबलः । जगाम चान्यद्विजनं स दृष्ट्वा तान् सुनीश्वरान् ॥ ६ ॥ मतमात्रा च सा बाला कपर्दीगाग्रतो मृगी । ग्रहश्यत महाज्वाला व्योम्नि सूर्यसमप्रभा ॥ ७॥ त्रिनेत्रा नीलकर्ठा च शशङ्काङ्कितशेखरा । वृषाधिरूढा पुरुषेस्तादृशैरेव संयता ।। = ।। पुष्पवृष्टि विमुद्धन्ति खेचरास्तस्य मूर्द्धनि । गणेश्वरः स्वयं भूत्वा न दृष्टस्तत्क्षणात् ततः ॥ ९ ॥ जैमिनिप्रमुखास्तदा । कपर्दीश्वरमाहात्म्यं पप्रच्छुर्ग्रहमच्युतम् ॥१०॥ दृष्ट्वैतदाश्चर्यवरं तेषां प्रोवाच भगवान् देवाग्रे चोपविश्य सः । कपर्दीशस्य माहात्म्यं प्रणम्य वृषभध्वजम् ॥११॥ इदं देवस्य तल्लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम् । स्मृत्यैवाशेषपापीघं क्षिप्रमस्य विनश्यति ॥१२॥ कामकोधादयो दोषा वाराणस्यां निवासिनः । विप्राः सर्वे विनश्यन्ति कपर्दीश्वरपूजनात् ॥१३॥ तस्मात् सदैव द्रष्टव्यं वदर्शियरः तमम् । पूजितव्यं प्रयत्नेन स्तोतव्यं वैदिकैः स्तवैः ॥१४॥ ध्यायतामत्र नियतं योगिनां शान्तचेतसाम् । जायते योगसिद्धिश्च षरमासेन न संशयः ॥१५॥ ब्रह्महत्यादिपापानि विनश्यन्त्यस्य पूजनात् । पिशाचमोचने कुएडे स्नातस्यात्र समीपतः ॥१६॥ म्रस्मिन् क्षेत्रे पुरा विप्रास्तपस्त्री शंसितव्रतः । शङ्कुकर्णं इति ख्यातः पूजयामास शूलिनम् ॥१७॥ जजाप रुद्रमिनशं प्रणवं रुद्ररूपिणम् । पुष्प - धूपादिभिः स्तौत्रैनमस्कारैः प्रदक्षिणैः ॥१८॥ उवास तत्र योगात्मा कृत्वा दीक्षान्तु नैष्टिकीम् । कदाचिदागतं प्रेतं पश्यति स्म क्षुवान्वितम् ॥१९॥ ग्रस्थिचर्मिपनद्धाङ्गं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः । तं दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठः कृपया परया युतः ॥२०॥ प्रोवाच को भवान् कस्माद्देशाद्देशिममं गतः । तस्भै पिशाचः क्षुधया पीड्यमानोऽन्नवीद्वचः ॥२१॥ पूर्वजन्मन्यहं विष्रो धन-धान्यसमन्वितः । पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तः क्द्रम्बभरणोत्सुकः ॥२२॥ न पूजिता मया देवा गावोऽप्यतिथयस्तथा। न कदाचित् कृतं पुर्यमल्पं वानल्पमेव वा ॥२३॥ भगवान् रुद्रो गोवृषेश्वरवाहनः । विश्वेश्वरो वाराणस्यां दृष्टः स्पृष्टो नमस्कृतः॥२४॥ चिरेए। कालेन पञ्चत्वमहमागतः । न दृष्टं तन्मया घोरं यमस्य वदनं मुने ॥२४॥ ईट्यों ये निमापन्न पैशाचीं क्षुधयादितः । पिपासया परिक्रान्तो न जानामि हिताहितम्॥२६॥ यदि कञ्चित् समुद्धत्तु[°] मुपायं पश्यसि प्रभो । कुरूव तं नमस्तुभ्यं त्वामहं शर्एां गतः ॥२७॥ इत्युक्तः शङ्कुकर्णोऽय पिशाचिमदमब्रवीत् । त्वादशो न हि लोकेऽरिमन् विद्यते पुर्यकृत्तमः । यत् त्वया भगवान् पूर्वं हष्टो विश्वेश्वरः शिवः ॥२५॥

संस्पृष्टो वन्दितो भूयः कोऽन्यस्त्रत्सहशो भुवि । तेन कर्भविपाकेन देशमेतं समागतः ॥२९॥ स्नानं कुरुव शीघ्रं त्वमस्मिन् कुएडे समाहितः । येनेमां कुत्सितां योनि क्षिप्रमेव प्रहास्यसि ॥३०॥

स एवमुक्तो मुनिना पिशाचो दयावता देववरं त्रिनेत्रम्। स्मृत्वा कपर्दिश्वरमीशितारं चक्रे समाधाय मनोऽवगाहम् ॥३१॥ तदावगाहान्मुनिसन्निधाने ममार दिव्याभरगोपपन्नः । ग्रदश्यतार्कप्रतिमे विमाने शशाङ्कचिह्नाङ्कितचारुमौलिः ॥३२॥ विभाति रुद्रैरभितो दिविष्ठैः समावृतो योगिभिरप्रमेयैः। बालिखल्यादिभिरेष देवो यथोदये भानुरशेषदेवः॥३३॥ स्तुवन्ति सिद्धा दिवि देवसङ्घा नृत्यन्ति दिव्याप्सरसोऽभिरामाः। मुञ्चन्ति वृष्टि कुसुमालिमिश्रां गन्धव-विद्याधर-किन्नराद्याः।।३४॥ संस्तूयमानोऽय म्नोन्द्रसंघैरवाप्य बोधं भगवत्प्रसादात्। यत्र विभाति रुद्रः ॥३५॥ समाविशन्मएडलमेवमग्र्यं त्रयीमयं दृष्ट्वाऽविमुक्तं स पिशाचभूतं मुनिः प्रहृष्टो मनसा महेशम् । विचिन्त्य रुद्रं कविमेवमग्र्यं प्रणम्य तुष्टाव कर्पादनं तम् ॥३६॥

शङ्कुकर्ण उवाच

नमामि नित्यं परतः परस्ताद् गोप्तारमेकं पुरुषं पुरागम्। व्रजामि योगेश्वरमीशितारमादित्यमिन किललाधिरूढम् ॥३७॥ त्वां ब्रह्मपारं हृदि सिन्निविष्टं हिरएमयं योगिनमादिहीनम् । व्रजामि स्द्रं शरणं दिविष्ठं महामुनि ब्रह्ममयं पवित्रम् ॥३८॥ सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं सहस्रवाहुं तमसः परस्तात्। त्वां ब्रह्मपारं प्रणमामि शम्भं हिरएयगभीधिपति त्रिनेत्रम् ॥३९॥ प्रसृतिर्जगतो विनाशो येनाहृतं सर्वोमदं शिवेन। तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये।।४०।। श्रलिङगमालोकविहीनरूपं स्वयंत्रभू चित्र्रातमैक रुद्रम् । तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति ॥४१॥ यं योगिनस्त्यक्तसबीजयोगा लब्ध्वा समाधि परमात्मभूताः। पर्वान्त देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं तद्व ह्यपारं भवतः स्वरूपम् ॥४२॥ न यत्र नामानि विशेषत्षिनं ताहरो तिष्ठति यत्स्वरूपम्। तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं स्वयम्भुतं त्वां शरणं प्रपद्ये॥ ३॥ विदेहं स ब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम्। यद्वेदवेदाभिरता पद्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं तद्व ह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥४४॥ यतः प्रधानं पुरुषः पुरागो विवर्त्तते यं प्रणमन्ति देवाः। नमामि तं ज्योतिषि सिन्निविष्ट कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम् ॥४५॥ व्रजामि नित्यं शरणां महेशं स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम्। शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलि पिनािकनं त्वां शरएां व्रजािम ॥४६॥

स्तुत्वैवं शङ्क्ष्वस्तांऽसो भगवन्तं कपर्दिनम् । पपात दराडवद् भूमो प्रोच्चरन् प्रणवं शिवम् ॥४०॥ तत्क्षणात् परमं लिङ्ग प्रादुर्भूतं शिवात्मकम् । ज्ञानमानन्द्रमद्वैतं काटिकालाग्निसिन्नमम् ॥४५॥ शङ्क्ष्वकणांऽथ मुक्तात्मा धर्मातमा सर्वगोऽमलः । निलिल्ये विमले लिङ्गे तदद्भुतिमवाभवत् ॥४९॥ एतद्रहस्यमाख्यातं माहात्म्यञ्च कपर्दिनः । न किच्छिति तमसा विद्वानप्यत्र मुह्यति ॥५०॥ य इमां श्रुणुयान्नित्यं कथां पापप्रणाशिनीम् । भक्तः पापविमुक्तात्मा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ॥५१॥ पठेच सततं शुद्धो ब्रह्मपारं महास्तवम् । प्रातर्मध्याह्मसमये स योगं प्राप्नुयान्नरः ॥५२॥ इहैद नित्यं वत्स्यामो देवदेवं कपर्दिनम् । द्रक्ष्यामः सततं देवं पूज्यामिस्रलोचनम् ॥५३॥ इत्युक्तत्वा भगवान् व्यासः शिष्योःसह महाद्युतिः । उवास तत्र युक्तात्मा पूज्यत् वै कपर्दिनम् ॥५४॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे वाराणसीमाहात्म्यं नाम द्वात्रिशोध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिशोऽध्यायः

स्त उवाच

कौपीनवसनाः केचिदपरे चाप्यवाससः । ब्रह्मचर्यरताः शान्ता दान्ता वै ज्ञानतत्पराः ॥ ८ ॥ दृष्या द्वैपायनं विप्राः शिष्यैः परिवृतं मुनिम् । पूजियत्वा यथान्यायिवदं वचनब्रुवन् ॥ ९ ॥ को भवान् कुत श्रायातः सह शिष्यैर्महामुने । प्रोचुः पैलादयः शिष्यास्तानृषीन् ब्रह्मभावितान्।।१०।। श्रयं सत्यवतीसूनुः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः । व्यासः स्वयं हृषीकेशो येन वेदाः पृथक्कृताः ॥११॥ यस्य देवो महादेव: साक्षाद् देव: पिनाकधृक् । ग्रंशांशेनाभवत् पुत्रो नाम्ना शुक्त इति प्रभुः ॥१२॥ यो वै साक्षान्महादेवं सर्वभावेन शङ्करम् । प्रपन्नः परया भनत्या यस्य तज्ज्ञानमैश्वरम् ॥१३॥ ततः पाशुपताः सर्वे ते च हृष्टतनू्रहाः । ऊचुरव्यग्रमनसो व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥१४॥ भगवन् भवता ज्ञातं विज्ञानं परमेष्ठिनः । प्रसादाद् देवदेवस्य यत्तन्माहेश्वरं पदम् ॥१५॥ तद्वदास्माकमव्यग्रं रहस्यं गुह्ममुत्तमम् । क्षिप्रं पश्येम तं देवं श्रुत्वा भगवतो मुखात् ॥ १॥ विसर्जयित्वा ताब्छिष्यान् सुमन्तुप्रमुखांस्तदा । प्रोवाच तत् परं ज्ञानं योगिम्यो योगवित्तमः ॥१७॥ तत्क्षणादेव विमलं सम्भूतं ज्यातिकत्तमम् । लीनास्तत्रैव ते विप्राः क्षणादन्तरघीयत ॥१५॥ ततः शिष्यान् समाहूय भगवान् ब्रह्मवित्तमः । प्रोवाच मध्यमेशस्य माहात्म्यं पैलपूर्वकान् ॥१९॥ श्चित्तिम् स्थाने स्वयं देत्रो देव्या सह महेश्वरः । रमते भगवान् नित्यं रुद्रेश्च परिवारितः ॥२०॥ म्रत्र पूर्वं हृषीकेशो विश्वात्मा देवकीमुतः । उवास वत्सरं कृष्णः सदा पाशुप्तैर्वृतः ॥२१॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो रुद्राध्ययनतत्परः । श्राराधयन् हरिः शम्भुं कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ॥२२॥ तस्य ते बहुवः शिष्या ब्रह्मचर्यपरायणाः । लब्ध्वा तद्वचनाज्ज्ञानं दृष्टवन्तो महेश्वरम् ॥२३॥ तस्य देवो महादेवः प्रत्यक्षं नीललोहितः । ददौ कृष्णस्य भगवान् वरदो वरमुत्तमम् ॥२४॥ येऽचयिष्यन्ति गोविन्द्रं मद्भक्ता विधिपूर्वकम् । तेषां तदैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति जगनमय।।२५।। त्वमीशोऽर्चियतव्यश्च ध्यातव्यो मत्परैर्जनैः । भविष्यसि न संदेहो मत्प्रमादाद् द्विजातिभिः॥२६॥ ये च द्रक्ष्यन्ति देवेशं स्नात्वा देवं पिनाकिनम् । ब्रह्मद्रन्यादिकं पापं तेषामाशु विनश्यति ॥२७॥ प्राणांस्त्यजन्ति ये विप्राः पापकर्मरता ग्रपि । ते यान्ति परमं स्थानं नात्र कार्या विचारगा।।२८।। धन्यास्तु खलु ये विप्रा मन्दाकिन्यां कृतोदकाः । प्रर्चयन्ति महादेवं मध्यमेश्वरमुत्तमम् ॥२९॥ स्नानं दानं तपः श्राद्धं पिएडनिर्वपणन्तिवह । एकैकशः कृतं विप्राः पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥३०॥ सिन्नहत्यामुपम्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे । यत् फलं लभते मर्त्यस्तस्माद् दशगुणन्त्विह ॥३१॥ एवमुक्त्वा महायोगी मध्यमेशान्तिके प्रभुः । उवास सुचिरं कालं पूजयत् वै महेश्वरम् ॥३२॥ इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे वाराणसीमाहात्म्यं नाम त्रयिश्वशोध्यायः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

ततः सर्वाणि गुह्यानि तीर्थान्यायतनानि च । जगाम भगवान् व्यासो जैमिनिप्रमुखैर्वृतः ॥ १ ॥ प्रयागं परमं तीर्थं प्रयागादिवकं शुभम् । विश्वरूपं तथा तीर्थं कालतीर्थमनुत्तमम् ॥ २ ॥ प्राकाशाख्यं महातीर्थं तीर्थञ्जैवार्षभं परम् । स्वर्लीनञ्च महातीर्थं गौरीतीर्थमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ प्राजापत्यं तथा तीर्थं स्वर्णद्वारं तथैव च । जम्बुकेश्वरिमत्युक्तं चर्माख्यं तीर्थमुत्तमम् ॥ ४ ॥ गयातीर्थं महातीर्थं तीर्थंचैव महानदी । नारायणं परं तीर्थं वायुतीर्थमनुत्तमम् ॥ ४ ॥

ज्ञानतीर्थं परं गुह्यं वाराहं तीर्थमूत्तमम् । यमतीर्थं महापुर्ग्यं तीर्थं संवर्त्तकं परम् ॥ ६॥ कालकेश्वरमुत्तमम् । नागतीर्थं सोमतीर्थं सूर्यतीर्थं तथैव च।। ७॥ श्रग्नितीर्थं द्विजश्रेष्ठाः मिणकर्णमनुत्तमम् । घटोत्कचं तीर्थवरं श्रीतीर्थद्य पितामहम् ॥ ८॥ पर्वताख्यं महापूर्यं गङ्गातीर्थन्तु देवीशं ययातेस्तीर्थम्तमम् । कापिलञ्जैव सोमेशं ब्रह्मतीर्थमन्तामस् ॥ ९॥ यत्र लिङ्गं पुरानीय स्नातुं ब्रह्मा यदा गतः । तदानीं स्थापयामास विष्णुस्तिलिङ्गमैश्वरम् ॥१०॥ ततः स्नात्वा समागत्य ब्रह्मा प्रोवाच तं हरिम् । मयाऽनीतिमदं लिङ्गं कस्मात् स्थापितवानिस ॥११॥ तमाह विष्णुस्त्वत्तोऽपि रुद्रे भक्तिर्देढा यतः । तस्मात् प्रतिष्ठितं लिङ्गं नाम्ना तव भविष्यति ॥१२॥ भूतेश्वरं तथा तीर्थं तीर्थं धर्मसमुद्भवम् । गन्धर्वतीर्थं मृशुभं वाह्नेयं तीर्थमुत्तमम् ॥१३॥ दौर्वासिकं होमतीर्थं चन्द्रतीर्थं द्विजोत्तमाः । चित्राङ्गदेश्वरं पुरायं पुरायं विद्याधरेश्वरम् ॥१४॥ केदा रतीर्थ मुग्राख्यं कालञ्जरमनुत्तमम् । सारस्वतं प्रभासञ्च भद्रकर्णं तथा गुभम् ॥१५॥ लोकिकास्यं महातीर्थं तीर्थञ्चैव हिमालयम् । हिरएयगर्भं गोप्रस्यं तीर्थञ्चैव वृषध्वजम् ॥१६॥ व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम् । त्रिलोचनं महातीर्थं लोलार्कञ्चोत्तराह्वयम् ॥१७॥ उपशान्तं शिवञ्चेव कपालमोचनं तीर्थं ब्रह्महत्याविनाशनम् । शकेश्वरं महाप्रयमानन्दप्रमुत्तामन् ॥१८॥ एवमादोनि तीर्थानि प्राधान्यात् कथितानि तु । न शक्या विस्तराद्वक्तुं तीर्थसंख्या द्विजोत्तामाः ॥१८॥ तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाऽभ्यच्ये कपर्दिनम् । उपोष्य तत्र तत्रासौ पाराशर्यो महामुनिः ॥२०॥ तर्पयित्वा पितृन् देवान् कृत्वा पिएडप्रदानकम् । जगाम पुनरेवापि यत्र विश्वेश्वरः शिवः ॥२१॥ स्नात्वाऽभ्यच्यं महालिङ्गं शिष्यैः सह महामुनिः । उवाच शिष्यान् घर्मात्मा यथेष्टं गन्तुमर्ह्थ ॥२२॥ ते प्रणम्य महात्मानं जग्मः पैलादयो द्विजाः । वासञ्च तत्र नियतो वाराणस्यां चकार सः ॥२३॥ शान्तो दान्तिस्त्रिषवरां स्नात्वाऽभ्यचर्षं पिनाकिनम् । भैक्षाहारी विशुद्धात्मा ब्रह्मचर्यपरायणः ॥२४॥ कदाचित तत्र वसता व्यासेनामिततेजसा । भ्रममाणेन भिक्षा वै नैव लब्बा द्विजोत्तमाः ॥२५॥ कोधावृततनुर्नराएगामिह वासिनाम् । विघ्नं सृजामि सर्वेषां येन सिद्धिहि हीयते ।।२६॥ तत्क्षणात् सा महादेवी शङ्करार्द्धशरीरिए। प्रादुरासीत् स्वयं प्रीत्या वेषं कृत्वा तु मानुषम्॥२७॥ भो भो व्यास महाबुद्धे शप्तव्या न त्त्रया पुरी । ग्रहाण भिक्षां मत्तस्त्वमुक्तवेवं प्रददौ शिवा ॥२८॥ उवाच च महादेवी क्रोधनस्त्वं यतो मुने । इह क्षेत्रे न वस्तव्यं कृतघ्नोऽसि यतः सदा ॥२९॥ एवमुक्तः स भगवान् ध्यात्वा ज्ञात्वा परां शिवाम् । उवाच प्रणतो भूत्वा स्तृत्वा च प्रवरैः स्तर्वैः ॥३०॥ चतुर्देश्यामथाष्टभ्यां प्रवेशं देहि शङ्करि । एवमस्त्वत्यनु ज्ञाय देवी चान्तरधीयत ॥३१॥ एवं स भगवान् व्यासो महायोगी पुरातनः । ज्ञात्वा क्षेत्रगुर्णान् सर्वान् स्थितस्तस्याथ पार्व्यतः॥३२॥ एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं सेवन्ति परिखताः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः ॥३३॥

स्त उवाच

यः पठेदिवमुक्तस्य माहात्म्यं श्रृणुयादय । श्रावयेद्वा द्विजाञ्छान्तान् स याति परमां गितम्।।३४।। श्राद्धे वा दैविके कार्ये रात्रावहिन वा द्विजाः । नदीनाञ्चेव तोरेषु देवतायतनेषु च ॥३४॥ स्नात्वा समाहितमनाः कामक्रोधिवर्वजितः । जपेदीशं नमस्कृत्य स याति परमां गितम् ॥३६॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे वाराणसीमाहात्म्यं नाम चतुिक्क्षशोऽध्यायः ॥३४

पूर्वभागे पञ्चित्रंशोऽध्यायः

64

पञ्जत्रिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

माहात्म्यविमुक्तस्य यथावत् समुदोरितम् । इदानीञ्च प्रयागस्य माहात्म्यं ब्रूहि सुव्रत ॥ १ ॥ यानि तीर्थानि तत्रैव दिश्रुतानि महान्ति वै । इदानीं कथयास्माकं भूत सर्वार्थविद भवान् ॥ २ ॥

स्त उवाच

श्रृणुध्वमृषयः सर्वे विस्तरेण ब्रवीमि वः । प्रयागस्य च माहात्म्यं यत्र देवः पितामहः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयेन कथितं कीन्तेयाय महात्मने । यथा युविष्ठिरायेतत् तद्वक्ष्ये भवतामहम् ॥ ४ ॥ निहत्य कीरवान् सर्वान् भ्रातृभिः सह पाथिवः । कोकेन महताविष्ठो मुमोह स युविष्ठिरः ॥ ५ ॥ ग्राचिरेणाथ कालेन मार्कण्डेयो महातपाः । सम्प्राप्तो हास्तिनपुरं राजद्वारे स तिष्ठति ॥ ६ ॥ द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञे कथितवान् द्वुतम् । मार्कण्डेयो द्रष्टुमिन्छुस्त्वामास्ते द्वार्यसौ मुनिः ॥ ७॥ त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमभ्येत्य सत्वरम् । द्वारमभ्यागतस्येह स्वागतं ते महामुने ॥ ६ ॥ ग्राच मे सकलं जन्म ग्राच मे तारितं कुलम् । ग्राच मे पितरस्तुष्टास्त्विय तृष्टे सदा मुने ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयस्तु संपृष्टः प्रोवाच स युधिष्ठिरम् । किमर्थं मुह्यसे विद्वत् सर्वं ज्ञात्वाऽहमागतः ॥ १ ॥ मार्कण्डेयस्तु संपृष्टः प्रोवाच स युधिष्ठिरम् । किमर्थं मुह्यसे विद्वत् सर्वं ज्ञात्वाऽहमागतः ॥ १ ॥ ततो युधिष्ठरो राजा प्रणम्य शिरसाऽब्रवीत् । कथयस्त्र समासेन येन मुच्ये च किल्विषः ॥ १ ॥ ततो युधिष्ठरो राजा प्रणम्य शिरसाऽब्रवीत् । कथयस्त्र समासेन येन मुच्ये च किल्विषः ॥ १ ॥ विहता बहवो युद्धे पुंसो निरपराधितः । ग्रस्माभिः कौरवैः सार्द्धं प्रसङ्गान्मुनिसत्तम ॥ १ ॥ येन हिसा समुद्भूता जन्मान्तरकृतादिष । मुच्येम पातकादद्य तद् भवान् ववतुमहिति ॥ १ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रृणु राजन् महाभाग यन्मां पृच्छसि भारत । प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पापनाशनम् ॥१५॥ तत्र देवो महादेवो रुद्रो विश्वामरेश्वरः । समास्ते भगवान् ब्रह्मा स्वयम्भुः सह दैवतैः ॥१६॥

युधिष्ठिर उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि प्रयागगमने फलम् । मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानाञ्चैव कि फलम्॥१७॥ ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषान्तु कि फलम् । भवतो विदितं ह्यो तत् तन्मे ब्रूहि नमोऽस्तु ते ॥१८॥

मार्कण्डेय उवाच

कथिषण्यामि ते वत्स प्रयागस्नानजं फन्म् । पुरा महिषिभिः सम्यक् कथ्यमानं मया श्रुतम् ॥१९॥
एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । ग्रत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतःस्तेऽपुनर्भवाः॥२०॥
तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति सङ्गताः । बहून्यन्यानि तीर्थानि सर्वपापापहानि तु ॥२१॥
कथितुं नेह शकोमि बहुवर्षशतैरिष् । संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्येह कीर्चनम् ॥२२॥
षष्टिर्धतुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नत्रोम् । यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः ॥२३॥
प्रयागे तु विशेषेण स्वयं वसति वासवः । मण्डलं रक्षति हरिः सर्वदेवैश्च सम्मितम् ॥२४॥

न्यग्रोधं रक्षते नित्यं जूनपाणिमीहेश्वरः । स्थानं रक्षन्ति वे देवाः सर्वपापहरं शुभम् ॥२४॥ स्वकर्मणा वृता लोका नैव गच्छन्ति तत्पदम् । स्वरूपमल्पतरं पापं यस्य चास्ति नराधिप ॥२६॥ प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति सक्षयम् । दर्शनात् तस्य तीर्थस्य नामसङ्कीर्त्तनाद्पि ॥२७॥ मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात् प्रमुच्यते । पञ्च कुएडानिः राजेन्द्र येषां मध्ये तु जाह्नत्री ॥२८॥ प्रयागं विश्वतः पुंसः पापं नश्यति तत्क्षणात् । योजनानां सहस्रेषु गङ्गां स्मरति यो नरः ॥२९॥ श्रिप दुष्कृतकम्मासी लभते परमां गतिम । कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद दृष्ट्या भद्राणि पश्यति॥३०॥ राजेन्द्र सुरलोके महीयते । व्याधितो यदि वा दीनः क्रुद्धो वापि भवेन्नरः ॥३१॥ सर्वपापप्रणाशनम् । यः प्रयागे कृतो वास उत्तीर्णो भवसागरः ॥३२॥ तारकञ्चेव गङ्का यमुनमासाद्य त्यजेत् प्राराान् प्रयत्नतः । ईप्मिताल्लभते कामान् वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥३३॥ दीप्तकाञ्चनवर्णाभैविमानैभानुवर्णिभिः । सर्त्ररत्नमयैदिव्यैनीनाध्वजसपाकुलैः शुभलक्षणः । गोत-वादित्रनिर्घोषः प्रसुप्रः वराङ्गनासमाकीर्गैर्भोदते प्रतिबुध्यते ॥३५॥ यावन्न स्मरते जन्म तावत् स्वर्गे महीयते । तस्मात् स्वर्गात् परिश्रष्टः क्षीणकर्मा नरोत्तमः॥३६॥ हिरएयरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले । तदेव स्मरते तीर्थे स्मरएगात् तत्र गच्छित ॥३७॥ देशे वा यदि वाडरएये विदेशे यदि वा गृहे । प्रयागं स्मरमाएम्तु यस्तु प्राएगान् परित्यजेत् ॥३५॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति मुनिपुङ्गवाः । सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरएमयी ॥३९॥ ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र लोके स गच्छिति । स्त्रीसहस्राकुले रम्ये मन्दाकिन्यास्तटं शुभे ॥४०॥ मोदते मुनिभिः सार्द्धं सुकृतेनेह कर्मणा । सिद्ध-चारण-गन्धर्वेः पूज्यते देव-दानवैः ॥४१॥ ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिभवेत् । ततः शुभानि कर्माणि चिन्तयानः पुनःपुनः ॥ ६२॥ गुरावान् वित्तासम्पन्नो भवतीत्यनुशुश्रुम । कर्माणा मनसा वाचा सत्ये धर्मे प्रतिष्ठितः ॥४३॥ गङ्गा-यमुनयोर्मध्ये यस्तु ग्रामं प्रतीच्छति । सुवर्णमथ मुक्तां वा तथैवान्यत् परिग्रहम् ॥४४॥ स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यच्चनेऽपि वा । निष्फलं तस्य तत् तीर्थं यावत् तद्धनमङ्तुते ॥४५॥ श्रतस्तीर्थे न गृह्णीयात् पुरायेष्वायतनेषु च। निमित्तोषु च सर्वेषु श्रपमत्तो द्विजो भवेत् ॥४६॥ किपलां पाटलां धेनुं यस्तु कृष्णां प्रयच्छति । स्वर्णशृङ्गों रीप्यख्रां चैलकग्ठीं पयस्विनीम् ॥४७॥ तस्या यार्वान्त लोमानि सन्ति गात्रेषु सत्तम । ताबद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥४८॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे प्रयाग-माहात्म्यं नाम पञ्जविशोऽध्यायः ॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स तीर्थयात्राविधिकमम् । म्रार्षेण तु विवानेन ययादृष्टं यथाश्रुतम् ॥१॥ प्रयागतीर्थयात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित् । बलीवर्दं समारूढः श्रृणु तस्यापि यत् फलम् ॥२॥ नरके वसते घोरे समाः कल्पशतायुतम् । ततो निवित्तितो घोरो गवां क्रोवः सदारुणः । सिललञ्च न गृह्णुन्ति पितरस्तस्य देहिनः ॥३॥

ऐश्वयिक्लोभ-मोहाद्वा गच्छेद्यानेन यो नरः । निष्फलं तस्य तत् तीर्थं तस्माद्यानं विवर्जयेत् ॥४॥ गङ्गा-यमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति । ग्रापंण तु विधानेन यथाविभवविस्तरम् ॥४॥ न स पश्यित तं घोरं नरकं तेन कर्मणा । उत्तारान् स कुरून् गत्वा मोदते कालमव्ययम् ॥६॥ वटमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् । स्वर्गलोकानतिक्रम्य सद्रलोकं स गच्छिति ॥७॥ यत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः । लोकपालाश्च पितरः सर्वे ते लोकसंस्थिताः ॥६॥ सन्त्कुमारप्रमुखास्तथा ब्रह्मार्षयोऽपरे । नागाः सुपर्णाः सिहाश्च तथा नित्यं समावते ।

हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः ॥९॥

गङ्गा-यमुनयोर्मध्ये पृथिज्या जघनं स्मृतम् । प्रयागं राजशार्द्रल त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥१०॥ तत्राभिषेक यः कुर्यात् सङ्गमे शंनितव्रतः । तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥११॥ न मातृवचनात् तात न लोकवचनादिष । मतिस्त्कमण्योया ते प्रयागगमनं प्रति ॥१२॥ षष्टिकोटचस्तथापराः । तेषां सान्निध्यमत्रैव तीर्थानां कूरुनन्दन ॥१३॥ या गतिर्योगयुक्तस्य संन्यस्तस्य मनीषिणः । सा गतिस्यजतः प्राणान् गङ्गा - यमुनसङ्गमे ॥१४॥ न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिन् यत्र तत्र युधिष्ठिर । ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु वश्विताः ॥१४॥ एवं दृष्ट्रा तु तत् तीर्थं प्रयागं परमं पदम् । मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा ॥१६॥ कम्बलाश्वतरी नागी यमुनादक्षिणे तटं। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते सर्वपातकैः । १९७॥ तत्र गत्वा नरः स्थानं महादेवस्य धीमतः । समस्तांस्तारयेत् पूर्वान् दशातीतान् दशावरान्॥१८॥ कृत्वाऽभिषेकन्तु नरः मोऽश्वमेधफलं लभेत् । स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥१९॥ पूर्वपार्वे तु गङ्गायास्त्रैलोक्ये ख्यातिमान् नृप । अवटः सर्वसामुद्रः प्रतिष्ठानश्च विश्रुतम् ॥२०॥ ब्रह्मचारी जितकोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति । सर्वपापनिशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥२१॥ उत्तरेण प्रतिष्ठानं भागीरथ्य(स्तु सन्यतः । हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥२२॥ ग्रदवमेधफलं तत्र स्मृतमात्रे तु जायते । यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत् स्वर्गे महायते ॥२३॥ उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हंसपारुडुरे । परित्यजित यः प्राणान् श्रुणु तस्यापि यत् फलम्॥२४॥ पष्टितर्षशतानि च । ग्रास्ते स पितृभिः सार्द्धं स्वर्गलोके नराधिप ॥२५॥ षष्टिवर्षं सहस्राणि भ्रथ सन्ध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी समाहितः । नरः शुचिरुपासीत ब्रह्मलोकमवाष्नुयात् ॥२६॥ कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् । कोटिवर्षंसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥२७॥ यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्थतपोवना । सिद्धं क्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा ॥२५॥ क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यघः । दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥२९॥ यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य तु । ताबद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥३०॥ तीर्थानां परमां तीर्थं नदीनां परमा नदी । मोक्षदा सर्वभूतानां महापातिकनामिप ॥३१॥ सर्वत्र मूलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा । गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गा-सागरसङ्गमे ॥३२॥ पापोपहतचेतसाम् । गतिमन्वेषमाणानां नास्ति गङ्गासमा गतिः ॥३३॥ भूतानां पवित्राणां पवित्रश्व मङगलानाश्व मङ्गलम् । महेश्वरात् परिश्रष्टा सर्वपापहरा शुभा ॥३४॥ कृते तु नैमिषं तीर्थं त्रेतायां पुष्करं वरम् । द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कली गङ्गा विशिष्यते ॥३४॥ गङ्गामेव निषेत्रन्ते प्रयागे तु विशेषतः । नान्यत् कालयुगे रौद्रे भेषजं नृप विद्यते ॥३६॥ ग्रकामी वा सकामी वा गङ्गायां यो विषदते । स मृतो जायते स्वर्गे नरकञ्चन पश्यति ॥३७॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे प्रयागमाहारग्यं नाम षट्त्रिशोऽध्यायः ॥३६॥

66

कूर्मपुराणम्

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

षष्टितीर्थंशतानि च । माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गा-यम्नसङ्गमे ॥१॥ षष्टितीर्थसहसाणि गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तास्य यत् फलम् । प्रयागे माघमासे तु श्च्यहं स्नातस्य तत् फलम् ॥२॥ गङ्गा-यमुनयोर्मध्ये करीषाग्निश्व साध्येत् । श्रहीनाङ्गो ह्यरोगश्च पश्चेन्द्रियसमन्वितः ॥३॥ यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु भूमिप । तात्रद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके ततः स्वर्गात् परिश्रष्टो जम्बूद्वीपपतिभवेत् । भुवत्वा स विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थे लभते पुनः॥५॥ जलप्रवेशं यः क्यात् सङ्गमे लोकविश्रते । राहग्रस्तो यथा सोमो विसुक्तः सर्वपातकैः ॥॥ सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते। षष्टिवर्षसहसाणि षष्टिवर्षशतानि स्वर्गतः शक्रलोकेऽभी मुनि-गन्धर्वसेविते । ततो भ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले ॥५॥ श्रयः शिरास्तु यो धारामूर्ध्वपादः पिबेन्तरः । शतवर्षसहसाणि स्वगलोके तस्माद् भ्रष्टस्त् राजेन्द्र ग्रन्निहोत्री भवेन्नरः । भुक्तवाथ विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः॥१०॥ यः शरीरं विकत्तित्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति । विहङ्गैरुपभुक्तस्य श्रृणु तस्यापि यत् फलम् ॥११॥ शतं वर्षमहसाणां सोमलोके महीयते । ततस्तस्मात् परिश्रष्टो राजा भवति धार्मिकः ॥१२॥ गुणवान् रूपसम्पन्नो विद्वांस्तु प्रियवानयवान् । भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते प्रवः॥१३॥ उत्तरे यमुनातीरे प्रयागस्य च दक्षिणे । ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थन्तु परमं स्मृतम् ॥१४॥ एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋगात् तत्र प्रमुच्यते । स्वर्गलोकमवाप्नोति ग्रनुणश्च सदा भन्नेत् ॥१५॥

इति श्रीकीर्मे महापुराणे पूर्वभागे प्रयाग-माहात्म्यं नाम सप्तत्रिशोऽध्यायः ॥३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

तपनस्य मुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा ॥१॥ येनैव निःस्ता गङ्गा तेनैव यमुना गता। योजनानां सहस्रेषु कीर्त्तनात् पापनाशिनी ॥ २ ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर । सर्वपापिविनिमुक्तः पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥ ३ ॥ प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गितम् । ग्राग्नतीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे ॥ ४ ॥ पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थन्त्वनरकं स्मृतम् । तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ ४ ॥ कृष्णपक्षे चतुर्देश्यां स्नात्वा सन्तर्यं वै शुचिः । धर्मराजं महापापेर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥ दश्च तीर्थसहस्राणि दश कोटघंस्तथापराः । प्रयागसंस्थितानि स्युरेवमाहुर्मनीषिणाः ॥ ७ ॥ तिस्रः कोटघोऽद्धकोटिश्च तीर्थानां वायुरत्रवीत् । दिवि भुव्यन्तरीक्षे च तत् सर्वं जाह्नवी स्मृता॥ ६ ॥ यत्र गङ्गा महाभागा स देवस्तत् तपोवनम् । सिद्धक्षेत्रन्तु तज्ज्ञेयं गङ्गातीरं-समाश्रितम् ॥ ९ ॥

यत्र देवो महादेवो माधवेन महेश्वरः । ग्रास्ते देवेश्वरो नित्यं तत् तीर्थं तत् तपोवनम्॥१०॥ इदं सत्यं द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य च । मुहृदाब्र्य जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च ॥११॥ इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं मेध्यमिदं शुभम् । इदं पुर्ण्यमिदं रम्यं पावनं धर्ममुत्तमम् ॥१२॥ महर्षीणामिदं गुद्यं सर्वपापप्रमोचनम् । ग्रत्राधीत्य द्विजोऽध्यायं निर्मलत्वमवाप्नुयात्॥१३॥ यश्चेदं श्रुगुयात्रित्यं तीर्थं पुर्ण्यं सदा शुनिः । जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते ॥१४॥ प्राप्यन्ते तानि तीर्थान सिद्धः शिष्टानुदिशिभः । स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य मा च वक्रमितर्भव ॥१४॥ एवमुक्त्वा स भगवान् मार्करेडयो महामुनिः । तीर्थानि कथयामास पृथिव्यां यानि कानिचित्॥१६॥ भूसमुद्रादिसंस्थानं ग्रहाणां ज्योतिषां स्थितम् । पृष्टः प्रोवाच सकलमुक्त्वाऽथ प्रययो मुनिः ॥१७॥

स्त उवाच

य एवं कत्यमुत्थाय श्रुणोति पठतेऽथवा । मुच्यते सर्वपापैस्तु रुद्रलोकं स गच्छति ॥१८॥ इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे प्रयागमाहात्म्यं नामाष्ट्रित्रकोऽध्यायः ॥३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

एवमुक्तास्तु मुनयो नैमिषीया महामुनिम् । पप्रच्छुरुत्तरं सूतं पृथिव्यादिविनिर्णयम् ॥ १ ॥

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सूत सर्गः स्वायम्भुवः शुभः । इदानीं श्रोतुमिच्छामिक्लोकस्यास्य मग्डलम्॥ २॥ यावन्तः सागर-द्वीपास्तथा वर्षाणि पवताः । वनानि सरितः सूर्यो ग्रहाणां स्थितिरेव च ॥ ३॥ यदाधारमिदं सर्वं येषां पृथ्वी पुरा त्वियम् । नृपाणां तत् समासेन सूत वक्तुमिहार्हसि॥ ४॥

स्त उवाच

वक्ष्ये देवाधिदेवाय विष्णवे प्रभविष्णवे । नमस्कृत्याप्रमेयाय यदुक्तं तेन धीमता ॥ ५ ॥ स्वायम्भुवस्यास्य मनोः प्रागुक्तो यः प्रियव्रतः । पुत्रस्तस्याभवन् पुत्राः प्रजापितसमा दश ॥ ६॥ श्राग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान् द्युतिमांस्तथा । मेधा मेवातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च ॥ ७ ॥ दशमस्तेषां महाबलपराक्रमः । धार्मिको दानितरतः सर्वभूतानुकम्पनः ॥ ५॥ ज्योतिष्मान् मेधाग्निबाह्यत्रास्तु योगपरायणाः । जातिस्मरा महाभागा न राज्ये दिघरे मतिम्॥ ९॥ त्रयो सप्त तान् । जम्बूद्वीपेश्वरं पुत्रमाग्नीध्रमकरोन्नृयः ॥१०॥ सप्तद्वीपेषु प्रियव्रतोऽभ्यषिश्वद्वे तेन मेघातिथि: कृतः । शाल्मलीशं वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान् ॥११॥ प्लक्षद्वीपेश्वरश्चेव ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभः । द्युतिमन्तव्च राजानं की खद्वीपे समादिशत् ॥१२॥ शाकद्वीपेश्वरञ्चापि भव्यं चक्रे प्रियव्रतः। पुष्कराधिपति चक्रे सवनञ्च प्रजापतिः॥१३॥ पुष्करेश्वरतश्चापि महावीतः मुतोऽभवत् । धातिकश्चेव द्वावेतो पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ॥१४॥ महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य स्यात् तु महात्मनः । नाम्ना वै धातकेश्चापि धातकीखराडमुच्यते ॥१४॥

शाकद्वीपेश्वरस्यापि भव्यस्याप्यभवन् सुताः । जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीचकः ॥१६॥ कुशोत्तरोऽथ मोदाकिः सप्तमः स्यान्महाद्भुमः । जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते ॥१७॥ कुमारस्य तु कौमारं तृतीयं सुकुमारकम् । माणोचकं चतुर्थञ्च पञ्चमञ्च कुशोत्तरम् ॥१८॥ मोदाकं षष्टमित्युक्तं सप्तमन्तु महाद्रुमम् । क्रीश्वद्वं पेश्वरस्यापि सुता द्युतिमतोऽभवन् ॥१९॥ कुशलः प्रथमस्नेषां द्वितीयम्त् मनोहरः। उष्ण तृतीयः सम्प्रोक्तश्चतुर्थः पीवरः स्मृतः॥२०॥ भ्रन्वकारो मृतिश्चेत्र दुन्द्भिश्वापि सप्तमः । तेषां स्वनामभिर्देशाः की^{श्}चद्वीपाश्रयाः गुभाः॥२१॥ ज्योतिष्मतः कुगद्वीपे सप्तैवासन् महौजसः । उद्भेदो वेणुमांश्चैवाश्वरथो लम्बनो धृतिः ॥२२॥ षष्ठः प्रभाकरश्चापि सप्नमः कपिलः स्मृतः । स्वनामचिह्नतश्चात्र तथा वर्षारिए सुव्रताः ॥२३॥ ज्ञेयानि च तथान्येषु द्वीपेष्वेतानि नामतः । शाल्मलिद्धपनाथस्य सुताश्चासन् वपुष्मतः ॥२४॥ इवेतश्च हरितश्चेव जीमूतो रोहितस्तथा। वैद्युतो मानसश्चेव सप्तमः सुप्रभो मतः॥२५॥ प्लक्षद्वीपेश्वरस्यापि सप्त मेधातिथै: सुताः । ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां शिशिरस्तु सुखोदयः ॥२६॥ ग्रानन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवस्तथा। प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेया शावद्वीपान्तिकेषु च ॥२७॥ वर्णाश्रमविभागेन स्वधर्मी मुक्तये मतः । जम्बूद्वीपेश्वरस्यापि पुत्राश्चासन् महाबलाः ॥२८॥ श्चाग्नीध्रस्य द्विजश्रेष्ठास्तन्नामानि निबोधत । नाभिः किम्पुरुषश्चेत तथा हरिरिलावृतः ॥२९॥ रम्यो हिरएवांश्च कुरुर्भद्राश्वः केतुमालकः । जम्बूद्वीपेश्वरो राजा स चाग्नीध्रो महामतिः ॥३०॥ विभज्य नवधा तेभ्यो यथान्यायं ददौ पुनः । नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वं प्रददौ पिता ॥३१॥ हेमकूटं ततो वर्षं ददौ किम्पुरुषाय सः । तृतीयं नैषधं वर्षं हरये दत्तवान् पिता ॥३२॥ इलावृताय प्रददी मेरुमध्यमिलावृतम् । नी नाचलाश्रयं वर्षं रम्याय प्रददी पिता ॥३३॥ इवेतं यदुत्तरं वर्षं पित्रा दत्तं हिरएवते । यदुत्तरं श्रृङ्गवतो वर्षं तत् कुरवे ददौ ॥३४॥ मेरोः पूर्वेण यद्वर्षं भद्राश्चाय न्यवेदयत् । गन्धमादनवर्षन्तु केतुमालाय दत्तावान् ॥३४॥ वर्षेष्वतषु तान् पुत्रानभ्यषिञ्चन् नराधिपः । संसारासारतां ज्ञात्वा तपस्तप्तुं वनं गतः ॥३६॥ हिमाह्वयन्तु यस्यैतन्नाभेरासीन्महात्मनः । तस्यर्षभोऽभवत् पुत्रो मरुदेव्यां महाद्यतिः ॥३७॥ ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः। सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथिवीपतिः।।३६।। वानप्रस्थाश्रमं गत्वा तपस्तेपे यथाविधि । तपसा धिषतोऽत्यर्थं कृशोऽयमिनशं ततः ॥३९॥ भूत्वा महापाशुपतोऽभवत् । सुमातभरतस्यापि पुत्रः परमधामिकः ॥४०॥ व्यजायत । परमेष्ठी सुतस्तस्मात् प्रतीहारस्तदन्वयः ॥४१॥ सुमतेस्तै जसस्तस्मादिन्द्र द्युम्नो प्रतिहर्त्तोति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मजः । भवस्तस्मादथाद्गाथः प्रस्तावि-तत्सुतोऽभवत्॥४२॥ पृथुस्ततस्ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः । नरा गयस्य तनयस्तस्य पुत्रो विराडभूत् ॥४३॥ तस्य पुत्रो महावीर्यो घीमांस्नस्मादजायत । महान्नोऽपि ततश्चाभूच्छौचनस्तत्सुतोऽभवत् ॥४४॥ त्वष्टा त्वष्ट्रश्च विरजो रजस्तस्मादभूत् सुतः । शतजिद्रथजित् तस्य जज्ञे पुत्रशतं द्विजाः ॥४५॥ तेषां प्रधानो बलवान् विश्वज्योतिरिति स्मृतः । ग्राराध्य देवं ब्रह्माणं क्षेमकं नाम पार्थिवम् । पुत्रं घर्मज्ञं महाबाहुमरिन्दमम् ॥४६॥ एते पुरस्ताद्राजानो महासत्त्वा महोजसः । एषां वंशप्रसूतैस्तु भुक्तेयं पृथिवी पुरा ॥४७॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशिवन्यासो नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्याय: ॥३९॥

पूर्वभागे चत्वारिंशोऽध्यायः

चत्वारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

श्रतः परं प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः । त्रैलोक्यस्यास्य मानं वो न शत्रयं विस्तरेगा तु । १॥ भूलोंकोऽथ भुवर्लोक: स्वलोंकोऽथ महस्तथा । जनस्तपश्च सत्यश्च लोकास्त्वर डोद्भवा मताः ॥२। किरगौग्वभासते । तावद्भूलींक म्राख्यातः पुराणे द्विजपुङ्गवाः ॥ ३ ॥ सूर्याचन्द्रमसोर्यावत यावत्प्रमाणो भूनोंको विस्तरात् परिमग्डलात् । भुवलोंकोऽपि तावत् स्यान्मग्डलाद्भास्करस्य तु॥४॥ ऊर्ध्व यनमण्डलं व्योम्नि ध्रुत्रो यावद् व्यवस्थितः । स्वलीकः स समाख्यातस्तत्र वायोस्त् नेमयः॥ ४ ॥ प्रवह्रश्चैव तत्रैवानुवहः पुनः । संवहो विवहश्चैव तदूर्ध्वं स्यात् परावहः ॥ ६॥ तथा परिवह्ळोद्ध्वं वायोवें सप्त नेमयः । भूमेर्योजनलक्षे तु भानोवें मएडलं स्थितम् ॥ ७॥ लक्षे दिवाकरस्यापि मगडलं शशिनः स्मृतम् । नक्षत्रमगडलं कृत्स्नं तल्लक्षेण प्रकारते ॥ द ॥ द्विलक्षे ह्यन्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमगडलात् । तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशनाः स्थितः ॥ ९ ॥ ग्रङ्गारकोऽिव ज्ञकस्य तत्प्रमारो व्यवस्थितः । लश्द्वयेन भीमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥१०॥ गुरोर्ग्रहासामथ मराडनात् । सप्तर्षिमराडनं तस्माल्नक्षमात्रे प्रकाशते ॥११॥ ऋषीणां मग्डलादुध्वं लक्षमात्रे स्थितो ध्रवः । मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चकस्य वै ध्रवः । तत्र धर्मः स भगवान् विष्णुर्नारायणः स्थितः ॥१२॥ नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः । त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मग्डलस्य प्रमाणतः ॥१३॥ द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः । तुल्यस्तयोस्तु स्वभीनुर्भूत्वाऽधस्तात् प्रसर्पति।१४॥ उद्घृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मएडलाकृतिः । स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं तृतायं यत् तमोमयम्॥१५॥ चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते । भार्गवात् पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ॥१६॥ बृहस्पतेः पादहीनौ भीम-सौरातुभौ स्मृतौ । विस्तारान्मएडलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुघः ॥१७॥ तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै। बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलात् तथा॥१८॥ तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् । शतानि पञ्च चत्वारि त्रीशा द्वे चैव योजने ॥१९॥ सर्वतो वै निकृष्टानि तारकामग्डलानि तु । योजनाद्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ॥२०॥ उपरिष्टात् त्रयस्तेषां ग्रहा वै दूरसर्पिणः । सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दिवचारिणः ॥२१॥ तेभ्योऽधस्ताच चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः । सूर्यः सोमो बुग्र्श्चेव भार्गवश्चेव शीझगाः ॥२२॥ दक्षिणायनमार्गस्थो यदा चरति रिश्ममान् । तदा पूर्वप्रहेणैव सूर्योऽघस्तात् प्रसर्पति ॥२३॥ विस्तीण मग्डल कृत्वा तस्योर्द्धं चरते शशी । नक्षत्रमग्डलं कृत्सनं सोमादूद्ध्वं प्रसर्पति ॥२४॥ नक्षत्रेभ्यो बुधस्त्रोद्ध्वं बुधादूध्वंन्तु भार्गवः । वक्रस्तु भार्गवादूध्वं वक्रादूध्वं बृहस्पतिः ॥२५॥ तस्माच्छनैश्चरोऽप्यूद्र्ध्वं तस्मात् सप्तर्षिमग्डलम् । ऋषोणाञ्चेव सप्तानां ध्रुवश्चोद्ध्वं व्यवस्थितः॥२६॥ योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव । ईशादराडस्तथा तस्य द्विगुणो द्विजसत्तमाः।।।।।।। सार्द्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि तु । योजनानान्तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम् ॥२८।। त्रिनाभिमति पञ्चारे षण्नेमिन्यक्षयात्मके । संवत्सरमयं कृत्सनं कालचकं प्रतिष्ठितम् ॥२९॥ चत्वारिशत्सहस्राणि द्वितीयाक्षी व्यवस्थितः । पञ्चाशतानि सार्द्धानि योजनानि द्विजोत्तमाः॥३०॥ प्रमाणं तद्युगार्द्धयोः। ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्देन ध्रुवाधारो रथस्य तु ॥३१॥ श्रक्षप्रमाणम् भयोः

द्वितीयेऽक्षे तु तच्चकं संस्थितं मानसाचले । हयाश्च सप्त च्छन्दांसि तन्नामानि निबोधत ॥३२॥
गायत्री च बृहत्युष्णिग् जगती पङ्क्तिरेत च । श्रनुष्टुप् त्रिष्टुबप्पुक्ता च्छन्दांसि हरयो हरे: ॥३३॥
मानसोपिर माहेन्द्री प्राच्यां दिशि महापुरी । दक्षिणायां यमस्याथ वरुणस्य तु पश्चिमे ॥३४॥
उत्तरेण च सोमस्य तन्नामानि निबोधत । श्रमरावती संयमनो सुखा चैव विभावरी ॥३४॥
काष्ठागतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति । ज्योतिषां चक्रमादाय देवदेवः पितामहः ॥३६॥
दिवसस्य रिवर्मध्ये सर्वकालं व्यवस्थितः । सर्वद्वीपेषु विश्वन्दा निश्चाद्वर्त्तय च सम्मुखः ॥३७॥
उदयास्तमने चैव सर्वकालन्तु सम्मुखे । दिशास्त्रशेषामु तथा विश्वन्द्रा विदिशासु च ॥३८॥
कुलालचक्रपर्यन्तं श्रमन्नेष यथेश्वरः । करोत्यहस्तथा रात्रि विमुश्चन् मेदिनीं द्विजाः॥३९॥
दिवाकरकरैरेतत् पूरितं भुवनत्रयम् । त्रैलोवयं कथितं सिद्धलॉकानां मुनिपुङ्गवाः ॥४०॥
स्त्रादित्यमूलमिखलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः । भवत्यस्माज्ञगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥४१॥
स्त्रन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विश्वेन्द्राणां दिवौकसाम् । द्युतिमान् द्युतिमत्कृत्स्नमजयत् सार्वलौकिकम् ॥४२॥
सर्वातमा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः । सूर्य एष त्रिलोकस्य मूर्लं परमदेवतम् ॥४३॥
दादशान्ये तथादित्या देवास्ते येऽधिकारिणः । निर्वहन्ति वदन्त्यस्य तदंशा विष्णुमूर्त्यः ॥४४॥
दादशान्ये तथादित्या देवास्ते येऽधिकारिणः । निर्वहन्ति वदन्त्यस्य तदंशा विष्णुमूर्त्यः ॥४४॥

सर्वे नमस्यन्ति सहस्रभानुं गन्धर्वे - यक्षोरग - किन्नराद्याः । यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्मुनीन्द्राव्छन्दोमयं ब्रह्ममयं पुराणम् ॥४५॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशविन्यासो नाम चत्वारिशोऽध्यायः ॥४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

स रथोऽिं हितो देवरादित्येर्मुनिभिस्तथा । गन्ववेरप्सरोभिश्च ग्रामणी - सर्ष - राक्षसैः ॥ १॥ धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणः शक एव च । विवस्वानथ पूषा च पर्जन्यश्चांशुरेव च ॥ २॥ भगस्त्रष्टा च विष्णुश्च द्वादशेते दिवाकराः । ग्राप्याययित वे भानुर्वसन्तादिषु वे कमात् ॥ ३॥ पुलस्त्यः पुलहुश्चात्रिर्वसिष्ठश्चाङ्किरा भृगुः । भरद्वाजो गौतमञ्च कश्यपः कतुरेव च ॥ ४॥ जमदिनः कौशिकश्च मुनयो ब्रह्मवादिनः । स्तुवन्ति देवं विविधेश्वःन्दोभिस्ते यथाक्रमम्॥ ४॥ रथकृच रथौजाश्च रथिचतः सुवाहुकः । रथस्वनोऽय वरुणः सुषेणः सेनजित् तथा ॥ ६॥ ताक्ष्यंश्चारिष्टनेमिश्च कृतिजत् सत्यजित् तथा । ग्रामण्यो देवदेवस्य कृत्रतेऽभोषुसंग्रहम् ॥ ७॥ ग्राम हितः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा । सर्पो व्याद्यस्तथापश्च वातो विद्युद् दिवाकरः॥ ६॥ ब्रह्मपेतश्च विप्रेन्द्रा यज्ञोपेतस्तथैव च । राक्षसप्रवरा ह्यो ते प्रयान्ति पुरतः कमात् ॥ ९॥ वासुिकः कङ्कनीलश्च तक्षकः सर्पपुङ्गवः । एलापत्रः शङ्खपालस्तथैरावतसंज्ञितः ॥१०॥ वनञ्चयो महापद्यस्तथा कर्कोटको द्विजाः । कम्बलोऽश्वतरश्चेव वहन्त्येनं यथाक्रमम् ॥११॥ तुम्बुद्वतीरवो हाहा हूर्हिश्वावसुस्तथा । उग्रसेनो वसुद्विवर्वचीवसुस्तथापरः ॥१२॥ वित्रसेतस्तथोणीयुर्धृतराष्ट्रो दिजोत्तमाः । सूर्यवर्चा द्वादशेते गन्वर्वा गायना वराः ॥१३॥ वित्रसेतस्तथोणीयुर्धृतराष्ट्रो दिजोत्तमाः । सूर्यवर्चा द्वादशेते गन्वर्वा गायना वराः ॥१३॥

गायिन्त गानैविविधैर्भानुं षड्जादिभिः क्रमात् । ऋतुस्थलाऽप्सरोवर्या तथान्या पुञ्जिकस्थला ॥१४॥ मेनका सहजन्या च प्रम्लोचा च द्विजोत्तमाः । ग्रनुम्लोचा च विश्वाची घृताची चोर्वशी तथा॥१४॥ ग्रन्या च पूर्विचित्तिः स्याद्रम्भा चैव तिलोत्तमा । ताएडवैर्विविधैरेनं वसन्तादिषु वे क्रमात् ॥१६॥ तोषयन्ति महादेत्रं भानुमात्मानमन्ययम् । एवं देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु । सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेजसां निधिम् ॥१७॥

श्थितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रिवम् । गन्धर्वाप्सरसञ्चेनं नृत्य गेयैरुपासते ॥१८॥ ग्रामणी - यज्ञ - भूतानि कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम् । सपी वहन्ति देवेशं यातुधानाः प्रयान्ति च ॥१९॥ बालिखल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रिवम् । एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च॥२०॥ भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीति कीत्तिताः । एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवि भानुगाः ॥२१॥ विमाने च स्थिता नित्यं कामगे वातरंहिस । वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै क्रमात् । गोपायन्तीह भूतानि सर्वाणीह युगकमात् ॥२२॥

एतेषामेव देवानां यथावीयं ययातपः। यथायोगं यथासत्त्वं स एष तपित प्रभुः।।२३॥ श्रहोरात्रव्यवस्थानकारणं स प्रजापितः। पितृ-देव-मनुष्यादीन् स सदाऽप्याययद्रविः।।२४॥ तत्र देवो महादेवो भास्वान् साक्षान्महेश्वरः। भासते वेदिवदुषां नीलग्रीवः सनातनः।।२५॥ स एष देवो भगवान् परमेष्ठी प्रजापितः। स्थानं तिद्वदुरादित्ये वेदज्ञा वेदिवग्रहम्।।२६॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशिवन्यासो नाम एकचत्वारिशोऽध्यायः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

एवमेष महादेवो देवदेवः िषतामहः । करोति नियतं कालं कालात्मा हा श्वरो ततुः ॥ १ ॥ तस्य ये रहमयो विप्राः सप्तलो कप्रदीपकाः । तेगं श्रेष्ठाः पुनः सप्त रहमयो प्रह्योनयः ॥ २ ॥ सुपुम्णो हिरिकेशश्च विश्वकर्मा तथेव च । विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः संयद्वसुरतः परः ॥ ३ ॥ ग्रवीवसुरिति ख्यातः स्वरकः सप्त कीर्तिताः । सुपुम्णः सूर्यरिहमस्तु पुष्णाति शिशिरखुतिम् ॥ ४ ॥ तिर्यमुद्धप्रचारोऽसौ सुपुम्णः परिपठ्यते । हिरिकेशस्तु यः प्रोक्तो रिहमर्नक्षत्रपोषकः ॥ ४ ॥ विश्वकर्मां तथा रिहमबुधं पुष्णाति सर्वदा । विश्वश्रवास्तु यो रिहमः शुकं पुष्णाति नित्यदा ॥ ६ ॥ संयद्वसुरिति ख्यातो यः पुष्णाति स लोहितम् । वृहस्पति प्रपुष्णाति रिहमरवीवसुः प्रभुः ॥ ७ ॥ शतैश्वरं प्रपुष्णाति सप्तमस्तु स्वरस्तथा । एवं सूर्यप्रभावेण सर्वा नक्षत्र-तारकाः ॥ ५ ॥ शतैश्वरं विद्या नित्यं नित्यमाप्याययन्ति च । दिव्यानां पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चेव नित्यशः ॥ ९ ॥ ग्रादानान्तित्यमादित्यस्तेजसां तमसामिष् । ग्रादत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समन्ततः ॥ ९ ॥ ग्रादानान्तित्यमादित्यस्तेजसां तमसामिष् । ग्रादत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समन्ततः ॥ १ ॥ ग्रादेवेव सामुदं कीष्य चैव सहस्रहक् । स्थावरं जङ्गमञ्चेव यदा कृत्यादिकं पयः ॥ १ ॥ तस्य रिश्मसहस्रन्तु शीतवर्षोष्णितस्तवम् । तासां चतुःशता नाड्यो वर्षन्ति चित्रमूर्तयः ॥ १ ॥ चन्द्रगाश्चेव गाहाश्च काञ्चनाः शातनास्तथा । ग्रमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ॥ १ ॥ चन्द्रगाश्चेव गाहाश्च काञ्चनाः शातनास्तथा । ग्रमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ॥ १ ॥

हिमोद्धताश्च ता नाड्यो रश्मयो निःसृताः पुनः । रेष्यो मेष्यश्च वास्यश्च ह्लादिन्यः सर्जनास्तथा ॥१४॥ चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीतास्ताः स्युर्गभस्तयः । शुक्लाश्च कुङ्कुमाश्चेत्र गावो विश्वभृतस्तथा ॥१५॥ शुक्लाम्ता नामतः सर्वास्त्रिविधा घर्मसर्जनाः । समं बिभर्त्ति ताभिः स मनुष्य-पितृ-देवताः ॥१६॥ मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पित्नपि। ग्रमृतेन सुरान् सर्वास्त्रीस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ।।१७.। वसन्ते ग्रीष्मके चैव पड्भिः स तपित प्रभुः । शरद्यपि च वर्षामु चतुर्भिः सम्प्रवर्षित ॥१८॥ हेमन्ते शिशिरे चैत्र हिममुत्सूजित त्रिभिः । वरुणो माघमामे तु सूर्यः पूषा तु फाल्गुने ॥१९॥ मासि भवेदंश्र्याता वैशाखतापनः । ज्येष्ठे मासे भवेदिन्द्र श्राषाढे तयते रविः ॥२०॥ विवस्वान् श्रावणे मासि प्रोष्ठपद्यां भगः स्मृतः । पर्जन्यश्चाश्विने त्वष्टा कार्त्तिके मासि भास्करः॥२१॥ मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पोषे विष्णुः सनातनः । पञ्च रिश्मसहस्राणि वरुणस्यार्ककर्मणि ॥२२॥ षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवोंऽगुः सप्तिभस्तथा । घाताष्टाभिः सहस्रौस्तु नविभश्च शतकतुः ॥२३॥ विवस्वान् दशभिः पाति पात्येकादशिमर्भगः । सप्तिभस्तपते मित्रस्त्वष्टा चैवाष्टभिस्तपेत् ॥२४॥ श्चर्यमा दशभिः पाति पर्जन्यो नवभिस्तथा । षड्भो रश्मिसहस्र स्तु विष्णुस्तपति विश्वधृक् ।२५।। वसन्ते किपलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनमप्रभः । स्वेतो वर्षासु विज्ञेयः पार्डुरः शरदि प्रभुः ॥२६॥ हेमन्ते ताम्रवर्णः स्याच्छिशिरे लोहितो रविः । ग्रोषयोषु कनां घतो स्वधामपि पितृष्वथ ॥२७॥ सूर्योऽमरेष्वमृतन्तु त्रयं त्रिषु नियच्छति । ग्रन्ये चाष्टी ग्रहा ज्ञेया सूर्येणाधिष्ठिता द्विजाः ॥२८॥ चन्द्रमाः सोमपुत्रश्च शुक्रश्चेव बृहस्पतिः। भौमो मन्दस्तथा राहः केतुमानपि चाष्टमः॥२६॥ सर्वे घ्रुवे निबद्धा वे ग्रहास्ते वातरिक्मिभि: । भ्राम्यमाणा यथायोगं भ्रमन्त्यनु दिवाकरम् ॥३०॥ श्रलातचक्रवद् यान्ति वातचक्रेरितास्तथा । यस्माद्वहति तान् वायुः प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥३१॥ रथिबनकः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः । वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन क्षपाकरः ॥३२॥ वीध्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि रिवर्यथा । हास-वृद्धो तु विष्रेन्द्रा रश्मीनां सूर्यवत् स्मृते ॥३३॥ स सोमः शुक्रपक्षे तु भास्करे परतः स्थिते । श्रापूर्यंते परस्यान्ते सततः वैव ताः प्रभाः ॥३४॥ क्षीणं पीतं सुरैः सोममाप्याययित नित्यदा । एकेन रिंगना विप्राः सुपुम्णाख्येन भास्करः ।।३४।। एषा सूर्यस्य वीर्येण सोमस्याप्यायिता तनुः । पौर्णमास्यां स दृश्येत सम्पूर्णो दिवसक्रमात् ॥३६॥ सम्पूर्णमर्द्धमासेन तं सोनममृतात्मवम् । पिबन्ति देवता विप्रा यतस्तेऽमृतभोजनाः ॥३७॥ ततः पञ्चरशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके । ग्रपराह्मे पितृग्गा जघन्यं पर्युपायते ॥३८॥ पिबन्ति द्विलवं कालं शिष्टा तस्य कला तु या । स्वधामृतमयीं पुरायां तामिन्दोरमृतात्मिकाम् ॥३९॥ निःसृतं तदमावास्यां गमस्तिभ्यः स्वधामृतम् । मामतृष्तिमवाष्याग्रघां पितरः सन्ति निर्वृताः॥४०॥ न सोमस्य विनाशः स्यात् सुवा चैव सुपीयते । एवं सूर्यनिमित्तोऽन्य क्षयो बृद्धिश्च मत्तमाः ॥४१॥ शुक्रस्य भूमिजैरक्वैः स्यन्दनो दशिभवृतः। ग्रष्टाभिश्चापि भीमस्य रथो हैमः सुशोभनः॥४३॥ बृहस्पतेरथाष्ट्राश्वः स्यन्दनो हेमनिर्मितः । रथस्तमोमयोऽष्टाश्वो मन्दस्यायसनिर्मितः ॥४४॥ स्वर्भानोर्भास्करारेश्च सर्वे ध्रुवे महाभागा निबद्धा वायुरिश्मिभः। ग्रहर्क्षताराधिष्एयानि ध्रुवे बद्धान्यशेषतः। भ्रमन्ति भ्रामयन्त्येनं सर्वाएयनिलर्शिमभिः ॥४६॥

चाष्टाभिवांजिभिवांयुवेगिभिः । वाजिभिः स्यन्दनो युक्तस्तेनासौ याति सर्वतः॥४२॥ तथाष्ट्राभिईयेर्वृतः । एते महाग्रहाणां वे समाख्याता रथाश्च वे ॥४५॥

इति श्रीकौर्मे महापूराणे पूर्वभागे भुवनकोशिवन्यासो नाम द्विचत्वारिशोऽध्यायः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

ध्रवाद्रध्वं महलोंकः कोटियोजनविस्तृतः । कल्पाधिकारिसास्तत्र संस्थिता द्विजपुङ्गवाः ॥ १ ॥ जनलोका महलोकात् तथा कोटिद्वयात्मकः । सनकाद्यास्तथा तत्र संस्थिता ब्रह्मगाः सुताः ॥ २॥ जनलोकात् तपोलोकः कोटित्रयसमन्त्रितः । वैराजास्तत्र वै देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः ॥ ३ ॥ प्राजापत्यात् सत्यलोकः कोटिषट्केन संयुतः । अपुनर्मारको नाम ब्रह्मलोकस्तु स स्मृतः ॥ ४ ॥ श्रव लोकपुरुर्व्ह्या विश्वातमा विश्वभावनः । श्रास्ते स योगिभिर्नित्यं पीत्वा योगामृतं परम्॥ ५॥ वसन्ति यतयः शान्ता नैष्ठिका ब्रह्मचारिएाः । योगिनस्तापसाः सिद्धा जापकाः परमेष्ठिनः ॥ ६ ॥ द्वारं तद्योगिनामेकं गच्छतां परमं पदम् । तत्र गत्ता न शोचन्ति स विष्णुः स च शङ्करः॥ ७॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं पुरं तस्य दुरासदम् । न मे वर्णयितुं शक्यं ज्वालामालासमाकूलम् ॥ ५॥ तत्र नारायणस्यापि भवनं ब्रह्मणः पुरे । शेते तत्र हरिः श्रीमान् योगी मायामयः परः॥ ९॥ स विष्णुलोकः कथितः पुनरावृत्तिवर्जितः । यान्ति तत्र महात्मानो ये प्रपन्ना जनार्दनम् ॥१०॥ ऊद्ध्वं तद्ब्रह्मसदनात् पूरं ज्योतिर्भयं शुभम् । विह्निना च परिक्षिप्तं तत्रास्ते भगवान् हरः ।।११।। देव्या सह महादेवश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः । योगिभिः शतसाहस्र भूतै रुद्रैश्च संवृतः ॥१२॥ तत्र ये यान्ति निरता भक्ता वै ब्रह्म गरिणः । महादेवपराः शान्तास्तापसाः सत्यवादिनः ॥१३॥ निर्ममा निरहङ्काराः काम - क्रोधविवर्जिताः । द्रक्ष्यन्ति ब्राह्मणा युक्ता रुद्रलोकः स वै स्मृतः।।१४॥ एते सन्त महालोकाः पृथिव्याः परिकीत्तिताः । महातलादयश्चावः पातालाः सन्ति वै द्विजाः ॥१४॥ सर्वरत्रोपशोभितम् । प्रासादैर्विविधैः शुम्रदेवतायतनैर्युतम् ॥१६॥ महातलञ्च पातालं भ्रतन्तेत च संयुक्तं मुत्रुकुन्देन धीमता । नृषेण बलिना चैव पातालस्वर्गवासिना ॥१७॥ शैलं रसातलं विप्राः शाकरं हि तलातलम् । पीतं सुतलमित्युक्तं नितलं विद्रमप्रभम्। सितव्य वितलं प्रोक्तं तलव्यव सितेतरम् ॥१८॥ सूपर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तया वासुकिना शुभम्। रसातलिमिति ख्यातं तथान्येश्च निषेवितम्।।१९॥ विरोचन - हिरएयाक्ष - तारकाद्यैश्च सेवितम् । तलातलिमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम् ॥२०॥ कालनेमिपुरोगमैः । पूर्वदेवैः समाकीणं सुतलञ्च तथापरैः । वैनतेयादिभिश्चेव नितलं यवनाद्येश्च तारकाग्निमुखैस्तथा ॥२१॥

तक्षकाद्यैस्तथा नागैः प्रह्लादेनासुरेण च । वितलञ्चेत्र विख्यातं कम्बलाहीन्द्रसेवितम् ॥२२॥ महाजम्भेन वीरेण हयग्रीवेण घीमता । शङ्कुकर्णेन सम्भिन्नं तथा नमुचिपूर्वकैः ॥२३॥ तथान्यैविविधैनिगिस्तलञ्चेत्र सुशोभनम् । तेषामधस्तान्नरकाः कालाद्याः परिकीत्तिताः ॥२४॥ पापिनस्तेषु पच्यन्ते न ते वर्णयतु क्षमाः । पातालानामधन्नास्ते शेषाख्या वैष्णवी तनुः ॥२४॥ कालाग्निहद्रो योगात्मा नारसिहोऽपि माधवः । योऽनन्त पठ्यते देवो नागरूपी जनार्दनः ।

तदाधारिमदं सर्वं स कालाग्नि समाश्रितः ॥२६॥

तमाविष्य महायोगी कालस्तद्वदनोत्थितः । विषज्वालामयोऽन्तेऽसौ जगत् संहरति स्वयम्॥२०॥ सहस्रमायोऽप्रतिमः संहर्ता शङ्करो भवः । तामसी शाम्भवी मूर्तिः कालो लोकप्रकालनः॥२८॥ इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशिवन्यासो नाम त्रिचत्वारिशोऽध्यायः ॥४३॥

38

कूर्मपुराणम्

चतुश्चरवारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

एतद ब्रह्माराडमास्यातं चतुर्दशिवधं महत्। ग्रतः परं प्रवक्ष्यामि भूर्लोकस्यास्य निर्णयम्॥ १।। जम्बूद्वीपः प्रधानोऽयं प्लक्षः शाल्मलिरेव च । कुशः क्रीश्वश्च शाकश्च पुष्करश्चेव सप्तमः ॥ २ ॥ एते सप्त महाद्वीपाः समुद्रैः सप्तिभवृताः । द्वीपाद् द्वीपो महानुक्तः सागराचापि सागरः ॥ ३ ॥ सुरोदश्च घृतोदकः । दध्योदः क्षीरसलिलः स्वादूदश्चापि सागराः ॥ ४ ॥ क्षारोदेक्षुरसोदश्च पञ्चाशतकोटिविस्तीर्णा ससमुद्रा धरा स्मृता । द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता योजनानां समन्ततः ॥ ५॥ जम्बूद्वीपः समस्तानां मध्ये चैव व्यवस्थितः । तस्य मध्ये महामेरुर्विश्रृतः चतुरशीतिसाहस्रो योजनैस्तस्य चोच्छ्यः । प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिशद् मूर्झि विस्तृतः ॥ ७ ॥ मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वतः। भूपद्मस्यास्य शैलौऽसौ कर्णिकात्वेन संस्थितः॥ ८॥ हिमवान् हेमक्टश्च निषधश्चास्य दक्षिणे । नीलः इवेतश्च श्रृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥ ९ ॥ लक्षप्रमाणी द्वी मध्ये दशहीनास्तथापरे । सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते ॥ १०॥ भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् । हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः ॥११॥ रम्यकञ्चोत्तरं वर्षं तथैवानु हिरएमयम् । उत्तराः कुरवश्चीव यथैते भारतास्तथा ॥१२॥ द्विजसत्तमाः । इलावृतञ्च तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छितः ॥१३॥ नवसाहस्रमेकैकमेतेषां मेरोश्चतुर्दशं तत्र नवसाहस्रविस्तरम् । इलावृतं महाभागाश्चत्वारस्तत्र विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतम्चिद्धताः ॥१४॥ पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः। विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वेश्चोत्तरः स्मृतः॥१५॥

पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः । विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपाइवश्चीत्तरः स्मृतः॥१५॥ कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च । जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूनामहेतुर्महर्षयः ॥१६॥ महागजप्रमाणानि जम्बूनास्तस्याः फलानि च । पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः ॥१६॥ रसेन तस्याः प्रख्याता तत्र जम्बूनदीति व । सित् प्रवत्तेते सापि पीयते तत्र वासिभः ॥१६॥ न स्वेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः । तत्पानात् सुस्थमनसां नराणां तत्र जायते ॥१९॥ तत्तीरमृद्रसं प्राप्य वायुना सुविशोषिता । जाम्बूनदाख्यं भवित सुवर्णं सिद्धभूषणम् ॥२०॥ भद्राश्चः पूर्वतो मेरोः केतुमालश्च पश्चिमे । वर्षे द्वे तु मुनिश्चेष्ठास्तयोर्मध्ये इलावृतम् ॥२१॥ वनं चैत्ररथं पूर्वं दक्षिणं गन्धमादनम् । वेभाजं पश्चिमं विद्यादुत्तरं सिवतुर्वनम् ॥२२॥ श्रष्टणोदं महाभद्रमसितोदश्च मानसम् । सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वदा ॥२३॥ सितान्तश्च कुमुद्धांश्च कुवरी माल्यवांस्तथा । वेकङ्को मिण्यशैलश्च ऋक्षवांश्चाचलोत्तमः ॥२४॥ महानीलोऽथ रुचकः सिद्धावासाः प्रकीत्तिताः । श्ररणोदस्य सरसः पूर्वतः केशराचलाः । दिक्षटः शिखरश्चेव पतङ्को रुचकस्तथा ॥२६॥ श्विकृटः शिखरश्चेव पतङ्को रुचकस्तथा ॥२६॥ श्विकृटः शिखरश्चेव पतङ्को रुचकस्तथा ॥२६॥

निषधो वमुधारश्च कलङ्गां स्विशिखः स्मृतः । समूलो वसुवेदिश्च कुरुरुश्चैव सानुमान् ॥२७॥ ताम्माभश्च विशालश्च कुमुद्दो वेणुपवतः । एकश्चङ्गो महाशैलो गजशेलश्च पिञ्जकः ॥२८॥ पञ्चशेलोऽथ कैलासो हिम्बांश्चाचलोत्तमः । इत्येते देवरचिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः ॥२९॥ महामद्रस्य सरसो दक्षिणे केशराचलाः । शिखिवासाश्च वैदूर्यः किपलो गन्धमादनः ॥३०॥ जारुधिश्च मुराम्बुश्च सर्वगन्धाचलोत्तमः । सुपार्वश्च सुप्रक्षश्च कङ्कः किपल एव च ॥३१॥ विरजो भद्रजालश्च सुरसश्च महावलः । ग्रञ्जनो मधुमांस्तद्वचित्रश्रृङ्को महालयः ॥३२॥ कुमुदो मुकुटश्चेत्र पाएडुरः कृष्ण एव च । पारिपात्रो महाशैलस्तथैव किपलावलः ॥३३॥ सुषेणः पुराडरीकश्च महामेघस्तथैव च । एते पर्वतराजानः सिद्ध गन्धवंसेविताः ॥३४॥ ग्रासतोदस्य सरसः पश्चिमे केशराचलाः । शङ्काकूटोऽय वृषभो हंसो नागस्तथैव च ॥३६॥ कालखारः शक्वशैलो नीलः कमल एव च । पारिजातो महाशैलः शैलः कनक एव च ॥३६॥ पुष्पकश्च सुमेघश्च वाराहो विरजास्तथा । मयूरः किपलश्चेत्र महाकिपल एव च ॥३७॥ इत्येते देव - गन्धर्व - सिद्ध - यक्षश्च सेविताः । सरसो मानसस्येह उत्तरे केशराचलाः ॥३६॥ एतेषां शेलमुख्यानामन्तरेषु यथाक्रमम् । सन्ति चैवान्तरद्रोग्यः सरांसि च वनानि च ॥३९॥ वसन्ति तत्र मुनयः सिद्धा व ब्रह्मभाविताः । प्रसन्नाः शान्तरजसः सर्वदुःखविर्वाजताः ॥४०॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशिवन्यासे पर्वतसंख्यानं नाम चतुश्चत्वारिशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽघ्याय:

स्त उवाच

चतुर्दश सहस्राणि योजनानां महापुरी । मेरोरुपरि विख्याता देवदेवस्य वेधसः ॥ १ ॥ तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः । उपास्यमानो योगीन्द्रेर्मुनीन्द्रोपेन्द्रशङ्क्ररैः ॥ २ ॥ तत्र देवेश्वरेशानं विश्वात्मानं प्रजापितम् । सनत्कुमारो भगवानुपास्ते नित्यमेव हि ॥ ३ ॥ स सिद्ध - ऋषि - गन्ववैः पूज्यमानः सुरैरिप । समास्ते योगयुक्तात्मा पीत्वा तत् परमामृतम्॥ ४ ॥ शम्भोरमिततेजसः । दीप्तमायतनं शुभ्रं पुरस्ताद् ब्रह्मणः स्थितम् ॥ ५ ॥ देवाधिदेवस्य दिव्यकान्तिसमायुवतं चतुर्द्वारं सुशोभनम् । महर्षिगणसङ्कीणं ब्रह्मविद्भितिषेवितम् ॥ ६॥ देव्या सह महादेवः शशाङ्कार्काग्निलोचनः । रमते तत्र विश्वेशः प्रमथैः प्रमथेश्वरः ॥ ७ ॥ तत्र वेदविदः शान्ता मुनयो ब्रह्मवारिएाः । पूजयन्ति महादेवं तापसाः सत्यवादिनः ।। द ।। तेषां साक्षान्महादेवो मुनीनां भावितात्मनाम् । गृह्णाति पूजां शिरसा पार्वत्या परमेश्वरः ॥ ९॥ तत्रैव पर्वतवरे शक्रस्य परमा पुरी । नाम्नाऽमरावती पूर्वे सर्वशीभासमन्विता । १०॥ तिमन्द्रमप्सरः-सङ्घा गन्धर्वाः सिद्धः चारणाः । उपासते सहस्राक्षं देवास्तत्र सहस्रगः ॥११॥ ये घार्मिका वेदविदो याग-होमपरायणाः । तेषां तत् परमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥१२॥ वह्नेरिमततेजसः । तेजोवती नाम पुरी दिव्याश्चर्यसमन्विता ॥१३॥ तस्माहक्षिणदिग्भागे तत्रास्ते भगवान् विह्निर्भाजमानः स्वतेजसा । जिपनां होमिनां स्थानं दानवानां दुरासदम् ॥१४॥ दक्षिणे पर्वतवरे यमस्यापि महापुरी । नाम्ना संयमनी दिन्या सर्वशोभासमन्विता ॥१४॥ तत्र वैवस्वतं देवं देवाद्याः पर्युपासते । स्थानं तत् सत्यसन्धानां लोके पुर्यकृतां नृर्णाम् ॥१६॥ तस्यास्तु पश्चिमे भागे निऋतेस्तु महात्मनः । रक्षोवती नाम पुरी राक्षसैः संवृता तु या ॥१७॥

तत्र ते निर्ऋति देवं राक्षसाः पर्युपासते । गच्छन्ति तां धर्मरता ये तु तामसवृत्तयः ॥१५॥ वरुणस्य महापुरी । नाम्ना शुद्धवती पुण्या सर्वकामर्द्धिसंयुता ॥१९॥ पर्वतवरे तत्राप्सरोगणैः सिद्धैः सेव्यमानोऽमराधिषैः । ग्रास्ते स वरुणो राजा तत्र गच्छन्ति येऽम्बुदाः ॥२०॥ तस्या उत्तरदिग्भागे वायोरिप महापुरी । नाम्ना गन्धवती पुराया यत्रास्तेऽसौ प्रभञ्जनः ॥२१॥ श्रप्सरोगरागन्ववैः सेव्यमानो महान् प्रभुः । प्राणायामपरा विप्राः स्थानं तद् यान्ति शाश्वतम् ॥२२॥ तस्याः पूर्वे तु दिग्भागे सोमस्य परमा पुरी । नाम्ना कान्तिमती शुभ्रा तस्यां सोमो विराजते ॥२३॥ तत्र ये धर्मनिरताः स्वधर्मं पर्युपासते । तेषां तदुचितं स्थानं नानाभोगसमन्वितम् ॥२४॥ तस्यास्तु पूर्विदिग्भागे शङ्करस्य शुभा पुरी । नाम्ना यशोवती पुराया सर्वेषां सा दुरासदा ॥२४॥ तत्रेशानस्य भवनं रुद्रेणाधिष्ठितं शुभम् । गणेश्वरस्य विपूलं तत्रास्ते स गणावृतः ॥२६॥ तत्र भोगादिलिप्सूनां भक्तानां परमेष्ठिनः । निवासः कल्पितः पूर्वं देवदेवेन शूलिना ॥२७॥ विष्णुपादाद्विनिष्कान्ता प्लावियत्वेन्दुमएडलम् । समन्ताद्ब्रह्मणः पुर्या गङ्गा पतित व ततः ॥२५॥ सा तत्र पातता दिक्ष चतुर्द्धा ह्यभवद् द्विजाः । सीता चालकनन्दा च सुवङ्क्षुभँदनामिका ॥२९॥ पूर्वेण शैलाच्छैलन्तु सीता यात्यन्तरिक्षगा । ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वाद याति चार्णवम् ॥३०॥ तथैवालकनन्दा च दक्षिणादेत्य भारतम् । प्रयाति सागरं भित्तवा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः ॥३१॥ सूबङ्क्षुःपश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्तथा । पश्चिमं केत्रमालाख्यं वर्षं गत्वैति चार्णवम् ॥३२॥ भद्रा तथोत्तरगिरीनुतरांश्च तथा कुरून्। ग्रतीत्य चोत्तराम्भोधि समभ्येति महर्षयः ॥३३॥ माल्यवद्-गन्धमादनौ । तयोर्मध्यं गतो मेरः कर्णिकाकारसंस्थितः ॥३४॥ ग्रानील-निषधायामी भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा । पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलवाह्मतः ॥३५॥ मयदापर्वतावभो । दक्षिणोत्तरमायामावानील-निषधायतौ देवकृटश्च गाइद्या पूर्व-पञ्चायतावुभौ । श्रशीतियोजनायामावर्गावान्तर्व्यवस्थितौ गन्धमादन-कैलासी निषषः पारिपात्रश्च मर्यादापर्वताविमौ । मेरोः पश्चिमदिग्मागे यथापूर्वं व्यवस्थितौ ॥३८॥ वर्षपर्वतौ । पूर्व-पश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ जारुधिस्तद्वदृत्तरे मयदि।पर्वताः प्रोक्ता प्रष्टाविह मया द्विजाः । जठराद्याः स्थिता मेरोश्चत्र्दिक्षु महर्षयः ॥४०॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशिवन्यासे मेरुवर्गानं नाम

पश्चचत्वारिशोऽध्यायः ॥४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

केतुमाले नराः कालाः सर्वे पनसभोजनाः । श्चियश्चोत्पलपत्राभास्ते जीवन्ति वर्षायुतम् ॥ १ ॥ भद्राब्वे पुरुषाः शुक्लाः श्चियश्चन्द्रांशुमित्रभाः । दशवर्षमहस्राणि जीवन्ते चान्नभोजनाः ॥ २ ॥ रम्यके पुरुषा नार्थो रमन्ति रजतप्रभाः । दशवर्षमहस्राणि शतानि दश पञ्च च ॥ ३ ॥ जीवन्ति चैव सत्त्वस्था न्यग्रोधफलभोजनाः । हिरएमये हिरएयाभाः सर्वे श्रीफलभोजनाः ॥ ४ ॥ पकादशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च । जीवन्ति पुरुषा नार्यो देवलोकस्थिता इव ॥ ४ ॥

त्रयोदशसहस्राणि शतानि दश पछा च । जीवन्ति कुरुवर्षे तु स्थामाङ्गाः क्षीरभोजनाः॥ ६ ॥ सर्वे मिथुनजाताश्च नित्यं सुखनिषेविताः । चन्द्रद्वीपे महादेवं यजन्ति सततं शिवम् ॥ ७॥ तथा किम्पुरुषे विप्रा मानवा हेमसिन्नभाः । दशवर्षसहस्राणि जीवन्ति प्लक्षभोजनाः । हा। यजन्ति सततं देवं चतुःशीर्षं चतुभुंजम् । ध्याने मनः समावाय सादरं भक्तिसंयुताः ॥ ९ ॥ तथा च हरिवर्षे तु महारजतसन्त्रिभाः । दशवर्षसहस्राणि जीवन्तीक्षुरसाशिनः ॥१०॥ तत्र नारायणं देवं विश्वयोनि सनातनम् । उपासते सदा विष्णुं मानवा विष्णुभाविताः ॥११॥ तत्र चन्द्रप्रभं शुभ्रं शुद्धस्फटिकसन्निभम् । विमानं वासुदेवस्य पारिजातवनाश्चितम् ॥१२॥ चतुद्वरिमनीपम्यं चतुस्तोरणसंयुतम् । प्राकारैर्दशिभर्युक्तं दुरावर्षं सुदुर्गमम् ॥१३॥ स्फाटिकैर्मग्डपैर्युक्तं देवराजगृहोपमम् । सुवर्णस्तम्भसाहस्रैः सर्वतः समलंकृतम् ॥१४॥ हेमसोपानसंयुक्तं नानारत्नोपशोभितम् । दिव्यसिहासनोपेतं सर्वशोभासमन्वितम् ॥१५॥ सरोभिः स्वादुपानीयेर्नदीभिश्चोपशोभितम् । नारायणपरैः शुद्धैर्वेदाध्ययनतत्परैः ॥१६॥ योगिभिश्च समाकीणं ध्यायिद्धः पुरुषं हरिम् । स्तुविद्धः सततं मन्त्रैर्नमस्यिद्धश्च माधवम् ॥१७॥ विष्णोरमिततेजसः । राजानः सर्वेकालन्तु महिमानं प्रकुर्वते ॥१८॥ तत्र देवाधिदेवस्य गायन्ति चैव नृत्यन्ति विलासिन्यो मनोहराः । स्त्रियो यौवनशालिन्यः सदा मग्डनतत्पराः ॥१९॥ पद्मवर्गा जम्बूफलरसाशिनः । त्रयोदशसहस्राणि वर्षागाञ्च स्थिरायुषः ॥२०॥ भारतेषु श्चियः पुंसो नानावणीः प्रकीतिताः । नानादेवार्चने युक्ता नानाकर्माणि कुर्वते ॥२१॥ परमायुः स्मृतं तेषां शतं वर्षािए। सुत्रताः । नवयोजनसाहस्रं वर्षमेतत् प्रकीत्तितम् ॥२२॥ कर्मभूमिरियं विष्रा नराणामधिकारिणाम् । महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥२३॥ विन्ध्यश्च पारिपात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः । इन्द्रद्वीपः कसेरुमांस्ताम्रपर्णे गर्भस्तमान् ॥२४॥ नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धवस्त्वथ वारुणः । भ्रयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥२५॥ योजनानां सहस्रन्तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः । पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तया ॥२६॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शुद्रास्तथेव च । इज्या-युद्ध-विणज्याभिर्वर्त्तयन्त्यत्र मानवाः ॥२७॥ स्रवन्ते पावना नद्यः पर्वतेभ्यो विनिःसृताः । शतद्रुश्चन्द्रभागा च सरयूर्यमुना तथा ॥२८॥ इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहुः। गोमती धूतपापा च बाहुदा च हषद्वती ॥२९॥ कौशिकी लोहिनी चेति हिमवत्पादनिः मृताः । वेदस्मृतिर्वेदवती व्रतिश्री विदिवा तथा ।।३०।। पर्णाशा चन्दना चैव सदानीरा मनोरमा । चर्मएवती तथा हर्या विदिशा वेत्रवत्यपि । शियुः सुशिल्पापि तथा पारियात्रात् तु निःसृताः ॥३१॥ नर्मदा सुरसा शोणो दर्शाणा च महानदी । मन्दाकिनी चित्रकूटा तामसी च पिशाचिका ॥३२॥ चित्रोत्पला विशाला च मञ्जुला बालुवाहिनी । ऋक्षवत्पादजा नद्यः सर्वेपापहरा नृणाम् ॥३३॥ तापी पयोष्णी निविन्ध्या शीघोदा च महानदी । वेएया वैतरएी चेव बलाका च कुमुद्रती ॥३४॥ तोया चैव मही गोरी दुर्गा चान्तःशिला तथा । विन्ध्यपादप्रभूतास्ताः सद्यः पापहरा नृणाम् ॥३४॥ गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणा च वश्यता । तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा काबेरी च द्विजोत्तमाः ॥३६॥ दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिःसृताः । कृतमाला ताम्रवर्णी पुष्पवत्युत्पलावती ॥३७॥ मलयान्निःसृता नद्यः सर्वाः शीतजलाः स्मृताः । ऋषिकुल्या त्रिसामा च गन्वमादनगामिनी ॥३८॥

क्षिप्रा पर्लाशिनी चैव ऋषीका वंशघारिणी । शुक्तिमस्पादसङ्खाताः सर्वपापहरा नृणाम् ॥३९॥

श्रासां नचुपनद्यश्च शतशो द्विजपुङ्गवाः । सर्वपापहराः पुरायाः स्नानदानादिकर्मसु ॥४०॥ तास्विमे कुरुपञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः । पूर्वदेशादिकारचेव कामरूपिनवासिनः ॥४१॥ पुराष्ट्राः किलङ्गा मगघा दाक्षिणात्याश्च कृत्स्रशः । तथाऽपरान्ताः सौराष्ट्रशूद्राभौरास्तथार्बुदाः ॥४२॥ मालका मालवारचेव पारियात्रिनवासिनः । सौवीराः सैन्धवा हूणा शाल्वा कल्पनिवासिनः॥४३॥ माद्रा रामास्तथैवान्छः । पारसीकास्तथैव च । ग्रासां पिवन्ति सिललं वसन्ति सरितां सदा ॥४४॥ चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽबुवन् । कृतं त्रेता द्वापरश्च किलश्चान्यत्र न कचित् ॥४५॥ यानि किम्पूरुषाद्यानि वर्षायष्टौ महर्षयः । न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयं न च ॥४६॥ स्वस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्वदुःखविवर्णिताः । रमन्ते विविधैर्भावैः सर्वाश्च स्थिरयौवनाः ॥४७॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशविन्यासे केतुमालादिवर्षवर्णनं नाम षट्चत्वारिशोऽध्यार्यः ॥ ४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

महाकूटं सुशोभनम् । स्फाटिकं देवदेवस्य विमानं परमेष्ठिनः ॥ १ ॥ हेमक्टगिरेः शृङ्गं तत्र देवाधिदेवस्य भूतेशस्य त्रिश्लिनः । देवाः सर्षिगणाः सिद्धाः पूजां नित्यं प्रकृर्वते ॥ २ ॥ स देवो गिरिशः सार्द्धं महादेव्या महेश्वरः । भूतैः परिवृतो नित्यं भाति तत्र पिनाकधृक् ॥ ३ ॥ विभक्तचारुशिखरः कैलासो यत्र पर्वतः। निवासः कोटियक्षाणां कुबेरस्य च धीमतः॥ ४॥ भवस्यायतनं महत् । मन्दाकिनी तत्र पुराया रम्या सुविमलोदका ॥ ५ ॥ देवदेवस्य समलंकृता । देव - दानव - गन्धर्व - यक्ष-राक्षस-किन्नरैः ॥ ६ ॥ नदी नानाविधैः पद्मेरनेकैः सुपुराया सुननोरमा । ग्रन्याश्च नद्यः शतशः स्वर्णपद्मैरलंकृताः ॥ ७ ॥ उपस्पृष्टजला नित्यं तासां कूले तु देवस्य स्थानानि परमेष्ठिनः । देविषगणजुष्टानि तथा नारायणस्य तु ॥ ८ ॥ तस्यापि शिखरे शुभ्रं पारिजातवनं शुभम् । तत्र शुकस्य विपुलं भवनं रत्नमिएडतम् ॥ ९॥ स्काटिकस्तम्भसंयुक्तं हेमगोपुरशोभितम् । तत्राथ देवदेवस्य विष्णोविश्वात्मनः प्रभोः। प्रायश्व भवनं रम्यं सर्वरत्रोपशोभितम् ॥१०॥ तत्र नारायणः श्रीमाँललक्ष्म्या सह जगत्पतिः । ग्रास्ते सर्वेश्वरः श्रेष्ठः पूज्यमानः सनातनः ॥११॥ तथा च वस्घारे तु वसूनां रत्नमिण्डतम् । स्थानानामष्टमं पुरायं दुराघषं सूरिद्वषाम् ॥१२॥ रत्नवारे गिरिवरे सप्तर्षीणां महात्मनाम् । सप्ताश्रमाणि पुरपानि सिद्धावासैर्युतानि च ॥१३॥ तत्र हैमं चतुर्दारं वज्जनो लादिमिएडतम् । सुपुर्यं सदवस्थानं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१४॥ तत्र देवर्षयो विष्राः सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽपरे । उपासते देवदेवं पितामहम्जं परम् ॥१५॥ स तैः सम्पूजितो नित्यं देव्या सह चतुर्मुखः । श्रास्ते हिताय लोकानां शान्तानां परमा गितः॥१६॥ महापद्मैरलं कृतम् । स्वच्छामृतजलं पुरायं सुगन्धं सुमहत् सर : । तस्यैकशृङ्गशिखरे जैगीषव्याश्रमं पुरायं योगीन्द्रेरपसेवितम् ॥१७॥

तत्रासौ भगवान् नित्यमास्ते शिष्यैः समावृतः । प्रशान्तदोषैरक्षुद्रैर्द्वविद्भिर्महात्मभिः ॥१८॥ शङ्खो मनोहरश्चैव कौशिकः कृष्ण एव च । सुमना वेदवादश्च शिष्यास्तस्य प्रधानतः ॥१९॥ सर्वयोगरताः शान्ता भस्मोद्धलितविग्रहाः। उपासते महाचार्या ब्रह्मविद्यापरायणाः॥२०। तेषामनुग्रहार्थाय यतीनां शान्तचेतसाम् । सिन्नध्यं कुरुते भूयो देव्या सह महेश्वरः ॥२१॥ ग्रनेकान्याश्रमाणि स्युस्तस्मिन् गिरिवरोत्तमे । मुनोनां युक्तमनसां सरांसि सरितस्तथा ॥२२॥ तेषु योगरता वित्रा जापकाः संयतेन्द्रियाः । ब्रह्मग्यासक्तमनसो रमन्ते ज्ञानतत्पराः ॥२३॥ श्रात्मन्यात्मानमाधाय शिखान्तान्तरसंस्थितम् । घ्यायन्ति देशमीशानं येन सर्वमिदं ततम् ॥२४॥ सुमेघं वासवस्थानं सहस्रादित्यसिन्नभम् । तत्रास्ते भगवानिन्द्रः शच्या सह सुरेश्वरः ॥२५॥ गजरीले तु दुर्गाया भवनं मिएातोरणम् । म्रास्ते भगवती दुर्गा तत्र साक्षान्महेश्वरी ॥२६॥ उपास्यमाना विविधैः शक्तिभेदैरितस्ततः । पीत्वा योगामृतं नब्ध्वा साक्षादमृतमैश्वरम् ॥२७॥ सुलीलस्य गिरेः शृङ्गे नानाधातुसमुज्ज्वले । राक्षसानां पुराणि स्युः सरांसि शतशो द्विजाः॥ २५॥ तथा पुरशतं विप्राः शतश्रुङ्गे महाचले । स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं यक्षाणामिमतौजसाम् ॥२९॥ इवेतोदरगिरेः श्रुङ्गे सुपर्णास्य महात्मनः । प्राकारगोपुरोपेतं मणितोरणमण्डितम् ॥३०॥ स तत्र गरुडः श्रीमान् साक्षाद्विष्णुरिवापरः। ध्यात्वाऽस्ते तत् परं ज्योतिरात्मानं विष्णुमन्ययम्।।३१।। ग्रन्यच भवनं पुरायं श्रीशृङ्गे मुनिपुङ्गवाः । श्रीदेव्याः सर्वरत्नाह्यं हैमं समणितोरराम् ॥३२॥ तत्र सा परमा शक्तिविष्णोरितमनोरमा। ग्रनन्तविभवा लक्ष्मीर्जगत्सम्मोहनोत्सुका ॥३३॥ भ्रध्यास्ते देव - गन्धर्व - सिद्ध-चारणवन्दिता । विचिन्त्या जगतो योनिःस्वशक्तिकिरणोज्ज्वला॥३४॥ तत्रैव देवदेवस्य विष्णोरायतनं महत् । सरांसि तत्र चत्वारि विचित्रकमलाशयाः ॥३५॥ विद्याधरपुराष्ट्रकम् । रत्नसोपानसंयुक्तं सरोभिश्चोपशोभितम् ॥३६॥ तथा सहस्रशिखरे नद्यो विमलपानीयाश्चित्रनीलोत्पलाकराः । वर्णिकारवनं दिव्यं तत्रास्ते शङ्करः स्वयम् ॥३७॥ पारिपात्रे महाशेले महालक्ष्म्याः पुरं शुभम् । रम्यप्रामादसंयुक्तं घएटा-चामरभूषितम् ॥३८॥ नृत्यद्भिरप्सरः - संघैरितश्चेतश्च शोभितम् । मृदङ्ग - पणवोद्घुष्टं वेणु वीसानिनादितम् ॥३९॥ गन्यर्व किन्नराकीर्गं संवृतं सिद्धपुङ्कवैः । भास्विद्धित्तिसमायुक्तं महाप्रासादसंकुलम् । सुदर्शनम् ॥४०॥ धार्मिकाणां महागणेश्वरैर्ज्ष्टं

तत्र सा वसते देवी नित्यं योगपरायणा । महालक्ष्मीर्महादेवी तिशूलवरधारिणी ॥४१॥ तिनेत्रा शक्तिभिर्देवी संवृता सदसन्मयी । पश्यन्ति तत्र सुनयः सिद्धा ये ब्रह्मवादिनः ॥४२॥ सुप्राहर्यस्योत्तरे भागे सरस्वत्याः पुरोत्तमम् । सरांसि सिद्धजुष्टानि देवभोग्यानि सत्तमाः ॥४३॥ पाग्डुरस्य गिरेः श्रृङ्गो विचित्रद्रुमसंकुले । गन्धर्वाणां पुरशतं दिव्यस्त्रीभिः समावृतम् ॥४४॥ तेषु नित्यं मदोत्सिक्ता नरा नार्यस्तथेव च । क्रीडन्ति मुदिता नित्यं विज्ञासभागातत्पराः ॥४६॥ श्रृञ्जनस्य गिरेः श्रृङ्गे नारीप्रमनुत्तमम् वसन्ति तत्राप्सरसो रम्भाद्या रितलालसाः ॥४६॥ वित्रसेनादयो यत्र समायान्त्यर्थिनः सदा । सा पुरी सर्वरत्नाद्या नैकप्रस्वर्गोर्युता ॥४०॥ श्रृनेकानि पुराणि स्युः कौमुदे चापि सत्तमाः । रुद्राणां शान्तरजसामीश्वरासक्तचेतसाम् ॥४८॥ तेषु स्त्रा महायोगा महेशान्तरचारिणः । समासते परं ज्योतिरारूढाः स्थानमैश्वरम् ॥४९॥ विञ्जरस्य गिरेः श्रृङ्गे गणेशानां पुरत्रयम् । नन्दीश्वरस्य कपिला तत्रास्ते स महामितः ॥४०॥ तथा च जारुदेः श्रृङ्गे देवदेवस्य भीमतः । दीप्रमायतनं पुर्णं भास्करस्यामितोजसः ॥४१॥

तस्यैवोत्तरिद्यागे चन्द्रस्थानमनुत्तमम् । वसते तत्र रम्ये तु भगवान् शीतदीधितिः ॥५२॥ प्रत्यच्च भवनं दिव्यं हंसशेल महर्षयः । सहस्रयोजनायामं सुवर्णमिणितोरणाम् ॥५३॥ तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा सिद्धसंघैरिभष्टुतः । सािवत्र्या सह विश्वात्मा वासुदेवादिभिर्युतः ॥५४॥ तस्य दक्षिणिदिग्भागे सिद्धानां पुरमुत्तमम् । सनन्दनादयो यत्र वसन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥५४॥ पञ्चशैलस्य शिखरे दानवानां पुरत्रयम् । नातिदूरेण तस्माच्च दैत्याचार्यस्य धीमतः ॥५६॥ सुगन्धशैलशिखरे सिरिद्धिरुपशोभितम् । कर्दमस्याश्रमं पुण्यं तत्रास्ते भगवानृषिः ॥५०॥ तस्यैव पूर्वदिग्भागे किञ्चिद्वै दक्षिणाश्रिते । सनत्कुमारो भगवांस्तत्रास्ते ब्रह्मवित्तमः ॥५८॥ सर्वेष्वेतेषु शैलेषु तथान्येषु मुनीश्वराः । सरांसि विम्ला नद्यो देवानामालयानि च ॥५९॥ सिद्धिलङ्गानि पुण्यानि मुनिभः स्थापितानि च । बनान्याश्रमवर्याणि संख्यानुं नैव शक्यते ॥६०॥ एष संक्षेपतः प्रोक्तो जम्बूद्वीपस्य विस्तरः । न शक्यो विस्तराद्वकनुं मया वर्षशतैरिप ॥६१॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशविन्यासे जम्बूद्वीपवर्णनं नाम

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः । संवेष्टियित्वा क्षीरोदं प्लक्षद्वीपो व्यवस्थितः ॥ १ ॥ प्लक्षद्वीपे च विष्रेन्द्राः सप्तासन् कुलपर्वताः । ऋज्वायताः सुपर्वाणः सिद्धसङ्घनिषेविताः ॥ २ ॥ गोमेदः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्चन्द्र उच्यते । नारदो दुन्दुभिश्चेव मणिमान् मेघनिस्वनः ।

वैभ्राजः सप्तमस्तेषां ब्रह्मणोऽत्यन्तवल्लभः ॥ ३ ॥

तत्र देविषगन्धर्वेः सिद्धेश्च भगवानजः। उपास्यते स विश्वात्मा साक्षी सर्वस्य विश्वहक् ॥ ४ ॥ तेषु पुराया जनपदा ग्राघयो व्याघयो न च । न तत्र पापकत्तारः पुरुषा वै कदाचन ॥ ५ ॥ तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणान्तु समुद्रगाः। तासु ब्रह्मर्षयो नित्यं पितामहमुपासते ॥ ६ ॥ ग्रमृता शिक्षे चैव विपापा त्रिदिवा कुभा । ग्रमृता सुकृता चैव नामतः पिरकीत्तिताः॥ ७ ॥ श्रमृतस्त विख्याताः सरांसि च बहून्यि । न चैतेषु युगावस्था पुरुषा वै चिरायुषः॥ ६ ॥ श्रायंकाः कुरराश्चैव विदेहा भाविनस्तथा । ब्रह्म-क्षत्रिय-विद्शुद्रास्तिसम् द्वेषे प्रकीत्तिताः॥ ९ ॥ इज्यते भगवान् सोमो वर्णस्तत्र निवासिभः। तेषाञ्च सोमसायुज्यं साह्य्यं मृतिपुङ्गवाः॥ १० ॥ सर्वे वर्मरता नित्यं सर्वे मृदितमानसाः। पञ्चवर्षसहस्राणि जीवन्ति च निरामयाः॥ ११॥ प्रविष्माणात् तु द्विगुणेन समन्ततः। संवेष्ट्येक्षुरसाम्भोधि शाल्मिलः संव्यवस्थितः॥ १२॥ सप्त वर्षाणि तत्रापि सप्तेव कुलपर्वताः। ऋज्वायताः सुपर्वाणः सप्त नद्यश्च सुत्रताः॥ १३॥ कुमुदश्चोन्नतश्च तृतीयश्च बलाहकः। द्रोणः कङ्कस्तु महिषः ककुद्यान् सप्तमस्तथा ॥ १४॥ योती तोया विवृष्णाः च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी। निवृत्तिश्चिति ता नद्यः स्मृता पापहरा नृणाम् ॥ १५॥ योती तोया विवृष्णाः च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी। निवृत्तिश्चिति ता नद्यः स्मृता पापहरा नृणाम् ॥ १५॥ योती तोया विवृष्णाः च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी। निवृत्तिश्चिति ता नद्यः स्मृता पापहरा नृणाम् ॥ १५॥

न तेषु विद्यते लोभः क्रोधो वा द्विजसत्तमाः । न चैवास्ति युगावस्था जना जीवन्त्यनामयाः ॥१६॥ यजन्ति सततं तत्र वर्णा वायुं सनातनम् । तेषां तस्याथ सायुज्यं सारूप्यञ्च सलोकता ॥१६॥ किपला ब्राह्मणाःप्रोक्ता राजानश्चारुणास्तथा । पीता वैश्याः स्मृताःकृष्णाद्वीपेऽस्मिन् वृषलाद्विजाः॥१८॥ वाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः । संवेष्ट्य तु सुरोदाव्धिं कुश्चद्वीपो व्यवस्थितः ॥१९॥ विद्वुमश्चैव हेमश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा । कुशेशयो हिर्श्भिव मन्दरः सप्त पर्वताः ॥२०॥ धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मिता तथा । तथा विद्युत्रभा रामा महानद्यश्च सप्त वै ॥२१॥ ग्रन्याश्च शतशो विप्रा नद्यो मिण्जलाः शुभाः । तास्तु ब्रह्माणमीशानं देवाद्याः पर्युपासते ॥२२॥ ब्राह्मणा द्विणो विप्राः क्षत्रियाः शुष्मिणस्तथा । वैश्याः स्तोभास्तु मन्देहा शूद्रास्तत्र प्रकीत्तिताः॥२३॥ मर्स्येऽपि ज्ञानसम्पन्ना मैत्र्यादगुणसंयुताः । यथोक्तकारिणः सर्वे सर्वभूतिहते रताः ॥२४॥ यजन्ति यज्ञैविविधैर्वह्माणं परमेष्टिनम् । तेषाश्च ब्रह्मसायुज्यं सारूप्यञ्च सलोकता ॥२४॥ कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः । क्रीञ्चद्वीपः स्थितो विप्रा वेष्टियत्वा घृतोदिद्यम् ॥२६॥ क्रौश्चो वामनवश्चैव वृतीयश्वाधिकारिकः । देवावृच्च विविन्दश्च पुरुदरीकम्तथैव च ।

नाम्ना च सप्तमः प्रोक्तः पर्वतो दुन्दुभिस्वनः ॥२७॥

गौरी कुमुद्रती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा । ख्यातिश्च पुरुडरीकाक्षा नद्यः प्राधान्यतः स्मृताः ॥२५॥ पुष्कला पुष्करा धन्यास्तिष्या वर्णाः क्रमेण वै। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेव द्विजोत्तमाः॥२९॥ महादेवं यज्ञ-दान-शमादिभिः। वतोपवासैर्विविधैर्होमैश्च रुद्रसायुज्यं सारूप्यञ्चातिदुर्लभम् । सलोकता च सामीप्यं जायते तत्प्रसादतः ॥३१॥ कौश्वद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः । शाकद्वीपः स्थितो विप्रा ग्रावेष्ट्य दिधसागरम् ॥३२॥ उदयो रैवतश्चैव श्यामाकोऽस्तगिरिस्तथा । म्राम्बिकेयस्तथा रम्यः केशरी चेति पर्वताः ॥३३॥ मुकुमारी कुमारी च नलिनी रेणुका तथा । इक्षुका धेनुका चैव गभस्तिश्चीत निम्नगाः ॥३४॥ ग्रासां पिबन्तः सलिलं जीवन्ते तत्र मानवाः । ग्रनामया ह्यशोकाश्च राग-द्वेषविवर्जिताः । ३४।। मगाइच मगधाक्वेव मानसा मन्दगास्तथा । ब्राह्मणाःक्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चात्र क्रमेण तु ॥३६॥ यजन्ति सततं देवं सर्वलोकैकसाक्षिणम् । त्रतोपवासैविविधदेवदेवं तेषां वे सूर्यसायुज्यं सामीप्यश्व सरूपता । सलोकता च विप्रेन्द्रा जायते तत्प्रसादतः ॥२५॥ शाकद्वीपं समावृत्य क्षीरोदः सागरः स्थितः । श्वेतद्वीपश्च तन्मध्ये नारायणपरायणाः ॥३९॥ तत्र पूर्या जनपदा नानाश्चर्यसमन्विताः । व्वेतास्तत्र नरा नित्यं जायन्ते विष्णुतत्पराः ॥४०॥ नाधयो व्याघयस्तत्र जरामृत्युभयं न च । क्रोधलोभिविनिर्मुक्ता माया-मात्सर्यविजिताः ॥४१॥ नित्यपृष्टा निरातङ्का नित्यानन्दाश्च भोगिनः। नारायणसमाः सर्वे नारायण्यरायणाः॥४२॥ केचिद् ध्यानपरा नित्यं योगिनः संयतेन्द्रियाः । केचिज् जपन्ति तप्यन्ति केचिद्विज्ञानिनोऽपरे।।४३॥ अन्ये निर्वीजयोगेन ब्रह्मभावेण भाविताः । ध्यायन्ति तत् परं ब्रह्म वासुदेवं सनातनम् ॥४४॥ एकान्तिनो निरालम्बा महाभागवताः परे । पश्यन्ति तत् परं ब्रह्म विष्एवाख्यं तमसः परम् ॥४॥। सर्वे चतुर्भुजाकाराः शङ्ख-चक्र-गदाधराः । सुप तवाससः सर्वे श्रीवत्साङ्कितवक्षसः ॥४६॥ महागरुडवाहनाः ॥ ४७ ॥ महेश्वरपरास्त्रिपुराङ्गाङ्कितमस्तकाः । सुयोगाङ्ग्तिकरणा सर्वे शक्तिसमायुक्ता नित्यानन्दाश्च निर्मलाः । वसन्ति तत्र पुरुषा दिष्णोरन्तरचारिणः ॥४८॥ तत्र नारायणस्यान्यद् दुगमं दुरतिक्रमम् । नारायणं नाम पुरं प्रासादैस्पशोभितम् ॥४९॥

स्फाटिकैर्मएडपैर्युतम् । प्रभासहस्रकलिलं दूरावर्षं सुशोभनम् ॥५०॥ हेमप्राकारसंयुक्तं र्नानारलोपशोभिनैः संयुक्तमद्रालसमाकूलम् । हेमगोपुरसाहसै हर्म्ययप्रासाद शुभ्रास्तरणसंयुक्त विचित्रैः समलङ्कृतम् । नन्दनैविविधःकारैः सरिद्भिरपशोभितम् ॥५२॥ सरोभिः सर्वतो युक्तं वीणा-वेणुनिनादितम् । पताकाभिविचित्राभिरनेकाभिरच शोभितम् ॥५३॥ वीथीभिः सर्वतो युक्तं सोपाने रत्नभूषितैः । नदीशतसहस्राढ्यं दिव्यगाननिनादितम् ॥५४॥ चक्रवाकोपशोभितम् । चतुद्वरिमनौपम्यमगम्यं देवविद्विषाम् ॥५५॥ हंसकारएडवाकोएी सङ्घ नृत्यद्भिरुपशोभितम् । नानागीतविधानज्ञैदेवानामपि कामूकैरतिकोमलैः । प्रभूतचन्द्रवदनैन् पुरारावसंयुतैः सुबिम्बोष्टेबालसुग्धमृगेक्षणैः । श्रशेषविभवोपेतेस्तनु मध्यविभूषितैः ईषत् - स्मितैः सुवेषैर्मधुरस्वनैः । संलापालापकुशलैदिव्याभरणभूषितैः 114311 स्राजहंसचलनै: मधुवूरिगतलोचनैः । नानावर्गविचित्राङ्गैर्नानाभोगरतिप्रियैः स्तनभारविन म्र ३च उत्फुलकुस्मोद्यानैरितश्चेतश्च शोभितम् ॥६०॥ त्रिदशैरपि । श्रीमत् पवित्रं देवस्य श्रीपतेरिमतौजसः ॥६१॥ शुद्ध मगम्यं ग्रसंख्येयगुणं मध्येऽतितेजस्कमुद्यत्प्राकारतोरणम् । स्थानं तद्वैष्णवं दिव्यं योगिनां सिद्धिदायकम्॥६२॥ पुगडरीकदलद्यतिः । शेतेऽशेषजगत्युतिः शेषाहिशयने हरिः ॥६३॥ भगवानेकः सनन्दनपुरोगमैः । स्वात्मानन्दामृतं पीत्वा पुरस्तात् तमसः परः॥६४॥ योगीन्द्रैः पीतवासा विशालाक्षो महामायो महाभुजः । क्षीरोदकन्यया नित्यं गृहीतचरणद्वयः ॥६५॥ सा च देवी जगद्वन्द्या पादमूले हरिप्रिया । समास्ते तन्मना नित्यं पीत्वा नारायणामृतम्॥६६॥ न तत्राघार्मिका यान्ति न च देवान्तरालयाः । वैकुएठं नाम तत् स्थानं त्रिदशैरपि वन्दितम् ॥६७॥ प्रभवति प्रज्ञा कृत्स्रशास्त्रनिरूपणे । एतावच्छक्यते वक्तुं नारायरापुरं हि तत् ॥६८॥ वासुदेवः सनातनः । शेते नारायणः श्रीमान् मायया मोहयज् जगत् ॥६९॥ परमं ब्रह्म नारायणादिदं जातं तस्मिन्नेव व्यवस्थितम् । तमेवाभ्येति कल्पान्ते स एव परमा गतिः ॥७०॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशविन्यासे प्लक्षद्वीपादिकथनं

नामाष्ट्रचत्वारिशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

स्त उवाच

शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन व्यवस्थितः । क्षीरार्णवं समावृत्य द्वीपः पुष्करसंज्ञितः ॥ १ ॥
एक एवात्र विप्रेन्द्रा पर्वतो मानसोत्तरः । योजनानां सहस्राणा चोद्धं पश्चाशदुच्छितः ॥ २ ॥
तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः । स एव द्वीपश्चार्द्धेन मानसोत्तरसंस्थितः ॥ ३ ॥
एक एव महाभागः सन्निवेशाद् द्विधा कृतः । तस्मिन् द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ ।
ग्रापरौ मानसस्याथ पर्वतस्यानुमण्डलौ ॥ ४ ॥

महावीतं स्मृतं वर्षं धातकीखराडमेव च । स्वादूदकेनोदिबना पुष्करः परिवारितः ॥ ५ ।। तस्मिन् द्वीपे महावृक्षो न्यग्रोघोऽमरपूजितः । तस्मिन् निवसति ब्रह्मा विश्वातमा विश्वभावनः ॥६॥ तत्रीव मुनिकार्द्द्लाः क्षिव - नारायणालयः । वसत्यत्र महादेवो हरोध्वं हरिरव्ययः ॥ ७ ॥ सम्पूज्यमानो ब्रह्माद्ये कुमाराद्येश्च योगिभिः । गन्ववैः किन्नरैर्यक्षेरीश्वरः कृष्णिपङ्गलः ॥ द ॥ स्वस्थास्तत्र प्रजाः सर्वा ब्रह्मणा सहशत्विषः । निरामया विशोकाश्च राग - द्वेषविवर्जिताः॥ ९ ॥ सत्यानृते न तत्रास्तां नोत्तमाधममध्यमाः । न वणिश्रमधमिश्च न नद्यो न च पर्वताः ॥१०॥ परेगा पुष्करेणाथ समावृत्य स्थितो महान् । स्वाद्दकसमुद्रस्तु समन्ताद् द्विजसत्तमाः ॥११॥ परेगा तस्य महती दश्यते लोकसंस्थितिः। काञ्चती द्विगुणा भूमिः सर्वत्रीकशिलोपमा ॥१२॥ तस्याः परेण शैलस्तु मर्यादा भानुमग्डलः । प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते ॥१३॥ योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्यः स्मृतः । तावानेव च विस्तारो लोकालोकमहागिरेः ॥१४॥ समावृत्य तू तं शैलं सर्वतो वै समास्थितन् । तमश्चाएडकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम् ॥१५॥ एते सप्त महालोकाः पातालाः सम्प्रकीर्त्तिताः । ब्रह्माएडाशेषविस्तारः संक्षेपेण मयोदितः ॥१६॥ श्रग्डानामीहर्गानान्तु कोच्यो ज्ञेयाः सहस्रगः । सर्वगत्वात् प्रधानस्य कारणस्याव्ययात्मनः ॥१७॥ श्चराडेब्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश । तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा रुद्रा नारायणादयः ॥१८॥ दशोत्तरमथैकैक - मग्डावरणसप्तकम् । समन्तात् संस्थितं विप्रास्तत्र यान्ति मनीषिणः॥१९॥ महत् । त्रवीत्य वर्त्तते सर्वं जगत्प्रकृतिरक्षरम् ॥२०॥ भ्रनन्तमेकमव्यक्तमनादिनिधनं म्रनन्तत्वमनन्तस्य यतः संख्या न विद्यते । तदव्यक्तमिदं ज्ञेयं तद् ब्रह्म परमं ध्र्वम् ॥२१॥ श्रनन्त एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पठ्या । तस्य पूर्वं मयाऽप्युक्तं यत्तन्माहातम्यमुत्तमम् ॥२२॥ स एव सर्वत्र गतः सर्वस्थानेषु पूज्यते । भूमौ रसातले चैव श्राकाशे पवनेऽनले ॥२३॥ म्राणंवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशयः । तथा तमिस सत्त्वे वाऽप्येष एव महाद्युतिः । श्रने कथा विभक्तश्चः कीडते पुरुषोत्तमः ॥२४॥ महेश्वर: परोऽज्यक्तादराडमञ्यक्तसम्भवम् । अराडाद् ब्रह्मा समुत्पन्नस्तेन सृष्टमिदं जगत् ॥२५॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशिवन्यासो नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥४९॥

१०६

कूर्मपुराणम्

पञ्चाशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

स्रतीतानागतानीह यानि मन्वन्तराणि वै। तानि त्वं कथयास्माकं व्यासांश्च द्वापरे युगे ॥ १॥ वेदशाखाप्रणियनो देवदेवस्य धीमतः । तथाऽत्रतारान् धर्मार्थमोशानस्य कली युगे ॥ २॥ कियन्तो देवदेवस्य शिष्याः कलियुगेऽपि वै। एतत् सर्वं समासेन सूत वक्तुमिहाईसि॥ ३॥

स्त उवाच

मनुः स्वायम्भुवः पूर्वं ततः स्वारोचिषो मतः । उत्तमस्तामसश्चीव रैवताश्चाक्षुषस्तथा ॥ ४॥ षडेते मनवोऽतीताः साम्प्रतन्तु रवेः सुतः । वैवस्वतोऽयं यस्यैतत् सप्तमं वर्त्ततेऽन्तरम्।। ५॥ कथितं कल्पादावन्तरं मया । ग्रत ऊर्ध्वं निबोधध्वं मनोः स्वारोचिषस्य तु ॥६॥ पारावताश्च तुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे । विपश्चित्राम देवेन्द्रो बभूवासुरमर्दनः ॥ ७ ॥ ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राणो दम्मोलिर्वृषभस्तथा । तिमिरदचाववीरांदच सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ५॥ चैत्रकिम्पुरुषाद्यास्तु सुताः स्वारोचिषस्य तु । द्वितीयमेतदाख्यातमन्तरं श्रृणु चोत्तमम्।। ९।। तृतीयेऽप्यन्तरे चेव उत्तमो नाम वै मनुः । सुशान्तिस्तत्र देवेन्द्रो बभूवामित्रकर्षणः ॥१०॥ सुधामानस्तथा सत्या शिवाश्चाथ प्रतर्दनाः । वशर्वातनः पञ्चेते गणा द्वादशकाः स्मृताः ॥११॥ सवनश्चानघस्तथा । सुतपाः शुक इत्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥१२॥ रजोगात्रोद्ध्वंबाहश्च तामसस्यान्तरे देवाः सुरावा हरयस्तथा। सत्याश्च सुधियश्चेव सप्तविंशतिका गएाः॥१३॥ शिविरिन्द्रस्तथैवासीच्छतयज्ञोपलक्षणः । बभूव शङ्करे भक्तो महादेवार्चने रतः ॥१४॥ ज्योतिद्धीम पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वरुणस्तथा । पीवरस्त्वृषयो हचेते सप्त तत्रापि चान्तरे ॥१५॥ पञ्चमे चापि विप्रेन्द्रा रैवतो नाम नामतः । मनुर्विभुश्च तत्रेन्द्रो बभूवासुरमर्दनः ॥१६॥ म्रमिता भूतयस्तत्र वैकुएठाश्च सुरोतमाः । एते देवगए।स्तत्र चतुर्दश वेदश्रीरूद्ध्वबाहुस्तथैव च । वेदबाहुः सुबाहुश्च सपर्जन्यो महामुनिः । एते सप्तर्षयो विप्रास्तत्रासन् रैवतेऽन्तरे ॥१८॥

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा। प्रियव्रतान्विता हचेते चत्वारो मनवः स्मृताः ॥१९॥ षष्ठ मन्वन्तरे चापि चाक्षुषस्तु मनुर्द्विजाः। मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवांश्चेव निबोधत ॥२०॥ श्राद्याः प्रसूता भव्याश्च पृथुकाश्च दिवौकसः। महानुभावा लेख्याश्च पञ्चेते ह्यष्टका गर्णाः ॥२१॥ सुमेधा विरजारचैव हिवष्मानुत्तमो मधुः। ग्रिभमानः सिहष्णुश्च सप्तासन्नृषयः शुभाः ॥२२॥ विवस्वतः सुतो विप्राः श्राद्धदेवो महाद्युतिः। मनुः स वर्त्तते धीमान् साम्प्रतं सप्तमेऽन्तरे ॥२३॥ श्चादित्या वसवो छ्दा देवास्तत्र मछ्दगणाः। पुरन्दरस्तथैवेन्द्रो बभूव परवीरहा ॥२४॥ विष्णुशिक्तरनीपम्या सत्त्वोद्विक्ता स्थिता । तदंशभूता राजानः सर्वे च विदिवौकसः ॥२६॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाकूत्यां मानसः सुतः। रुचेः प्रजापतेर्जज्ञे तदंशेनाभवद् द्विजाः॥२७॥ ततः पुनरसी देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे । तुषितायां समुत्पन्नस्तुषितैः सह दैवतैः ॥२८॥

श्रीतमेऽप्यन्तरे विष्णुः सत्यैः सह सुरोत्तमः । सत्यायामभवत् सत्यः सत्यरूपो जनार्दनः ॥१९॥ तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि । हर्यायां हरिभिर्देवैर्हरियेवाभवद्धरिः ॥३०॥ रैवतेऽप्यन्तरे चैव सङ्कल्पान्मानसो हरिः । सम्भूतो मानसैः सार्द्धं देवैः सह महाद्युतिः ॥३१॥ चाक्षुषेऽप्यन्तरे चैव वैकुएठः पुरुषोत्तमः । विकुएठायामसी जज्ञे वैकुएठदेवतैः सह ॥३२॥ मन्वन्तरेऽत्र सम्प्राप्ते तथा वैवस्वतेऽन्तरे । वामनः काश्यपाद्विष्णुरिदत्यां सम्बभूव ह ॥३३॥ त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान् जित्वा येन महात्मना । पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकएटकम् ॥३४॥ सप्तमन्वन्तरेषु वे । सप्त चैवाभवन् विप्रा याभिः संरक्षिताः प्रजाः ॥३५॥ यस्माद्विश्वमिदं कृत्स्नं वामनेन महात्मना । तस्मात् सर्वैः स्मृतो विष्णुविशेर्घातोः प्रवेशनात् ॥३६॥ एष सर्वं सुजत्यादी पाति हन्ति च केशवः । भूतान्तरात्मा भगवान् नारायण इति श्रुतिः ॥३७॥ एकांशेन जगत् सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः । चतुर्द्धा संस्थितो व्यापी सगुणो निर्मुणोऽपि च ॥३८॥ एका भगवतो स्तिक्रीनरूपा शिवामला । वास्देवाभिधाना सा गुणातीता स्निष्कला ॥३९॥ द्वितीया कालसंज्ञाऽन्या तामसी शिवसंज्ञिता । निहन्त्री सकलस्यान्ते वैष्णवी परमा तनुः ॥४०॥ सत्त्वोद्रिक्ता तृतीयाऽन्या प्रद्यम्नेति च संज्ञिता। जगत् संस्थापयेद्विश्वं सा विष्णोः प्रकृतिर्ध्रं वा ॥४१॥ चतुर्थी वासुदेवस्य मूर्त्तिर्वह्मीत संज्ञिता । राजसी चानिरुद्धाख्या प्रद्यम्नसृष्टिकारिका ॥४२॥ यः स्विपत्यिखलं हत्वा प्रद्युम्नेन सह प्रभुः । नारायणाख्यो ब्रह्मासी प्रजासर्गं करोति सः ॥४३॥ यासौ नारायणतनुः प्रद्युम्नाख्या शुभा स्मृता । तया सम्मोहयेद्विश्वं सदेवासुरमानुषम् ॥४४॥ सा वै सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिः परिकीत्तिता । वासुदेवो ह्यनन्तात्मा केवलो निर्गुणो हरिः ॥४५॥ प्रधानं पुरुषः कालः तत्त्वत्रयमनुत्तमम् । वासुदेवात्मकं नित्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते ॥४६॥ एक चेदं चतुष्पादं चतुर्द्वा पुनरच्युतः । बिभेद वासुदेवोऽसौ प्रद्युम्नो भगवान् हरिः ॥४७॥ कृष्णद्वैपायनो व्यासो विष्णुर्नारायणः स्वयम् । भ्रपान्तरतमाः पूर्णं स्वेच्छया ह्यभवद्धरिः ॥४८॥ ग्रनाद्यन्तं परं ब्रह्म न देवा ऋषयो विदुः । एकोऽयं वेद भगवान् व्यासो नारायणः प्रभुः ।।४९॥ इत्येतद्विष्णुमाहात्म्यं कथितं मुनिसत्तमाः । एतत् सत्यं पुनः सत्यमेवं ज्ञात्वा न मुह्यति ॥५०॥

> इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे मन्यन्तरकीर्त्तने विष्णूमाहात्म्यः नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

206

कूर्मपुराणम्

एकपञ्चाशोऽध्यायः

स्त उवाच

श्रस्मिन् मन्वन्तरे पूर्वं वर्त्तमाने महान् प्रभुः । द्वापरे प्रथमे व्यासो मनुः स्वायम्भुवो मतः ॥ १ ॥ विभेद बहुधा वेदं नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः । द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापितः ॥ २ ॥ तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे स्याद्बृहस्पतिः । सविता पञ्चमे व्यासः षष्ठे मृत्युः प्रकृतितः ॥ ३ ॥ सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे मतः । सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे मतः ॥ ४॥ एकादशे तु ऋषभः मुतेजा द्वादशे स्मृतः । त्रयोदशे तथा धर्मः सुवक्ष्रस्तु चतुर्दशे ॥ १४॥ त्रयारुणिः पञ्चदरी षोडरी तु धनख्यः । कृतख्यः सप्तदरी ह्यष्टादरी ऋतख्यः ॥ ६॥ ततो व्यासो भरद्वाजस्तस्मादूद्ध्र्वन्तु गीतमः । वाचश्रवाश्वैकविशे तस्मान्नारायणः परः॥ ७॥ तुराबिन्द्रस्त्रयोविशे वाल्मीकिस्तत्परः समृतः । पश्विवशे तथा शक्तिः षड्विशे तु पराशरः ॥ ५ ॥ सप्तिविशे तथा व्यासो जातुकणीं महामुनिः । श्रष्टाविशे पूनःप्राप्ते ह्यस्मिन् वै द्वापरे द्विजाः ॥ ९॥ पराशरसुतो व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽभवत् । स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः ॥१०॥ पाराशर्यो महायोगी कृष्णद्वैपागनो हरिः । ग्राराध्य देत्रमीशानं हष्ट्रा स्तुत्त्रा त्रिलोचनम्।११।। तत्प्रसादादसी व्यासं वेदानामकरोत् प्रभुः । ग्रथ शिष्यान् स जग्राहं चतुरो वेदपारगान् ॥१२॥ जैमिनिश्व सुमन्तुश्व वैशम्पायनमेव च। पैलं तेषां चतुर्थश्व पश्वमं मां महासुनिः ॥१३॥ ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः । यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव जैमिनि सामवेदस्य पाठकं सोऽन्वपद्यत । तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुम्षिसत्तमम् । इतिहासपूराणानि प्रवक्तं मामयोजयत् ॥१४॥

एक श्रासीद् यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा प्रकल्पयत् । चातुर्होत्रमभूत् तिस्मस्तेन यज्ञमथाकरोत् ॥१६॥ श्राध्वयंवं यजुर्भिः स्याद्दिभर्होतं द्विजोत्तमाः । श्रीद्गात्रं सामभिश्चके ब्रह्मत्वन्धाप्यथर्वभिः ॥१७॥ ततः स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः । यजुर्षि तु यजुर्वेदं सामवेदन्तु सामभिः ॥१८॥ एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा । शाखानान्तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत् ॥१९॥ सामवेदं सहस्रेण शाखानां प्रविभेद सः । श्रथविणमथो वेदं विभेद नवकेन तु ।

भेदैरष्टादशैर्व्यासः पुराणं कृतवान् प्रभुः ॥२०॥

सोऽयमेकश्चतुष्पादो वेदः पूर्वं पुरातनः । ग्रोङ्कारो ब्रह्मणो जातः सर्वदोषविशोधनः ॥२१॥ वेदवेदो हि भगवान् वामुदेवः सनातनः । स गीयते परो वेदैयों वेदैनं स वेदिवत् ॥२२॥ एतत् परतरं ब्रह्म ज्योतिरानन्दमुत्तमम् । वदवाक्योदितं तत्त्वं वासुदेवः परं पदम् ॥२३॥ वेदिविद्यामिमां वेत्ति वेदं वेदपरो मुनिः । ग्रवेद्यं परमं वित्त वेदिनिष्ठः सदेश्वरः ॥२४॥ स वेदवेदो भगवान् वेद्धित्तिर्महेश्वरः । स एव वेद्यो वेदश्च तमेवाश्चित्य मुच्यते ॥२४॥ इत्येतदक्षरं वेदमोङ्कारं वेदमव्ययम् । ग्रवेदञ्च विजानाति पाराशर्यो महामुनिः ॥२६॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे पूर्वभागे वेदव्यासकथनं नाम

एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

पूर्वभागें द्विपञ्चाशोऽध्याचः

द्विपञ्चाशोऽध्यायः

स्त उवाच

वेदन्यासावताराणि द्वापरे कथितानि तु । महादेवायताराणि कलौ शृगुत सुव्रताः ॥ १ ॥ श्राच्चे कलियुगे द्वेतो देवदेवो महाद्युतिः । नाम्ना हिताय विप्राणामभूद्वेवस्वतेऽन्तरे ॥ २ ॥ हिमविच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे । तस्य शिष्याः प्रशिष्याश्च बभूवुरिमतप्रभाः ॥ ३ ॥ इदेतः द्वेतिशिखश्चेव द्वेतास्यः द्वेतलोहितः । चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मगा वेदपारगाः ॥ ४ ॥ सुतारो मदनद्वेव सुहोत्रः कङ्कणस्तथा । लोकाक्षिस्त्वथ योगीन्द्रो जैगीषव्योऽय सप्तमे ॥ ५ ॥ सृष्टमे दिववाहः स्यान्नवमे ऋषमः प्रभुः । भृगुस्तु द्वमे प्रोक्तस्तस्मादुगः परः स्मृतः ॥ ६ ॥ द्वादशेऽत्रिः समाष्यातो बानी वाथ त्रयोदशे । चतुर्दशे गौतमस्तु वेदशीर्षा ततः परः ॥ ७ ॥ गोकर्णश्चाभवत् तस्मादगुहावासः शिखगुडधृक् । जटामाल्यट्टृहासश्च दाक्को लाङ्गली तथा ॥ ६ ॥ सहायामो मुनिः शूली डिएडमुग्डिश्वरः स्वयम् । सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलीश्वर एव च ॥ ९ ॥ वैवस्वतेऽन्तरे शम्भोरवतारास्त्रिश्चित्तः । श्रष्टाविश्वितराख्याता ह्यन्ते कलियुगे प्रभोः । तीर्थे कायावतारे स्याद देवेशो नकुलीश्वरः ॥ १०॥

देवाधिदेवस्य चत्वारः सुतपोधनाः। शिष्या बभूबुश्चान्येषां प्रत्येकं सुनिपुङ्गवाः ॥११॥ प्रसन्नमनसो दान्ता ऐश्वरीं भक्तिमास्थिताः । क्रमेख तान् प्रवक्ष्यामि योगिनो योगिवत्तमान्॥१२॥ दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋदीकः केतुमांस्तथा। विशोकश्च विकेशश्च विशाखः शापनाशनः॥१३॥ सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः । सनकश्च सनन्दश्च कुमारश्च सनातनः ॥१४॥ वाष्कलश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः । सुनामा विरजाश्चेव शङ्खवाएयज एव च ॥१५॥ सारस्वतस्तथा मेघो घनवाहः सुवाहनः। किपलश्चासुरिश्चैव वोदुः पञ्चशिखो मुनिः॥१६॥ गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा । चलबन्धुर्निरामित्रः केतुश्यङ्गस्तपोधनाः ॥१७॥ लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बाक्षो लम्बकेशकः । सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यासाध्यस्तथैव च ॥१ ॥ सुधामा काव्यपश्चाथ वसिष्ठो विरजास्तथा । श्रविरुग्रस्तथा चैव श्रवणोऽथ सुवैद्यकः ॥१९॥ कुशरीरः कुनेत्रकः। कश्यपो ह्यु शना चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः।।२०।। क्णिबाहश्च उतथ्यो वामदेवश्च महाकायो महातिलः । वाजःश्रवाः सुकेशश्च श्यावाश्वः सुपथीश्वरः ॥२१॥ हिरएयनाभः कौशल्यो लोकाक्षिः कुथुमिस्तथा। सुमन्तवर्चसो विद्वान् कबन्वः कुशिकन्वरः॥२२॥ प्लक्षो दर्वायिणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा । भल्लाची मधुविङ्गरच श्वेतकेतुस्तवोधनः ॥२३॥ उषिजो बृहदक्षरव देवलः कविरेव च । शालिहोत्रोऽग्निवेश्यस्तू युवनाश्वः शरद्वसः ॥२४॥ छगलः कुराडकर्गारच कुन्तरचैव प्रवाहकः । उलूको विद्युतश्चीव शादको ह्याश्वलायनः ॥२४॥ कुमारश्व उल्को वसुवाहन: । कुिएक इचैव गर्गइच मित्रको स्हरेव च ॥२६॥ शिष्या एते महात्मानः सर्वावर्त्तेषु योगिनाम् । विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणाः ॥२७॥ कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां हिताय च । योगेश्वराणामादेशाद्वेदसंस्थापनाय ये ब्राह्मणाः संस्मरन्ति नमस्यन्ति च सर्वदा । तर्पयन्त्यर्चयन्त्येतान् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयुः ॥२९॥ इदं वैवस्वतं प्रोक्तमन्तरं विस्तरेण तु । भविष्यति च सावर्णो दक्षसावर्ण एव च ॥३०॥ दशमो ब्रह्मसावर्णो धर्म एकादशः स्मृतः । द्वादशो रुद्रसावर्णो रीच्यनामा त्रयोदशः । भीत्यवचतुर्दशः प्रोक्तो भविष्या मनदः कमात् ॥३१॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain

209:

प्रयं वः कथितो ह्यंशः पूर्वो नारायणेरितः । भूतैर्भव्येर्वर्त्तमानैराख्यानैरुपवृहितः ।।३२॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान् । सर्वपापिविनिर्मृक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥३३॥
पठेद् देवालये स्नात्वा नदीतीरेषु चैव हि । नारायगां नमस्कृत्य भावेन पुरुषोत्तमम् ॥३४॥
नमो देवाधिदेवाय देवानां परमात्मने । पुरुषाय पुराणाय विष्णवे कूर्मरूपिणे ॥३५॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे पूर्वभागे महादेवावतारकथनं नाम द्विपश्चाशोऽध्यायः ॥ ५२॥

पूर्वभागः समाप्तः

उत्तर-भागः

प्रथमोऽध्यायः

[ईश्वरगीता १-११ अ०]

ऋषय ऊचुः

भवता कथितः सम्यक् सर्गः स्वायम्भुवस्ततः । ब्रह्माएडस्यास्य विस्तारो मन्वन्तरविनिश्चयः ॥ १ ॥ तत्रेश्वरेश्वरो देवो वर्णिभिर्धर्मतत्परैः । ज्ञानयोगरतैर्नित्यमाराध्यः कथितस्तवया ॥ २ ॥ - दु:खनाशमनुत्तमम् । ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं येन पश्येम तत् परम् ॥ ३ ॥ तत्वश्वाशेषसंसार दवं हि नारायणः साक्षात् कृष्णद्वेपायनात् प्रभो । ग्रवाप्ताखिनविज्ञानस्तत् त्वां पृच्छामहे पुनः॥ ४॥ श्रुत्वा मुनीनां तद्वावयं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् । सूतः पौराणिकः स्मृत्वा भाषितुं ह्युपचक्रमे ॥ ॥ श्रयास्मिन्नन्तरे व्यासः कृष्णहैपायनः स्वयम् । श्राजगाम मुनिश्रेष्ठा यत्र सत्रं समासते ॥ ६॥ तं दृष्ट्वा वेदविद्वांसं कालमेघसमद्युतिम् । व्यासं कमलपत्राक्षं प्रणेमुर्दिजपुङ्गवाः ॥ ७ ॥ पपात दग्डवद्भूमी हष्ट्वासी लोमहर्षणः । प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं प्राख्नलिः पार्वगोऽभवत् ॥ ५॥ पृष्टास्तेऽनामयं विप्राः शौनकाद्या महामुनिम् । समासृत्यासनं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन् ॥ ९॥ पराशरमुतः प्रभुः । कचिन्नं हानिस्तपसः स्वाध्यायस्य श्रुतस्य च ॥१०॥ ध्रथैनान ब्रवीद्वाक्यं तत्रच सूतः स्वगुरुं प्रणम्याह महामुनिम् । ज्ञानं तद् ब्रह्मविषयं मुनीनां वक्तु पहेंसि ॥११॥ इमे हि मुनयः शान्तास्तापसा धर्मतत्पराः । शुश्रूषा जायते चैषां वनतुमर्हसि तत्त्वतः ॥१२॥ ज्ञानं विमुक्तिदं दिव्यं यन्मे साक्षात् त्वयोदितम् । मुनीनां व्याहृतं पूर्वं विष्णुना कूर्मरूपिणा ॥१३॥ श्रुत्वा सूतस्य वचनं मुनिः सत्यवतीमुतः । प्रणम्य शिरसा रुद्रं वचः प्राह सुखावहम् ॥१४॥

च्यास उवाच

वक्ष्ये देवो महादेवः पृष्टो योगीश्वरैः पुरा । सनत्कुमारप्रमुखैः स्वयं यत् समभाषत ॥१५॥ सनत्कुमारः सनकस्तथैव च सनन्दनः । ग्रङ्गिरा रुद्रसहितो भृगुः परमधर्मवित् ॥१६॥ कणादः किपलो गर्गो वामदेवो महामुनिः । ग्रुको विसष्ठो भगवान् सर्वे संयतमानसाः ॥१०॥ परस्परं विचायते संग्रयाविष्ठचेतसः । तप्तवन्तस्तपो घोरं पुण्ये बदिरकाश्रमे ॥१०॥ ग्रप्थयंस्ते महायोगमृषि धर्मसुतं मुनिम् । नारायणमनाद्यन्तं नरेण सहितं तदा ॥१९॥ संस्तूय विविधः स्तोत्रेः सर्ववेदसमुद्भवैः । प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनो योगवित्तमम् ॥२०॥ विज्ञाय वाञ्चितं तेषां भगवानिष सर्ववित् । प्राह गम्भोरया वाचा किमथं तव्यते तपः ॥२१॥

धन्नवन् हृष्टमनसो विश्वात्मानं सनातनम् । साक्षान्नारायणं देवमागतं सिद्धिसूचकम् ॥२२॥ वयं संशयमापन्नाः सर्वे वै ब्रह्मवादिनः । भवन्तमेव शरणं प्रपन्नाः पुरुषोत्तमम् ॥२३॥ त्वं वेत्सि परमं गुह्यं सर्वन्तु भगवानृषिः । नारायगाः स्वयं साक्षात् पुराणोऽव्यक्तपूरुषः ॥२४॥ न ह्यन्यी निद्यते नेत्ता त्वामृते परमेश्वरम् । स त्वमस्माकमचलं संशयं छेत्तुमहिसि ॥२५॥ किकारणियदं कृत्स्नं को नु संसरते सदा । किश्वदात्मा च का मुक्तिः संसारः किनिमित्तकः ॥२६॥ कः संसारपतीशानः को वा सर्वं प्रपश्यति । किं तत् परतरं ब्रह्म सर्वं नो वक्तुमईसि ॥२०॥ एवमुक्त्वा तु मुनयः प्रापश्यन् पुरुषोत्तमम् । विहाय तापसं वेषं संस्थितं स्वेन तेजसा ॥२०॥ विभाजमानं विमलं प्रभामग्डलमग्डितम् । श्रीवत्सवक्षसं देवं तप्तजाम्बूनदप्रभम् ॥२९॥ शङ्ख-चक-गदापाणि शार्झहस्तं श्रिया वृतम् । न दृष्टस्तत्क्षणादेव नरस्तस्यैव तेजसा ॥३०॥ तदन्तरे महादेवः शशाङ्काङ्कितशेखरः। प्रसादाभिमुखो रुद्रः प्रादुरासीन्महेश्वरः ॥३१॥ निरीक्ष्य ते जगन्नार्थं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम् । तुष्ट्रवुर्हृष्टमनसो भनत्या तं परमेश्वरम् ॥३२॥ जयेश्वर महादेव जय भूतपते शिव । जयाशेषमुनीशान तपसाभिप्रपूजित ॥ ३३॥ सहस्रमूर्ते विश्वात्मन् जगद्यन्त्रप्रवर्त्तकः । जयानन्तं जगज्जन्मत्राण-संहारकारकः ॥३४॥ सहस्रवरणेशान शभ्भो योगीन्द्रवन्द्रित । जयाम्बिकापते देव नमस्ते परमेश्वर ॥३५॥ संस्तृतो भगवानीशस्त्यूपम्बको भक्तवत्सलः । समालिङ्ग्य हुर्वाकेशं प्राह गम्भीरया गिरा ॥३६॥ किमर्थं पुराडरीकाक्ष मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः । इमं समागता देशं कि नु कार्यं मयाच्युत ॥३॥। भाकर्ग्यं तस्य तद्वावयं देवदेवो जनार्दनः । प्राह देवो महादेव प्रसादाभिमुखं स्थितम् ॥३०॥ इमे हि मुनयो देव तापसाः क्षीराकत्मषाः । अभ्यागतानां शरणं सम्यग्दर्शनकाङ्क्षिणाम् ॥३९॥ यदि प्रसन्नो भगवान् मुनीनां भावितात्मनाम् । सन्निधी मम तज्ज्ञानं दिव्यं वक्तुमिहार्हसि ॥४०॥ त्वं हि वेत्थ स्वमात्मानं न ह्यन्यो विद्यते शिव । ततम्त्यमात्मनात्मानं मुनीन्द्रेभ्यः प्रदर्शेष ॥४१॥ एवमुन्त्वा हृषोकेशः प्रोवाच सुनिपुङ्गवान् । प्रदर्शयन् योगसिद्धि निरीक्ष्य वृषभव्वजम् ॥४२॥ सन्दर्शनान्महेशस्य शङ्करस्याथ शूलिनः । कृतार्थं स्वयमात्मानं ज्ञातुमहेथ तत्वतः ॥४३॥ प्रष्टुमर्ह्य विश्वेशं प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम् । मनैव सन्निधावेष यथावद्वस्यतीश्वरः ॥४४॥ निशम्य विष्णोर्वेचनं प्रणम्य वृषभध्वजम् । सनत्कुमारप्रमुखाः पृच्छन्ति सम महेश्वरम् ॥४५॥ श्रयास्मिन्नन्तरे दिव्यमासनं विमलं शिवम् । किमप्यचिन्त्यं गगनादीश्वरार्थं समुद्रभौ ॥४६॥ तत्राससाद योगात्मा विष्णुना सह विश्वकृत् । तेजसा पूरयन् विव्वं भाति देवो महेश्वरः ॥४७॥ देवाधिदेवेशं शङ्करं ब्रह्मवादिनः । विभाजमान विमले तस्मिन् दृहशूरामने ॥४५॥ यं प्रपरयन्ति योगस्थाः स्वारमन्यात्मानमीश्वरम् । अनल्पतेजसं शान्तं शिवं दहिशरे किल ॥४ ॥ प्रसूतिभू तानां यत्रेतत् प्रविलीयते । तमासनस्यं भूतानामीशं दहिशिरे किल ॥१॥ यदन्तरा सर्वेमेतद् यतोऽभिन्नमिदं जगत्। सवासुदेवमीशानमीशं दहिशरे प्रोवाच पृष्टो भगवान् मुनीनां परमेश्वरः । निरीक्ष्य पुराडरीकाक्षं स्वात्मयोगमनुत्तमम् ॥५२॥ यथान्यायमुच्यमानं मयानघाः । प्रशान्तमनसः सर्वे ज्ञानमीश्वरभाषितम् ॥५३॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तर-भागे श्रामद्भगवदीश्वरगीतासूर्पानवतसु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋष्यादिसंवादे ज्ञानयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितोयोऽध्यायः

विक्री विक्र के किया के किया के इंश्वर उवाच

श्रवाच्यमेतद्विज्ञानमात्मगुह्यं सनातनम् । यन्न देवा विजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः॥ १ ॥ इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्रह्मभूता द्विजोत्तमाः । न संसारं प्रपद्यन्ते पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः ॥ २॥ गुह्याद् गुह्यतमं साक्षाद् गोपनीयं प्रयत्नतः । वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माकं ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३ ॥ श्रात्माऽयं केवलः स्वच्छः शुद्धः सूक्ष्मः सनातनः । श्रस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः ॥ ४॥ सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्रांगाः स महेश्वरः । स कालोऽत्र तदव्यक्तं स च वेद इति श्रुतिः ॥ १॥ विश्वमत्रैव प्रविलीयते । स मायी मायया बद्धः करोति विविधास्तनूः ॥ ६ ॥ **अस्माद्विजायते** न चाप्ययं संसरित न संसारमयः प्रभुः । नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः ॥ ७॥ न प्राणो न मनोऽव्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च । न रूपं न रसो गन्धो नायं कर्त्ता न वागिष ॥ द ॥ न पाणि-पादी नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः । न च कर्त्ता न भोक्ता वा न च प्रकृति-पूर्वि । न माया नैव च प्रांगा न चैव परमार्थतः ॥ ९॥ यथा प्रकाश तमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते । तद्वदैक्यं न सम्बन्धः प्रपञ्च - परमात्मनोः ॥१०॥ परस्परविलक्षणो । तद्वत् प्रपन्त-पुरुषो विभिन्नो परमार्थतः ॥११॥ छायातपी यथा लोके यद्यात्मा मिलनोऽस्वच्छो विकारी स्यात् स्वरूपतः। न हि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरिप ॥१२॥ पश्यन्ति मुनयो मुक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः । विकारहीनं निर्द्वन्द्वमानन्दात्मानमव्ययम् ॥१३॥ ग्रहं कत्ता मुखी दुःखी कृशः स्थूलेति या मितः । सा चाहङ्कारकत्त्वादात्मन्यारोपिता जनैः ॥१४॥ वदन्ति वेदविद्वांसः साक्षिणं प्रकृतेः परम् । भोक्तारमक्षरं बुद्धं सर्वत्र समवस्थितम् ॥१५॥ तस्मादज्ञानमूलो हि संसारः सर्वदेहिनाम् । श्रज्ञानादन्यथाज्ञानात् तत्त्वं प्रकृतिसङ्गतम् ॥१६॥ नित्योदितं स्वयं ज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः । श्रहङ्काराविवेकेन कत्तीहमिति मन्यते ॥१०॥ पश्यन्ति ऋषयोऽव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानं प्रकृति बुद्धेः कारणं ब्रह्मवादिनः ॥१८॥ तेनायं सङ्गतः स्वात्मा कूटस्थोऽपि निरञ्जनः । स्वात्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुध्येत तत्त्वतः ॥१९॥ श्रनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद् दुःखं तथेरितम् । रागद्वेषादयो दोषाः सर्वे भ्रान्तिनबन्धनाः ॥२०॥ कर्मरायस्य महान् दोषःपुरायापुरायिमिति स्थितिः। तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भव. ॥२१॥ नित्यः सर्वत्रगो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः । एकः सन्तिष्ठते शक्त्या मायया न स्वभावतः ॥२२॥ परमार्थतः । भेदोऽव्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया ॥२३॥ तस्माददैतमेवाहम्नयः यथा हि धूमसम्पर्काञ्चाकाशो मिलनो भवेत् । अन्तःकरणजैभिवैरात्मा तद्वन्न लिप्यते ॥२४॥ यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फंटिकोपलः । उपीधिहीनो विमलस्तथैवातमा प्रकाशते ॥२५॥ ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षरणाः । ग्रर्थस्वरूपमेवान्ये पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः ॥२६॥ कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यातमा स्वभावतः । दृश्यते ह्यर्थह्रपेण पूरुषेभ्रन्तिहष्टिभिः ॥२७॥ यथा संलक्ष्यते रक्तः केवलं स्फाटिको जनैः । रख्नकाद्यपधानेन तद्दत् परमपूरुषः ॥२५॥ तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वत्रगोऽव्ययः । उपासितव्यो मन्तव्यः श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभिः ॥२९॥ यदा मनिस चैतन्यं भाति सर्वत्र सर्वदा । योगिनः श्रद्धानस्य तदा सम्पद्यते स्वयम् ॥३०॥ यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥३१॥ यदा सर्वािंग भूतानि समाधिस्थो न पश्यति । एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः ॥३२॥ यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः । तदासावमृतीभूतः क्षेमं गच्छिति पिएडतः ॥३३॥ भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति । तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥३४॥ यदा यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः । मायामात्रं जगत् कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतः ॥३४॥ • यदा जन्म - जरा - दुःख - व्याधीनामेकभेषजम् । केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसी तदा शिवः ॥३६॥ यथा नदीनदा लोके सागरेणैकतां ययु: । तद्वदात्माक्षरेणासी निष्कलेनैकतां व्रजेत् ॥३७॥ तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संस्थितिः । ग्रज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति ॥३५॥ विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम् । अज्ञानमितरत् सर्वं विज्ञानमिति तन्मतम् ॥३९॥ एतद्वः परमं सांख्यं भाषितं ज्ञानमुत्तमम् । सर्ववेदान्तसारं हि योगस्तत्रकिचित्तता ॥४०॥ योगात् सञ्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्त्तते । योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्यं विद्यते कचित् ॥४१॥ यदेव योगिनो यान्ति सांख्यैस्तदिधगम्यते । एकं सांख्यश्व योगश्व यः पश्यति स तत्त्विवत्॥४२॥ ग्रन्थे हि योगिनो विप्रा हाँ श्वर्यासक्तचेतसः । मज्जन्ति तत्र तत्रैव ये चान्ये कुराठबुद्धयः ॥४३॥ यत्तत् सर्वमतं दिव्यमैश्वर्यममलं महत्। ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाष्नुयात्।।४४।। एष आत्माहमन्यक्तो मायावी परमेश्वरः । कीत्तितः सर्ववेदेषु सर्वातमा सर्वतोमुखः ॥४५॥ सर्वेह्नपः सर्वरसः सर्वगन्धोऽजरोऽमरः । सर्वतःपाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातनः ॥४६॥ भ्रपाणिपादो जवनो ग्रहीता हृदि संस्थितः । भ्रवक्षुरिप पश्यामि तथाकर्णः श्रुगोम्यहम्।।४७॥ वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन । प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः ॥४८॥ प्रयस्ति ऋषयो हेतुमातमनः सूक्ष्मदर्शिनः । निर्गुणामलरूपस्य यदैश्वर्यमनुत्तमम् ॥४९॥ यस देवा विजानन्ति मोहिता मम मायया । वक्ष्ये समाहिता यूयं श्रुणुध्वं ब्रह्मवादिनः ॥५०॥ नाहं प्रशास्ता सर्वस्य मायातीतः स्वभावतः । प्रेरयामि तथापीदं कारणं सूरयो विदः ॥५१॥ यन्मे गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदिशनः । प्रविष्टा मम सायुज्यं लभन्ते योगिनोऽव्ययम् ॥५२॥ ये हि मायामतिकान्ता मम या विश्वरूपिणी । लभन्ते परमं शुद्धं निर्वाणं ते मया सह ॥५३॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि । प्रसादान्मम योगिन्द्रा एतद्वेदानुशासनम् ॥५४॥ सांख्ययोगसमाश्रयम् ॥५५॥ तत पत्र-शिष्य-योगिभ्यो दातव्यं ब्रह्मवादिभिः । यदुक्तमेतदिज्ञानं

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तर-भागे श्रीमद्भगवदीश्वरगीतास्पनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ज्ञानयोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

SOLEMBER REPORTED TO THE PROPERTY OF THE PROPE

तृतीयोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

· अव्यक्तादभवत् कालः प्रधानं पुरुषः परः । तेभ्यः सर्विमदं जातं तस्माद् ब्रह्ममयं जगत् ॥ १ ॥ सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ २॥ सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । सर्वावारं सदानन्दमन्यक्तं द्वेतवर्जितम् ॥ ३ ॥ सर्वीपमानरहितं प्रमागातीतगो वरम् । निर्विकल्पं निराभासं सर्वावासं परामतम् ॥ ४ ॥ श्रभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् । निर्गुरां परमं ज्योतिस्तज्ज्ञानं सूरयो विदः ॥ ५ ॥ स ग्रात्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यन्तरः परः । सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ॥ ६ ॥ मया ततमिदं विश्वं जगत् स्थावर-जङ्गमम् । मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ७ ॥ तत्त्वद्वयमुदाहृतम् । तयोरनादिरुद्दिष्टः कालः संयोगजः परः ॥ ५॥ पुरुषञ्चेव प्रधानं समवस्थितम् । तदात्मकं तदन्यन् स्यात् तद्र्पं मामकं विदुः॥ ९ ॥ त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते महदाद्यं विशेषान्तं सम्प्रसूतेऽखिलं जगत्। या सा प्रकृति एदिष्टा मोहिनो सर्वदेहिनाम् ॥१०॥ पुरुषः प्रकृतिस्थो वै भृङ्कते यः प्राकृतान् गुणान् । ग्रहङ्कारविमुक्तत्वात् प्रोच्यते पञ्चविशकः ॥११॥ श्राद्यो विकारः प्रकृतेर्महानिति च कथ्यते । विज्ञातृशक्तिविज्ञानाद् ह्यहङ्कारस्तदुस्थितः ॥१२॥ एक एव महानात्मा सोऽहङ्कारोऽभिधीयते । स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकैः॥१३॥ तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखञ्च जन्मसु । स विज्ञानात्मकस्तस्य मनः स्याद्पकारकम् ॥१४॥ तेनाविवेकतस्तरमात् संसारः पुरुषस्य तु । स चाविवेकः प्रकृती सङ्गात् कालेन सोऽभवत्।।१५॥ कालः सुजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः । सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वरी ।।१६॥ सोऽन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः । प्रोच्यते भगवान् प्राणः सर्वज्ञः पृरुषोत्तमः ॥ ७॥ ग्राहर्मनीषिणः । मनसञ्चाप्यहङ्कारस्त्वहङ्कारान्महान् परः ॥१८॥ सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन महतः परमन्यक्तमन्यक्तात् पुरुषः परः। पुरुषाद्भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥१९॥ प्राणात् परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः । सोऽहं ब्रह्माव्ययःशान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ॥२०॥ नास्ति मतः परं भूतं माञ्च विज्ञाय मुच्यते । नित्यं नेहास्ति जगित भूतं स्थावर-जङ्गमम्। ऋते मामेकमञ्यक्तं ज्योमरूपं महेश्वरम् ॥२१॥ सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत्। मायी मायामयो देवः कालेन सह सङ्गतः।।२२॥ मत्सिन्निर्घावेष कालः करोति सकलं जगत् । नियोजयत्यनन्तात्मा ह्ये तद्वेदानुशासनम् ॥२३॥

> इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तर-भागे श्रीमद्भगवदीश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रेऽव्यक्तादिज्ञानयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

११६

कूर्मपुराणम्

चतुर्थोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं श्रुणुध्वं ब्रह्मवादिनः । माहात्म्यं देवदेवस्य येन सर्वं प्रवत्ते ॥ १॥ नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया । शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥ २॥ श्रहं हि सर्वभूतानामन्तस्तिष्ठामि सर्वगः । मां सर्वसाक्षिणं लोको न जानाति मुनीश्वराः॥ ३ ॥ यस्यान्तरा सर्वमिदं यो हि सर्वान्तरः परः । सोऽहं घाता विधाता च कालाग्निर्विश्वतोमुखः॥ ४॥ न मो पश्यन्ति मुनयः सर्वे पितृदिवौकसः । ब्रह्मा च मनवः शक्रो ये चान्ये प्रथितौजसः ॥ ५ ॥ गृगान्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम् । यजन्ति विविधैर्गित ब्राह्मगा वैदिकैर्मंखैः ॥ ६॥ सर्वे लोका न पश्यन्ति ब्रह्मा लोकपितामहः । ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपितमीश्वरम् ॥ ७ ॥ श्रहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रदः । सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसंस्थितः ॥ ६ ॥ मां पश्यन्तीह विद्वांसी घार्मिका वेदवादिनः । तेषां सिन्निहितो नित्यं ये मां नित्यमुपासते ॥ ९॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या घार्मिका, मामुपासते । तेषां ददामि तत् स्थानमानन्दं परमं पदम् ॥१०॥ ध्रान्येऽपि ये स्वधर्मस्थाः शूद्राद्या नीचजातयः । भक्तिमन्तः प्रमुच्यन्ते कालेन मिय सङ्गताः ॥११॥ मद्भक्ता न विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषाः । श्रादावेव प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रग्रह्यति ॥१२॥ यो वै निन्दति तं मूढो देवदेवं स निन्दति । यो हि पूजयते भक्त्या स पूजयित मां सदा ॥१३॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात् । यो मे ददाति नियतं स मे भक्तः प्रियो ममा।।१४।। भ्रहे । हि जगतामादो ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । विदधौ दत्तवान् वेदानशेषानात्मनिःसृतान् ॥१५॥ श्रहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरन्ययः । धार्मिकाणाञ्च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम् ॥१६॥ महं हि सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह । संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारविजतः ॥१७॥ श्रहमेव हि संहत्ता संस्रष्टा परिपालकः । माया वै मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहनी ।।१८॥ ममैव च परा शक्तिया सा विद्येति गीयते । नाशयामि तया मायां योगिनां हृदि संस्थितः॥१९॥ श्रहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्त्तक - निवर्त्तकः । ग्राधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च ॥२०॥ एका सर्वान्तरा शक्तिः करोति विविधं जगत् । ग्रास्थाय ब्रह्मणो रूपं मन्मयी मदिविष्ठिता ॥२१॥ श्रन्या च शक्तिर्विपुला संस्थापयति मे जगत् । भूत्वा नारायणोऽनन्तो जगन्नाथो जगन्मयः ॥२२॥ वृतीया महती शक्तिनिहन्ति सकलं जगत्। तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्ररूपिणी।।२३।। ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज् ज्ञानेन चापरे । प्रपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेण चापरे ॥२४॥ सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतमो मम । यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराध्यति नान्यथा ॥२५॥ **ग्रन्ये च हरये भक्ता मदाराधनकारिएाः । तेऽ**पि मां प्राप्नुवन्त्येव नावर्तान्ते च वै पुन: ॥२६॥

मया ततिमदं कृत्स्नं प्रधान - पुरुषात्मकम् । मय्येव संस्थितं विश्वं मया सम्प्रेर्यते जगत् ॥२७॥ नाहं प्रेरियता विप्राः परमं योगमास्थितः । प्रेरियामि जगत् कृत्स्नमेतद्यो वेद सोऽमृतः ॥२६॥ पश्याम्यशेषमेवेदं वर्त्तमानं स्वभावतः । करोति कालो भगवान् महायोगेश्वरः स्वयम्॥२९॥ योऽहं सम्प्रोच्यते योगी मायी शास्त्रेषु सूरिभिः । योगेश्वरोऽसौ भगवान् महायोगेश्वरः स्वयम् ॥३०॥ महत्त्वं सर्वतत्त्वानां परत्वात् परमेष्ठिनः । प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मा महाब्रह्ममयोऽमनः ॥३१॥ यो मामेवं विजाताति महायोगेश्वरेश्वरम् । सोऽविकत्त्रेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥३२॥ सोऽहं प्रेरियता देवः परमानन्दसंश्रितः । नृत्यामि योगी सततं यस्तद्वेद स योगवित् ॥३३॥ इति गुह्मतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निश्चितम् । प्रसन्नचेतसे देयं धार्मिकायाहिताग्नये ॥३४॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तर-भागे श्रीमद्भगदीश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे देवदेवमाहात्म्य-ज्ञानयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

व्यास उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान् योगिनां परमेश्वरः । ननर्त्तं परमं भावमैश्वरं सम्प्रदर्शयन् ॥ १ ॥ तं ते दहशुरीशानं तेजसा परमं निधिम् । नृत्यमानं महादेवं विष्णुना गगनेऽमले ॥ २॥ तं विदुर्योगतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः । तमीशं सर्वभूतानामाकाशे दहशुः किल ॥ ३ ॥ यस्य मायामयं सर्वं येनेदं ध्रियते जगत् । नृत्यमानः स्वयं विप्रैविश्वेशः खलु दृश्यते ॥ ४॥ यत्पादपङ्कां स्मृत्वा पुरुषोऽज्ञान जं भयम् । जहाति नृत्यमानं तं भूतेशं दहशुः किल ॥ ४॥ यं विनिद्रा जितश्वासाः शान्ता भक्तिसमन्विताः । ज्योतिर्मयं प्रपश्यन्ति स योगी दृश्यते किल ॥ ६॥ योऽज्ञानान्मोचयेत् क्षिप्रं प्रसन्नो भक्तवत्सलः । तमेवं मोचकं रुद्रमाकाशे दहशुः परम् ॥ ७॥ सहस्रचरणाकृतिम् । सहस्रबाहुं जटिलं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ ८ ॥ वसानं चर्म वैयाघं शूलासक्तमहाकरम् । दएडपाणि त्रयीनेत्रं सूर्यसोमाग्निलोचनम् ॥ ९॥ ब्रह्माएडं तेजसा स्वेन सर्वमावृत्य विधितम् । दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१०॥ दहन्तमिखलं जगत्। नृत्यन्तं दहशुर्दैवं विश्वकर्माग्गमीश्वरम् ॥११॥ स्जन्तमनलज्वालां महादेवं महायोगं देवानामिप दैवतम् । पशूनां पितमीशानं ज्योतिषां ज्योतिरव्ययम् ॥१२॥ पिनाकिनं विशालाक्षं भेषजं भवरोगिणाम् । कालात्मानं कालकालं देवदेवं महेश्वरम् ॥१३॥ योगानन्दमयं परम् । ज्ञान वैराग्यनिलयं ज्ञानयोगं सनातनम् ॥१४॥ उमापति विरूपाक्षं दुरासदम् । महेन्द्रोपेन्द्रनिमतं महर्षिग्रावन्दितम् ॥१५॥ शाश्वतैश्वर्यविटपं धर्माधारं महायोगेश्वरेश्वरम् । योगिनां हृदि तिष्ठन्तं योगमायासमावृतम् ॥१६॥ श्राधारं सर्वशक्तीनां क्षणेन जगतो योनि नारायणमनामयम् । ईश्वरेणेनयमापन्नमपश्यन् ब्रह्मवादिनः ॥१७॥ दृष्ट्वा तदैश्वरं रूपं रुद्रं नारायणात्मकम् । कृतार्थं मेनिरे सन्तः स्वात्मानं ब्रह्मवादिनः ॥१८॥

F.T.

कूर्मपुराणम्

सन्द्कुमारः सनको भृगुश्च सनातनश्चैव सनन्दनश्च ।
रैभ्योऽङ्किरा वामदेवोऽय शुक्रो महर्षिरित्रः किपलो मरीचिः ॥१९॥
हृष्ट्वाथ रुद्रं जगदीशितार तं पद्मनाभाश्चितवामभागम् ।
ध्यात्वा हृदिस्थं प्रणिपत्य मृद्र्झी कृत्वाखाल स्वेषु शिरःसु भूयः ॥२०॥
श्रोङ्कारमुच्चार्य विलोक्य देवमन्तःशरीरं निहितं गुहायाम् ।
समस्तुवन् ब्रह्ममयैर्वचोभिरानन्दपूर्णीहतमानसा वै॥२१॥

मुनय ऊचुः

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं प्राणेश्वरं रुद्रमनन्तयोगम्। नमाम सर्वे हृदि सन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम्।।२२।। पश्यन्ति त्वां मुनयो ब्रह्मयोनि दान्ताः शान्ता विमलं रुक्मवर्णम् । ध्यात्वात्मस्थमचलं स्वे शरीरे कवि परेभ्यः परमात् परञ्च ॥२३॥ स्वत्तः प्रसूता जगतः प्रसूतिः सर्वानुभूस्त्वं परमाणुभूतः। श्रणोरणीयान् महतो महीयांस्त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥ हिरएयगर्भो जगदन्तरात्मा त्वत्तोऽस्ति जातः पुरुषः पुराणः। स जायमानो भवता निस्ष्टी यथाविधानं सकलं ससर्ज।।२५।। त्वत्तो वेदाः सकलाः सम्प्रमुतास्तय्येवान्ते संस्थिति ते लभन्ते । परयामस्त्वां जगतो हेतुभूतं नृत्यन्तं स्वे हृदये सिन्निविष्टम् ॥२६॥ त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्मचकं मायावी त्वं जगतामेकनाथः। नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्ना योगातमानं चित्पति दिव्यनृत्यम् ॥२७॥ पश्यामस्त्वां परमाकाशमध्ये नृत्यन्तं ते महिमानं स्मरामः । सर्वात्मानं बहुवा सिन्निविष्टं ब्रह्मानन्दमनुभूयानु भूय ॥२८॥ श्रोङ्कारस्ते वाचको मुक्तिबीजं त्वमक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम्। तत् त्वां सत्यं प्रवदन्तीह सन्तः स्वयम्प्रभं भवतो यत्प्रभावम् ॥२९॥ स्तुवन्ति त्वां सततं सर्ववेदा नमन्ति त्वामृषयः क्षीणदोषाः । शान्तात्मानः सत्यसन्धा वरिष्ठं विशन्ति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः ॥३०॥ भवानीशोऽनादिमान् विश्वरूपो ब्रह्मा विष्णुः परमेष्ठी वरिष्ठः। स्वात्मानन्दमनुभूय विशन्ते स्वयंज्योतिरचला नित्यमुक्ताः ॥३१॥ एको स्द्रस्त्वं करोषीह विश्वं त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपः। त्वामेवान्ते विलयं विन्दतीदं नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्नाः ॥३२॥ एको वेदो बहुशाखो ह्यनन्तस्त्त्रामेवैकं बोधयत्येक ह्पम् । वेद्यं त्त्री ये शरगां सम्प्रपन्ना मायामेतां ते तरन्तीह विप्राः ॥३३॥ त्वामेकमाहुः परमञ्च रुद्रं प्रार्गं वृहन्तं हरिमग्निमीशम्। मृत्युमनिलं चेकितानं घातारमादित्यमनेकरूपम् ॥३४॥ त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निघानम् । ह्वमन्ययः शांश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि ॥३५॥ । त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रद्धो भगवानपीशः।
त्वं विश्वनाथः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽिस ॥३६॥
त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्गं तमसः परस्तात्।
चिन्मात्रमव्यक्तमचिन्त्यरूपं खं ब्रह्म शून्यं प्रकृतिर्गुणाश्च ॥३७॥
यदन्तरा सर्वेमिदं विभाति यदव्ययं निर्मलमेकरूपम्।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमेतत् तदन्तरा सम्प्रतिभाति तत्त्वम् ॥३६॥
योगेश्वरं भद्रमनन्तर्भाक्तं परायणं ब्रह्मतनुं पुराणम्।
नमाम सर्वे शरणाधिनस्त्वां प्रसीद भूताधिपते महेश ॥३९॥
तवत्पादपद्मस्रणादशेषसंसारबीजं निलयं प्रयाति।
मनो नियम्य प्रणिधाय कायं प्रसादयामो वयमेकमीशम् ॥४०॥
नमो भवायास्तु भवोद्भवाय कालाय सर्वाय हराय तुभ्यम्।
नमोऽस्तु रुद्राय कपर्दिने ते नमोऽग्नये देव नमः शिवाय ॥४१॥

ततः स भगवान् प्रीतः कपर्दी वृषवाहनः । संहत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभगद्भवः ॥४२॥ ते भवं भूतभव्येशं पूर्ववत् समवस्थितम् । दृष्ट्वा नारायणं देवं विस्मिता वाक्यमञ्जवन् ॥४३॥ भगवत् भूतभव्येशं गोवृषाङ्कितशासन । दृष्ट्वा ते परमं रूपं निर्वृताः स्मः सनातन ॥४४॥ भवत्प्रसादादमले परिसम् परमेश्वर । ग्रस्माकं जायते भक्तिस्वय्येवाव्यभिचारिणी॥४४॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं तव शङ्कर । भूयोऽपि चैवं यन्नित्यं याथात्म्यं परमेष्ठिनः ॥४६॥ स तेषां वाक्यमाकर्यं योगिनां योगसिद्धिदः । प्राहं गम्भीरया वाचा समालोक्य च माधवम्॥४७॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे श्रीमद्भगवदीश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे देवदेवनृत्यदर्शन-भक्तियोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

TELL THE THEORY OF THE PARTY OF

ईश्वर उवाच

श्रृणुध्वमृषयः सर्वे यथावत् परमेष्ठिनः । वक्ष्यामीशस्य माहात्म्यं यत्तद्वेदविदो विदुः ॥ १ ॥ सर्वलोकैकिनिर्माता सर्वलोकैकरिक्षता । सर्वलोकैकसंहत्ता सर्वात्माहं सनातनः ॥ २ ॥ सर्वेषामेव वस्तुनामन्तर्यामी महेश्वरः । मय्येवान्ते स्थितं सर्वं नाहं सर्वत्र संस्थितः ॥ ३ ॥ भविद्भरद्धतं दृष्टं यत् स्वरूपञ्च मामकम् । ममेषा ह्युपमा विद्रा माया वे दिशता मया ॥ ४ ॥ सर्वेषामेव भावानामन्तरा समवस्थितः । प्रेरयामि जगत् कृत्स्नं क्रियाशक्तिरियं मम ॥ १ ॥ मयेदं चेष्टते विद्वं तद्वे भावानुवित्त मे । सोऽहं कालो जगत् कृत्स्नं प्रेरयामि कलात्मकम्॥ ६ ॥ पकांशेनं जगत् कृत्स्नं करोमि मुनिपुङ्गवाः । संहराम्येकछपेण द्विधावस्था ममेव तु ॥ ७ ॥ स्रादिमध्यान्तिनर्मुक्तो मायातत्त्वप्रवर्त्तकः । क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधान - पुरुषावुभौ ॥ ६ ॥

ताभ्यां सञ्जायते विश्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम् । महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजम्भते ॥ ९॥ यो हि सर्वजगत्साक्षी कालचक्रप्रवर्त्तकः । हिरएयगर्भो मार्त्तराडः सोऽपि मद्देहसम्भवः ॥१०॥ तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम् । दत्तवानात्मजान् वेदान् कल्पादौ चतुरो द्विजाः॥११॥ स मिन्नयोगतो देवो ब्रह्मा मद्भावभावितः । दिव्यं तन्मामकैश्वर्यं सर्वदावगतः स्वयम् ॥१२॥ सर्वलोकनिर्माता मित्रयोगेन सर्ववित् । भूत्वा चतुर्मुखः सर्गं सुजत्येवात्मसम्भवः ॥१३॥ योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवोऽव्ययः । ममैव च परा मूर्तिः करोति परिपालनम् ॥१४॥ योऽन्तकः सर्वभूतानां रद्रः कालात्मकः प्रभुः । मदाज्ञयासी सततं संहरिष्यति मे तनुः ॥१५॥ हुच्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामिष । पाकञ्च कुरुते विह्नः सोऽपि मच्छित्तिनोदितः॥१६॥ तदहर्निशम् । वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वररस्य नियोगतः ॥१७॥ पचते भूक्तमाहारजातश्व योऽपि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुङ्गवः । सोऽपि सङ्घीवयेत् कृत्स्नमीश्वरस्य नियोगतः ॥१८॥ योऽन्तस्तिष्ठति भूतानां बहिदेंवः प्रभक्षनः । मदाज्ञयासौ भूतानां शरीराणि बिभित्त हि ॥१९॥ योऽपि सञ्जीवनी नृणां देवानाममृताकरः । सोमः स मित्रयोगेन नोदितः किल वर्त्तते ॥२०॥ यः स्वभासा जगत् कृत्स्नं प्रभासयति सर्वेशः । सूर्यो वृष्टि वितनुते स्वोस्रेणैव स्वयम्भुवः ॥२१॥ शकः सर्वामरेश्वरः । यज्वनां फलदो देवो वर्त्ततेऽसौ मदाज्ञया ।।२२॥ योऽप्यशेषजगच्छास्ता यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्त्तते नियमादिह । यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगतः ॥२३॥ योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां सम्प्रदायकः । सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्त्तते सदा ।।२४॥ नाथस्तामसानां फलप्रदः । मित्रयोगादसौ देवो वर्त्तते निऋतिः सदा । १५॥ यः सर्वरक्षसां वेतालगणभूतानां स्वामी भोगफलप्रदः । ईशानः किल भक्तानां सोऽपि तिष्ठेन्मदाज्ञया। २६।। यो वामदेत्रोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रगणाप्रणीः । रक्षको योगिनां नित्यं वर्रातेऽसौ मदाज्ञया ॥२७॥ सर्वजगत्पूज्यो वर्तते विझनायकः । विनायको धर्मरतः सोऽपि मद्वचनात् किल ॥२८॥ योऽपि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो देवसेनापितः प्रभुः । स्कन्दोऽसौ वर्त्तते नित्यं स्वयम्भूर्विघिनोदितः ॥२९॥ ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्या महर्षयः । सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैव नियोगतः ॥३०॥ या च श्रीः सर्वभूतानां ददाति विपुलां श्रियम् । पत्नी नारायणस्यासी वर्तते मदनुग्रहात् ॥३१॥ वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती । सापीश्वरनियोगेन नोदिता याऽशेषपुरुषान् घोरान् नरकात् तारियष्यति । सावित्री संस्मृता देवी मदाज्ञानुविधायिनी ॥३३॥ पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी। यापि ध्याता विशेषेण सापि मद्वचनानुगा ॥३४॥ योऽनन्तमिह्मानन्तः शेषोऽशेषामरप्रभुः । दघाति शिरसा लोकं सोऽपि देवनियोगतः ॥३४॥ योऽग्निः संवर्तको नित्यं बडवारूपसंस्थितः । पिबत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्य नियोगतः ॥३६॥ ये चतुर्देश लोकेऽस्मिन् मनवः प्रथितीजसः । पालयन्ति प्रजाः सर्वास्तेऽपि तस्य नियोगतः ॥३७॥ श्रादित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ । श्रन्याश्च देवताः सर्वा शास्त्रेणीव विनिर्मिताः ॥३५॥ गन्धवी गरुडाद्याश्च सिद्धाः साध्याश्च चारणाः । यक्ष-रक्षः-पिशाचाश्च स्थिताःसृष्टाः स्वयम्भुवा॥३९॥ कला काष्टा निमेषाश्च मुहूर्त्ता दिवसाः क्षपाः । ऋतवः पक्ष-मासाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापतेः॥४०॥ यूग-मन्वन्तराएयेव मम तिष्ठन्ति शासने । पराश्चेव पराद्धाश्च कालभेदास्तथापरे ॥४१॥ चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च । नियोगादेव वर्तन्ते देवस्य परमात्मनः ॥४२॥ पातालानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात् । ब्रह्माएडानि च वर्त्तन्ते सर्वाएयेव स्वयमभुवः॥४३॥ श्रतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्मार्डानि ममाज्ञया । प्रवृत्तानि पदार्थीचेः सहितानि समन्ततः ॥४४॥ ब्रह्माएडानि भविष्यन्ति सह वस्तुभिरात्मगेः । करिष्यन्ति सदैवाज्ञां परस्य परमात्मनः ॥४५॥ भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च । भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगे मम वर्तते ॥४६॥ याऽशेषजगतां योनिर्मोहिनी सर्वदेहिनाम् । माया विवर्तते नित्यं सापीइवरिनयोगतः ॥४५॥ यो वे देहभृतां देवः पुरुषः पठ्यते परः । ग्रात्माऽसौ वर्तते नित्यमीइवरस्य नियोगतः ॥४५॥ विद्यय मोहकलिलं यया पद्यति तत्पदम् । सापि विद्या महेशस्य नियोगवशवित्तनी ॥४९॥ बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत् । मयैव सृज्यते कृत्स्नं मयेव प्रलयं व्रजेत् ॥५०॥ ग्रहं हि भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः । परमात्मा परंब्रह्म मत्तो ह्यन्यो न विद्यते ॥५१॥ इत्येतत् परमं ज्ञानं युष्माकं कथितं मया । ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तु र्जन्मसंसारबन्धनात् ॥५२॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तर-भागे श्रीमद्भगवदीश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे परमेश्वरनृत्यदर्शन-ज्ञानयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

श्रृणु वमृषयः सर्वे प्रभावं परमेष्टिनः । यं ज्ञात्वा पुरुषो मुक्तो न संसारे पतेत् पुनः ॥ १ ॥ परात्परत रं ब्रह्म शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् । नित्यानन्दं निर्विकर्त्पं तद्धाम परमं मम ॥ २॥ श्रहं ब्रह्मविदां ब्रह्मा स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः । मायाविनामहं देवः पुरागो हरिरव्ययः ॥ ३॥ योगिनामप्यहं शम्भुः स्त्रीणां देवी गिरीन्द्रजा । स्रादित्यानामहं विष्णुर्वेसूनामस्मि पावकः ॥ ४॥ शङ्करश्चाहं गरुडः पततामहम् । ऐरावतो गजेन्द्राणां रामः शस्त्रभृतामहम् ॥ ४ ॥ ऋषीणाञ्च वसिष्ठोऽहं देवानाञ्च शतक्रतुः। शिल्पिनां विश्वकर्माहं प्रह्लादः सुरविद्विषाम्॥ ६॥ मुनीनामप्यहं व्यासी गणानाञ्च विनायकः । वीराणां वीरभद्रोऽहं सिद्धानां किपलो सुनिः ॥ ७ ॥ पर्वतानामहं मेरुर्नक्षत्राणाञ्च चन्द्रमाः । वज्यं प्रहरणानाञ्च व्रतानां सत्यमस्म्यहम् ॥ ५॥ श्रनन्तो भोगिनां देवः सेनानीनाञ्च पाविकः । ग्राश्रमाणाञ्च गार्हस्थ्यमीश्वराणां महेश्वरः ॥ ९॥ महाकल्पश्च कल्पानां युगानां कृतमस्म्यहम् । कुबेरः सर्वयक्षाणां तृग्गानाञ्चेव वीरुघः ॥१०॥ प्रजापतीनां दक्षोऽहं निऋतिः सर्वरक्षसाम् । वायुर्बलवतामस्मि द्वीपानां पुष्करोऽस्म्यहम् ॥११॥ मृगेन्द्राणाञ्च सिहोऽहं यन्त्राणां घनुरेव च । वेदानां सामवेदोऽहं यजुषां शतरुद्रियम् ॥१२॥ सावित्री सर्वजप्यानां गुह्यानां प्रणवोऽस्म्यहम् । सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठसाम च सामसु ॥१३॥ सर्वेदार्थविदुषां मनुः स्वायम्भुवोऽस्म्यहम् । ब्रह्मावर्त्तस्तु देशानां क्षेत्राणामविमुक्तकम् ॥१४॥ विद्यानांमात्मविद्याहं ज्ञाननामैश्वरं परम् । भूतानामस्महं व्योम तत्त्वानां मृत्युरेव च ॥१५॥ पाशानामस्म्यहं माया कालः कलयतामहम् । गतीनां मुक्तिरेवाहं परेषां परमेश्वरः ॥१६॥ यचान्यदिप लोकेऽस्मिन् सत्त्वं तेजोबलाधिकम् । तत् सर्वं प्रतिजानीध्वं मम तेजोविजम्भितम् ॥१॥। म्रात्मानः प्रावः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्त्तिनः । तेषां पतिरहं देवः स्मृतः पशुपतिवधैः ॥१५॥

मायापाशेन बझामि पशूनेतान् स्वलीलया । मामेव मोचकं प्राहुः पशूनां वेदवादिनः ॥१९॥
मायापाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते । मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमन्ययम् ॥२०॥
चतुर्विशितितत्त्वानि मायाकर्मगुणा इति । एते पाशाः पशुपतेः क्लेशाश्च पशुवन्धनाः ॥२१॥
मनो बुद्धिरहङ्कारः खानिलाग्निजलानि भूः । एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्च तथापरे ॥२३॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घाणञ्चेव तु पञ्चमम् । पायूपस्थं करो पादौ वाक् चैव दशमी मता ॥२३॥
श्रात्रं त्वक् चप्च रसो गन्धस्तथैव च । त्रयोविशितरेतानि तत्त्वानि प्राकृतानि च ॥२४॥
चतुर्विशकमन्यक्तं प्रधानं गुणलक्षणम् । श्रनादिमध्यनिधनं कारणं जगतः परम् ॥२४॥
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयमुदाहृतम् । साम्यावस्थितिमेतेषामन्यक्तां प्रकृति विदुः ॥२६॥
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं राजसं समुदाहृतम् । गुणानां बुद्धिवेषम्याद्धैषम्यं कवयो विदुः ॥२६॥
धर्मधर्माविति प्रोक्तौ पाशौ द्दौ कर्मसंज्ञितौ । मर्थ्यपितानि कर्माणि न बन्धाय विमुक्तये ॥२६॥
श्रविद्यामस्मितां रागं द्वेषञ्चाभिनिवेशकम् । बलेशाख्यांस्तान् स्वयं प्राहुः पाशानात्मिनबन्धनात्॥२९॥
एतेषाभेव पाशानां माया कारणमुच्यते । मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मि तिष्ठति ॥३०॥
स एव मूलप्रकृतिः प्रधानं पुरुषोऽपि च । विकारा महदादीनि देवदेवः सनातनः ॥३१॥

स एव बन्धः स च बन्धकर्ता स एव पाशः पशवः स एव । स वेद सर्वं न च तस्य वेत्ता तमाहुराद्यं पुरुषं पुराग्गम् ॥३२॥ इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे श्रीमद्भगवदीश्वरगीतासूपिन्षत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे परमेष्ठिप्रभावो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अष्टमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

श्रन्यद् गुह्यतमं ज्ञानं वक्ष्ये ब्राह्मणपुङ्गवाः । येनासौ तरते जन्तुर्घोरं संसारसागरम् ॥ १ ॥ श्रयं ब्रह्ममयः शान्तः शाश्वतो निर्मलोऽव्ययः । एकाकी भगवानुक्तः किवलः विप्रमेश्वरः ॥ २ ॥ मम योनिर्महद्ब्रह्म तत्र गर्भं दधाम्यहम् । मूलमायाभिधानं ति किता जिल्लात् ।। ३ ॥ प्रधानं पुरषो ह्यात्मा महद्भूतादिरेव च । तत्मात्राणि महाभूतानीन्द्रियाणा च जिल्लरे ॥ ४ ॥ ततोऽग्डमभवद्धेममर्ककोटिसमप्रमम् । तिस्मित्र् जज्ञे महान् वृत्वह्मा मच्छक्त्या चोपवृहितः ॥ ४ ॥ ये चान्ये बहवो जीवास्तन्मयाः सर्व एव ते । न मां पश्यन्ति पितरं ति माययाः मम मोहितः ॥ ६ ॥ याश्च योनिषु सर्वासु सम्भवन्तीह मूर्त्यः । तासां मायां परां विश्वोनिष्वमामेव पत्रद्विदुः ॥ ७ ॥ यो मामेवं विजानाति बीजिनं पितरं प्रभुम् । स वीरः सर्वलोकेषु न मोहमधिगच्छिति ॥ ६ ॥ ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां परमेश्वरः । ग्रोङ्कारमूर्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापितः ॥ ९ ॥ समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् । विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पर्यति स पर्यति ॥१०॥ समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् । न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥११॥ समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् । न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥११॥ विदित्वा सप्त सूक्ष्मािषा षडङ्गन्ध महेश्वरम् । प्रधानविनियोगज्ञः परं ब्रह्मािष्ठगच्छित् ॥१९॥

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वच्छन्दता नित्यमलुप्तगक्तिः।
प्रमन्तराक्तिरच विभोर्विदित्वा षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥१३॥
तन्मात्राणि मन ग्रात्मा च तानि सूक्ष्माण्याहुः सप्त तत्त्वात्मकानि ।
या सा हेतुः प्रकृतिः सा प्रधानं बन्धः प्रोक्तो विनियोगोर्ऽप तेन ॥१४॥
या सा हाक्तिः प्रकृतौ लीनरूपा वेदेषूक्ता कारणं ब्रह्मयोनिः ।
तस्या एकः परमेष्ठी पुरस्तान्माहेश्वरः पुरुषः सत्यरूपः ॥१४॥
व्रह्मा योगी परमात्मा महीयान् व्योमव्यापी वेदवेद्यः पुराणः ।
एको हद्रो मृत्युरव्यक्तमेकं बीजं विश्वं देव एकः स एव ॥१६॥
तमेवैकं प्राहुरन्येऽप्यनेकं त्वामेवात्मा केचिदन्यं तमाहुः ।
श्रगोरणीयान् महतो महीयान् महादेवः प्रोच्यते विश्वरूपः ॥१७॥
एवं हि यो वेद गुहाशयं परं प्रभुं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम् ।
हिरग्नयं बुद्धमतां परां गितं स बुद्धमान् बुद्धमतीत्य तिष्ठति ॥१५॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे श्रीमद्भागवदीश्वरगीतासूपनिषस्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे संसारतारएाज्ञानयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

नवमोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

निष्कलो निर्मलो नित्यो निष्क्रियः परमेश्वरः । ततो वद महादेव विश्वरूपः कथं भवान् ॥ १॥

ईश्वर उवाच

नाहं विश्वो न विश्वश्व मामृते विद्यते द्विजाः । माया निमित्तमात्रास्मि सा चात्मिन मया श्रिता। २॥ प्रनादिनिधना शक्तिमीया व्यक्तिसमाश्रया । तिन्निमित्तः प्रपञ्चोऽयमव्यक्ताव्जायते खलु । प्रव्यक्तं कारणं प्राहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम् ॥ ३ ॥ प्रहमेव परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते । तत्मान्मे विश्वरूपत्वं निश्चितं ब्रह्मवादिभिः ॥ ४ ॥ एकत्वे च पृथक्तवे च प्रोक्तमेतिन्नदर्शनम् । श्रहं तत् परमं ब्रह्म परमात्मा सनातनः ॥ ५ ॥ प्रकारणं द्विजाः प्रोक्ता न दोषो ह्यात्मनस्तथा । श्रनन्ताः शक्तयोऽव्यक्ता मायया संस्थिता ध्रुवाः । तिस्मन् दिवि स्थितं नित्यमव्यक्तं भाति केवलम् ॥६॥ याभिस्तत्वकक्ष्यते भिन्नमभिन्नन्तु स्वभावतः । एकया मायया युक्तमनादिनिधनं ध्रुवम् ॥ ७ ॥ पुंसोऽन्याभूद्यथा भूतिरन्यया न तिरोहितम् । श्रनादिमध्यनिष्ठं तच्चेष्टते विद्यया कित्र ॥ ५ ॥ तदेतत् परमव्यक्तं प्रभामएडलमिएडतम् । तद अरं परं ज्योतिस्तद् विष्णोः परमं पदम् ॥ ९॥ तदेतत् पर्मव्यक्तं प्रभामएडलमिएडतम् । तद अरं परं ज्योतिस्तद् विष्णोः परमं पदम् ॥ ९॥ तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतन्त्रवेवाखिलं जगत् । तदेवेदं जगत् कृतस्न तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ १॥ यतो वाचो निवर्तन्ते ग्रभावय मनसा सह । ग्रानन्दं ब्रह्मणो विद्वान् बिभेति न कृतश्चन ॥ १॥ यतो वाचो निवर्तन्ते ग्रभावय मनसा सह । ग्रानन्दं ब्रह्मणो विद्वान् बिभेति न कृतश्चन ॥ १॥ स्तो वाचो निवर्तन्ते ग्रभावय मनसा सह । ग्रानन्दं ब्रह्मणो विद्वान् बिभेति न कृतश्चन ॥ १॥ स्ति

कूर्मपुराणम्

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तं विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान् नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ॥१२॥
यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्य ज्योतिषां ज्योतिरेकं दिविष्ठम् ।
तदेवात्मानं मन्यमानोऽथ विद्वानात्मानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ॥१३॥
तद्व्ययं किललं गूढदेहं ब्रह्मानन्दममृतं विश्वघाम ।
वदन्त्येवं ब्राह्मणा ब्रह्मनिष्ठा यस गत्वा न निवर्त्तेत भूयः ॥१४॥
हिर्गमये परमाकाशतत्त्वे यद्वे दिवि विप्रतिभातीव तेजः ।
तद्विज्ञाने परिपश्यन्ति घीरा विभ्राजमानं विमलं व्योमघाम ॥१५॥
ततः परं परिपश्यन्ति घीरा श्रात्मन्यात्मानमनुभूय साक्षात् ।
स्वयं प्रभुः परमेष्ठो महीयान् ब्रह्मानन्दो भगवानीश एषः ॥१६॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
तमेवैकं येऽनुपश्यन्ति घीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥१७॥

सर्वाननिक्षरोग्रीवः सर्वभूतगुहाक्षयः । सर्वन्यापी स भगवांस्तस्मादन्यन्न विद्यते ॥१८॥ इत्येतदैश्वरं ज्ञानमुक्तं वो मुनिपुङ्गवाः । गोपनीयं विशेषेण योगिनामपि दुर्लभम् ॥१९॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे श्रीमद्भगवदीश्वरगीतासूपनिषदसु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रो निर्गुणब्रह्मणो विश्वरूपकारणज्ञानयोगो
नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

द्शमोऽघ्याय:

ईश्वर उवाच

म्रालङ्गमेकमन्यक्तिल्ङ्गं ब्रह्मेति निश्चितम् । स्वयं ज्योतिः परं तत्वं परे न्योम्नि न्यवस्थितम् ॥ १ ॥ म्रान्यक्तं कारणं यत्तदक्षरं परमं पदम् । निर्गुणं शुद्धिवज्ञानं तद्वे पश्यन्ति सूरयः ॥ २ ॥ तिन्निष्ठाः स्वान्तसङ्कल्पा नित्यं तद्भावभाविताः । पश्यन्ति तत् परं ब्रह्म यत्ति ङ्गमिति श्रुतिः॥ ३ ॥ म्रान्यया न हि मां द्रष्टुं शक्यं वै मुनिपुङ्गवाः । न हि तद्विद्यते ज्ञानं येन तज् ज्ञायते परम् ॥ ४ ॥ एतत् तत् परमं ज्ञानं केवलं कवयो विदुः । म्रज्ञानितिमरं ज्ञानं यस्मान्मायामयं जगत् ॥ ५ ॥ तज् ज्ञानं निर्मलं शुद्धं निर्विकल्पं निरख्जनम् । मनात्मासौ तदेवेदिमिति प्राहुर्विपश्चितः ॥ ६ ॥ येऽप्यनेकं प्रपश्यन्ति तत्परं परमं पदम् । म्राश्रिताः परमां निष्ठां बुद्ध्वेक्यं तत्त्वमन्ययम्॥ ७ ॥ ये पुनः परमं तत्त्वमेकं वानेकमीश्वरम् । भक्त्या मां सम्प्रपश्यन्ति विज्ञेयास्ते तदात्मकाः॥ ५ ॥ साक्षाद्देवं प्रपश्यन्ति स्वात्मानं परमेश्वरम् । नित्यानन्दं निर्विकल्पं सत्यरूपमिति स्थितिः॥ ९ ॥ भजन्ते परमानन्दं सर्वगं जगदात्मकम् । स्वात्मन्यवस्थिताः शान्ताः परे न्यक्तापरस्य तु॥१०॥ एषा विमुक्तिः परमा मम सायुज्यमुत्तमम् । निर्वाणं ब्रह्मणा चैक्यं केवल्यं कवयो विदुः ॥११॥ तस्मादनादिमध्यान्त वस्त्वेकं परमः शिवः । स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञाय प्रमुच्यते ॥१२॥ तस्मादनादिमध्यान्त वस्त्वेकं परमः शिवः । स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञाय प्रमुच्यते ॥१२॥

उत्तरभागे एकादशोऽध्यायः

न तत्र सूर्यः प्रतिभाति चन्द्रो न नक्षत्राणां न गणो नोत विद्युत् । तद्भासेदमिखलं भाति विश्वं तिन्तर्यभासममलं सिद्धभाति ॥१३॥ नित्योदितं निष्कलं निर्विकल्पं शुद्धं वृहत् परमं यद्धभाति । स्रत्रान्तरे ब्रह्मविदोऽथ नित्यं पश्यन्ति तत्त्वमचलं यत् स ईशः ॥१४॥ नित्यानन्दममृतं सत्यरूपं शुद्धं वदन्ति पुष्पं सर्ववेदाः । प्राणानिति प्रणवेनेशितारं ध्यायन्ति वेदैरिति निश्चितार्थाः ॥१४॥ न भूमिरापो न मनो न विद्धः प्राणोऽनिलो गगनं नोत बुद्धिः । न चेतनोऽन्यत् परमाकाशमध्ये विभाति देवः शिव एव केवलः ॥१६॥ इत्येतदुक्तं परमं रहस्णं ज्ञानामृतं सर्ववेदेषु गूढ्म् । जानाति योगो विजनेऽथ देशे युद्धीत योगं प्रयतो । ह्यजसम् ॥१७॥ इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे श्रीमद्भगवदीश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे लिङ्गब्रह्मज्ञानयोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १०॥

एकाद्शोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम् । येनात्मानं प्रवश्यन्ति भानुमन्तिमवेश्वरम् ॥ १ ॥ श्रतः पर योगाग्निर्दहते क्षिप्रमशेषं पापग्खरम् । प्रसन्नं जायते ज्ञानं साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम् ॥ २ ॥ योगात् सञ्जायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्त्तते । योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वरः ॥ ३ ॥ एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेत च । ये युख्जन्ति महायोगं ते विज्ञेया महेश्वराः ॥ ४ ॥ योगस्तू द्विविधो ज्ञेयो ह्यभावः प्रथमो मतः । स्रपरस्तु महायोगः सर्वयोगोत्तमोत्तमः ॥ ५॥ स्वरूपं यत्र चिन्त्यते । श्रभावयोगः स प्रोक्तो येनात्मानं प्रपश्यति ॥ ६ ॥ श्वन्यं सर्वेनिराभासं यत्र पश्यति चात्मानं नित्यानन्दं निरञ्जनम् । मयैक्यं स महायोगो भाषितः परमः स्वयम् ॥ ७॥ ये चान्ये योगिनां योगाः श्रूयन्ते प्रन्थविस्तरे । सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कलां नाहँन्ति षोडशीम् ॥ ८ ॥ यत्र साक्षात् प्रपञ्यन्ति विमुक्ता विश्वमीश्वरम् । सर्वेषामेव योगानां स योगः परमो मतः ॥ ९॥ चेश्वरबहिष्कृताः । न ते पश्यन्ति मामेकं योगिनो यतमानसाः ॥१०॥ बहशो सहस्रशोऽथ प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽय घारणा । समाधिश्च मुनिश्रेष्ठा यमश्च नियमासने ॥११॥ मय्येकचित्तता योगो वृत्त्यत्यन्तातिरोवतः । तत्साधनान्यष्टवा तु युष्माकं कथितानि तु ॥१२॥ ब्रह्म चर्यापरिप्रही । यमाः संक्षेपतः प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम् ॥१३॥ भ्रहिंसा सत्यमस्तेयं कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा। अक्लेशजननं प्रोक्ता त्विहसा परमर्षिभिः ॥१४॥ श्रहिसायाः परो धर्मो नास्त्यहिंसापरं मुखम् । विधिता या भवेद्धिंसा त्वहिंसैव प्रकोत्तिता ॥१५॥ सत्येन सर्वमाप्तोति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् । यथार्थकथनाचारः सत्यं प्रोवतं द्विजातिभिः ॥१६॥

कूमपुराणम्

परद्रव्यापहरणं चौर्यादथ बलेन वा । स्तेयं तस्यानाचरणादस्तेयं धर्मसाधनम् ॥१७॥ कर्मणा मनसा वात्रा सर्वावस्थासु सर्वदा । सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मवर्यं प्रवक्षते ॥१८॥ द्रव्यासामप्यनादानमापद्यपि तथेच्छ्या । श्रपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन पालयेत् ॥१९॥ त्यः-स्वाध्याय-सन्तोषाः शौवमीश्वरपूजनम् । समासान्नियमाः प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायितः ॥२०॥ उपवासनराकादि - कृच्छुवान्द्रायणादिभिः । शरीरशोषणं प्राहुस्तानसास्तन उत्तमम् ॥२१॥ वेदान्तरात् रुद्रीय - प्रणवादिजपं बुधाः । सत्त्वसिद्धिकरं पूंसां स्वाध्यायं परिचक्षते ॥२२॥ स्वाध्यायस्य त्रयो भेदा वाचिकोपांश्रमानसाः । उत्तरोत्तरवैशिष्टयं प्राहर्वेदार्थवेदिनः ॥२३॥ यः शब्दबोधजननः परेषां श्रुएवतां स्फुटम् । स्वाध्यायो वाचिकः प्रोक्त उपांशोरथ लक्षणम् ॥२४॥ श्रोष्ठयोः स्पन्दमात्रेण परस्याशब्दबोधकम् । उपांशुरेष निर्दिष्टः साहस्रो वाचिकाज्जपः॥२५॥ यत् पदाक्षरसङ्कत्या परिस्पन्दनवर्जितम् । चिन्तनं सर्वशब्दानां मानसं तं जपं विदूः ॥२६॥ यहच्छालाभतो नित्यमलं पूंसो भवेदिति । प्राशस्त्यमुषयः प्राहः सन्तोषं सुखलक्षणम् ॥२७॥ बाह्यमाभ्यन्तरं शीचं द्विधा प्रोक्तं द्विजोत्तमाः । मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनः शुद्धिरथान्तरम्।।२८॥ स्तुति-स्मरएा-पूजाभिवीङ्मनः- काय - कमेभिः । सुनिश्चला शिवे भक्तिरेतदीशस्य पूजनम् ॥२९॥ यमाश्च नियमाः प्रोक्ताः प्राणायामं निवोधत । प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्ति हारोधनम् ॥३०॥ उत्तमाधममध्यत्वात् त्रिधाऽयं प्रतिपादितः । स एव द्विविधः प्रोक्तः सगर्भोऽगर्भ एव च ॥३१॥ मन्दश्चतुर्विंशतिमात्रकः । मध्यमः प्राणसंरोधः षट्त्रिंशन्मात्रिकोऽन्तकः ॥३२॥ प्रस्वेदकम्पनोत्थानजनकरवं यथाक्रमम् । मन्द-मध्यम - मुख्यानामानन्दाञ्चोत्तमोत्तमः ॥३३॥ सगर्भमाहुः सजपमगर्भ विजपं बुधाः । एतद्वे योगिनां प्राहुः प्राणायामस्य लक्षणम् ॥३४॥ सन्याहृति सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह । त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राखायामः स उच्यते ॥३४॥ रेचकः पूरकद्वैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः । प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः ॥३६॥ रेचको बाह्यनिश्वासात् पूरकस्तिन्नरोघतः । साम्येन संस्थितिर्या सा कुम्भकः परिगीयते ॥३७॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः । निग्रहः प्रोच्यते सिद्भः प्रत्याहारस्तु सत्तमाः॥३०॥ हृत्युग्डरीके नाभ्यां वा मूर्झि पर्वसु मस्तके । एवमादिषु देशेषु घारणा चित्तबन्धनम् ॥३९॥ देशावस्थितिमालम्ब्य बुद्धेर्या वृत्तिसन्तितः । वृत्त्यन्तरैरसंसृष्टा तद् ध्यानं सूरयो विदुः ॥४०॥ एकाकारः समाधिः स्यादेशालम्बनवर्जितः । प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगशासनमुत्तमम् ॥४१॥ धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादश घारणाः । ध्यानं द्वादशकं यावत् समाधिरभिधीयते ॥४२॥ श्रासनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममद्धिसनं तथा । साधनानाञ्च सर्वेषामेतत् साधनमुत्तमम् ॥४३॥ ऊर्वोहपरि विष्रेन्द्राः झत्वा पादतले उभे । समासीतात्मनः पद्ममेतदासनम्त्तमम् ॥४४॥ उभे कृत्वा पादतले जानूर्वारन्तरेण हि । समासीतात्मनः प्रोक्तमासनं स्वस्तिकं परम् ॥४५॥ एकं पादमथैकस्मिन् विन्यस्योरुणि सत्तमाः । ग्राधीताद्धीसनिमदं योगसाधनमुत्तमम् ॥४६॥ भ्रदेशकाले योगस्य दर्शनं हि न विद्यते । भ्रग्न्यभ्यासे जले वापि शुष्कपर्णचये तथा ॥४७॥ जन्तुव्याप्ते रमशाने च जीर्गागोष्ठे चतुष्पथे । सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसञ्चये ।।४८॥ अशुभे दुर्जनाकान्ते मशकादिसमन्विते । नाचरेहेहबाधे वा दौर्मनस्यादिसम्भवे ॥४९॥ सुगुप्ते मुत्रुभे देशे गुहायां पर्वतस्य च । नद्यास्तीरे पुरायदेशे देवतायतने तथा ॥५०॥ यहे वा सुशुभे देशे निर्जने जन्तुवर्जिते । युद्धीत योगी सततमात्मानं मत्परायणः ॥५१॥ नमस्कृत्य तु योगीन्द्रान् सिशाष्यांश्च विनायकम् । गुरुश्चेव च मां योगी युझीत सुसमाहितः ॥५२॥

ग्रासनं स्विह्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्द्धमथापि वा । नासिकाग्रे समां दृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः ॥५३॥ कृत्वाथ निर्भयः शान्तरत्यक्त्वा मायामयं जगत् । स्वात्मन्यवस्थितं देवं चिन्तयेत् परमेश्वरम् ॥५८॥ शिखाग्रे द्वादशाङ्गुल्ये कल्पयित्वाथ पङ्कजम् । धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम् ॥५९॥ ऐश्वर्याष्टदलोपेतं परंवैराग्यकर्णिकम् । चिन्तयेत् परमं कोशं कर्णिकायां हिरएमयम् ॥५६॥ सर्वशक्तिमयं साक्षाद्यं प्राहुद्वित्यमन्ययम् । ग्रोङ्कारवाच्यमन्यक्तं रिश्मजालसमाकुलम् ।

चिन्तयेत् तत्र विमलं परं ज्योतिर्यदक्षरम् ॥५७॥

तस्मिञ् ज्योतिषि विन्यस्य स्वात्मानं तदभेदतः । ध्यायीत कोश्वमध्यस्थमीशं परमकारणम् ॥५५॥ तदात्मा सर्वगो भूत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् । एतद् गुह्यतमं ज्ञानं ध्यानान्तरमथोच्यते ॥५९॥ चिन्तयित्वा तु पूर्वोक्तं हृदये पद्ममुत्तमम् । श्रात्मानमथ कान्तारं तत्रानलसमित्विषम् ॥६०॥ मध्ये विह्निशिखाकारं पुरुषं पञ्चिविशकम् । चिन्तयेत् परमात्मानं तन्मध्ये गगनं परम् ॥६१॥ श्रोङ्कारबोधितं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम् । श्रव्यक्तं प्रकृतौ लीनं परं ज्योतिरनुत्तमम् ॥६२॥ तदन्तः परमं तत्त्वमात्माघारं निरखनम् । ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूपं महेश्वरम् ॥६३॥ विशोध्य सर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुनः । संस्थाप्य मिय चात्मानं निर्मले परमे पदे ॥६४॥ प्लावयित्वात्मनो देहं तेनैव ज्ञानवारिणा । मदात्मा मन्मना भस्म ग्रहीत्वा ह्यान्निहोत्रजम् ॥६५॥ तेनोद्धूलितसर्वाङ्गमग्निरादित्यमन्त्रतः । चिन्तयेत् स्वात्मनीशानं परंज्योतिः स्वरूपिणम् ॥६६॥ पाशुपतो योगः पशुपाशिवमुक्तये । सर्ववेदान्तसारोऽय मत्याश्रम इति श्रुतिः ॥६७॥ एतत् परतरं गुह्यं मत्सायुज्यप्रदायकम् । द्विजातीनान्तु कथितं भक्तानां ब्रह्मचारिणाम् ॥६८॥ ब्रह्म वर्यमहिसा च क्षमा शोचं तपो दमः । सन्तोषः सत्यमास्तिक्यं व्रताङ्गानि विशेषतः ॥६९॥ एकेनाप्यथ हीनेन व्रतमस्य तु लुप्यते । तस्मादात्मगुणोपेतो मद्व्रतं वोढमहीत ॥७०॥ वीतराग - भय - कोषा मन्मया मामुपाश्रिताः । बहवो ऽनेन योगेन पूता मद्भावयोगतः ॥७१॥ ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् । ज्ञानयोगेन मां तस्माद् यजेत परमेश्वरम् ॥७२॥ श्रथवा भक्तियोगेन वैराग्येण परेए तु । चेतसा बोघयुक्तेन पूजयेन्मां सदा शुचिः ॥७३॥ सर्वकर्माणि संन्यस्य भिक्षाशी निष्परिग्रहः । प्राप्नोति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम् ॥७४॥ ग्रद्देष्टा सर्वभुतानां मैत्रः करुण एव च । निर्ममो निरहङ्कारो यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥७५॥ सन्तृष्टः सततं योगी यतात्मा हढनिश्चयः । मय्यर्पितमनोबुद्धियों मद्भक्तः स मे प्रियः ॥७६॥ यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः । हर्षामर्षभयोद्वैगैर्मृक्तो यः स हि मे प्रियः ॥७७॥ ग्रनपेक्षः श्रुचिर्दक्ष उदासीनो गतन्यथः । सर्वारम्भपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥७५॥ तुल्यनिन्दास्तुतिर्मीनी सन्तुष्टो येन केनचित्। ग्रनिकेतः स्थिरमितर्मद्भक्तो मामुपैष्यति ॥७९॥ सर्वकर्माएयपि सदा कुर्वाणो मत्परायणः । मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं परमं पदम् ॥ ८०॥ चेतसा सर्वकर्माण मिय संन्यस्य मत्परः । निराशी र्निर्ममो भूत्वा मामेकं शरएां व्रजेत् ॥ ५१॥ त्यक्तवा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः । कर्मएयपि प्रवृत्तोऽपि नैव तेन निबध्यते ॥ ८२॥ र्यंतिचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः । शारीरं केवलं कर्म कुर्वश्नाप्नोति तत्ददम् ॥ ५३॥ यहच्छानाभनुप्रस्य द्वन्द्वातीतस्य चैव हि । कुर्वतो मत्प्रसादार्थं कर्म संसारनाशनम् ॥ ५४॥ मन्मना मन्नमस्कारी मद्याजी मत्परायणः । मामुपैष्यति योगीशो ज्ञात्वा मां परमेश्वरम् ॥ ५५॥ परं ज्योतिर्बोधयन्तः पस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं मम सायुज्यमाप्नयुः।।=६॥ एवं नित्याभियुक्तानां मदीयं कर्म सत्त्वगम् । नाशयामि तमः कृत्सनं ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ६७॥ मद्बुद्धयो मां सततं पूजयन्तीह ये जनाः । तेषां नित्याभियुक्तानां योग-क्षेमं वहाम्यहम् ॥ ६८।। ये चान्ये कामभोगार्थं यजन्ते ह्यन्यदेवताः । तेषां तदन्तं विज्ञेयं देवतानुगतं फलम्।। ८९।। ये चान्यदेवताभक्ताः पूजयन्तीह देवताः । मद्भावनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि मानवाः ॥९०॥ तस्माद्विनश्वरानन्यांस्त्य ब्वानशेषतः । मामेव संश्रयेदीशं स याति परमं पदम् ॥९१॥ त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निःशोको निष्परिम्रहः । यजेचा मरणात्लिङ्गं विरक्तः परमेश्वरम् ॥९२॥ येऽर्चयन्ति सदा लिङ्गं त्यक्त्वा भोगानशेषतः । एकेन जन्मना तेषां ददामि परमं पदम् ॥९३॥ परात्मनः सदा लिङ्गं केवलं रजतप्रभम् । ज्ञानात्मकं सर्वगतं योगिनां हृदि संस्थितम् ॥९४॥ ये चान्ये नियता भक्ता भावियत्वा विधानतः । यत्र कचन तिल्लङ्गमर्चयन्ति महेश्वरम् ॥९५॥ जले वा विह्नमध्ये वा व्योम्नि सूर्येऽप्यथान्यतः । रत्नादो भावियत्वेशमर्चयेल्लङ्गमैश्वरम् ॥९६॥ सर्विलिङ्गमयं ह्योतत् सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम् । तस्माल्लिङ्गेऽचयेदीशं यत्र कचन शाश्वतम् ॥९७॥ श्रानो क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम् । काष्टादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिङ्गन्तु योगिनाम्॥९८॥ यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः । यावज्जीवं जपेद् युक्तः प्रणवं ब्रह्मणो वपुः ॥९९॥ शतरुद्रीयं जपेदामरणाद् द्विजः । एकाकी जितचित्तात्मा स याति परमं पदम्।।१००॥ वसेचामरणाद् विप्रा वाराणस्यां समाहितः । सोऽपीश्वरप्रसादेन याति तत् परमं पदम् ॥१०१॥ तत्रोत्कमणजाले हि सर्वेषामेव देहिनाम् । ददाति परमं ज्ञानं येन मुच्येत बन्धनात् ॥१०२॥ वर्णाश्रमविधि कृत्स्नं कुर्वाणो मत्परायणः। तेनैव जन्मना ज्ञानं लब्ध्वा याति शिवं पदम्॥१०३॥ येऽपि तत्र वसन्तीह नीचा वै पापयोनयः । सर्वे तरन्ति संसारमीश्वरानुग्रहाद् द्विजाः ॥१०४॥ किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसाम् । धर्मान् समाश्रयेत् तस्मान्मुक्तये सततं द्विजाः॥१०५॥ एतद्रहस्यं वेदानां न देयं यस्य कस्यचित् । धार्मिकायैव दातव्यं भक्ताय ब्रह्मचारिणे ॥१०६॥

च्यास उवाच

भगवानात्मयोगमनुत्तमम् । व्याजहार समासीनं नारायणमनामयम् ॥१०७॥ इत्येतदुक्त्वा मयैतद् भाषितं ज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनाम् । दातव्यं शान्तचित्तेभ्यः शिष्येभ्यो भवता शिवम्॥१० ॥ योगीन्द्रानव्रवीद् भगवानजः । हिताय सर्वभक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमाः ॥१०९॥ भवन्तोऽपि हि मज्ज्ञानं विष्याणो विधिपूर्वकम् । उपदेक्ष्यन्ति भक्तानां सर्वेषां वचनान्मम ॥११०॥ भ्रयं नारायणो योऽसावीश्वरो नात्र संशयः । नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदं परम् ॥१११॥ मूर्त्तिनरिायणसमाह्वया । सर्वभूतात्मभूता सा शान्ता चाक्षरसंस्थिता ॥११२॥ ममैषा येऽन्यथा मा प्रपञ्यन्ति लोके भेदहशो जनाः । न ते मुक्ति प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः॥११३॥ ये त्वेनं विष्णुमन्यक्तं माञ्च देवं महेश्वरम् । एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः ॥११४॥ विष्णुमात्मानमव्ययम् । मामेव सम्प्रवस्यव्वं पूजयव्वं तथैवं च ॥११५॥ येऽन्यथा सम्प्रपश्यन्ति मद्भिन्नं देवतान्तरम् । ते यान्ति नरकान् घोरान् नाहं तेषु व्यवस्थितः ॥११६॥ मूखं वा पिएडतं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम् । मोचयामि श्वपाकं वा नारायणविचिन्तकम् ॥११७॥ तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः । ग्रर्चनीयो नमस्कार्यो मत्त्रीतिजननाय वै ॥११८॥ एवमुक्तवा वासुदेवमालिङ्गच स पिनाकधृक् । अन्तर्हितोऽभवत् तेषां सर्वेषामेव पश्यताम् ॥११६॥ भगवांस्तापसं वेषमुत्तमम् । जग्राह योगिनः सर्वास्त्यवत्वा वै परमं वपुः ॥१२०॥ नारायणोऽपि भवद्भिरमलं प्रसादात् परमेष्ठिनः । साक्षाद्वमहेशस्य ज्ञानं संसारनाशनम् ॥१२१॥

गच्छध्वं विज्वराः सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिनः । प्रवर्त्तयध्वं शिष्येभ्यो घार्मिकेभ्यो मुनीश्वराः ॥१२२॥ इदं भक्ताय शान्ताय धार्मिकायाहिताग्नये । विज्ञानमैश्वरं देयं ब्राह्मणाय विशेषतः ॥१२३॥ एव मुवत्वा स विश्वात्मा योगिनां योगिवत्तमः । नारायगो महायोगी जगामादर्शनं स्वयम् ॥१२४॥ ऋषयस्तेऽपि देवेशं नमस्कृत्य महेश्वरम् । नारायगास्त्र भूतादि स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥१२५॥ सनत्कुमारो भगवान् संवत्तीय महामुनिः । दत्तवानैक्वरं ज्ञानं सोऽपि सत्यव्रताय च ॥१२६॥ सनन्दनोऽपि योगीन्द्रः पुलहाय महर्षये । प्रददी गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापतिः । १२७। श्रिङ्गरा वेदिवदुषे भारद्वाजाय दत्तवान् । जैगीषव्याय किपलस्तथा पञ्चशिखाय च ॥१२८॥ पराशरोऽपि सनकात् पिता मे सर्वतत्त्वहक् । लेभे तत् परमं ज्ञानं तस्माद्वाल्मीकिराप्तवान् ॥१२९॥ ममोवाच पुरा देवः सतीदेहभवाङ्गजः। वामदेवो महायोगी रुद्रः किल पिनाकधृक् ॥१३०॥ नारायणोऽपि भगवान् देवकीतनयो हरिः । ग्रजु नाय स्वयं साक्षाइत्तवानिदमुत्तमम् ॥१३१॥ यदाहं लब्धवान् रद्राद्वामदेवादनुत्तमम् । विशेषाद् गिरिशे भक्तिस्तस्मादारभ्य मेऽभवत्।।१३२॥ प्रपन्नोऽहं विशेषतः । भूतेशं गिरिशं स्थाणुं देवदेवं त्रिशुलिनम् ॥१३३॥ शरएयं शरणं रुद्रं भवन्तोऽपि हि तं देवं शम्भुं गोवृषवाहनम् । प्रपद्यन्तां सपत्नीकाः सपुत्राः शरणं शिवम् ॥१३४॥ वर्त्तं तत्प्रसादेन कर्मयोगेण शङ्करम् । पूजयध्वं महादेवं गोपित व्यालभूषण्**म्** ॥१३४॥ एवमुक्ते पुनस्ते तु शोनकाद्या महेक्वरम् । प्रणेमुः शाक्वतं स्थाणुं व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥१३६॥ अब्रुवन् हृष्टमनसः कृष्णद्वेपायनं प्रभुम् । साक्षाद्देवं हृषीकेशं शिवं लोकमहेश्वरम् ॥१३७॥ गोवृषध्वजे । इदानीं जायते भक्तिर्या देवैरिप दुर्लभा ॥१३५॥ भवत्प्रसादादचला शरएये मुनिश्रेष्ठ कर्मयोगमनुत्तमम् । येनासौ भगवानीशः समाराध्यो मुमुक्षुभिः ॥१३९॥ त्वत्सिन्निधावेष सूतः श्रुगोतु भगवद्वचः। तद्वदाखिललोकानां रक्षणं धर्मसंग्रहम्॥१४०॥ यदुक्तं देवदेवेन विष्णुना कूर्मरूपिणा । पुष्टेन मुनिभिः सर्वं शक्रेणामृतमन्थने ॥१४१॥ श्रुत्वा सत्यवतीसूनुः कर्मयोगं सनातनम् । सुनीनां भाषितं कृत्स्नं प्रोवाच सुसमाहितः ॥१४२॥ य इमं पठते नित्यं संवादं कृत्तिवाससः । सनत्कुमारप्रमुखैः सर्वपापैः श्रावयेद्वा द्विजान् शुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान् । यो वा विचारयेदर्थं स याति परमां गतिम् ॥१४४॥ यश्चैतच्छणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढत्रतः । सर्वेपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥१४५॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः । श्रोतव्यश्चाथ मन्तव्यो विशेषाद् ब्राह्मणैः सदा।।१४६॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे श्रीमद्भगवदी इवरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे योगादिज्ञानयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११॥
[समाप्तेयमी इवरगीता ।]

830

कूर्मपुराणम्

द्वादशोऽध्यायः

[व्यासगीता १२-३३ ग्र०]

व्यास उवाच

श्रृणुघ्वमृषयः सर्वे वक्ष्यमा<mark>णं</mark> सनातनम् । कर्मयोगं न्नाह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम् ॥ १ ॥ ब्रह्मणानुप्रदर्शितम् । ऋषीणां श्रुग्वतां पूर्वं मनुराह प्रजापतिः ॥ २ ॥ ग्राम्नायसिद्धमिखलं पुरायमृषिसङ्घैर्निषेवितम् । समाहितिधियो यूयं श्रृणुध्वं गदतो मम ॥ ३॥ सर्वेपापहरं द्विजोत्तमाः । गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे स्वगृह्योक्तविधानतः ॥ ४॥ कृतोपनयनो वेदानधीयीत दएडी च मेखली सूत्री कृष्णाजिनघरो मुनिः । भिक्षाचारी ब्रह्मचारी स्वाश्रमे निवसन् सुखम्।। ४ ॥ कार्पासमुपनीतार्थं निर्मितं ब्रह्मएा पुरा । ब्राह्मणानां त्रिवृत् सूत्रं कीशं वा वस्त्रमेव वा ।। ६ ।। सदोपवीती चैव स्यात् सदा बद्धशिखो द्विजः । ग्रन्यथा यत् कृतं कर्म तद्भवत्ययथाकृतम् ॥ ७ ॥ वसेदविकृतं वासः कार्पासं वा कषायकम् । तदेव परिघानीयं शुक्रमच्छिद्रमुत्तमम् ॥ ८ ॥ उत्तरन्तु समाख्यातं वासः क्रुष्णाजिनं शुभम् । ग्रभावे दिव्यमजिनं रौरवं वा विधीयते ॥ ९ ॥ उद्धृत्य दक्षिणं बाहुं सन्ये बाही समर्पितम् । उपवीतं भवन्नित्यं निवीतं कर्ठसज्जते ॥१ ॥ सन्यं बाहुं समुद्घृत्य दक्षिणे तु घृतं द्विजाः । प्राचीनावीतिमत्युक्तं पेत्रे कर्मण योजयेत् ॥११॥ अन्यागारे गवां गोष्ठे होमे जप्ये तथैव च । स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानाश्व सिन्नघौ।।१२॥ उपासने गुरूगाञ्च सन्ध्ययोः साधुसङ्गमे । उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातनः ॥१३॥ मोेेेे जिवृत्समा श्रक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला । मुङ्जाभावे कुशेनाथ ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः ॥१४॥ घारयेद्वैल्व-पालाशी दएडी केशान्तिकी द्विजः । यज्ञाह्वृक्षजं वाथ सौम्यमव्रामेव च ॥१५॥ सायं प्रातिद्वजः सन्ध्यासुपासीत समाहितः। कामाल्लोभाद्भयान्मोहात् त्यवत्वैनां पतितो भवेत्॥१६॥ **ग्राग्निकार्यं ततः कुर्यात् सायं प्रातर्यथाविधि । स्नात्वा सन्तर्पयेहेवानृषीन् पितृगणांस्तथा ॥१७॥** पत्रैरथाम्बुना । ग्रभिवादनशीलः स्यान्नित्यं वृद्धेषु धर्मतः ॥१८॥ देवताभ्यर्चनं कूर्यात् पृष्पैः असावहं भो नामेति सम्यक् प्ररातिपूर्वकम् । श्रायुरारोग्यमन्विच्छन् द्रव्यादिपरिवर्जितम् ॥१९॥ <mark>श्रायुष्मान् भव सौम्</mark>येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने । श्रकारश्चास्य नाम्रोऽन्ते वाच्यःपूर्वाक्षरः लुतः।।२०।। न क्याद योऽभिवादस्य द्विजः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥२१॥ कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः । सन्येन सन्यः स्प्रष्टन्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ॥२२॥ लोकिकं वैदिकञ्चापि तथाध्यात्मिकमेव वा । भ्राददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमिभवादयेत् ॥२३॥ नोदकं धारयेद् मैक्ष्यं पुष्पाणि समिधस्तथा । एवंविधानि चान्यानि न दैवाद्येषु कर्मषु ॥२४॥ बाह्मगां कुशलं पृन्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम् । वैश्यं क्षेमं समागत्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥२५॥ उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपितः । मातुलः श्वशुरश्चेव मातामह-पितामही । वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च सर्वे ते गुरवः स्मृताः ॥२६॥ माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदरा । इवश्रूः पितामही ज्येष्ठा भ्रातृजाया गुरुश्चियः ॥२७॥

इत्युक्तो गुरुवर्गोऽयं मातृतः पितृतस्तथा । म्रनुवर्त्तनमेतेषां मनोवाक्कायकमंभिः ॥२८॥ गुरुं ह्या समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताख्वलिः । नैतैव्पविशेत् साद्धं विवदेन्नात्र कारणात् ॥२९॥ जीवितार्थमपि द्वेषाद गुरुभिनेव भाषएाम् । उदितोऽपि गुणैरन्यैर्गुरुद्वेषी पतत्यवः ॥३०॥

गुरूगामि सर्वेषां पूज्याः पञ्च विशेषतः । तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता मुपूजिता ॥३१॥ यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते । ज्येष्ठो भ्राता च भत्ती च पञ्चेते गुरवः स्मृताः॥३२॥ श्रात्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुनः । पूजनीया विशेषेण पञ्चेते भूतिमिच्छता ॥३३॥ यावत् पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ । तावत् सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात् तत्परायणः ॥३४॥ पिता माता च सुप्रीती स्यातां पुत्रगुणैर्यदि । स पुत्रः सकलं धर्ममाप्नुयात् तेन कर्मणा ॥३४॥ नास्ति मातृसमं दैवं नास्ति तातसमो गुरुः । तयोः प्रत्युपकारो हि न कथञ्चन विद्यते ॥३६॥ तयोनित्यं प्रियं कुर्यात् कर्मणा मनसा गिरा । न ताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥३७॥ वर्जियत्वा मुक्तिफलं नित्यं नैमित्तिकं तथा । धर्मः सारः समुद्दिष्टः प्रेत्यानन्तफलप्रदः ॥३८॥ विसृष्टस्तदनुज्ञया । शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य वा पूज्यते दिवि॥३९॥ वक्तारं यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूर्जोऽवमन्यते । तेन दोषेण स प्रेत्य निरयं घोरमृच्छिति ॥४०॥ पुंसां वरमेनि तिष्ठेत पूज्यो भर्ता च सर्वदा । श्रिप मातरि लोकेऽस्मिन्नपकाराद्धि गौरवम् ॥४१॥ ये नरा भर्तृपिरण्डार्थं स्वान् प्राणान् सन्त्यजन्ति हि । तेषामथाक्षयांल्लोकान् प्रोवाच भगवान् मनुः॥४२॥ मातुलांश्च पितृञ्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् । ग्रसावहिमिति ब्रूयुः प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥४३॥ श्रवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानिप यो भवेत्। भोभवत्पर्वं कन्त्वेन मिभभाषेत ग्रभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसा वन्द्य एव च । ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यश्च श्रीकामेः सादरं सदा ॥४५॥ नाभिवाद्यास्तु विप्रेन्द्रैः क्षत्रियाद्याः कथञ्चन । ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः ॥४६॥ ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति श्रुतिः । सवर्णेन सवर्णानां कार्यमेवाभिवादनम् ॥४७॥ गुरुरिनर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्माएो गुरुः । पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥४८॥ विद्या कर्म वयो बन्धुवित्तं भवति पञ्चमम् । मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात् ॥४९॥ पञ्चानां त्रिषु वर्गोषु भ्र्यांसि बलवन्ति च । यत्र स्युः सोऽत्र मानाहैं शूद्रोऽपि दशमीं गतः॥५०॥ पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे हच बक्षुषे । बृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च ॥५१॥ भिक्षामाहृत्य शिष्टानां गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् । निवेद्य गुरवेऽश्रीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया ॥५२॥ भवत्पूर्वं चरेद् भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः । भवन्मध्यन्तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥५३॥ मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्। भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत् ॥५४॥ स्वजातीयगृहेष्वेव सावविणिकमेव वा । भक्षस्य चरगां युक्तं पतितादिषु वर्जितम् ॥५५॥ वेदयज्ञेरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु । ब्रह्मचार्याहरेद् भैक्ष्यं ग्रहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥५६॥ गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुल-बन्धुषु । ग्रलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥५७॥ सर्वं वा विचरे नामं पूर्वोक्तानामसम्भवे । नियम्य प्रयतो वाचं दिशस्त्वनवलोकयन् ॥५५॥ तद्भैक्ष्यं पचेदन्नममायया । भुञ्जीत प्रयतो नित्यं वाग्यतोऽनन्यमानसः ॥५९॥ भक्ष्येण वर्त्तयेक्तित्यमेकान्नादी भवेद व्रती। भक्ष्येण वृत्तिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता॥६०॥ नित्यमद्याच्चेतदकुत्सयन् । दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच ततो भुक्षीत वाग्यतः ॥६१॥ श्रनारोग्यमनायुष्यमस्वर्यञ्चातिभोजनम् । श्रपुरायं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत् परिवर्जयेत् ॥६२॥ प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा । नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः ॥६३॥ प्रक्षाल्य पाणिपादी च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत् । शुची देशे समासीनो भुक्तवा च द्विरुपस्पृशेत् ॥६४॥ इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां ब्राह्मएकर्मकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

कूर्मपुराग्म

त्रयोदशोऽध्यायः

व्यास खवाच

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्यापसर्पणे। ग्रोष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ॥१॥
रेतो - सूत्र - पूरीषाणामृत्सर्गेऽयुक्तभाषणे । ष्ठीवित्वाऽध्ययनारम्भे कास-श्वासागमे तथा ॥ २ ॥
चत्वरं वा श्मशानं वा समाक्रम्य द्विजोत्तमः । सन्ध्ययोश्भयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत् पुनः ॥ ३ ॥
चएडाल-स्लेच्छसम्भाषे स्त्रीशद्वीच्छष्टभाषणे । उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यश्वापि तथाविधम् ॥ ४ ॥
ग्राचामेदश्रुपाते वा लोहितस्य तथैव च । भोजने सन्ध्ययोः स्नात्वा त्यागे सूत्र-पुरीषयोः॥ ५ ॥
ग्राचान्तोऽप्याचमेत् सुप्त्वा सकृत् सकृदथान्यतः । ग्रग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव च ॥ ६ ॥
भ्राचान्तोऽप्याचमेत् सुप्त्वा सकृत् सकृदथान्यतः । ग्रग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव च ॥ ६ ॥
भ्राणामथात्मनः स्पर्शे नीलीं वा परिधाय च । उपस्पृशेज्ञलश्वाद्वंतृणां वा भुवमेव वा ॥ ७ ॥
केशानाश्वात्मनः स्पर्शे वाससोऽक्षालितस्य च । ग्रनुष्णाभिरफेनाभिर्विशुद्धाद्भिश्च वाग्यतः ।
शोचेऽपः सर्वदाचामेदासीनः प्रागुदङ्मुखः ॥ ६ ॥

शिरः प्रावृत्य कर्छं वा मुक्तकच्छ-शिखोऽपि वा । श्रकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यश्चिर्भवेत्।। ९ ॥ सोपानत्को जलस्यो वा नोष्णीषी चाचमेद् बुधः । न चैव वर्षधाराभिर्हस्तोच्छिष्टे तथा बुधः ॥१०॥ वा पुनः । न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुकरोऽपि वा ॥११॥ सूत्रेण नैकहस्तापितजलैविना न जल्पन् न हसन् प्रेक्षन् शयानः प्रह्ल एव च । नावीक्षितश्च फेनाचैरुपेताभिरयापि वा ॥१२॥ शूद्राशुचिकरोन्मुक्तैर्न चोच्छिष्टैस्तथैव च। न चैवाङ्गुलिभिः शब्दं न कुर्यान्नान्यमानसः ॥१३॥ चैवाप्रचुरोदकैः । न पाणिक्षुभिताभिर्वा न बहिष्कक्ष एव वा ॥१४॥ वर्णरसदृष्टाभिनं हृद्गाभिः पूयते विप्रः कराठ्याभिः क्षत्रियः शुचिः । प्राशितःभिस्तथा वैश्यः स्त्री-शूद्रौ स्पर्शतोऽस्भसः।। १५।। म्रङ्गुष्ठमूलरेखायां तीर्थं ब्राह्म्चिमिहोच्यते । म्रन्तराङ्गुष्ठादेशिन्योः पितृतीर्थमनुत्तमम् ॥१६॥ किनिष्ठामुलतः पश्चात् प्राजापत्यं प्रचक्षते । भ्रङ्गुल्यग्रे स्मृत दैवं तदेवार्षं प्रकीर्त्तितम् ॥१७॥ मूले वा दैवमार्षं स्यादाग्नेयं मध्यतः स्मृतम् । तदेव सौमिकं तीर्थमेवं ज्ञात्वा न मुह्यति ।।१८॥ ब्राह्मेणैव तु तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् । कायेन वाथ दैवेन न तु पैत्रेण वै द्विजाः ॥१९॥ पूर्वं ब्राह्मणः प्रयतस्ततः । संवृत्ताङ्गुष्ठमूलेन सूखं वै समुपस्पृशेत् ॥२०॥ धङ्गुष्टानामिकाभ्यान्तु स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः । तर्जन्यङ्गुष्टयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ॥२१॥ श्रवणे समुपस्रुशेत् । सर्वाङ्गुलीभिर्बाह् च हृदयन्तु तलेन वा । किनिष्ठाङ्ग्रष्ठयोगेन नाभिः शिरश्च सर्वाभिरङ्गुष्ठेनाथ वा द्वयम् ॥२२॥

तिः प्राश्नीयाद्यदम्भस्तु सुप्रीतास्तेन देवताः । ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम ॥२३॥ गङ्गा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात् । संस्पृष्टयोर्नोचनयोः प्रीयेते शिश - भास्करो ॥२४॥ नासत्यदस्रो प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये । श्रोत्रयोः स्पृष्टयोस्तद्वत् प्रीयेते चानिलानली ॥२५॥ संस्पृष्टे हृदये वास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः । सृष्टिं संस्पर्शनादेव प्रीतः स पृष्ट्यो भवेत् ॥२६॥ नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गं नयन्ति याः । दन्तवद्दन्तलग्नेषु जिह्नास्पर्शे शुचिभवेत् ॥२६॥ स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य श्राचामयतः परात् । भूमिगैहतैः समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ॥२६॥ मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे । फले मूले चेक्षुदग्रङे न दोषं प्राह वै मनुः ॥२९॥ प्रमुरान्नोदपानेषु यद्यच्छिष्टो भवेद् द्विजः । भूमौ निक्षित्य तद द्रव्यमाचम्याभ्यक्षयेत् ततः॥३०॥

तैजसं वा समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद द्विजः। भूमो निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत् तु तत्॥३१॥ यद्यद् द्रव्यं समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः। ग्रनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तःशुचितामियात्। वस्त्रादिषु विकल्पः स्यान्न स्पृष्ट्वा चैवमेव हि ॥३२॥

प्ररायेऽनुदके रात्री चौर व्याच्नाकुले पथि । कृत्वा मूत्र पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यित ॥३३॥ निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः । श्राह्म कुर्याच्छक्तन्मूत्रं रात्रो चेहक्षिणामुखः ॥३४॥ प्रन्तर्द्धाय महीं काष्ठः पत्रेलेष्टिस्तृणेन वा । प्रावृत्य च शिरः कुर्याद्विरमूत्रस्य विसर्जनम् ॥३५॥ छाया कूप नदी-गोष्ठ - चैत्यान्तः पथि - भस्ममु । ग्रग्नौ चैव रमशाने च विरमूत्रं न समाचरेत् ॥३६॥ न गोपथे न कृष्टे वा महावृक्षे न शाद्वले । न तिष्ठन् वा न निर्वासा न च पर्वतमस्तके ॥३९॥ न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन । न समस्त्वेषु गर्त्तेषु न गच्छन् वा समाचरेत् ॥३६॥ नुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैत च । न क्षेत्रं न विले वापि न तीर्थे न चतुष्पथे ॥३९॥ नदीनदसमीपे वा नोषरे न पराशुचौ । न सोपानत्यादुको न च्छत्री नान्तरीक्षके ॥४०॥ न चैवाभिमुखं छोएां गुरु - ब्राह्मणयोर्गवाम् । न देवदेवालययोरपामपि कदाचन ॥४१॥ न ज्योतीषि न वीक्षन् वा न वाय्वभिमुखोऽथवा । प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च ॥४२॥ महत्त्य मृत्तिकां कूलाल्लेपगन्धापकर्षएाम् । कुर्यादतन्त्रितः शौचं विगुद्धैष्द्यृतोदकैः ॥४३॥ नाहरेन्मृत्तिकां विप्रः पांशुलान्न च कर्दमात् । न मार्गान्नोषराहेशाच्छौचोच्छिष्टां तथैव च ॥४४॥ न देवायतनात् कूपाद् ग्रामादन्तर्जलात् तथा । उपस्पृशेत् ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः ॥४५॥ न देवायतनात् कूपाद् ग्रामादन्तर्जलात् तथा । उपस्पृशेत् ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः ॥४५॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायामाचमनादिकर्मयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

व्यास उवाच

एवं दग्डादिभिर्युक्तः शौचाचारसमिन्वतः । श्राह्तोऽध्ययनं कुर्याद्वीक्षमाणो गुरुर्मुखम् ॥ १ ॥ नित्यमुद्यतपाणिः स्यात् सन्ध्याचारसमिन्वतः । श्रास्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥ २ ॥ प्रतिश्रवण-सम्भाषे शयानो न समाचरेत् । नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन् न पराङ्मुखः ॥ ३ ॥ नीचं शय्यासनञ्चास्य सर्वदा गुरुसन्निष्यो । गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥ ४ ॥ नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमित केवलम् । न चैवास्यानुकुर्वीत गति-भाषित-चेष्टितम् ॥ ४ ॥ गुरोयत्र प्रतीवादो निन्दा चापि प्रवर्त्तते । कर्णो तत्र पिधातन्यो गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥ ६ ॥ गुरोयत्र प्रतीवादो निन्दा चापि प्रवर्त्तते । कर्णो तत्र पिधातन्यो गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥ ६ ॥ दूरस्थो नार्चयदेनं न कुद्धो नान्तिके स्त्रियाः । न चैवास्योत्तरं त्रूयात् स्थिते नासीत सन्निधौ॥ ७ ॥ उदकुम्भं कुशान् पुष्पं समिष्वोऽस्याहरेत् सदा । मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वा समाचरेत् ॥ ६ ॥ नास्य निर्मात्य-शयनं पादुकोपानहावपि । श्राक्रमेदासनं छायामासन्दीं वा कदाचन ॥ ९ ॥ साधयेद्दन्तकाष्ठादोन् कृत्यश्वास्मै निवदयेत् । श्रनापृछ्य न गन्तव्यं भवेत् प्रियहिते रतः ॥ १०॥ साधयेद्दन्तकाष्ठादोन् कृत्यश्वास्मै निवदयेत् । श्रनापृछ्य न गन्तव्यं भवेत् प्रियहिते रतः ॥ १०॥

न पादौ सारयेदस्य सिन्नधाने कदाचन । जूम्भितं हसितश्चैव कएठप्रावरणं तथा । वर्जयेत् सिन्नधौ नित्यमथास्फोटतमं वचः ॥११॥ यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः । ग्रासीताथ गुरोध्वते फलके वा समाहितः ॥१२॥ ग्रासने शयने याने नैव तिष्ठेत् कदाचन । धावन्तमनुधावेत् तं गच्छन्तद्धानुगच्छिति ॥१३॥ गोऽश्वोध्द-यान-प्रासाद-प्रस्तरेष् कटेषु च । ग्रासीत गुरुणा सार्द्वं शिलाफलक-नौषु च ॥१४॥

गोऽश्वोष्ट्र-यान-प्रासाद-प्रस्तरेषु कटेषु च। म्रासीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलक-नौषु च।।१४॥ जितेन्द्रियः स्यात् सततं वश्यश्चाक्रोधनः शुचिः । प्रयुज्जीत सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम् ॥१५॥ गन्धं मात्यं रसं भव्यं शुक्लं प्राणिविहिंसनम् । स्रभ्यङ्गञ्जाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च।।१६॥

कामं लोभं भयं निद्रां गीत-त्रादित्र-नर्त्तनम् । द्यूतं जनपरीवादं स्त्रीप्रेक्षालम्भनं तथा। परोपद्यातं पैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥१७॥

उदकुम्भं समनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुशान् । ग्राहरेद्यावदर्थानि भैक्षञ्चाहरहश्चरेत् ॥१८॥ कृतः लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्युषितञ्च यत् । अनृत्यदर्शी सततं भवेद् गीतादिनिस्पृहः ॥१९॥ नादित्यं वे समीक्षेत न चरेद्दन्तधावनम् । एकान्तमशुचि-स्त्रीभिः शूद्रान्त्यैरभिभाषणम् ॥२०॥ गुरुप्रियार्थं सर्वं हि प्रयुद्धीत न कामतः । मलापकर्षणं स्नानं नाचरेद्वै कथञ्चन ॥२१॥ न कुर्यान्मानसं विप्रो गुरोस्त्यागे कदाचन । मोहाद्वा यदि वा लोभात् त्यक्तवैनं पतितो भवेत् ।२२॥ लोकिकं वैदिकब्र्वापि तथाध्यात्मिकमेव च । श्राददीत यतो ज्ञानं न तं द्रहचेत् कदाचन ॥२३॥ कार्याकार्यमजानतः । उत्पथप्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत् ॥२४॥ गुरोरप्यवलिप्तस्य गुरोगुरी सम्निहिते गुरुवद्भक्तिमाचरेत् । न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान् गुरूनभिवादयेत् ॥२५॥ विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु । प्रतिषेधत्सु चाधमं हितस्त्रोपदिशत्स्विप ॥२६॥ श्रेयस्तु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् । गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चेत्र स्वबन्धुषु ॥२७॥ बालः समानजनमा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि । ग्रध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमहैति ॥२८॥ उत्सादनं वे गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने । न कुर्याद् गुरुपुत्रस्य पादयोः शौचमेव च ॥२९॥ परिपूज्याथ सवर्णा गुरुयोषितः । ग्रसवर्णास्तु सम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥३०॥ गुरुवत् स्नापनञ्च गात्रोत्सादनमेव च । गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानाञ्च प्रसाधनम् ॥३१॥ युवती नाभिवाद्येह पादयोः । कुर्वीत वन्दनं भूमावसावहमिति ब्रवन् ॥३२॥ गुरुपत्नी तु विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहञ्चाभिवादनम् । गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥३३॥ भ्रातृष्वसा मातुलानी श्वश्र्रश्चाय पितृष्वसा । सम्पूज्या गुरुपत्नी च समास्ता गुरुभायया ॥३४॥ सवर्णाहन्यहन्यपि । विप्रस्य तूपसंग्राह्या ज्ञाति-सम्बन्धियोषितः ॥३५॥ मातूर्भायीपसंग्राह्या वितुर्भीगन्यां मातुश्च ज्यायस्याञ्च स्वसर्यीव । मातृबद्धत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥३६॥ एवमाचारसम्पन्न मात्मवन्तमदाम्भिकम् । वेदमध्यापयेद्धमं पुराणाङ्गानि नित्यशः ॥३७॥ संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन् । हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः ॥३८॥ म्राचार्यपुत्रः शुश्रुष्क्रीनदो धार्मिकः शुचिः । सूक्तार्थदोऽरसः साधुः स्वाध्याय्यादेशधर्मतः ॥३९॥ कृतज्ञश्च तथाद्रोही मेधावी तूपकृत्ररः । ग्राप्तःप्रियोऽथ विधिवत् षडध्याप्या द्विजातयः॥४०॥ एतेषु ब्रह्मणो दानमन्यत्र च यथोदितान् । ग्राचम्य संयतो नित्यमवीयीत ह्युदङ्मुखः ॥४१॥ उपसंग्रह्म तत्वादो वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् । प्रधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्वित चारभेत्॥४२॥ भ्रनुकूलं समासीनः पवित्रेश्चेत पावितः। प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत स्रोङ्कारमहिति ॥४३॥ ब्राह्मणः प्रगावं कुर्यादन्ते च विधिवद्द्विजाः । कुर्यादध्ययनं नित्यं ब्रह्माञ्जलिकरस्थितः ॥४४॥

सर्वेषामेव भूतानां वेदश्रक्षः सनातनम् । श्रघीयीताप्ययं नित्यं ब्राह्मएयाद्वीयतेऽन्यथा ॥४५॥ योऽधीयीत ऋचो नित्यं क्षीराहुत्या स देवताः । प्रीणाति तर्पयन्त्येनं कामैस्तृप्ताः सदैव हि ॥४६॥ यजु व्यधीते नियतं दल्ला प्रीणाति देवताः । सामान्यधीते प्रीणाति घृताहितिभरन्वहम् ॥४७॥ ग्रथर्वाङ्गिरसो नित्यं मध्वा प्रीणाति देवताः । वेदाङ्गानि पुराणानि मांसैश्च तर्पयेत् सुरान् ॥४८॥ श्रपां समीपे नियतो नित्यकं विधिमाश्रितः । गायत्रीमप्यधीयीत गत्वारत्यं समाहितः ॥४९॥ शतमध्यां दशावराम् । गायत्रीं वै जपेत्रित्यं जपयज्ञः प्रकीर्त्तितः । ५०॥ सहस्रपरमां देवीं गायत्री खेव वेदांस्तु तुलयाऽतोलयत् प्रभुः । एकतश्चतुरो वेदान् गायत्री ख तथैकतः ॥५१॥ भ्रोङ्कारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम् । ततोऽघोयीत सावित्रीमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः ॥५२॥ पुराकल्पे समुत्पन्ना भूर्भुवःस्वः सनातनाः । महाव्याहृतयस्तिस्रः सर्वाशुभनिबर्ह्गाः ॥५३॥ प्रधानं पुरुषः कालो विष्णूर्बह्मा महेश्वरः । सत्त्वं रजस्तमस्तिस्रः क्रमाद्वचाहृतयः स्मृताः॥५४॥ भ्रोङ्कारस्तत् परं ब्रह्म सावित्री स्यात् तदक्षरम् । एष मन्त्रो महायोगः सारात्सार उदाहृतः ॥५५॥ योऽधीतेऽहन्यहन्येतां गायत्रीं वेदमातरम् विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम् ॥५६॥ गायत्री लोकपावनी । उद्घारं वक्ष्यते तस्याः श्रुणुध्वं मूनिपुङ्गवाः ॥५७॥ गायत्री वेदजननी दक्षिणाग्राः पञ्च रेखाः पश्चिमाग्राङ्कसंख्यकाः । लिखेद्रेखाः प्रयत्नेन द्वात्रिशत् कोष्ठकं भवेत् ॥५८॥ गायत्रीं विलिखेत् तेषु द्वातिंशद्वर्णेक्षिपणीम् । पूरयेत् प्रतिलोमेन वामावर्त्तेन चोच्चरेत् ॥५९॥ र्व स्य प्र से ज नःव तुरे धी चो सार यो देवि। णिम दवरो यो गींत्स यं हि या दोम् पिष भ ताहि।। एवं क्रमेण चोद्धत्य प्रजपेत् पङ्कमोचिनीम् । द्विजानां ब्रह्मनिष्ठानां ब्रह्मएयपदरूपिएगोम् । न गायत्र्याः परं जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते ॥६१॥

श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमाः । श्राषाढ्यां प्रौष्ठपद्यां वा वेदोपकरणं स्मृतम् ॥६२॥ उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान् विप्रोध्वपन्धमान् । ग्रधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः ॥६३॥ पुष्ये तु च्छन्दसां कुर्याद्वहिरूत्सर्जनं द्विजाः । माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्वे प्रथमेऽहित ॥६४॥ छन्दांस्यूद्ध्वमतोऽभ्यस्येच्छुक्लपक्षेषु वै द्विजाः । वेदाङ्गानि पुराणानि कृष्णपक्षेषु मानवः ॥६४॥ इमान् नित्यमनध्यायानद्यीयानो विवर्जयेत् । ग्रध्यापनं प्रकुर्वाणो ह्यनध्यायान् विवर्जयेत् ॥६६॥ कर्णश्रवेऽनिले रात्रो दिवापांशुसमुद्गमे । विद्युत्स्तिनतवर्षेषु महोल्कानाञ्च संप्लवे । ग्रामालिकमनध्यायमेतेष्वाह प्रजापतिः ॥६७॥

निर्घात भूमिचलने ज्योतिषाश्चोपसर्जने । एतानाकालिकान् विद्यादनध्यायानृताविष ॥६८॥ प्रादुष्कृतेष्विग्निषु तु विद्युत्स्तिनितिन्स्वने । सज्योतिः स्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥६९॥ नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च । धर्मनैपुर्यकामानां पूतिगन्धे च नित्यशः ॥७०॥ ग्रन्तःशवगते ग्रामे वृषलस्य च सिन्नधौ । ग्रनध्यायो स्द्यमाने समवाये जनस्य च ॥७१॥ उदके मध्यरात्रे च विर्मूत्रे च विवर्जयेत् । उन्द्युष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत्॥७२॥ प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् । त्र्यहं न कीर्त्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥७३॥ यावदेकान्नदिष्टस्य स्तेहो गन्धश्च तिष्ठति । विप्रस्य विपुले देहे तावद्ब्रह्म न कीर्त्तयेत् ॥७४॥ श्रायानः प्रौढपादश्च कृत्वा वै चावसिक्थकाम् । नाधीयीतामिषं जग्ध्या सूतकाद्यन्नमेव च ॥७४॥ नीहारे वाणपाति च सन्ध्ययोरुभयोरिष । ग्रमावास्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषु च ॥७६॥ उपाकर्मीण चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । ग्रष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥७७॥ उपाकर्मीण चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । ग्रष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥७७॥

मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च। तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षे तु सूरिभिः॥७६॥ श्लेष्मातकस्य च्छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च। कदाचिदिप नाध्येयं कोविदार-किपत्थयोः ॥७९॥ समानविद्ये च मृते तथा सब्रह्मचारिण । ग्राचार्ये संस्थिते वापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्॥८०॥ छिद्राग्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्त्तिताः। हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतानि वर्णयेत् ॥६१॥ नैतियके नास्त्यनध्यायः सन्ध्योपासन एव च। उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि ॥६२॥ एकामृवमथैकं वा यजुः सामाथवा पुनः। ग्रष्टकाद्यास्वधीयोत मास्ते चातिवायति ॥६३॥ ग्राम्थयस्तु नाङ्गेषु नेतिहास पुराणयोः। न धर्मशास्त्रो व्वन्येषु पर्वाणयेतानि वर्जयेत् ॥६४॥ ग्राप्त्रयास्तु नाङ्गेषु नेतिहास पुराणयोः। न धर्मशास्त्रो व्वन्येषु पर्वाणयेतानि वर्जयेत् ॥६४॥ ग्राप्त्रयत्य कृरते यत्नमनवीत्य श्रुति द्विजाः। स संसूढो न सम्भाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः॥६६॥ वोऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थं न विचारयेत् । स सान्वयः शूदकल्यः पात्रतां न प्रपद्यते ॥६५॥ योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थं न विचारयेत् । स सान्वयः शूदकल्यः पात्रतां न प्रपद्यते ॥६५॥ यदि चात्यन्तकं वासं कर्त्तमच्छित वे गुरौ । युक्तः परिचरेदेनमा शरीराभिघातनात् ॥६९॥ गत्वा वनं वा विधिवज्जुहुयाज्ञातवेदसम् । श्रभ्यसेत् स तदा नित्यं ब्रह्मनिष्टः समाहितः ॥९०॥ सावित्रीं शतस्त्रीयं वेदाङ्गानि विशेषतः। श्रभ्यसेत् सततं युक्तो भस्मस्नानपरायणः॥९१॥

एतद्विधानं परमं पुराएां वेदाङ्गतः सम्यगिहेरितं वः । पुरा महर्षिप्रवरानुपृष्टः स्वायम्भुवो यन्मनुराह देवः ॥९२॥ एवमीश्वरसमर्पितान्तरो योऽनुतिष्ठति विधि विधानवित् । मोहजालमपहाय सोऽमृतं याति तत् पदमनामयं शिवम् ॥९३॥

इति श्रीकौर्मे महापुरागो उत्तरभागे व्यासगीतायां वेदाध्ययनादिक्रमनियमो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४॥

पञ्चद्शोऽध्यायः

व्यास उवाच

वेदं वेदौ तथा वेदान् विन्द्याद्वा चतुरो द्विजाः। ग्रधीत्य चाभिगम्यार्थं ततःस्नायाद् द्विजोत्तमाः॥ १ ॥ गुरवे तु धनं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया । चीर्णव्रतोऽथ युक्तात्मा स शक्तः स्नातुमर्हति ॥ २ ॥ वैणवीं धारयेद्यष्टिमन्तर्वासस्तथोत्तरम्। यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकञ्च कमग्डलुम् ॥ ३ ॥ छत्रञ्चीष्गीषममलं पादुके चाप्युपानहौ । रौक्मे च कुग्डले धार्ये व्युप्तकेश-नखः शुचिः॥ ४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्वहिर्माल्यं न घारयेत् । श्रन्यत्र काञ्चनाद् द्विप्रो न रक्तां बिभृयात् स्रजम्।।॥। शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः। न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वे विभवे सित।। ६॥ न रक्तमुल्वणश्वान्यधृतं वासी न कुरिडकाम् । नोपानहो स्नजं वाथ पादुके न प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥ उपवीतमलङ्कारं दर्भान् कृष्णाजिनानि च । नापसब्यं परीदध्याद्वासो न विकृतश्व यत् ॥ ५ ॥ त्राहरेद्विधिवद्दारान् सहशानात्मनः शुभान् । रूप-लक्षणसंयुक्तान् योनिदोषविवर्जितान् ॥ ९ ॥ अमातृगोत्रप्रभवामसमानर्षिगोत्रजाम् । श्राहरेद्ब्राह्मणो भार्या शील-शौचसमन्विताम् ॥१०॥ ऋतुकालाभिगामी स्याद् यावत् पुत्रोऽभिजायते । वर्जयेत् प्रतिषिद्धानि प्रयत्नेन दिनानि तु ॥११॥ षष्ट्यष्टमीं पञ्चदशीं द्वादशीञ्च चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं ब्राह्मणः संयतेन्द्रियः ॥१२॥ श्रादधीतावसथ्याग्नि जुहुयाज्जातवेदसम् । व्रतानि स्नातको नित्यं पावनानि च पालयेत् ।।१३।। वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कूर्यादतन्द्रितः । ग्रकूर्वाणः पतत्याशु नरकान् याति भीषणान् ॥१४॥ श्रभ्यसेत् प्रयतो वेदं महायज्ञांश्च भावयेत् । कुर्याद् गृह्याणि कर्माणि सन्ध्योपासनमेव च।।१५।। समाधिकै: कुर्यादर्चयेदीश्वरं सदा । दैवतान्यधिगच्छेत कुर्याद्भायिभिपोषणम् ॥१६॥ न धर्मं ख्यापयेद्विद्वान् न पापं गूहयेदिप । कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पनम् ॥१७॥ श्रतस्याभिजनस्य च । वेदवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरेद्विहरेत् वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुति-स्मृत्युदितः सम्यक् साधुभिर्यश्च सेवितः । तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कुत्रचित् ॥१९॥ येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः । तेन यायात् सतां तेन मार्गं गच्छंस्तरिष्यति ॥२०॥ नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् । सत्यवादी जितकोघो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२१॥ सन्ध्या-स्नानपरो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः । श्रनसूयी मृदुर्दान्तो गृहस्थः प्रेत्य वर्द्धते ॥२२॥ वीतराग - भय - क्रोघो लोभ - मोहविवर्जितः । सावित्रीजापनिरतः श्राद्धक्रन्मुच्यते गृही ॥२३॥ मातापित्रोहिते युक्तो गो-ब्राह्मणहिते रतः। दाता यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥२४॥ त्रिवर्गसेवी सततं देवतानान्ध पूजनम् । कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत् प्रयतः सुरान् ॥२५॥ क्षमायुक्तो दयालुकः । ग्रहस्थस्तु समाख्यातो न ग्रहेण ग्रही भवेत् ॥२६॥ विभागशीलः सततं क्षमा दया च विज्ञानं सत्यञ्जैव दमः शमः। अध्यात्मनिरतज्ञानमेतद्ब्राह्मण्लक्षणम् प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमः । यथाशक्ति चरेत् कर्म निन्दितानि विवर्जयेत् ॥२५॥ विध्य मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम् । गृहस्थो मुच्यते बन्वान्नात्र कार्या विचारणा ॥२९॥ विगर्हातिक्रमाक्षेप - हिंसा - बन्ध - वधारमनाम् । ग्रन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा ॥३०॥ स्वदुःखेष्वित कारुएयं परदुःखेषु सीह्दात् । दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य साधनम् ॥३१॥ चतुर्देशानां विद्यानां घारणं हि यथार्थतः । विज्ञानमिति तदिद्याद्येन धर्मो विवर्द्धते ॥३२॥ विधिवद्वेदानर्थञ्चैवोपलभ्य तु । धर्मकार्यान्निवृत्तश्चेन्न तद्विज्ञानिमष्यते ॥३३॥ सत्येन लोकान् जयित सत्यं तत् परमं पदम् । यथाभूतप्रवादन्तु सत्यमाहुर्मनीषिएाः ॥३४॥

कूमंपुराणम्

दमः शरीरोपरमः शमः प्रज्ञाप्रसादजः। ग्रध्यात्ममक्षरं विद्याद्यत्र गत्वा न शोचित ॥३६॥
यया स देवो भगवान् विद्यया वेद्यते परः। साक्षाद्वो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्त्तितम् ॥३६॥
तिष्ठाष्ट्रस्तत्परो विद्वान् नित्यमकोघनः शुचिः। महायज्ञपरो विद्वान् लभते तत्त्वमुत्तमम् ॥३०॥
धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं परिपालयेत्। न च देहं विना स्द्रः पुरुषो विद्यते परः ॥३६॥
नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः। न धर्मविजितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत् ॥३९॥
सीदन्नपि हि धर्मेण न त्वधर्मं समाचरेत्। धर्मो हि भगवान् देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु ॥४०॥
भूतानां प्रियकारी स्यान्न परद्रोहकर्मधोः। न वेद-देवतां निन्दां कुर्यात् तैश्च न संवदेत् ॥४१॥
यस्तिवमं नियतं विप्रो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः। ग्रध्यापयेच्छावयेद्वा ब्रह्मलोके महीयते॥४२॥

इति श्रीकीर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां धर्माध्यायो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः

व्यास उवाच

न हिस्यात् सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत् कचित् । नाहितं नाप्रियं ब्रूयात्र स्तेनः स्यात् कथञ्चन ॥१॥ तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव वा । परस्यापहरन् जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ न राजः प्रतिगत्लीयान्न गूदात् पतितादिष । न चान्यस्मादशक्तश्चेन्निन्द्रताद्वर्जयेद्बुधः ॥ ३ ॥ नित्यं याचनको न स्यात् पुनस्तं नैव याचयेत् । प्राणानपहरत्येष याचकस्तस्य दुर्मतिः ॥ ४ ॥ स्याद्विशेषेण द्विजोत्तमाः । ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापद्यपि न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । देवस्वश्वापि यत्नेन सदा परिहरेत् ततः ॥६॥ पूर्वे शाकोदके काष्ठे तथा मूले तुणे फले । श्रदत्तादानमस्तेयं मनुः प्राह यहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजैः । नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम् ॥ ।। तुणं काष्ठं फलं पृष्पं प्रकाशं वे हरेद्बुधः । धर्मार्थं केवलं विष्रा ह्यन्यथा पतितो भवेत् ।।९।। तिल-मदग-यवादीनां मृष्टिपाँह्या पथि स्थितैः । क्षुवात्तेनान्यथा विप्रा धर्मविद्धिरिति स्थितिः॥१०॥ म चर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत् । व्रतेन पापं प्रच्छाद्यं कुर्वन् स्त्रीशूद्रलम्भनम् ॥११॥ प्रेरयेह चेह्शो विष्रो गहाते ब्रह्मवादिभिः । छद्मना चरितं यच व्रतं रक्षांसि गच्छित ॥१२॥ म्मलिङ्गी लिङ्गिवेदोन यो वृत्तिमुपजीवति । स लिङ्गिनां हरेदेनस्तिर्यग्योनी च जायते ॥१३॥ वैडालवितनः पापा लोके धर्मविनाशकाः । सद्यः पतन्ति पापेषु कर्मणस्तस्य तत् फलम् ॥१४॥ पाषिराडनो विकर्मस्थान् वामाचारांस्तथेव च । पञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेगापि नार्चयेत्।।१५॥ वेदनिन्दारतान् मत्यान् देवनिन्दारतांस्तथा । द्विजनिन्दारतांश्चेव मनसापि न चिन्तयेत् ॥१६॥ याजनं योनिसम्बन्धं सहवासन्व भाषणम् । कुर्वाणः पतते जन्तुस्तस्माद्यत्नेन वर्जयेत् ॥१७॥ देवद्रोहादगुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः । ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात् कोटिगुणाधिकः ॥१५॥

गोभिश्च दैवतैर्विप्रैः कृष्या राजोपसेवया । कुलान्यकुलतां यान्ति याति हीनानि वृत्ततः ॥१९॥ क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च । कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥२०॥ अनृतात् पारदार्याच तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात् । प्रश्रोतधर्मचरणात् क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ॥२१॥ श्रश्रोत्रियेषु वै दानाद्वृषलेषु तथैव च। विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ॥२२॥ <mark>नाधार्मिकैर्वृते ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् । न शूद्रराज्ये निवसेन्न पाषएडजनैर्वृते ॥२३।।</mark> हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पूर्व-पश्चिमयोः शुभम् । मुक्तवा समुद्रयोर्देशं नान्यत्र निवसेद्द्विजः॥२४॥ कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः । पुरायाश्च विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद्द्विजः॥२५॥ श्रद्धंकोशास्त्रदीकूलं वर्जेयित्वा द्विजोत्तमः । नान्यत्र निवसेत् पुरायं नान्त्यजग्रामसिन्नवौ ॥२६॥ न संवसेच पतितैर्न प्रक्रुरोः । न मुर्खेर्नावलिप्तेश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥२७॥ चराडालैर्न पंक्तिभाएडपकान्नमिश्रणम् । याजनाध्यापने योनिस्तथैव सहभोजनम् ॥२८॥ सहयाजनमेव च। एकादशैते निर्दिष्टा दोषाः सङ्करसंज्ञिताः ॥२९॥ दशमः समीपे वाप्यवस्थानात् पापं संक्रमते नृणाम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सङ्करं वर्जयेद्बुधः ॥३०॥ एकपंनत्यपिवष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम् । भस्मना कृतमर्यादा न तेषां सङ्करो भवेत् ॥३१॥ अग्निना भस्मना चैव सलिलेन विशेषतः । द्वारेण स्तम्भमार्गेण षड्भिः पंक्तिर्विभिद्यते ॥३२॥ न कुर्याच्छुष्कवैराणि विवादश्चैव पैश्नम् । परक्षेत्रे गां चरन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् ॥३३॥ न संवसेत् सूतिकना न किञ्चन्मर्मीण स्पृशेत् । न सूर्यपरिवेशं वा नेन्द्रवापं शवाग्निकम् ॥३४॥ परसमे कथयेदिद्वाञ्छिशनं वा कदाचन । न कुर्याद्वहिभः साद्धै विवादं बन्ध्रभिस्तथा ॥३५॥ श्रात्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् । तिथि पक्षस्य न ब्रुयान्न नक्षत्राणि निर्दिशेत्।।३६॥ नोदक्यामिभाषेत नाजूचि वा द्विजोत्तमः । न देव - गुरु - विप्राणां दीयमानन्तु वारयेत् ॥३७॥ न चात्मानं प्रशंसेद्वा परिनन्दाञ्च वर्जयेत् । वेदिनन्दां देविनन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३८॥ यस्तु देवानुषीन् विप्रान् वेदान् वा निन्दति द्विजः । न तस्य निष्कृतिर्देष्टा शास्त्रेष्विह मुनिश्वराः ॥३९॥ निन्दयेद्वे गुरून् देवान् वेदं वा सोपवृंहग्राम् । कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः ॥४०॥ तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात् किञ्चिदुत्तरम् । कर्णी पिधाय गन्तव्यं न चैतानवलोकयेत् ॥४१॥ परेषां गूहयेद्बुवः । विवादं स्वजनैः साद्धं न कुर्याद्वे कदाचन ॥४२॥ रहस्यश्व न पापं पापिनं ब्र्यादपापं वा द्विजोत्तमम् । सत्येन तुल्यदोषः स्यान्मिथ्यादिदोषवान् भवेत्।।४३।। यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रृणि रोदनात् । तानि पुत्रान् पशून् झन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम्॥४४॥ ब्रह्महत्या - सुरापाणे स्तेय - गुर्वञ्जनागमे । दृष्टं विशोधनं सिद्भिनांस्ति मिथ्याभिशंसने ॥४५॥ शशिनञ्जानिमित्ततः । नास्तं यान्तं न वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यगम्॥४६॥ नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं तिरोहितं वाससा वा नादर्शान्तरगामिणम् । न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन ॥४०॥ न च मूत्रं पुरीषं वा न च संस्पृष्टमेथुनम् । नाशुचिः सूर्यसोमादीन् ग्रहानालोकयेद्बुवः ॥४५॥ पतित-व्यंग-चराडालानुच्छिष्टान् नावलोकयेत् । नाभिभाषेत च परमुच्छिष्टो वावग्रिठतः ॥४९॥ न स्पृशेत प्रेतसंस्पर्शं न कुद्धस्य गुरोर्मुखम्। न तैलोदकयोश्छायां न पत्नीं भोजने सति। नायुक्तबन्धनां गां वा नोन्मत्तं मत्तमेव वा ॥५०॥ नाश्रीयाद्भार्यया सार्ढं नैनामीक्षेत मेहनीम् । क्षुवन्तीं जूम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम्॥५१॥

नोदके चात्मनो रूपं शुभं वाशुभमेव वा । न लङ्घयेच्च मूत्रं वा नाधितिष्ठेत् कदाचन ॥५२॥ न शुद्राय मति दद्यात् क्वशरं पायसं दिध । नोच्छिष्टं वा घृतमधु न च कृष्णाजिनं हिव ॥५३॥ न चैवास्मे व्रतं दद्यान्न च धर्मं वदेद्बुधः । न च क्रोधवशं गच्छेद्वेषं रागश्च वर्जयेत् ॥५४॥ लोभं दम्भं तथा यत्नादसूयां ज्ञानकुत्सनम् । मानं मोहं तथा क्रोधं द्वेषश्व परिवर्जयेत् ॥५५॥ न कुर्यात् कस्यचित् पीडां सुतं शिष्यञ्च ताडयेत् । न हीनानुपसेवेत न च तीक्ष्णमतीन् कचित् ॥५६॥ दैन्यं यत्नेन वर्जयेत् । न विशिष्टानसत्कुर्यान्नात्मानं वा शपेद्बुधः ॥५०॥ न नखैर्विलिखेद्भूमि गाञ्च संवेशयेघ्र हि। न नदीष नदीं ब्र्यात् पर्वते न च पर्वतान्।।५८।। श्रावासे भोजने वापि न त्यजेत् सहयायिनम् । नावगाहेदपो नग्नो विह्नश्वापि व्रजेत् पदा ॥५९॥ शिरोऽभ्यङ्गाविशष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत् । न शस्त्रसर्पेः क्रीडेत न स्वानि खानि च पृशेत्।।६०॥ रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेन सह वजेत् । न पाणि-पाद-वाङ्नेत्र चापल्यं समुपाश्रयेत्॥६१॥ न शिक्षोदरचापल्यं न च श्रवणयोः कचित् । न चाङ्गनखवाद्यं वै कूर्यान्नाष्जलिना पिबेत् ॥६२॥ नाभिहन्याज्जलं पद्भघां पाणिना वा कदाचन । न शातयेदिष्टकाभिः फलानि न फलेन च ॥६३॥ न म्लेच्छभाषां शिक्षेत नाकर्षेच पदासनम् । नखभेदनमास्फोटं छेदनं वा विलेखनम् ॥६४॥ कुर्याद्विमर्दनं धीमान् नाकस्मादेव निष्फलम् । नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान् वृथाचेष्टाश्च नाचरेत्॥६५॥ न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् । न संहताभ्यां पाणिभ्यां कराड्रयेदात्मनः शिरः।।६६।। लीकिकैस्त्वेर्देवांस्तोषयेद भेषजैरपि । नाक्षः क्रीडेन्न घावेत नाप्स विरामूत्रमाचरेत्॥६७॥ नोच्छिष्टः संविशेन्नित्यं न नगनः स्नानमाचरेत् । न गच्छेन्न पठेद्वापि न चैव स्विशिरः स्पृशेत्।।६८।। न दन्तैर्नख-रोमाणि च्छिन्द्यात् सुप्तं न बोधयेत् । न बालातपमासेवेत् प्रेतधूमं विवर्जयेत् ॥६९॥ नैकः सुप्याच्छन्यगेहे स्वयं नोपानही हरेत् । नाकारणाद्वा निष्ठीवेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥७०॥ कूर्यात् पादेनैव कदाचन । नाग्नी प्रतापयेत् पादी न कास्ये घावयेद्बुघः॥७१॥ नाभिप्रतारयेद्दैवं ब्राह्मणान् गामथापि वा । वाय्वग्नि-गुरु-विप्रान् वा सूर्यं वा शशिनं प्रति॥७२॥ **प्रशुद्धः शयनं यानं स्वाध्यायं स्नान-भोजनम् । ब**हिर्निष्क्रमणञ्जैव न कुर्वीत कथञ्चन ॥७३॥ स्वप्नमध्ययनं यानमुद्धारं भोजनं गतिम् । उभयोः सन्ध्योयोर्नित्यं मध्याह्ने तु विवर्जयेत् ॥७४॥ न स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् । न चैवान्नं पदा वापि न देवप्रतिमां स्पृशेत् ॥ ७५॥ नाश्चोऽग्नि परिचरेन्न देवान् कीर्त्तयेहषीन् । नावगाहेदगाधाम्बु धारयेन्नाग्निमेकतः ॥७६॥ न वामहस्तेनोद्धृत्य पिबेद्दक्त्रेण वा जलम् । नोत्तरेदनुपस्पृश्य नाप्सु रेतः समुत्सुजेत् ॥७७॥ ग्रमेध्यलिप्रमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा । व्यतिक्रमेन्न स्रवन्तीं नाप्सु मैथुनमाचरेत् ॥७५॥ चैत्यं वृक्षं न वै च्छिन्दान्नाप्सु ष्ठीवनमुत्स्जेत् । नास्थि-भस्म कपालानि न केशान् न च कएटकान्। त्षाङ्गारकरीषं वा नाधितिष्ठेत् कदाचन ॥७९॥

न चार्गिन लङ्घयेद्धीमान् नोपदध्यादधः कचित् । न चैनं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद्बुघः ॥५०॥ न कूपमवरोहेत नाचक्षीताशुचिः कचित् । श्रग्नौ न प्रक्षिपेदिग्नि नाद्भिः प्रशमयेत् तथा ॥५१॥ सुहृन्मरणमार्त्तं वा न स्वयं श्रावयेत् परान् । श्रप्रयं कूटप्रयं वा विकये न प्रयोजयेत् ॥५२॥ न बिह्नं मुखनिश्वासैज्विलयेन्नाशुचिर्वधः । पुर्यस्नानोदकस्नाने सीमान्तं वा कृषेन्न तु ॥५३॥ न भिन्द्यात् पूर्वसमयं सत्योपेतं कदाचन । परस्परं पश्चन् व्यालान् पक्षिणो नैव योधयेत् ॥५४॥ परबाधां न कुर्वित जलवातातपादिभिः । कारियत्वा सुकर्माणि कारून पश्चान्न वर्जयेत् ॥५४॥ सायं प्रातर्गृहद्वारान् भिक्षार्थं नावघाटयेत् । बहिर्मात्यं बहिर्गन्धं भार्यया सह भोजनम् ॥५६॥ विस्त्रय वाटं कुद्वारत्रवेशश्च विवर्जयेत् । न खादन् ब्राह्मणस्तिष्ठेन्न जल्पेद्वा हसन् बुधः ॥५०॥ स्वम्भिन्न नैव हस्तेन स्पृशेन्नाप्सु चिरं वसेत् । न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्येण न पाणिना ॥५६॥

मुखेनैव धमेदिंग मुखादिग्नरजायत। परिश्चयं न भाषेत नायाज्यं याजयेद्बुद्यः ॥=९॥
नेकश्चरेत् सभां विष्ठः समवायश्च वर्जयेत् । न देवायतनं गच्छेत् कदाचिद्याप्रदक्षिणम् ॥९०॥
न वीजयेद्वा वस्त्रेण् न देवायतने स्वपेत् । नैकोऽध्वानं प्रपद्येत नाधार्मिकजनैः सह ॥९१॥
न व्याधिदूषितैर्वापि न शूदैः पिततैर्ने वा । नोपानद्वर्जितोऽध्वानं जलादिरिहतस्तथा ॥९२॥
न रात्रौ नारिणा सार्द्धं न विना च कमण्डलुम् । नाग्नि-गो-ब्राह्मणादीनामन्तरेण व्रजेत् कचित्॥९२॥
न वत्स्यन्तीं न विनतामितकामेद्द्विजोत्तमाः । न निन्देद्योगिनः सिद्धान् व्रतिनो वा यतींस्तथा॥९४॥
देवतायतने प्राज्ञो न देवानाश्च सिद्धाचे । नाक्रामेत् कामतद्यायां ब्राह्मणानां गवामिष ॥९५॥
स्वान्तु नाकमयेच्छायां पितताद्यैनं रोगिभिः । नाङ्गार-भस्म-केशादिष्वितिष्ठेत् कदाचन ॥९६॥
वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्न घटोदकम् । न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयश्च पिबेद्द्विजाः ॥९७॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायामाश्रमाचारनियमधर्मो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तद्शोऽध्यायः

व्यास उवाच

नाद्याच्छद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद्वा यदि कामतः । न शूद्रयोनि व्रजति यस्तु भुङ्क्ते ह्यनापदि ।। १ ।। षरमासान् यो द्विजो भूंवते शूदस्यानं विगर्हितम् । जीवन्नेव भवेच्छ्दो मृतः श्वा चाभिजायते ॥ २॥ ब्राह्मण - क्षत्रिय - विशां ब्रुद्रस्य च मूनीश्वराः । यस्यान्नेनोदरस्थेन मृतस्तद्योनिमाप्नुयात् ॥ ३॥ राजान्नं नर्त्तकान्नः तक्ष्णोऽन्नं चर्मकारिणः । गणान्नं गणिकान्नः षडन्नानि च वर्जयेत् ॥ ४ ॥ च क्रोपजीवि - रजक - तस्कर - ध्वजिनां तथा। गन्धर्व - लोहकारान्नं सूतकान्नश्च वर्जयेत् ॥ ५ ॥ कुलाल-चित्रकर्मान्नं वार्द्धषेः पतितस्य च । पौनर्भव - च्छित्रकयोरिभशस्तस्य चैव हि ॥ ६ ॥ सुवर्णकार - शैलूष - व्योध - बद्धातुरस्य च । चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चत्या दाम्भिकस्य च।। ७ ॥ स्तेन-नास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च । सोमविक्रयिणाश्चान्नं श्वपाकस्य विशेषतः ॥ ५॥ भार्याजितस्य चैवान्नं यस्य चोपपतिगृहे । उच्छिष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिनः ॥ ९ ॥ ग्रपङ्क्तयन्नश्च सङ्घान्नं शस्त्रजीवस्य चैव हि । क्रीव-सन्यासिनोश्चान्नं मत्तोन्मत्तस्य चैव हि ॥१०॥ परिक्षुतम् । ब्रह्मद्विषः पापरुचेः श्राद्धान्नं सूतकस्य च ॥११॥ **रुदितस्यान्नमवक्रष्टं** शठान्नं श्रयुरस्य च । श्रप्रजानान्तु नारीएाां भृतकस्य तथैव च ॥१२॥ चैवान्नं वृथापाकस्य शस्त्रविकयिए।स्तथा । शीएडान्नं घाएिटकान्नश्व भिषजामन्नमेव च ॥१३॥ विशेषेण परिवेत्रन्नमेव च। पूनभूवो विशेषेण तथैव दिघिषूपतेः ॥१४॥ विद्वप्रजननस्यान्नं विस्मयान्वितम् । गुरोरपि न भोक्तव्यमन्नं सत्कारविजतम् ॥१५॥ म्रवज्ञातश्चावधूतं सरोषं दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्ने व्यवस्थितम् । यो यस्यान्नं समश्राति स तस्याश्राति किल्विषम्।।१६॥ कुलिमत्रश्च गोपालो दाश-नापितौ । एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥१७॥ कुम्भकारः क्षेत्रकर्मक एव च । एते शूद्रेषु भोज्यान्ना दत्त्वा स्वल्पं पणं बुधैः ॥१८॥ कुशीलवः

यदगोरसर्श्वेव सक्तवः । पिरायाकञ्चेव तैलञ्च बृद्राद्ग्राह्यं द्विजातिभिः॥१९॥ स्नेहपक्वं पायसं वृन्ताकं नालिकाशाकं कृसूम्भावमन्तकं तथा । पलाएडं लशूनं शुक्तं निर्यासञ्चेव वर्जयेत् ॥२०॥ पीयूषमेव च । विलयं सुमुखन्द्वैव करकाणि च वर्जयेत् ॥२१॥ छत्राकं विडवराहन्त्र तथैव च । उद्मबरमलाबुञ्च जग्ध्वा पतित वै द्विजः ॥२२॥ किश्वकञ्चेत्र कुक्कृटञ्च गृञ्जनं वृथाकृशर-संयावी च । ग्रन्पाकृतमांसञ्च देवान्नानि हवींषि च ॥२३। पायसापूपमेव मातुलुङ्गञ्च मत्स्यानप्यनुपाकृतान् । नीपं कपित्थं प्लक्षञ्च प्रयत्नेन विवर्ज्येत् ॥२४॥ दिवाधानास्तथैव च । रात्री च तिलसम्बद्धं प्रयत्नेन दिध त्यजेत् ॥२५॥ पिएयाक श्वीद्धतस्ने हं नारनीयात् पयसा तक्रं न वीजान्युपजीवयेत् । कियाद्ष्टं भावदृष्टमसत्सङ्कं विवर्जयेत् ॥२६॥ नित्यशः । श्वाघातश्व पूनः सिद्धं चएडालावेक्षितं तथा ॥२०॥ स्वभूर्लेखञ्च पिततैर्गवा चान्नातमेव च । ग्रनिचतं पर्यूषितं पर्याभ्रान्तश्च नित्यशः ॥२८॥ कृमिभिश्चीव संयुतम् । मनुष्यैरप्यवद्यातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च ॥२९॥ काक-कुक्कूटसंस्पृष्टं न रजस्वलया दत्तं न पृंश्चल्या सरोषकम् । मलवद्राससा चापि परया नोपयोजयेत् ॥३०॥ विवत्सायाश्च गोः क्षीरमौष्ट्ं वा निर्देशस्य च । श्राविकं सन्धिनीक्षीरमपेयं मनूरब्रवीत् ॥३१॥ बलाकं हंस - दात्यूहं कलविङ्कं शुकं तथा । तथा कुरर - वल्लूरं जालपादश्व कोकिलम् ॥३२॥ चाषञ्च सञ्जरीटञ्च रयेनं गृध्रं तथैव च । उल्कं चक्रवाकञ्च भासं पारावतं तथा ॥३३॥ टिट्रिभन्बैव ग्रामक्कूटमेव च । सिंहं व्याघ्रक्र मार्जारं श्वानं जूकरमेव च ॥३४॥ प्रमालं मर्कट खेव गर्दभ ख न भक्षयेत् । न भक्षयेत् सर्वमृगान् नान्यान् वनचरान् द्विजान् । जलेचरान् स्थलचरान् प्राणिनश्चेति घारणा ॥३४॥ गोघा कुर्मः शशः खड्गी शल्लकी चेति सत्तमाः । भक्ष्याः पञ्चनखा नित्यं मन्राह प्रजापितः ॥३६॥ मत्स्यान् स्वाल्कान् भूखीयान्मांसं रौरवमेव च । निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च नान्यथा ॥३७॥ कपिखलकमेव च । वार्द्धीणसं वर्त्तकश्च भक्ष्यानाह प्रजापतिः ॥३८॥ तिसिरिश्वैव राजीवान् सिहतुएडांश्च तथा पाठीन - रोहितौ । मत्स्येष्वेते समुद्दिष्टा भक्षणीया मुनीश्वराः ॥३६॥ प्रोक्षितं भक्षयेदेषां मांसञ्च द्विजकाम्यया । यथाविधि नियुक्तञ्च प्राणानामपि चात्यये ॥४०॥ भक्षयेत्रैव मांसानि शेषभोजी न लिप्यते । श्रौषाधार्थमशक्ती वा नियोगाद्यज्ञकारणात् ॥४१॥ श्रामन्त्रितस्तु यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत् । यावन्ति पशुरोमाणि तावतो नरकान् व्रजेत् ॥४२॥ तथैवास्पृश्यमेव च । द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः॥४३॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यं विवर्जयेत् । पीत्वा पतित कर्मभ्यो न सम्भाष्यो भवेद्द्विजैः॥४४॥

> इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां भक्ष्याभक्ष्यिनणयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥

भक्षयित्वा ह्यभक्ष्याणि पीत्वाऽपेयान्यपि द्विजः । नाधिकारी भवेत् तावद्यावत् तन्न व्रजत्यधः ॥४५॥

परिहरेक्तित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः । स्रपेयानि च विष्रा वै तथा चेद्याति रौरवम् ॥४६॥

अष्टाद्शोऽध्यायः

ऋपय ऊचुः

श्रहन्यहिन कर्तव्यं बाह्मणानां महामुने । तदाचक्ष्वाखिलं कर्म येन मुच्येत बन्धनात् ॥ १॥

व्यास खवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्यं गदतो मम । श्रहन्यहिन कर्ताव्यं ब्राह्मणानां कमाद्विधिम् ॥ २ ॥ ब्राह्मे मुहुर्तो तूत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत् । कायक्लेशं तदुद्भृतं ध्यायेत मनसेश्वरम् ॥ ३॥ उषःकालेऽथ सम्प्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः । स्नायात्रदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि ॥ ४ ॥ प्रातःस्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥ ५॥ प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् । ऋषीणामृषिता नित्यं प्रातःस्नानान्न संशयः ॥ ६॥ मुखे सुप्तस्य सततं लालाद्याः संस्रवन्ति हि । ततो नैवाचरेत् कर्माएयकृत्वा स्नानमादितः ॥ ७॥ श्रलक्ष्मीः कालकर्गी दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् । प्रातःस्नानेन पापानि पूयन्ते नात्र संशयः॥ ५॥ न च स्नानं विना पुंसां पावनं कर्ममु स्मृतम् । होमे जप्ये विशेषेण तस्मात् स्नानं समाचरेत् ।। ९ ॥ श्रशक्ताविशरस्कं वा स्नानमस्य विधीयते । श्रार्द्रेण वाससा वाथ मार्जनं पावनं स्मृतम् ॥१०॥ समुत्पन्ने स्नानमेव समाचरेत् । ब्रह्मादीनि यथाशक्तौ स्नानान्याहुर्मनीर्षिणाः ॥११॥ बाह्ममाग्नेयसुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च । वारुणं यौगिकं यच षोढा स्नानं प्रकीत्तितम् ॥१२॥ ब्राह्मन्तु मार्जनं मन्त्रैः कुरौः सोदकबिन्दुभिः । ग्राग्नेयं भस्मनापादमस्तकादेहधूलनम् ॥१३॥ गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् । यत् तु सातपवर्षेण स्नानं तिद्वयमुच्यते ॥१४॥ वारुणश्चावगाहस्तु मानसं स्वात्मवेदनम् । योगिकं स्नानामाख्यातं योगे विश्वादिचिन्तनम्।।१५॥ श्रात्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः । मनःशुद्धिकरं पुंसां नित्यं तत् स्नानमाचरेत् ॥१६॥ शक्तश्चेद्वारुणं विद्वान् प्राजापत्यं तथैव च ॥१०॥ प्रक्षाल्य दन्तकार्षं वै भक्षयित्वा विधानतः । ग्राचम्य प्रयतो नित्यं स्नानं प्रातः समाचरेत्॥१८॥ मध्याङ्गुलिसमस्थौत्यं द्वादशाङ्गुलसस्मितम् । सत्वचं दन्तकाष्टं स्यात् तदग्रेण तु धावयेत् ॥१९॥ क्षीरिवृक्षसमृद्धतं मालतीसम्भवं शुभम् । ग्रपामार्गञ्च विल्वञ्च करवीरं विशेषतः ॥२०॥ वर्जियत्वा निन्दितानि गृहीत्वेकं यथोदितम् । परिहृत्य दिनं पापं भक्षयेद्वे विधानवित् ॥२१॥ नोत्पाटयेद्दन्तकाष्ठं नाङ्गुल्यग्रेगा घारयेत्। प्रक्षाल्य भङ्कत्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः॥२२॥ स्नात्वा सन्तर्पद्देवानुषीन् पितृगणांस्तथा । भ्राचम्य मन्त्रविश्वित्यं पुनराचम्य वाग्यतः ॥२३॥ सम्मार्ज्यं मन्त्रैरात्मानं कुरीः सोदकिबन्दुभिः । स्रापोहिष्ठाव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः॥२४॥ श्रोङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम् । जप्त्वा जलाखालि दद्याद्भास्करं प्रति तन्मनाः॥२४॥ प्राकलेषु समासीनो दर्भेषु सुसमाहितः । प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत् सन्ध्यामिति स्मृति:॥२६॥ या सन्ध्या सा जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला । ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा ॥२७॥ ध्यात्वार्कमग्डलगतां सावित्रीं वै जपेद्बुधः । प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥२५॥ सन्ध्याहीनोऽशुचिनित्यमनहः सर्वकर्मम् । यदन्यत् कुरुते किन्चिन्न तस्य फलमाप्नुयात् ॥२९॥ श्रनन्यचेतसः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः । उपास्य विधिवत् सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वे परां गतिम्॥३०॥

योऽन्यत्र कुरुते यत्नं घर्मकार्ये द्विजोत्तमः । विहाय सन्ध्याप्रणति स याति नरकायुतम् ॥३१॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् । उपासितो भवेत् तेन देवो योगतनुः परः ॥३२॥ दशावराम् । सावित्रीं वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतःस्थितः॥३३॥ सहस्रपरमां नित्यं शतमध्यां समाहितः । मन्त्रस्तु विविधैः सौरैऋ ग्यजुः सामसम्भवैः ॥३४॥ ग्रथोपतिष्ठेदादित्यमूदयन्तं महायोगं देवदेवं दिवाकरम् । कुर्वीत प्रणित भूमी मूद्र्शि तेनैव मन्त्रतः ॥३५॥ श्रों स्वखोल्काय शान्ताय कारएात्रयहेतवे । निवेदयामि चात्मानं नमस्ते विश्वरूपिणे ॥३६॥ सूर्याय ब्रह्मरूपिगो । त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्योती रसोऽमृतम् । नमस्ते घिएाने तुभ्यं भूभूवः स्वस्त्वमोङ्कारः शर्वो रुद्रः सनातनः ॥३॥। पुरुषः सन्महोऽन्तस्थं प्रणमामि कपर्दिनम् ॥३८॥ त्वमेव विश्वं बहुधा सदसत् सूयते च यत् । नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं शरगां गतः ॥३६॥ प्रचेतसे नमस्तुभ्यं नमो मीदृष्टमाय च । नमो नमस्ते रुद्राय त्वामहं शर्गा गतः ॥४०॥ हिरएयबाहवे तुभ्यं हिरएयपतये नमः । ग्रम्बिकापतये तुभ्यमुमायाः पतये नमः ॥४१॥ नमोऽस्तु नीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने । विलोहिताय भगीय सहस्राक्षाय ते नमः ॥४२॥ तमोऽवहाय ते नित्यमादित्याय नमोऽस्त् ते । नमस्ते वज्जहस्ताय त्र्यम्बकाय नमो नमः ॥४३॥ प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम् । हिरएमये गहे ग्रप्तमात्मानं सर्वदेहिनाम् ॥४४॥ नमस्यामि परं ज्योतिर्ब्रह्माणं त्वां परामृतम् । विश्वं पशुपति भीमं नर-नारीशरीरिराम् ॥४५॥ सूर्याय रुद्राय भास्वते परमेष्ठिने । उग्राय सर्वभक्षाय त्वां प्रवद्ये सदैव हि ॥४६॥ जप्त्वा स्तवमनुत्तमम् । प्रातःकालेऽथ मध्याह्ने नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ॥४७॥ एतद्वे सूर्यहृदयं इदं पुत्राय शिष्याय घार्मिकाय द्विजातये । प्रदेयं सूर्यहृदयं ब्रह्मागा तु प्रदर्शितम् ॥४८॥ वेदसारसमुद्भवम् । ब्राह्मणानां हितं पूर्यम्षिसंघैर्निषेवितम् ॥४९॥ भ्रथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि । प्रज्वाल्य विह्न विधिवज्जुहुयाज्ञातवेदसम् ॥५०॥ ऋत्विक् पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः । प्राप्यानुज्ञां विशेषेएा जुह्युर्वा यथाविधि ॥५१॥ पवित्रपाणिः पूतात्मा शुक्लाम्बरधरः शुचिः । भ्रनन्यमनसा नित्यं जुहुयात् संयतेन्द्रियः ॥५२॥ विना दर्भेगा यत् कर्म विना सूत्रेण वा पुनः । राक्षसं तद्भवेत् सर्वे नामुत्रेह फलप्रदम् ॥५३॥ नमस्कुर्यादुपहारान् निवेदयेत् । दद्यात् पुष्पादिकं तेषां वृद्धांश्चैवाभिवादयेत् ॥५४॥ देवतानि गुरुचैवाप्युपाक्षीत हितचास्य समाचरेत् । वेदाभ्यासं ततः कुर्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः॥५५॥ जपेदध्यापयेच्छिष्यान् धारयेद्वै विचारयेत् । श्रवेक्षेताथ शास्त्रेण धर्मादीनि द्विजोत्तमाः ॥५६॥ वैदिकांश्चेव निगमान् वेदाङ्गानि च सर्वशः । उपेयादीश्वरं योगक्षेमप्रसिद्धये। वाथ साधयेद्विविधानर्थान् कुटुम्बार्थे द्विजोत्तमः ॥५७॥ ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् । पुष्पाक्षतान् कुश-तिलान् गोशकृच्छुद्धमेव वा॥५८॥ नदीष देवखातेषु तडागेषु सरःसु च । स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्त्त प्रस्रवणेषु च ॥५९॥ परकीयनिपानेषु न स्नायाद्वे कदाचन । पञ्च पिएडान् समुद्धृत्य स्नायाद्वाऽसम्भवे पृनः॥६०॥ मृदकया शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि । भ्रधस्तु तिस्भिः कायः पादौ षड्भिस्तथैव च॥६१॥ मृत्तिका च समुद्दिष्टा साद्रीमलकमात्रिका । गोमयस्य प्रमाणं तत् तेनाङ्गं लेपयेत् पुनः ॥६२॥ लेपियत्वा तीरसंस्थं तिल्लाङ्गरेव मन्त्रतः । प्रक्षाल्याचम्य विधिवत् ततः स्नायात् समाहितः॥६३॥ श्रभिमम्त्र्य जलं मन्त्रेस्तिल्लङ्गेर्वाहणैः शुभैः । भावपूतस्तदन्यक्तं ध्यायेद्वे विष्णुमन्ययम् ॥६४॥

म्रापो नारायणाद्भृतास्ता एवास्यायनं पुनः । तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेद्बुयः ॥६५॥ प्रेक्ष्या सोङ्कारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये । ग्राचान्तः पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥६६॥ भ्रन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोम्खः । त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार भ्रापो ज्योती रसोऽमृतम्।।६७॥ द्रपदां वा त्रिरभ्यस्येद्वचाहर्ति प्रगावान्विताम । सावित्रीं वा जपेद्विद्वांस्तथा चैवाघमर्षग्राम् ॥६८॥ ततः सम्मार्जनं कार्यमापो हिष्ठा मयो भुवः । इदमापः प्रवहत व्याहृतिभिस्तथैव च ॥६९॥ तथाभिमन्त्र्य तत् तोयमापोहिष्ठादिभिश्चिकैः । ग्रन्तर्जलगतो मग्नो जपेत् त्रिरघमर्षणम् ॥७०॥ द्रपदां वाथ सावित्रीं तद्विष्णोः परमं पदम् । ग्रावर्त्तयेच प्रगावं देवं वा संस्मरेद्धरिम् ॥७१॥ द्रुपदादिव यो मन्त्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठितः । ग्रन्तर्जले त्रिरावर्त्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७२॥ ग्रपः पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते । विन्यस्य मूर्झि तत् तोयं मुच्यते सर्वपातकैः ॥७३॥ सर्वपापापनोदनम् ॥७४॥ कतुराट् सर्वपापापनोदनः । तथावमर्षणं सूवतं पुष्पाक्षतान्वितम् । प्रक्षिप्यालोकयेदेवमूद्ध्वं यस्तमसः परः ॥७४॥ श्रथोपतिष्ठेदादित्यमूद्ध्वं उदुत्यं चित्रमित्येतत् तच्चक्षुरिति मन्त्रतः । हंसः शुचिषदेतेन सावित्र्या च विशेषतः ॥७६॥ भ्रन्येश्च वैदिकैर्मन्त्रैः सौरैः पापप्रणाशनैः । सावित्रीं वे जपेत् पश्चात् परमास्त्र चतुष्पदाम्।

परंज्ञह्मस्वरूपां तां जपयज्ञः स वै स्मृतः ॥७०॥
विविधानि पवित्राणि गुह्मविद्यास्तथैव च । शतरुद्रियमाथर्वशिरः सौरांश्च शक्तितः ॥७५॥
प्राक्कूलेषु समासीनः कुशेषु प्राङ्मुखः शुचिः । तिष्ठंश्च वीक्षमागाोऽकं जप्यं कुर्यात् समाहितः॥७९॥
स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षेः पुत्रजीवसमुद्भवैः । कर्त्तव्या त्वक्षमाला स्यादुत्तरादुत्तमा स्मृता ॥५०॥
जपकाले न भाषेत नान्यानि प्रेक्षयेद्बुधः । न कम्पयेच्छिरो ग्रीवं दन्तान् नैव प्रकाशयेत्॥५१॥
गुह्मका राक्षसाः सिद्धा हरन्ति प्रसभं यतः । एकान्तेषु शुचौ देशे तस्माज्जप्यं समाचरेत् ॥५२॥
चाग्डालाशौचिपतितान् दृष्ट्वाचम्य पुनर्जपेत् । तैरेव भाषणं कृत्वा स्नात्वा चैव पुनर्जपेत् ॥५३॥
ग्राचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् । ग्राचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने ।

सौरान् मन्त्राञ्छिक्तितो वै पावमानीस्तु कामतः ॥ ५४।।

यदि स्यात् विलन्नवासा वै वारिमध्यगतो जपेत् । ग्रन्यथा तु शुचौ देशे दर्भेषु सुसमाहितः ॥६५॥ प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कृत्य ततः क्षितौ । ग्राचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत्॥६६॥ ततः सन्तपंयदेवानृषीन् पितृग्गांस्तथा । ग्रादावोङ्कारमुच्चार्यं नामान्ते तपंयामि वः ॥६७॥ देवान् ब्रैह्मऋषींश्चेव तपंयदक्षतोदकैः । तिलोदकैः पितृन् भक्त्या स्वग्रह्मोक्तविधानतः । देवर्षीं स्तर्पयद्धीमानुदकाञ्जलिभिः पितृन् ॥६६॥

देवर्षी स्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिः पितृत् ॥ ५६।।

यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे । प्राचीनावीति पित्र्ये तु स्वेन तीर्थेन भावितः ॥ ५९॥

निष्पीक्ष्य स्नानवस्त्रन्तु समाचम्य च वाग्यतः । स्वैर्मन्तैरच्चयद्देवान् पुष्पः पत्रैरथाम्बुभिः ॥ ५०॥

ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् । ग्रन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्नोधनो नरः॥ ५१॥

प्रदद्याद्वाथ पुष्पाणि सूक्तेन पौरूषेण तु । ग्रापो वा देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समिवताः॥ ५२॥

प्रद्याद्वा प्रणवपूर्वं वै दैवतानि समाहितः । नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद्धे पृथक् पृथक् ॥ ५३॥

न विष्णवाराधनात् पुष्पं विद्यते कर्म वैदिकम् । तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराध्यद्धिरम् ॥ ५४॥

तद्धिष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरूषेण तु । न ताभ्यां सहशो मन्त्रो वेदेषुक्तश्चतुष्विण ॥ ५५॥

निवेदयेच स्वात्मानं विष्णावमलतेजिस । तदात्मा तन्मनाः शान्तस्तद्धिष्णोरिति मन्त्रतः॥ ५६॥

प्रथवा देवमीशानं भगवन्तं सनातनम् । ग्राराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम् ॥ ५७॥

मन्त्रेण रुद्रनायत्र्या प्रसावेनाथवा पुनः । ईशानेनाथवा रुद्रैस्त्र्यम्बकेण समाहितः ॥ ९५॥ चन्दनाद्यैर्महेश्वरम् । उवत्वा नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन वा जपेत् ॥९९॥ पृष्पैः पत्रैरथाद्भिर्वा नमस्कूयान्महादेवं मृत्युख्ययमीश्वरम् । निवेदयीत स्वात्मानं यो ब्राह्मण्मितीश्वरे ॥१००॥ तं प्रदक्षिणं द्विजः कूर्यात् पञ्च ब्रह्मािए। वै जपन् । ध्यायीत देवमीशानं व्योममध्यगतं शिवम् ॥१०१॥ ग्रथावलोकयेदक व हंस: शुचिषदित्यचा । कुर्वन् पश्च महायज्ञान् गृहं गत्वा समाहितः ॥१०२॥ तथैव च । मानुषं ब्रह्मयज्ञञ्च पश्च यज्ञान् प्रचत्तते ॥१०३॥ देवयज्ञं भूतयज्ञं यदि स्यात् तर्ण्णादर्वाग् ब्रह्मयज्ञः कृतो न हि । कृत्वा मनुष्ययज्ञं वै ततः स्वाध्यायमाचरेत् ॥१०४॥ ग्रग्नेः पश्चिमतो देशे भूतयज्ञान्त एव च । वृशपृञ्जे समासीनः कुशपाणिः समाहितः ॥१०५॥ शालाग्नौ लौकिके वाथ जले भूम्यामथापि वा । वैश्वदेवश्च कर्त्ताव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः ॥१०६॥ यदि स्याल्लोकिके पक्षं ततोऽन्नं तत्र ह्रयते । शालाग्नौ तत्र देवान्नं विधिरेष सनातनः ॥१०७॥ हुतादन्नाच्छेषाद्भृतबलि हरेत् । भूतयज्ञः स विज्ञेयो भूतिदः सर्वदेहिनाम् ॥१०८॥ पतितादिभ्य एव च। दद्याद्भूमौ बहिश्चान्नं पित्तभ्यो द्विजसत्तमाः॥१०९॥ श्वपचेभ्यश्च श्वस्यश्च साय चान्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बालं हरेत् । भूतयज्ञस्त्वयं नित्यं सायं प्रातर्यथाविधि ॥११०॥ पित्नुह्श्य सत्तमम् । नित्यश्राद्धं तदुह्ष्ष्टं पितृयज्ञो गतिप्रदः ॥१११॥ भोजयेद्विप्रं उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः । वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत् ॥११२॥ नमस्येदच्चीयद्द्विजः । मनोवाक्कर्मभिः शान्तमागतं स्वयहं ततः ॥११३॥ पुजयेदतिथि नित्यं भ्रन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दिच्चिणेन तु । हन्तकारमथाग्रं वा भिच्चां वा शक्तितो द्विजः ।

दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम् ॥११४॥

भिचामाहुर्प्रासमात्रामग्रं तत् स्याचतुर्गुण्म् । पुष्कलं हन्तकारन्तु तच्चतुर्गुण्मिष्यते ॥११५॥ गोदोहकालमात्रां वै प्रतीक्ष्यो ह्यतिथिः स्वयम् । ग्रभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेदतिथीन् सदा ॥११६॥ भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे । दद्यादक्षं यथाशक्ति ह्यथिभ्यो लोभविजतः ॥११७॥ सर्वेषामप्यलाभे हि त्वन्नं गोभ्यो निवेदयेत् । भुद्धीत बन्धुभिः साद्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥११८॥ ग्रकृत्वा तु द्विजः पद्ध्य महायज्ञान् द्विजोत्तमाः । भुद्धीत चेत् स मूढात्मा तिर्थग्योनि स गच्छति ॥११९॥ वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञकियाक्षमाः । नाशयन्त्याशु पापानि देवताभ्यर्चनं तथा ॥१२०॥ यो मोहादथवाऽज्ञानादकृत्वा देवतार्चनम् । भुङ्कते स याति नरकं शूकरेष्वभिजायते ॥१२१॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कृत्वा कर्माणि वै द्विजः । भुद्धीत स्वजनैः साद्धं स याति परमां गतिम् ॥१२२॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां ब्राह्मणानां नित्यिकिया-विविन माष्टादशोऽध्यायः ॥ १८॥

उत्तरभागे एकोनविंशोऽध्यायः

880

एकोनविंशोऽध्यायः

च्यास उवाच

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुज्जीत सूर्याभिमुख एव वा । श्रासीनः स्वासने शुद्धे भूम्यां पादौ निघाय च ॥ १॥ श्रायुष्यं प्राङ्मुखो भुंक्ते यशस्यं दक्षिणामुखः । श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुंक्ते ऋतं भुंक्ते ह्युदङ्मुखः॥ २ ॥ पञ्चार्द्धो भोजनं कुर्याद्भृमी पात्रं निघाय च । उपवासेन तत् तुल्यं मनुराह प्रजापितः ॥ ३॥ उपलिप्ते शुची देशे पादी पक्षाल्य वै करी । ग्राचम्याद्रीननोऽकोधः पञ्चाद्रां भोजनं चरेत् ॥ ४॥ महाव्याहृतिभिस्त्वन्नं परिधायोदकेन तु । ग्रमृतोपस्तरणमसीत्यापोऽज्ञानिक्रयां चरेत् ॥ ५ ॥ स्वाहाप्रणवसंयुक्तां प्राणायाद्याहुति ततः । ग्रपानाय ततो हुत्वा व्यानाय तदनन्तरम् ॥ ६॥ उदानाय ततः कुर्यात् समानायेति पञ्चमीम् । विज्ञाय तत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मिन द्विजः ॥ ७॥ शेषमन्नं यथाकामं भुञ्जीत व्यञ्जनैर्युतम् । ध्यात्वा तन्मनसा देवानात्मानं वै प्रजापितम् ॥ ८ ॥ ग्रमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादपः पिबेत् । ग्राचान्तः पुनराचामेदयं गौरिति मन्त्रतः ॥ ९ ॥ द्रुपदां वा त्रिरावृत्त्य सर्वपापप्रणाधनीम् । प्राणानां ग्रन्थिरसीत्यालभेदुदरं ततः॥१०॥ ग्राचम्याङ्गुष्ठमात्रेण पादाङ्गुष्ठेऽथ दक्षिणे । निस्रावयेद्धस्तजलमूद्ध्र्वहस्तः कृतानुमन्त्रणं कुर्यात् सन्ध्यायामिति मन्त्रतः । श्रथ मन्त्रेण स्वात्मानं योजयेद्ब्राह्मणेति हि ॥१२॥ सर्वेषामेव योगानामात्मयोगः स्मृतः परः । योऽनेन विधिना कुर्यात् स याति ब्रह्मणः क्षयम्॥१३॥ यज्ञोपवीती भुञ्जीत स्रग्गन्धालङ्कृतः शुचिः । सायम्प्रातर्नान्तरा वै सन्ध्यायान्तु विशेषतः ॥१४॥ नाद्यात् सूर्यमहात् पूर्वं प्रतिसायं शशिमहात् । महकाले न चाश्रीयात् स्नात्वाऽश्लीयादिमुक्तयोः॥१५॥ मुक्ते शशिनि चाश्नीयाद्यदि न स्यान्महानिशा । श्रमुक्तयोरस्तगयोरद्याव्हृष्ट्वा नारनीयात् प्रेक्षमाणानामप्रदाय च दुर्मतिः । यज्ञाविष्ठिमद्याद्वा न कुद्धो नान्यमानसः ॥१७॥ भारमार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम् । वृत्यर्थं यस्य चाघीतं निष्फलं तस्य जीवितम् ॥१८॥ यद्भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यच भुङ्क्ते विदिङ्मखः । सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते सर्वं विद्यात् तदासुरम्॥१९॥ नार्द्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्गो नार्द्रवस्त्रधृक् । न च भिन्नासनगतो न यानसंस्थितोऽपि वा ॥२०॥ न भिन्नभाजने चैव न भूम्यां न च पाणिषु । नोच्छिष्टो घृतमादद्यान्न मूर्द्धान स्पृशेदिष ॥२१॥ न ब्रह्म कीर्त्तयेचापि न निःशेषं न भार्यया । नान्वकारे न सन्ध्यायां न च देवालयादिषु ॥२२॥ भुद्धीत न यान-शयनस्थितः । न पादुकािषष्ठितो वा न हसन् विलपन्निप ॥२३॥ भुक्ता वै सुखमास्थाय तदन्नं परिगामयेत् । इतिहास-पुराणाभ्यां वेदार्थानुपवृहयेत् ॥२४॥ ततः सन्ध्यामुपासीत पूर्वोक्तविधिना गुचिः । ग्रासीनश्च जपेह्वीं गायत्रीं पश्चिमां प्रति ॥२५॥ न तिष्ठति तु यः पूर्वा नापि सन्ध्यान्तु पश्चिमाम् । स शूद्रेण समो लोके सर्वकर्मविवर्णितः ॥२६॥ हुत्वाग्नि विधिवन्मन्त्रेर्भुक्त्वा यज्ञाविष्ठष्टकम् । सभृत्य-बान्धवजनः स्वपेच्छुष्कपदो निशि ॥२०॥ नोत्तराभिमुखः स्वप्यात् पश्चिमाभिमुखो न च । न चाकाशे न नग्नो वा नाशुचिनिसने कचित् ॥२०॥ न शीर्णायान्तु खट्वायां शून्यागारे न चैव हि । नानुवंशे न पालाशे शयने वा कदाचन ॥२९॥ इत्येतदिखलेनोक्तमहन्यहिन वै मया । ब्राह्मणानां कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम् ॥३०॥ नास्तिक्यादथवालस्यादब्राह्मणो न करोति यः । स याति नरकान् घोरान् काकयोनौ च जायते ॥३१॥ नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्तवाश्रमविधि स्वकम् । तस्मात् कर्माण् कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः ॥३२॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां भोजन।दिनियमविधिर्नाम एकोनविकोऽध्यायः ॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

व्यास उवाच

श्रथ श्राद्धममावास्यां प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमैः । पिएडान्वाहार्यकं भक्त्या भुक्ति-मुक्तिफलप्रदम्। १ ॥ विग्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजिन शस्यते । ग्रपराह्णे द्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेण च ॥ २ ॥ प्रतिपत्प्रभृति ह्यन्यास्तिथयः कृष्णपक्षके । चतुर्दशीं वर्जियत्वा प्रशस्ता ह्यूत्तरोत्तराः ॥ ३॥ श्रमावास्याष्टकास्तिस्रः पौषमासादिषु त्रिषु । तिस्रस्तास्त्वष्टकाः पुराया माघी पञ्चदशी तथा।। ४ ॥ त्रयोदशी मघायुक्ता वर्षासु च विशेषतः । शस्यपाकः श्राद्धकाला नित्याः प्रोक्ता दिने दिने॥ ५ ॥ कर्ताव्यं ग्रह्णे चन्द्र-सूर्ययोः । बान्धवानाञ्च मरणे नारकी स्यादतोऽन्यथा ।। ६ ।। काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिष् । श्रयने विष्वे चैव व्यतीपाते त्वनन्तकम् ॥ ७॥ संक्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि । नक्षत्रेषु च सर्वेषु कार्यं काम्यं विशेषतः ॥ ५॥ स्वर्गञ्च लभते कृत्वा कृत्तिकासु द्विजोत्तमः । ग्रपत्यमथ रोहिएयां सौम्ये तु ब्रह्मवर्चसम् ॥ ९॥ रोद्राणां कर्मणां सिद्धिमाद्रीयां शौर्यमेव च । पुनर्वसौ तथा भूमि श्रियं पुष्ये तथैव च ॥१०॥ सर्वान् कामांस्तथा सार्पे पित्र्ये सौभाग्यमेव च । ग्रार्यमणे तु घनं विन्दात् फल्गुन्यां पापनाशनम् ॥११॥ ज्ञातिश्रेष्ट्यं तथा हस्ते चित्रायाञ्च बहुन् मृतान् । वाणिज्यसिद्धि स्वाती तु विशाखासु सुवर्णकम् ॥१२॥ मैत्रे बहुनि मित्राणि राज्यं शाक्रे तथैव च । मूले कृषि लभेद यानं सिद्धिमाप्नोति श्राद्धतः ॥१३॥ सर्वान् कामान् वैश्वदेवे श्रेष्ठ्यन्तु श्रवणे पुनः । घनिष्ठायां तथा कामानम्बुपे च परं बलम् ॥१४॥ श्रजैकपादे कुप्यं स्यादिहर्न्रध्ने गृहं शुभम् । रेवत्यां बहवो गावो ह्यश्विन्यां तुरगांस्तथा । याम्ये तु जीवितन्तु स्याद्यदि श्राद्धं प्रयच्छति ॥१४॥

म्रादित्यवारेऽन्वारोग्यं चन्द्रे सौभाग्यमेव च । कुजे सर्वत्र विजयं सर्वात् कामान् बुषस्य तु ॥१६॥ विद्यामभीष्टान्तु गुरौ धनं वै भागवे पुनः । शनैश्चरे लभेदायुः प्रतिपत्सु सुतान् शुभान् ॥१७॥ कन्याकां वै द्वितीयायां तृतीयायान्तु वेदिनः । पशून् क्षुद्रांश्चतुष्ट्यां वे पश्चम्यां शोभनान् सुतान्॥१८॥ षष्ठ्यां घृतं कृषिश्वापि सप्तम्याञ्च धनं नरः । म्रष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धदः सदा ॥१९॥ स्यान्नवम्यामेकखुरं दशम्यां दिखुरं बहु । एकादश्यां तथा रूप्यं ब्रह्मवर्चस्वनः सुतान् ॥२०॥

द्वादश्यां जातरूपश्च रजतं कुप्यमेव च । ज्ञातिश्रेष्ठयं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यान्तु कुप्रजाः । पश्चदश्यां सर्वकामान् प्राप्तोति श्राद्धदः सदा ॥२१॥

तस्माच्छाद्धं न कर्त्तव्यं चतुर्दश्यां द्विजातिभिः । शस्त्रेण तु हतानान्तु श्राद्धं तत्र प्रकल्पयेत् ॥२२॥ द्रव्यत्राह्मणसम्पत्ती न कालनियमः कृतः । तस्माद्भोगापवर्गार्थं श्राद्धं कुर्युर्द्विजातयः ॥२३॥ सर्वेषु कुर्यादभ्युदये पुनः । पुत्रजनमादिषु श्राद्धं पार्वणं पर्वसु स्मृतम् ॥२४॥ अहन्यहिन नित्यं स्यात् काम्यं नैमित्तिकं पुनः । एकोहिष्टादि विज्ञेयं वृद्धिश्राद्धन्तु पार्वणम् ॥२५॥ एतत् पश्चिविधं श्राद्धं मनुना परिकोत्तितम् । यात्रायां षष्ठमाख्यातं तत् प्रयत्नेन पालयेत् ॥२६॥ श्द्धये सप्तमं श्राद्धं ब्रह्मणा परिभाषितम् । दैविकञ्चाष्टमं श्राद्धं यत् कृत्वा मुच्यते भयात् ॥२७॥ सन्ध्या-रात्री न कर्त्तव्यं राहोरन्यत्र दर्शनात् । देशानान्तु विशेषेण भवेत् पुर्यमनन्तकम् ॥२८॥ गङ्गायामक्षयं श्राद्धं प्रयागेऽमरकग्टके । गायन्ति पितरो गाथां कीर्त्तयन्ति मनीविणः ॥२९॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां ब्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेद् ॥३०॥ गयां प्राप्यानुषङ्गेरा यदि श्राद्धं समाचरेत् । तारिताः पितरस्तेन स याति परमां गतिम् ॥३१॥ वाराहपर्वते चैव गयायाक्च विशेषतः । वाराणस्यां विशेषेण यत्र देवः स्वयं हरः ॥३२॥ गङ्गाद्वारे प्रभासे तु विल्वके नीलपर्वते । कुरुक्षेत्रो च कुन्जाम्रो भृगुतुङ्गे महालये ॥३३॥ केदारे फल्गुतीर्थे च नैमिषारएय एव च । सरस्वत्यां विशेषेण पुष्करे च विशेषतः ॥३४॥ कुशावर्त्ते श्रीशैले भद्रकर्णके । वेत्रवत्यां विपाशायां गोदावर्यां विशेषतः ॥३५॥ एवमादिषु चान्येषु तीर्थेषु पुलिनेषु च । नदीनाञ्चेव तीरेषु तुष्यन्ति पितरः सदा ॥३६॥ यवैर्माषैरिद्भिम् लफलेन वा । श्यामाकैश्च शुभैः शानैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः ।

गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्मासं प्रीणयते पितृन् ॥३७॥ श्रास्रान् पाने रतानिक्षून् मृदीकांश्च सदाड़िमान् ॥३८॥

विदारीश्च भरुएडांश्चे श्राद्धकाले प्रदापयेत् । लाजान् मधुयुतान् दद्याच्छक्तुन् शर्करया सह ।

द्याच्छाद्धे प्रयत्नेन श्रृङ्गाटक - कशेरुकान् ॥३९॥

द्वी मासी मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु । ग्रीरश्लेणाय चतुरः शाकुनेनेह पश्च तु ॥४०॥ षएमासांश्छागमांसेन पार्षतेनेह सप्त वै । ग्रष्टावेणास्य मासेन रीरवेणा नवेन तु ॥४१॥ दश मासांस्तु तृष्यन्ति वराह महिषामिषैः । शश-कूर्मयोस्तु मासेन मासानेकादशैन तु ॥४२॥ संवत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन तु । वाद्ष्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥४३॥ कालशाकं महाशत्कं खड्गलोहामिषं मधु । ग्रानन्त्यायन कल्पयन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥४४॥ क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहृत्य वै द्विजः । दद्याच्छाद्धे प्रयत्नेन तदस्याक्षयमुच्यते ॥४५॥ विष्पलीं क्रमुकञ्चेन तथा चैन मसूरकम् । कुष्माएडालाबु-वार्त्ताक-भूस्तृणं स्वरसं तथा ॥४६॥ कुष्मभं पिएडमूलं ने तराडुलीयमेन च । राजमाषांस्तथा क्षीरं माहिषाजं विवर्जयेत् ॥४०॥ कोद्रवान् कोविदारांश्च पालङ्क्यां मिरचांस्तथा । वर्जयेत् सर्वयत्नेन श्राद्धकाले द्विजोत्तमः ॥४५॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां श्राद्धकल्पे विशोऽध्यायः ॥ २०॥

१५०

कूर्मपुराणम्

एकविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच

स्नात्वा यथोक्तं सन्तप्य पितृंश्चन्द्रक्षये द्विज: । पिराडान्वाहार्यंकं श्राद्धं कुर्यात् सीम्यमना: शुचि: ॥ १ ॥ वेदपारगम् । तीर्थं तद्धव्य-कव्यानां प्रदानानाञ्च स स्मृतः ॥ २॥ परीक्षेत ब्राह्मणं ये सोमपा विरजसो घर्मज्ञाः शान्तचेतसः । व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः ॥ ३॥ च । बह्वृचश्च त्रिसीपर्णिस्निम्झुर्याय यो भवेत् ॥ ४॥ यजुर्वेदविदेव पञ्चाग्निरप्यधीयानी त्रिणाचिकेतरछन्दोगो ज्येष्ठसामग एव च । ग्रथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषत: ॥ ५॥ भ्रग्निहोत्रपरो विद्वान् न्यायिवच्च षडङ्गवित् । मन्त्रब्राह्मणविच्चैव यश्च स्याद्धर्मपाठनः ॥ ६॥ ऋषीकश्च तथा द्वादशवार्षिकः। ब्रह्मदेयानुसन्तानो गर्भगुद्धः चान्द्रायगाव्रतचरः सत्यवादी पुरागावित् । गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्परः ॥ ८ ॥ विमुक्तः सर्वतो धीरो ब्रह्मभूतो द्विजोत्तमः । महादेवार्च्चनरतो वैष्णवः पंक्तिपावनः ॥ ९॥ नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा । सत्री च दाननिरतो विज्ञेयः पंक्तिपावनः॥१०॥ ग्रहिसानिरतो माता-पित्रोहिते युक्तः प्रातःस्नायी तथा द्विजः । अध्यात्मिवन्मुनिर्दान्तो विज्ञेयः पंक्तिपावनः ॥११॥ ज्ञानिनष्ठो महायोगी वेदान्तार्थविचिन्तकः । श्रद्धालुः श्राद्धनिरतो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥१२॥ ब्रह्मचर्यपरः सदा । ग्राथर्वणो मुमुक्षुश्च त्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥१३॥ वेदविद्याव्रतस्नातो ह्यसगोत्रस्तथैव च । ग्रसम्बन्धी च विज्ञेयो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥१४॥ ग्रसमानप्रवरको भोजयेद्योगिनं शान्तं तत्त्वज्ञानरतं यतिम् । घ्रलाभे नैष्टिकं दान्तमुपकुर्वाणकं तथा ॥१५॥ मुमुक्षुं सङ्गवजितम् । सर्वालाभे साधकं वा गृहस्थमि भोजयेत् ॥१६॥ तदलाभे गृहस्थन्तु प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञो यस्यारनाति यतिर्हविः । फलं वेदविदां तस्य सहस्रादितिरिच्यते ॥१७॥ यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम् । भोजयेद्धव्य-कव्येषु श्रलाभादितरान् द्विजान् ॥१८॥ एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हब्य-कब्ययोः । अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥१९॥ मातामहं मातुलव्द स्वस्रीयं श्वरारं गुरुम् । दौहित्रां विट्पति बन्धुमृत्विग्याज्यो च भोजयेत्।।२०।। न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं घनैः कार्योऽस्य संग्रहः । पैशाची दक्षिणाशा हि नेहामुत्र फलप्रदा ॥२१॥ कामं श्राद्धेऽचैयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् । द्विषता हि हविभुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥२२॥ ब्राह्मणो ह्यनघीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति । तस्म हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि ह्यते ॥२३॥ यथोषरे वीजमूदवा न वप्ना लभते फलम् । तथानुचे हिवर्दत्वा न दाता लभते फलम् ॥२४॥ यावतो ग्रसते पिएडान् हव्य-कव्येष्वमन्त्रवित् । तावतौ ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् स्थूलांस्त्वयोगुडान्।।२५॥ ग्रिपि विद्या - कुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नराधमाः । यत्रेते भुखते हव्यं तद्भवेदासुरं द्विजाः ॥२६॥ यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम् । स वै दुर्ज्ञाह्मणो नार्हः श्राद्धादिषु कदाचन ॥२७॥ शुद्रप्रेष्यो भृतो राज्ञो वृषल - ग्रामयाजकः । वधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धवः ॥२ः॥ दत्तानुयोगो वृत्त्यथं पतितान् मनुरत्रवीत् । वेदविक्रियणो ह्योते श्राद्धादिष विगहिताः ॥२९॥ परपूर्वासमुद्भवाः । ग्रसमानान् याजयन्ति पतितास्ते प्रकीर्त्तिताः॥३०॥ तु भ्रसंस्कृताध्यापका ये भृत्यर्थेऽध्यापयन्ति ये । म्रधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीत्तिताः ॥३१॥

बौद्ध-श्रावकिनर्प्रन्थाः पञ्चरात्रविदो जनाः । कापालिकाःपाशुपताः पाषग्डा ये च तिदृधा।।३२॥ यस्याञ्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसाः । न तस्य तद्भवेच्छाद्धं प्रेत्य चेह फलप्रदम् ॥३३॥ श्रनाश्रमी यो द्विजः स्यादाश्रमी वा निरर्थक । मिथ्याश्रमी च ते विप्रा विज्ञेयाः पंक्तिदूषकाः॥३४॥ दुश्चर्मा कुनस्ती कुष्टी श्वित्री च स्यावदन्तकः । विद्धप्रजननश्चैव स्तेनः क्लीबोऽथ नास्तिकः॥३५॥ मद्यपो वृषलीसक्तो वीरह। दिघिषूपतिः । भ्रगारदाही कुग्डाशी सोमविक्रयिणो द्विजाः॥३६॥ परिवेत्ता च हिस्रश्च परिवित्तिरित्राकृतिः । पौनर्भवः कुसीदी च तथा नक्षत्रसूचक ॥३७॥ गीत-वादित्रशीलश्च व्याधितः काण एव च । हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्गी तथैंव च॥३८॥ कन्यादूषी कुरुड र गोलावभिशस्तोऽथ देवलः । मित्रध्नक् पिशुनश्चेव नित्यं, भार्यानुवर्त्तकः ॥३९॥ मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी दारत्यागी तथैव च । गोत्रस्पृग्भ्रष्टशौचश्च काएडस्पृष्टस्तथैव च ॥४०॥ कूटसाक्षी पाचको रङ्गजीवकः । समुद्रयायी कृतहा तथा समयभेदकः ॥४१॥ वेदनिन्दारतश्चेव देविनन्दापरस्तथा । द्विजनिन्दारतश्चेव वर्ज्याः श्राद्धादिकर्मस् ॥४२॥ कृतघः पिशुनः क्रूरो नास्तिको वेदनिन्दकः । मित्रधुक् कुहकञ्चैव विशेषात् पंक्तिदूषकाः ॥४३॥ सर्वे पुनरभोज्याचा न दानाहीः स्वकर्मसु । ब्रह्महा चाभिशस्ताश्च वर्जनीयाः प्रयत्नत ॥४४॥ क्द्रान्नरसपुष्टाङ्गः सन्ध्योपासनवजितः । महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः ॥४५॥ श्रधीतनाशनश्चेव स्नान - दानविवर्जितः । तामसो राजसञ्चेव ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः ॥४६॥ बहनात्र किम्बतेन विहितान् ये न कुर्दते । निन्दितानाचरत्त्येते वर्ज्याः श्राद्धे प्रयव्यतः ॥४७॥

> इतिर्श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां श्राद्धकत्पे एकविंकोऽध्याय: ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच

गोमयेनोदकैर्भूमि शोधियत्वा समाहितः । सिन्नमन्त्र्य द्विजान् सर्वान् साधुभिः सिन्नमन्त्रयेत्॥ १ ॥ श्रो भिवष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरिभपूज्य च । ग्रसम्भवे परेद्युर्वा यथोक्तैर्लक्षणैर्युतान् ॥ २ ॥ तस्य ते पितरः श्राद्धाः श्राद्धकालमुपिस्थितम् । ग्रन्योन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतिन्त मनोजवाः॥ ३ ॥ तैर्न्नाह्मणैः सहादनिन्त पितरो ह्यन्तरीक्षगाः । वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गितम्॥ ४ ॥ ग्रामिन्त्रताश्च ते विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते । वसेयुनियताः सर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः ॥ ५ ॥ श्रामिन्त्रताश्च ते विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते । वसेयुनियताः सर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः ॥ ६ ॥ श्रामिन्त्रतो ब्राह्मणो वै योऽन्यस्मै कुरुते क्षणम् । स याति नरकं घोरं शुकरत्वं प्रयाति च ॥ ७ ॥ श्रामिन्त्रतो ब्राह्मणो वै योऽन्यस्मै कुरुते क्षणम् । स तस्मादिषकः पापी विष्ठाकीटोऽभिजायते ॥ ६ ॥ श्रामिन्त्रतित्वा यो मोहादन्यश्चामन्त्रये द्विजः । स तस्मादिषकः पापी विष्ठाकीटोऽभिजायते ॥ ६ ॥ श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुनं योऽिषणच्छति । ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनौ च जायते ॥ ९ ॥ निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः । भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांशुभोजनाः ॥१०॥

निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे कुर्याद्धे कलहं द्विजः । भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं मलभोजनाः ॥११॥ तस्मान्त्रिमन्त्रितः श्राद्धे नियातात्मा भवेद्द्विजः । श्रक्रोधनः शौचपरः कर्त्ता चैव जितेन्द्रियः ॥१२॥ श्रोभूते दक्षिणां गत्वा दिशं दर्भान् समाहितः । समूलानाहरेद्वारि दक्षिणाग्रान् सुनिर्मलान् ॥१३॥ दक्षिणाप्रवणं स्निग्धं विभवतं शुभलक्षणम् । शुचिं देशं विविक्तश्च गोमयेनोपलेपयेत् ॥१४॥ नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमी चैव सानुष् । विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ॥१५॥ पारक्ये भूमिभागे तु पितृणां नैव निर्वपेत्। स्वामिभिस्तद्विहन्येत् मोहाद् यत् कियते नरैः॥१६॥ ग्रटन्यः पर्वताः प्रायास्तीर्थान्यायतनानि च । सर्वाग्यस्वामिकान्याहर्ने ह्येतेषु परिग्रहः ॥१७॥ तिलानु प्रविकिरेत् तत्र सर्वतो बन्धयेदजान् । ग्रमुरोपहतं सर्वं तिलैः शुध्यत्यजेन तु ॥१८॥ बहुसंस्कारं नैकव्यञ्जनमध्यगम् । चोष्य-पेसंमृद्धञ्च यथाशक्ति प्रकल्पयेत् ॥१९॥ ततो निवृत्ते मध्याह्ने लुप्तरोम नखान् द्विजान् । प्रवगम्य यथामार्गं प्रयच्छेहन्तधावनम् ॥२०॥ तैलेनाभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयञ्च पृथग्विधम् । पात्रैरौदुम्बरैर्दचाद्वेश्वदैवत्यपूर्वकम् ततः स्नानान्निवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः । पाद्यमाचमनीयश्च सम्प्रयच्छेद यथाक्रमम् ॥२२॥ ये चात्र विश्वदेवानां विष्ठाः पूर्वं निमन्त्रिताः । प्राङ्मुखान्यासनान्येषां त्रिदर्भोपहतानि च ॥२३॥ वितणामासानानि च। दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु प्रोक्षितानि तिलोदकैः ॥२४॥ दक्षिणामुखमूक्तानि तेषपवेशयेदेतानासनं संस्प्राञ्जपि । श्रासध्वमिति संजल्पन्नासीरंस्ते पृथक् पृथक्॥२५॥ द्दो दैवे प्राङ्मुखो पित्रये त्रयश्चोदङ्मुखास्तथा । एकैकं तत्र दैवन्तु पितृमातामहेष्वपि ॥२६॥ सित्कयां देश-कालो च शोचं ब्राह्मणसम्पदम् । पञ्जैतान् विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम्॥२७॥ ग्रिप वा भोजयेदेकं ब्राह्म एां वेदपारगम् । श्रतशीलादिसम्पन्न मलक्षणविवर्जितम् उद्धृत्य पात्रे चान्नं तत् सर्वस्मात् प्रकृतात् ततः । देवतायतने वासो निवेद्यान्यत् प्रवर्त्तयेत् ।।२९॥ प्रारयेदन्नं तदग्नो तु दद्याद्वे ब्रह्मचारिरो । तस्मादेकमपि श्रेष्ठं विद्वांसं भोजयेद्द्विजम् ॥३०॥ भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः । उपविष्टस्तु यः श्राद्धे कामं तमिप भोजयेत्॥३१॥ श्रतिथियरस्य नाश्नाति न तच्छाद्धं प्रशस्यते । तस्मात् प्रयत्नाच्छाद्धेषु पूज्या ह्यतिथयो द्विजैः॥३२॥ श्रातिष्यरहिते श्राद्धे भुक्षते ये द्विजातयः । काकयोनिं व्रजन्त्येते दाता चैव न संशयः ॥३३॥ होनाङ्गः पतितः कुष्ठी व्रणी पुक्कश-नास्तिको । कुक्कुटः शूकर-श्वानौ वर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः॥३४॥ बीभत्सुमशुचिं नग्नं मत्तं धूर्तं रजस्वलाम् । नीलकाषायत्रसन - पाषग्डांश्च विवर्जयेत् ॥३५॥ यत् तत्र कियते कर्म पैतृके ब्राह्मणान् प्रति । तत् सर्वमेव कर्त्तव्यं वैश्वदैवत्यपूर्वकम् ॥३६॥ सर्वास्तानलङ्कर्याद्विभूषणैः । स्रग्दामभिः शिरोवेष्टैधू पवासोऽनुलेपनैः ॥३७॥ यथोपविष्टान् ब्राह्मणानामनुज्ञया । उदङ्मुखो यथान्यायं विश्वेदेवास इत्यचा ॥३८॥ ततस्त्वावाहयेहेवान् द्वे पिवत्रे गृहीत्वास्य भाजने क्षालिते पुनः । शन्नो देवी जलं क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा।।३९॥ या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते त्वर्घं विनिक्षिपेत् । प्रदद्याद्गन्ध-माल्यानि धूपादीनि च शक्तितः॥४०॥ श्रपसन्यं ततः कृत्वा पितूणां दक्षिणामुखः । श्रावाहनं ततः कुर्यादुशेन्तस्त्वेत्यूचा बुधः ॥४१॥ भावाह्य तदनुज्ञातो जपेदायान्तु नस्ततः । शन्नो देग्योद्कं पात्रे तिलोऽसीति तिलांस्तथा।।४२।। क्षिप्तवा चार्षं यथापूर्वं दत्त्वा हस्तेषु वा पुनः । संस्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात् समाहितः॥४३॥ पितुभ्यः स्थानमसीति न्युब्जपात्रं निधापयेत् । भ्रग्नो करिष्येत्यादाय पृच्छेदन्नं घृतप्लुतम् । करुवेत्यभ्यन्ज्ञातो जुहुयादुपवीतवान् ॥४४॥ यज्ञीपवीतिना होमः कर्ताव्यः कुशपाणिना । प्राचीनावीतिना पित्र्यं वैश्वदेवन्तु होमयेत् ॥४५॥

दक्षिगां पातज्येजानुं देवान् परिचरन् सदा । पितृणां परिचर्यासु पातयेदितरं तथा ॥४६॥ सोमाय वे पितृमते स्वधा नम इति ब्रुवन् । ग्रग्नये कव्यवाहाय स्वधेति जुहुयात् ततः ॥४७॥ ग्रग्नयभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् । महादेवान्तिके वाथ गोष्ठे वा सुसमाहितः ॥४६॥ ततस्तैरभ्यनुज्ञातो गत्वा वे दक्षिणां दिशम् । गोमयेनोपिलप्याथ स्थानं कुर्यात् ससैकतम् ॥४९॥ मग्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणाप्रवर्णां शुभम् । त्रिरुल्लिखेत् तस्य मध्य दर्भेणैकेन चैव हि ॥४०॥ ततः संस्तीर्यं तत् स्थाने दर्भान् वे दक्षिणाग्रकान् । त्रीन् पिडान् निर्वपेत् तत्र हिवःशेषात् समाहितः॥४१॥ न्युप्य पिग्डांस्तु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभोजिनाम् । तेषु दर्भेष्वथाचम्य त्रिराचम्य शनैरसून् ।

षड्ऋतूं अ नमस्कुर्यात् पितृनेव च मन्त्रवित् ॥५२॥

उदकं निनयच्छेषं शनैः पिएडान्तिके पुनः । ग्रविज्ञि च तान् पिएडान् यया न्युप्तान् समाहितः॥१३॥ ग्रथ पिएडाच्च शिष्टान्नं विधिवद्भोजयेद्विजान् । मांमान्यपूपान् विविधान् दयात् कृशर-पायसम्॥१४॥ सूप - शाक - फलानी ज्ञून् पयो दिध घृतं मधु । ग्रन्नःचेन यथाकामं विविधं भोज्यपेयकम् ॥१५॥ यद्यदिष्टं द्विजेन्द्राएगां तत् सर्वं विनिवेदयेत् । धान्यांस्तिलांश्च विविधान् शर्करा विविधास्तथा॥५६॥ उष्णमन्नं द्विजातिभ्यो दातव्यं श्रेय इच्छता । ग्रन्यत्र फलमूलेभ्यः पानकेभ्यस्तथैन च ॥५७॥ न भूमौ पातयेज्जानुं न कुष्येन्नानृतं वदेत् । न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत् ॥५५॥ क्रोधेनेव च यद्तां यद्तां त्वरया पुनः । यातुधाना विलुम्पन्ति जल्पता चोपपादितम्॥५९॥ स्वन्नगान्नो न तिष्ठेत सिन्नधी च द्विजन्मनाम् । न चात्र श्येन-काकादीन् पिन्तिएः प्रतिषेधयेत् ।

पितरस्तत्र समायान्ति बुभुत्तवः ॥६०॥ न दद्यात् तत्र हस्तेन प्रत्यक्षां लवणं तथा। न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः ॥६१॥ काञ्चनेन तु पात्रोण राजतौदुम्बरेगा वा। दत्तमज्ञयतां याति खड्गेन च विशेषतः ॥६२॥ पात्रे तु मृन्मये यो वै श्राद्धे वै भोजयेद्द्विजान् । स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोधसा ॥६३॥ न पंकत्यां विषमं दद्यान्न याचेत न दापयेत्। याचिता दापिता दाता नरकान् यान्ति भीषणान्॥६४॥ भुक्जीरन् वाग्यताः शिष्टा न ब्र्युः प्राकृतान् गुणान् । तावद्धि पितरोऽश्वन्ति यावन्नोक्ता हिवर्गुणाः॥६५॥ नाग्रासनोपिवष्टस्तु भुञ्जीत प्रथमं द्विजः। बहूनां पश्यतां सोऽज्ञः पंक्त्या हरित किल्विषम्॥६६॥ न किञ्चद्वर्जयेच्छाद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तमः । न मांसस्य निषेधेन न चान्यस्यान्नमीच्चयेत् ॥६७॥ यो नाश्चाति द्विजो मांसं नियुक्तः पितृकर्माण । स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविशतिम् ॥६८॥ स्वाध्यायं श्रावयेदेषां धर्मशास्त्राणि चैव हि । इतिहास-पुराणानि श्राद्धकल्पांश्च शोभनान्॥६९॥ ततोऽन्नमुत्सृजेद्भुक्तेष्वग्रतो विकिरन् भुवि । पृष्ट्वा तदन्नमित्येव तृप्तानाचामयेत् ततः ॥७०॥ ग्राचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति । स्वधास्त्वित च ते ब्रूयुर्बाह्मणास्तमनन्तरम् ।७१॥ तेषामन्नरीषं निवेदयेत्। यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्धिजैः। ७२॥ ततो पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं गोष्ठेषु सुश्रितम् । सम्पन्नामत्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यिव ॥७३॥ विसृज्य ब्राह्मणांस्तान् वै पितृपूर्वन्तु वाग्यतः। दिज्ञणां दिशमाकाङ्क्षन् याचेतेमान् वरान् पितृन्।।७४॥ दातारो नोऽभिवर्द्धन्ता वेदाः सन्तितरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्वहु देयख्व नोऽस्त्वित ॥७४।। नो बहु भवेदितथींश्च लभेमिह । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन॥७६॥ पिराडांस्तु गोऽजविष्रेभ्यो दद्यादग्नो जलेऽपि वा । मध्यमन्तु ततः पिराडमद्यात् पत्नी सुतार्थिनी ॥७७॥ प्रचाल्य हस्तावाचम्य ज्ञाति शेषेण तोषयेत् । ज्ञातिष्विप चतुर्थेषु स्वान् भृत्यान् भोजयेत् ततः। ७८॥ पश्चात् स्वयश्व पत्नीभिः शेषमन्नं समाचरेत् । नोद्वासयेत् तदुन्छिष्टं यावन्नास्तं गतो रविः॥७९॥

ब्रह्मचारी भवेतान्तु दम्पती रजनीन्तु ताम् । दत्त्वा श्राद्धं तथा भुक्त्वा सेवते यस्तु मैथुनम् । महारौरवमासाद्य कीटयोनि व्रजेत् पूनः ॥ ६०॥

शुचिरक्रोधनः शान्तः सत्यवादी समाहितः। स्वाध्यायञ्च तथाध्वानं कर्त्ता भोक्ता च वर्जयेत्।।८१।। श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे भू अते ये द्विजातयः । महापातिकिभिस्तुल्या यान्ति ते नरकान् बहुन्।। दर।। एष वोडिभिहितः सम्यक् श्राद्धकल्पः समासतः । ग्रनेन वर्त्तयेन्नित्यमुदासीनोऽथ तत्त्ववित् ॥६३॥ भ्रमिनरध्वगो वापि ब्राह्मणो व्यसनान्वितः । भ्रामश्राद्धं द्विजः कूर्याद्वृषलस्तु सदैव हि ॥५४॥ म्रामश्राद्धं यथा कूर्याद्विधिज्ञः श्रद्धयान्वितः । तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिएडांस्तेनैव निर्वपेत्।। ५४।। योऽनेन विधिना श्राद्धं कूर्याद्धे शान्तमानसः । व्यपेतकल्मषो नित्यं यतिनां वर्त्तयेत् पदम् ॥६६॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद्द्विजोत्तमः । श्राराधितो भवेदीशस्तेन सम्यक् सनातनः ॥८०॥ भ्राप मूलैः फलैर्वापि प्रकुर्यानि द्वं नो द्विजः । तिलोदकैस्तर्पयत्वा पितृन् स्नात्वा समाहितः॥ प्रा न जीवित्पत्को दद्याद्धोमान्तं वा विधीयते । येषां वापि पिता दद्यात् तेषाश्चैके प्रचत्तते ॥ ८९॥ तथैव प्रियतामहः । यो यस्य म्रियते तस्मै देयं नान्यस्य तेन तु ॥ ९०॥ पितामहश्चेव भोजयेद्वापि जीवन्तं यथाकामन्तु भक्तितः । न जीवन्तमतिक्रम्य किञ्चिद्दद्यादिति श्रतिः ॥९१॥ द्वचामुख्यायिं को दद्याद्वीजि-क्षेत्रिकयोः समम्। ग्रधिकारी भवेत् सोऽथ नियोगोत्पादितो यदि॥९२॥ ग्रनियक्तात् सूतो यश्च शुक्रतो जायते त्विह । प्रदद्याद्वीजिने पिएडं क्षेत्रिणे तु ततोऽन्यथा ॥९३॥ द्वी पिएडी निवंपेत् ताभ्यां क्षेत्रिणे वीजिने तथा । कीर्त्तयेदथ चैवास्मिन् वीजिनं क्षेत्रिणं ततः ॥९४॥ कत्त्व्यमेकोहिष्टं विधानतः । ग्रशीचे स्वे परिक्षीणे काम्यं वे कामतः पुनः॥९४॥ मृताहिन त चैव कर्त्तव्यं श्राद्धमभ्युदयाधिना । देववत् सर्वमेव स्याद् यवैः कार्या तिलक्रिया ॥९६॥ दर्भाश्च ऋजवः कार्या ग्रुग्मान् वै भोजयेद्द्विजान् । नान्दीमुखास्तु पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेत्।।९७।। मातृश्राद्धन्तु पूर्वं स्यात् पितृणां तदनन्तम् । ततो मातामहानान्तु वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥९५॥ कुर्यादप्रदक्षिए।म् । प्राङ्मुखो निवपेत् पिएडानुपवीती समाहितः।।९९।। प्रदद्याद्व न पूर्वन्तु मातरः पूज्या भक्त्या वै सगणेश्वराः । स्थिग्डिलेषु विचित्रेषु प्रतिमासु द्विजातिषु ।।१००।। नैवेद्येर्गन्वाद्यभूषणैरिप । पूजियत्वा मातृगणं कूर्याच्छाद्धत्रयं द्विजः ॥१०१॥ पुष्पेध्पेश्च मकृत्वा मातृयागन्तु यः श्राद्धन्तु निवेशयेत्। तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः।।१०२॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां श्राद्धकल्पे

द्वाविशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

व्यास खवाच

दशाहं प्राहुराशीचं सिपएडेष् विपाश्चितः । मृतेषु वापि जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषतः । नृंकुर्याद्विहितं किश्वित् स्वाध्यायं मनसापि च॥ २ ॥ शुचीनकोधनाञ्छान्ताञ्छालाग्नौ भावयेद्द्विजान् । शुष्कान्नेन फलैर्वापि वैतानान्जुहुयात् तथा ॥ ३ ॥ न स्पृशेयुरिमानन्ये न च तेभ्यः समाहरेत् । चतुर्थे पश्वमे चाह्नि संस्पर्शः कथितो बुधैः ॥ ४ ॥

सूतके तु सिपराडानां संस्पर्शो नैव दुष्यति । सूतकं सूतिकाञ्चेव वर्जियत्वा नृर्णां पुनः ॥ ५ ॥ श्रधीयानस्तथा यज्वा वेदविच्च पिता भवेत् । स्पृश्याः स्युः सर्व एवेते स्नानान्माता दशाहतः ॥ ६॥ दशाहं निर्गुरो प्रोक्तमाशीचं वातिनिर्गुरो । एक-द्वि-त्रिगुणैर्युक्तश्चतुस्त्रोयकदिनै: श्रुचि: ॥ ७ ॥ दशाहात् तु परं सम्यगधीयीत जुहोति च । चतुर्थे तस्य संस्पर्शं मनुः प्राह प्रजापितः ॥ ५ ॥ क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिए। एव च । यथेष्टाचरणस्येह मरणान्तमशीचकम ॥ ९॥ त्रिरात्रं दशरात्रं वा ब्राह्मशानामशीचकम् । प्राक् संस्कारात् त्रिरात्रं स्याद्शरात्रं ततः परम्॥६०॥ प्रेते मातापित्रोस्तिदिष्यते । त्रिरात्रीण शुचिस्त्वन्यो यदि ह्यत्यन्तिनिर्मुगाः ॥११॥ पित्रोरेकाहामिष्यते । जातदन्ते त्रिरात्रं स्याद् यदि स्यातान्तु निर्पुणी ॥१२॥ न्ना दन्तजननात् सद्य म्रा चूड़ादेकरात्रकम् । त्रिरात्रमीपनयनात् सिपएडानाम**शो**चकम् ॥१३॥ जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरणं पितुः । मातुश्च सूतकं तत् स्यात् पिता चास्पृश्य एव च।।१४॥ सद्यःशौचं सिपएडानां कर्ताव्यं सोदरस्य तु । ऊद्ध्वं दशाहादेकाहं सोदरो यदि निर्गुणः ॥१४॥ ततोद्ध्वं दन्तजननात् सिप्रांडानामशौचकम् । एकरात्रं निर्गुराानां चौड़ादूद्ध्वं त्रिरात्रकम् ॥१६॥ सत्तमाः । एकरात्रं सिपएडानां यदि तेऽत्यन्तिनर्गुणाः ॥१७॥ श्रदन्तजातमरणं सम्भवेद्यदि व्रतादेशात् सपिगडानामर्वाक्स्नानं विधीयते । सर्वेषामेव गुणिनामूद्र्ध्वन्तु विषयः पुनः ॥१८॥ अविक् परमासतः स्त्रीराां यदि स्याद्गर्भसंस्रवः । तदा मामसमैस्तासामशीचं दिवसैः स्मृतम् ॥१९॥ तत ऊद्ध्वन्तु पतने स्त्रीणां स्याद्शरात्रिकम् । सद्यःशौचं सपिएडानां गर्भस्रावाच वा ततः ॥२०॥ सिव्गडेऽत्यन्तिनग्रेणे । यथेष्टाचरणे ज्ञातौ त्रिरात्रमिति निश्चयः ॥२१॥ गर्भच्यतादहोरात्रं यदि स्यात् सूतके सूतिर्मरणे वा मृतिर्भवेत् । शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे मरणोत्पत्तियोगे तुं मरणाच्छुद्धिरिष्यते । श्रववृद्धिमदाशौचमूद्ध्वं चेत् तेन शुध्यति ॥२३॥ अय चेत् पञ्चमीं रात्रिमतीत्य परतो भवेत् । अघवृद्धिमदाशौचं तदा पूर्वेण शुध्यति ॥२४॥ देशान्तरगतं श्रुत्वा सूतकं शावमेव च । तावदप्रयतो मत्त्यों यावच्छेषः समाप्यते ॥२५॥ श्रतीते सूतके प्रोक्तं सिपएडानां त्रिरात्रकम् । तथैव मरणे स्नानमृद्र्यं संवत्सराद्यदि ॥२६॥ वेदार्थिविचाधीयानो योऽग्निवान् वृत्तिकार्षतः । सद्यःशोचं भवेत् तस्य सर्वावस्थासु सर्वदा ॥२०॥ स्त्रीणामसंस्कृतानान्त्र प्रदानात् परतः सदा । सिपएडानां त्रिरात्रं स्यात् संस्कारे भर्त् रेव हि ॥२५॥ अहस्त्वदत्तकन्यानामशीचं मरणं स्मृतम् । ऊनद्विवर्षामरणे सद्यःशीचमुदाहृतम् ॥२९॥ श्रा दन्तात् सोदरे सद्य श्रा चूडादेकरात्रकम् । श्रा प्रदानात् त्रिरात्रं स्याह्शरात्रमतः परम् ॥३०॥ मातामहानां मरणे त्रिरात्रं स्यादशीचकम् । एकोदकानां मरणे सूतके चैतदेव हि ॥३१॥ पक्षिणी योनिसम्बन्धे बान्धवेषु तथैव च । एकरात्रं समुद्दिष्टं गुरौ सब्रह्मचारिणा ॥३२॥ प्रेते राजिन सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः । गृहे मृतासु दत्तासु कन्यासु च त्र्यहं पितुः ॥३३॥ पुत्रेषु कृतकेषु च। त्रिरात्रं स्यात् तथाचार्ये स्वभायिस्वन्यगासु च ॥३४॥ भायांसु ग्रहोरात्रमुदाहृतम् । एकाहं स्यादुपाध्याये स्वग्रामे श्रोत्रियेऽपि च ॥३५॥ पत्याञ्च त्रिरात्रमसिप्राडेषु स्वगृहे संस्थितेषु च । एकाहत्व स्वसर्ये स्यादेकरात्रं तदिष्यते ॥३६॥ त्रिरात्रं श्वश्रमरणाच्छ्वशुरे चैतदेव हि । सद्यःशौचं समुद्दिष्टं सगोत्रे संस्थिते सति ॥३।॥ शुध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥३०॥ क्षत्रविट्शूद्रदायादा ये स्पुर्विप्रस्य बान्धवाः । तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥३९॥ राजन्य-वैश्यावप्येवं हीनवण्रिषु योनिषु । स्वमेव शौचं कुर्यातां विशुद्धयधर्यमसंशयम् ॥४०॥

१५६

तूत्तरवर्णानामशीचं कुर्युराहताः । तद्वर्णविधिदृष्टेन स्वन्तु शीचं स्वयोनिषु ॥४१॥ षड्रात्रं व त्रिरात्रं स्यादेकरात्रं क्रमेण तु । वैश्य-क्षत्रिय-विष्राणां शूद्रेष्वाशीचमेव हि ॥४२॥ श्रद्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुङ्गवाः । शूद-क्षत्रिय-विष्राणां वैश्येष्दाशीचमिष्यते ॥४३॥ षड़ात्रं वे दशाहऋ विप्राणां वेश्य - श्द्योः । भ्रशीचं क्षत्रिये प्रोक्तं क्रमेण द्विजपुङ्गवाः ॥४४॥ शूद्रविट्क्षत्रियाणान्तु ब्राह्मणस्य तथैत च । दशरात्रीण शुद्धः स्यादित्याह कमलापतिः ॥४५॥ श्रसिपएडं द्विजं प्रेतं विप्रो निहृत्य बन्धुवत् । श्रशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रोग् शुध्यति ॥४६॥ यद्यन्नमत्ति तेषान्तु त्रिरात्रेण ततः शुचिः । अनदंस्त्वन्नमह्ना तु न च तस्मिन् गृहे वसेत् ॥४७॥ सोदकेऽय तदेव स्यान्मातुराष्तेषु बन्धुषु । दशाहेन शवस्पर्शी सिप्एडश्चेव शुध्यति ॥४८॥ यदि निर्हरति प्रेतं लोभादाकान्तमानसः । दशाहेन द्विजः शुध्येद् द्वादशाहेन भूमिपः ॥४९॥ अर्द्धमाप्तेन वैश्यस्तु श्रूदो मासेन शुध्यति । षड्रात्रेणाथता सर्वे त्रिरात्रेणाथवा पुनः ॥५०॥ श्रनाथञ्चैव निर्हृत्य ब्रोह्मणं घरवर्जितम् । स्नात्वा सम्प्राध्य च घृतं गुध्यन्ति ब्राह्मणादयः ॥५१॥ वर्णमररश्वावरो यदि । श्रशीचे संस्पृशेत् स्नेहात् तदाशीचेन शुध्यति ॥ १२॥ प्रेतीभूतं द्विजं विप्रो ह्यनुगच्छेत कामतः । स्नात्वा सचेलं स्पृष्ट्वाग्नि घृतं प्राश्य विशुध्यित।।५३।। एकाहात् क्षत्रिये शुद्धिवैरुये स्याच द्वचहेनतु । शूद्रे दिनत्रयं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः ॥५४॥ मनस्थिसिब्बते शूद्रे रौति चेदबाह्मएाः स्वकैः । त्रिरात्रं स्यात् तथा शौचमेकाहन्त्वन्यथा स्मृतम् ॥४५॥ क्षत्र-वैश्ययोः । ग्रन्यथा चैव सज्योतिव्रिह्मणे स्नानमेव तु ॥५६॥ ग्रस्थिसञ्जयनादवीगेकाहः श्रनस्थिसिवते विश्रो ब्राह्मणो रौति चेत् तदा । स्नानेनैव भवेच्छुद्धिः सचेलेन न संशयः ॥५७॥ यस्तैः सहाशनं कुर्याच्छयनादीनि चैव हि । बान्धवो वापरो वापि स दशाहेन शुध्यति ॥५८॥ यस्तेषां सममरनाति सक्नदेवापि कामतः । तदाशीचे निवृत्तेऽसौ स्नानं कृत्वा विश्ध्यति ॥५९॥ यावत् तदन्नमश्नाति दुर्भिक्षाभिहतो नरः । तावन्त्यहान्यशीचं स्यात् प्रायश्चित्तं ततश्चरेत् ॥६०॥ दाहाराशीचं कर्त्तव्यं द्विजानामग्निहोत्रिणाम् । सिपएडानाब्च मरणे मरणादितरेषु च ॥६१॥ सिपएडता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते । समानोदकभावस्तु जन्म-नाम्नारवेदने ॥६२॥ पिता पितामहश्चेव तथैव प्रिवतामहः । लेपभाजस्त्रयो ज्ञेयाः सापिएड्यं साप्तपौरूषम् ॥६३॥ म्रप्रतानां तथा स्त्रीएगं सापिएड्यं साप्तपौरूषम् । तासान्तु भत्तू सापिएड्यं प्राह देवः पितामहः ॥६४॥ ये चैकजाता बहवो भिन्नयोनय एव च । भिन्नवर्णास्तु सापिएडचं भवेत् तेषां त्रिपूरुषम् ॥६५॥ कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च । दातारो नियमाच्चैव ब्रह्मविद्व्रह्मचारिस्गी ॥६६॥ सित्रिणो व्रतिनस्तावत् सद्यःशोचा उदाहृताः। राजा चैवाभिषिक्तश्च ग्रन्नसित्रण एव च ॥६७॥ यज्ञे विवाहकाले च देवयागे तथैव च । सद्यःशीचं समाख्यातं दुभिक्षे चाप्युपप्लवे ॥६८॥ सदाहवहतानाश्व विद्युता पाथिवेद्विजैः । सद्यःशौचं समाख्यातं सर्पादिमरणे तथा ॥६९॥ वीराघ्वन्यप्यनाशके । गोब्राह्मणार्थे सन्त्यस्ते सद्यःशौचं विधीयते ॥७०॥ श्रग्निमस्त्रपतने तैष्ठिकानां वनस्थानां यतोनां ब्रह्मचारिणाम् । नाशीचं कीत्त्र्यते सद्भिः पतिते च तथा मृते ॥७१॥ वितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिनीस्थिसञ्चयः। नाश्रुपातो न पिएडो वा कार्यं श्राद्धादिकं कचित्॥७२॥ च्यापादयेत् तथात्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः । विहितं तस्य नाशीचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम् ॥७३॥ अयं कश्चित् प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः। तस्याशीचं विधातव्यं कार्यञ्चैवोदकादिकम् ॥७४॥ ं जाते कुमारे तदहः कामं कुर्यात् प्रतिग्रहम् । हिरएय-धान्य-गो-वासस्तिलान्न-गुड्-सर्पिषाम् ॥७५॥ फलानि पूर्ष शाकञ्च लवणं काष्टमेव च । तोयं दिव घृतं तैलमीषधं क्षीरमेव च । १७६॥

श्राशीचिनो ग्रहाद्त्राह्यं शुष्कान्नश्चैव नित्यशः ।।७६॥
श्राहिताग्निर्यथान्यायं दग्धन्यस्त्रिभिरग्निभः । ग्रनाहिताग्निर्मृद्योण लीकिकेनेतरो जनः ॥७०॥
देहाभावात् पलाशैस्तु कृत्वा प्रतिकृति पुनः । दाहः कार्यो यथा न्यायं सिप्एडैः श्रद्धयान्वितः ॥७६॥
सकृत् प्रसिश्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः । दशाहं बान्धवाः श्राद्धं सर्वे चैवार्द्रवाससः ॥७९॥
पिएडं प्रतिदिनं दद्युः सायं प्रातर्यथाविधि । प्रेताय च ग्रह्यारि चतुर्थे भोजयेद्द्विजान् ॥६०॥
दितीयेऽहिन कर्तव्य क्षुरकर्म सबान्धवैः । चतुर्थे बान्धवैः सर्वेरस्थां सञ्चयनं भवेत् ॥६१॥
पूर्वान् प्रयुक्षयेद्विप्रान् युग्मान् सुश्रद्धया शुचीन् । पश्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहिन ॥
श्रयुग्मान् भोजयेद्विप्रान् नववश्राद्धन्त् तदिव्वाः ॥६२॥

एकादशेऽह्मि कुर्वीत प्रेतमुहिश्य भावतः । द्वादशे वाह्मि कर्त्तव्यं नवमेऽप्यथ वाहिन ॥६३॥ एकं पिवत्रमेकोऽर्धः पिएडपात्रं तथैव च । एवं मृतािह्म कर्त्तव्यं प्रितमासन्तु वत्सरम् ॥६४॥ सिप्एडीकरणं प्रोक्तं पूर्णे संवत्सरे पुनः । कुर्याच्चत्वारि पात्रािगा प्रेतादीनां द्विजोत्तमाः ॥६४॥ प्रेतात्रं पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत् ततः । ये समाना इति द्वाभ्यां पिएडानप्येवमेव हि ॥६६॥ सिप्एडोकरणश्राद्धं देवपूर्वं विधीयते । पितृनावाहयेत् तत्र पुनः प्रेतं विनिर्ह्शेत् ॥६०॥ ये सिप्एडोकृताः प्रेता न तेषां स्युः पृथक् कियाः । यस्तु कुर्यात् पृथक्षिएउं पितृहा सोऽभिजायते॥६६॥ मृते पित्तरि व पुत्रं पिएडमब्दं समाचरेत् । दद्याचात्रः सोदकुम्भं प्रत्यहं प्रेतवर्मतः ॥६९॥ पार्वणेन विधानेन सांवत्सरिकमिष्यते । प्रतिसंवत्सरं कुर्याद्विधिरेष सनातनः ॥९०॥ मातापित्रोः सुतैः कार्यं पिएडदानादिकश्च यत् । पत्नी कुर्यात् सुताभावे पत्न्यभावे तु सोदरः ॥९१॥ ग्रनेनैव विधानेन जीवश्राद्धं समाचरेत् । कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्तः समाहितः ॥९२॥ एष वः कथितः सम्यग् गृहस्थानां कियाविधिः । स्त्रीणान्तु भत्तृ शुश्रूषा धर्मो नान्य इहेष्यते ॥९३॥ स्वधर्मतत्त्राः नित्यमीश्वरापितमानसाः । प्राप्नुवन्ति परं स्थानं यदुक्तं वेदवादिभिः ॥९४॥ स्वधर्मतत्त्राः नित्यमीश्वरापितमानसाः । प्राप्नुवन्ति परं स्थानं यदुक्तं वेदवादिभिः ॥९४॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायामशौचिविधिनीम त्रयोविशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विशोऽध्यायः

व्यास उवाच

ग्राग्निहोत्रन्तु जुहुयात् सायम्प्रातर्यथाविधि । दर्शेन चैव पक्षान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥ १ ॥ शस्यान्ते नवशस्येष्ट्रचा तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः । पशुना त्वयनस्यान्ते समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥ २ ॥ नानिष्ट्वा नवशस्येष्ट्रचा पशुना वाग्निमान् द्विजः । न चान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ ३ ॥ नवेनान्नेन चानिष्ट्वा पशुह्वयेन चाग्नयः । प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगृह्णिनः ॥ ४ ॥ सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात् पर्वमु नित्यशः । पितृश्चवाष्ट्रकाः सर्वे नित्यमन्वष्टकामु च ॥ ५ ॥ एष धर्मः परो नित्यमपधर्मोऽन्य उच्यते । त्रयाणामिह वर्णानां यहस्थात्रमवासिनाम् ॥ ६ ॥ नास्तिवयादथवालस्याद् योऽग्नीन् नाधातुमिच्छति । यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान् बहून् ॥ ७ ॥ तामिस्नमन्धतामिस्नं महारोरव - रोरवो । कुम्भीपाकं वैतर्णोमसिपत्रवनं तथा ॥ ६ ॥

अन्यांश्च नरकान् घोरान् सम्प्राप्यान्ते स दुर्मिति:। अन्त्यजानां कुले विप्राः शूदयोनी च जायते।। ९॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः । म्राधायाग्नि विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम् ॥१०॥ श्राग्निहोत्रात् परो धर्मो द्विजानां नेह विद्यते । तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शास्वतम् ॥११॥ यश्चाधायाग्निमालस्यान्न पश्चादेनमिच्छति । स संमूढो न सम्भाष्यः कि पुनर्नास्तिको जनः॥१२॥ यस्य चैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये । ग्रिधिकं वा भवेद्यस्य स सोमं पातुमहीति ॥१३॥ एष वे सर्वयज्ञानां सोमः प्रथम इष्यते । सोमेनाराधयेद्देवं सोमलोकमहेश्वरम् ॥१४॥ सोमयागादिधको महेशाराधने कतुः । समो वा विद्यते तस्मात् सोमेनाभ्यचैयेत् परम्॥१५॥ पितामहेन विप्राणामादावभिहित: शुभः । घमों विमुक्तये साक्षाच्छौतः स्मात्तीं द्विघा पुनः॥१६॥ श्रीतस्त्रेताग्निसम्बन्धात् स्मार्ताः पूर्वं मयोदितः । श्रेयस्करतमः श्रीतस्तस्माच्छ्रीतं समाचरेत् ॥१७॥ उभाविप हितौ धर्मो वेदादेव विनिःसृतौ । शिष्टाचारस्तृतीयः स्याच्छ तिस्मृत्योरलाभतः ॥१८॥ वेदः सगरिर्वृहणः । ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेया नित्यमारमगुणान्विताः॥१९॥ यैस्तू घर्मेणा धिगतो तेषामभिमतो यः स्याच्चेतसा नित्यमेव हि । स धर्मः कथितः सद्भिर्नान्येषामिति धारणा ॥२०॥ वेदानामुपवृंहणम् । एकस्माद्ब्रह्मविज्ञानं धर्मज्ञानं तथैकतः ॥२१॥ धर्मशास्त्राणि धर्म जिज्ञासमानानां तत् प्रमाणतरं स्मृतम् । धर्मशास्त्रं पुराणानि ब्रह्मज्ञानपरायणाः ॥२२॥ नान्यतो जायते धर्मो ब्रह्मविद्या च वैदिकी । तस्माद्धमै पुराएाञ्च श्रद्धातव्यं मनीषिभिः ॥२३॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायामग्निहोत्रादिनियमो

नाम चतुर्विशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

व्यास उवाच

एष वोऽभिहितः कृत्स्नो गृहस्थाश्रमवासिनः । द्विजातेः परमो धर्मो वर्त्तनािन निबोघत ॥ १ ॥ द्विविधस्तु गृही ज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः । ग्रध्यापनं याजनश्च पूर्वस्याहः प्रतिग्रहम् । कुसीद - कृषि - वाणिज्यं प्रकुर्वितास्वयङ्कृतम् ॥ २ ॥ कृषेरभावे वाणिज्यं तदभावे कुसीदकम् । ग्रापत्कल्पस्त्वयं ज्ञेयः पूर्वोक्तो मुख्य इष्यते ॥ ३ ॥ स्वयं वा कर्षणं कुर्योद्वाणिज्यं वा कुसीदकम् । कष्टा पापीयसी वृत्तिः कुसीदं तद्ववर्जयेत् ॥ ४ ॥ क्षात्रवृत्ति परां प्राहुर्न स्वयङ्कर्षणं द्विजैः । तस्मात् क्षात्रेण वर्तेत वर्तते नापदि द्विजः ॥ ४ ॥ तेन वैवाप्यजीवंस्तु वैश्यवृत्तिः कृषिं त्रजेत् । न कथञ्चन कुर्वित क्षाह्मणः कर्म कर्षणम् ॥ ६ ॥ लब्धलाभः पितृन् देवान् ब्राह्मणांश्चापि पूजयेत् । ते तृष्तास्तस्य तं दोषं शमयन्ति न संशयः ॥ ७ ॥ देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्याद्भागन्तु विश्वकम् । त्रिंशद्भागं ब्राह्मणानां कृषिं कुर्वन् न दुष्यति॥ ६ ॥ वाणिज्ये द्विगुणं दद्यात् कुसीदी त्रिगुणं पुनः । कृषिपालान्न दोषेण युज्यते नात्र संशयः ॥ ९ ॥ शिलोञ्छं वाप्याददीत गृहस्थः साधकः पुनः । विद्याशित्पादयस्त्वन्ये वहवो वृत्तिहैतवः ॥ १० ॥ ग्रसाधकस्तु यः प्रोक्तो यहस्थाश्रमसंस्थितः । शिलोञ्छे तस्य कथिते द्वे वृत्तो परमर्षिभिः ॥ १ ॥ ग्रम्भृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवापदि । ग्रयाचितं स्यादमृतं मृतं भेक्षन्तु याचितम् ॥ १ ॥ श्रम्भृतेनाथवा

कुशूलधान्यको वा स्यात् कुम्भीधानक एव च । त्र्यहैहिको वािष भवेदश्वस्तिक एव च ॥१३॥ चतुर्णामिष व तेषां द्विजानां ग्रहमेधिनाम् । श्रेयान् परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥१४॥ षट्कम्भको भवत् तेषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते । द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण् जीवित् ॥१४॥ वर्त्त्यसंतु शिलोञ्छाभ्यामिनहोत्रपरायणः । इष्टोः पार्वायणान्तीयाः केवला निर्वपेत् सदा॥१६॥ न लोकवृत्तं वर्त्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन । ग्राजह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥१७॥ याचित्वा चाथ सद्भ्योऽन्नं पितृन् देवांस्तु तोषयेत् । याचयेद्वा शुचिं दान्तं न तु तृप्येत् स्वयं ततः॥१६॥ यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा गृहस्थास्तोषयेत्र तु । देवान् पितृंस्तु विधिना शुनां योनिं व्रजत्यसी॥१९॥ धर्मश्चार्थञ्च कामश्च श्रयो मोक्षश्चतुष्टयम् । धर्माविरुद्धः कामः स्याद्ब्राह्मणानान्तु नेतरः॥२०॥ योऽर्थो धर्माय नात्मार्थं सोऽर्थो नार्थस्तथेतरः । तस्मादर्थं समासाद्य द्वाद् व जुहुयाद्द्विजः ॥२१॥ योऽर्थो धर्माय नात्मार्थं सोऽर्थो नार्थस्तथेतरः । तस्मादर्थं समासाद्य द्वाद् व जुहुयाद्द्विजः ॥२१॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां द्विविधगृहिवृत्तिकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

व्यास उवाच

दानधर्ममनुत्तमम् । ब्रह्मणाभिहितं पूर्वमृषीणां ब्रह्मवादिनाम् ॥ १ ॥ सम्प्रवक्ष्यामि श्रथातः श्रर्थानाम्चिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् । दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्ति-मुक्तिफलप्रदम् ॥ २ ॥ यद्दाति विशिष्टेभ्यः शिष्टेभ्यः श्रद्धया युतः । तद् वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति ॥ ३ ॥ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते । चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥ ४॥ यितकि विदीयतेऽनुपकारिणे । श्रनुद्दिश्य फलं तस्माद्बाह्मणाय तु नित्यकम् ॥ ५ ॥ यत् तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे । नैमित्तिकं तदुिह्ष्टं दानं सिद्भिरनुष्टितम् ॥ ६॥ श्रपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गाथ^{*} प्रदीयते । दानं तत् काम्यमाख्यातम्षिभिधमीचन्तकै: ॥ ७॥ यत् यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते । चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥ द ॥ दानधर्मं निषेवेत शक्तितः । उत्पत्स्यते हि तत् पात्रं यत् तारयति सर्वतः ॥ ९॥ पात्रमासाद्य यदितरिच्यते । अन्यथा दीयते यद्धि न तहानं फलप्रदम ॥१०॥ कूट्रम्बभक्तवसनाद्यं कूलीनाय विनीताय तपस्विने । व्रतस्थाय दरिद्राय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम् ॥११॥ यस्तु दद्यान्महीं भक्त्या ब्राह्मणायाहिताग्नये । स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचित ॥१२॥ इक्ष्मिः सन्तता भूमि यव-गोधूमशालिनीम् । ददाति वेदविदुषे यः स भूयो न जायते ॥१३॥ गोचर्ममात्रामि वा यो भूमिं सम्प्रयच्छति । ब्राह्मणाय दरिद्राय सर्वेपापैः प्रमुच्यते ॥१४॥ भूमिदानात् परं दानं विद्यते नेह किञ्चन । भ्रन्नदानं तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम् ॥१५॥ यो ब्राह्मणाय शान्ताय शुचये धर्मशालिने । ददाति विद्यां विधिना ब्रह्मलोके महीयते ॥१६॥ ब्रह्मचारिणे । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणः स्थानमाप्नुयात् ॥१७॥ दद्यादहरहस्त्वन्नं फलं नाप्नोति मानवः । ग्राममेवास्य दातव्यं दत्त्वाप्नोति परां गतिम् ॥१६॥ गृहस्थायान्नदानेन

वैशाख्यां पौर्णमास्यान्त् ब्राह्मणान् सप्त पञ्चवा । उपोष्य विधिना शान्तान् शुचीन् प्रयतमानसः ॥१९॥ पूजियत्वा तिलः कृष्णेर्मधूना च विशेषतः । गन्धादिभिः समभ्यच्यं वाचियत्वा स्वयं वदेत् ॥२०॥ प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्तते । यावज्जीवं कृतं पापं तत्क्षराादेव नश्यति ॥२१॥ कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा हिरएयं मधुसर्विषो । ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरित दुष्कृतम् ॥२२॥ वैशाख्याञ्च विशेषतः । निर्दृश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात् ॥२३॥ कृतान्नमृदक्मभञ्च सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पश्च वा । तर्पयेद्दपात्राणि ब्रह्महत्यां माधमासे तमिस्रे तु द्वादश्यां समुपोषितः । शुक्राम्बरधरः कृष्णेस्तिलैहुत्वा हुताशनम् ॥२४॥ प्रदद्याद्त्राह्मणेभ्यस्तु तिनानेव समाहितः । जन्मप्रभृति यत् पापं सर्वं तरित वे द्विजः ॥२६॥ ब्राह्मणाय तपस्विने । यत्किञ्चिद्देवदेवेशं दद्याद्वोहिश्य शङ्करम् ॥२७॥ भ्रमावास्यामनुप्राप्य प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः । सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥२८॥ यस्तु कृष्णचतुर्देश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम् । म्राराधयेदद्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः ॥२९॥ कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये । स्नात्वाभ्यच्यं यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभिः । ३०॥ प्रीयतां मे महादेवो दद्याद्द्रव्यं स्वकीयकम् । सर्वेपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥३१॥ द्विजैः कृष्णचतुर्द्श्यां कृष्णाष्टम्यां विशेषतः । श्रमावास्यान्तु वै भक्तैः पूजनीयस्त्रिलोचनः ॥३२॥ एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पुरुषोत्तमम् । ग्रर्चयेद्ब्राह्मणमुखे स गच्छेत् परमं पदम् ॥३३॥ एषा तिथिवैष्णवी स्याद्द्वादशी शुक्रपक्षके । तस्यामाराधयेद्देवं प्रयत्नेन जनार्दनम् ॥३४॥ यिति विद्युवे मीशानमुद्दियं ब्राह्मरों शूची । दीयते विद्युवे वापि तदनन्तफलं स्मृतम् ॥३५॥ यो हि यां देवतामिच्छेत् समाराघिततुं नरः । ब्राह्मणान् पूजयेद्विद्वान् स तस्यास्तोषहेतुतः ॥३६॥ द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः । पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्विप कचित् ॥३७॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्तत् फलमभीष्मुभिः । द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः ॥३८॥ पूजयेद्वे पुरन्दरम् । ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकामुकः ॥३९॥ विभूतिकामः सततं म्रारोग्यकामोऽथ रवि धेनुकामो हुताशनम् । कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद्वै विनायकम् ॥४०॥ भोगकामस्तु शशिनं बलकामः समीरणम् । मृमुक्षुः सर्वसंसारात् प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम् ॥४१॥ यस्तु योगं तथा मोक्षमिच्छेत् तज्ज्ञानमैश्वरम् । सोऽचयेद्वै •विरूपाक्षां प्रयत्नेन महेश्वरम् ॥४२॥ यो,वाञ्छित महाभोगान् ज्ञानानि च महेश्वरम् । स पूजयित भूतेशं केशव चापि भोगिनम् ॥४३॥ वारिदस्त्रिप्ताप्तोति घनमक्षयमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिष्टां दोपदश्चक्षुस्त्तमम् ॥४४॥ सर्वमाप्नोति दीघंमायुर्हिरएयदः । यहदोऽग्रचाणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ।४५॥ यानमुत्तमम् । अनडुद्दः श्रियं पृष्टां गोदो ब्रञ्नस्य विष्टपम् ॥४६॥ वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्वदो भायिमैश्वर्यमभयप्रदः । घान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ॥४७॥ **धान्यान्य**पि यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् । वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥४८॥ सर्वपापैः प्रमुच्यते । इन्धनानां प्रदानेन दीप्राग्निर्जायते नरः ॥४९॥ गवां घासप्रदानेन फलमूलानि शाकानि भोज्यानि विविधानि च । प्रदद्याद्त्राह्मणेभ्यस्तु मुदा युक्तः सदा भवेत् ॥५०॥ स्रीषधं स्नेहमाहारं रोगिएो रोगशान्तये । ददानो रोगरिहतः सुखी दीर्घायुरेव च ॥५१॥ दुर्गं क्षुरघारासमन्वितम् । तीव्रतापञ्च तरित श्रसिपत्रवनं च्छत्रोपानत्प्रदो नरः ॥५२॥ यद् यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दियतं गृहे । तत्तद्गुए।वते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥५३॥ ग्रहणे चन्द्र-सूर्ययोः । संकान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ॥५४॥ भ्रयने विषवे चैव

प्रयागादिषु तीर्थेषु पुरायेष्वायतनेषु च। दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदीषु च नदेषु च॥५५॥ दानधर्मात् परो धर्मी भूतानां नेह विद्यते तस्माद्विप्राय दातव्यं श्रोत्रियाय द्विजातिभिः ॥५६॥ स्वर्गायुर्भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये। मुमुक्षुणा च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यस्तथान्वहम् ।५७॥ दीयमानन्तु यो मोहाद् गोविप्राग्निसुरेषु च । निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनि वजेत् तु सः ॥५८॥ यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा नार्चयेद ब्राह्मणान् सुरान् सर्वस्वमपहृत्येनं राष्ट्राद्विप्रतिवासयेत् ॥५९॥ दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति । स्रियमाणेषु विप्रेषु ब्रह्महा स तु गहितः ॥६०॥ तस्मान्न प्रतिगृह्णीयान्न वै देयश्व तस्य हि । ग्रङ्कायित्वा स्वकाद्राष्ट्रात् त राजा विप्रवासयेत्॥६१॥ यस्त्वसद्भ्यो ददातीह स्वद्रव्य ब्रह्मसाधनम् । सं पूर्वाभ्यधिकः पापी नरके पच्यते नरः ॥६२॥ स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः । सत्य - संयमसंयुक्तास्तेभ्यो दद्याद् द्विजोत्तमाः ॥६३॥ मुभुक्तमि विद्वांसं घार्मिकं भोजयेद् द्विजम् । न तु मूर्खमवृत्तस्थं दशरात्रमुपोषितम् ॥६४॥ सिन्नकृष्टमितिकम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छिति । स तेन कर्मणा पापी दहत्यासप्तमं कुलम् ॥६४॥ यदि स्यादिधको विप्रः शीलविद्यादिभिः स्वयम् । तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि सिन्निधिम् ॥६६॥ योऽर्चितं प्रतिग्रह्माति ददात्यचितमेव वा । ताबुभी गच्छतः स्वगं नरकन्तु विपर्यये।।६०।। न वार्यपि प्रयच्छेत नास्तिके हैतुकेऽपि च । न पाषग्डेषु सर्वेषु नावेदविदि वर्मवित् ॥६८॥ श्रप्रविच हिरएयञ्च गामश्वं पृथिवीं तिलान् । श्रविद्वान् प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति काष्ठवत् ॥६९॥ द्विजातिभ्यो धर्नं लिप्सेत् प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः। ग्रिपि राजन्य - वैद्याभ्यां न तु शूद्रात् कथञ्चन ॥७०॥ वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेन्नेहेत धनविस्तरम् । धनलोभप्रसक्तस्तु ब्राह्मएयादेव वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वेशः । न तां गतिमवाप्नोति सङ्कोचाद यामवाप्नुयात्।।७२। प्रतिग्रहरुचिर्न स्याद्यात्रार्थन्तु घनं हरेत् । स्थित्यर्थादिधकं गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्॥७३॥ यस्तु याचनको नित्यं न स स्वर्गस्य भाजनम् । उद्वेजयित भूतानि यथा चौरस्तथैव सः ॥७४॥ गुरून् भृत्यांश्चोजिहीर्षंन्नर्चिष्यन् देवतातिथीन् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत् स्वयं ततः ॥७५॥ एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजकः । वर्त्तमानः संयुतात्मा याति तत् परमं पदम् ॥७६॥ पुत्रे निघाय वा सर्वं गत्वारएयन्तु तत्त्वांबत्। एकाकी विचरेन्नित्यमुदासीनः समाहितः॥७७॥ एष वः कथितो घर्मो गृहस्थानां द्विजोत्तमाः । ज्ञात्वा तु तिष्ठेन्नियतं तथानुष्ठापयेद् द्विजान् ॥७५॥

> इति देवमनादिमेकमीशं गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम् । समतीत्य सर्वभूतयोनि प्रकृति परं न याति जन्म ॥७९॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां दानवर्मादिकथनं नाम षड्विशोऽध्यायः ॥२६॥

कूर्मपुराणम्

सप्तविंशोऽध्यायः

व्यास खवाच

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा द्वितीयं भागमायुषः । वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत् सदारः साग्निरेव वा ॥ १॥ निक्षित्य भार्या पत्रेषु गच्छेद्रनमथापि वा । हष्ट्वाऽपत्यस्य चापत्यं जर्जरीकृतविग्रहः ॥ २ ॥ शुक्रपक्षस्य पूर्वाह्हि प्रशस्ते चोत्तरायणे । गत्वाऽरएयं नियमवांस्तपः कुर्यात् समाहितः ॥ ३ ॥ फल मूलानि पूर्तानि नित्यमाहारमाहरेत् । यताहारो भवेत् तेन पूजयेत् पितृ - देवताः ॥ ४ ॥ पूजयेदतिथीन् नित्यं स्नात्वा चाभ्यर्चयेत् मुरान् । गृहानागत्य चाश्रीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः ॥ ५ । जटां वै बिभृयान्नित्यं नख रोमाणि नोत्स्जेत् । स्वाध्यायं सर्वद् क्र्यान्नियच्छेद्वाचमन्यतः ॥ ६॥ म्राग्निहोत्रख्च जुहुयात् पञ्च यज्ञान् समाचरेत्। मुन्यन्नेर्विविधेर्वन्यैः शाक - मूल - फलेन च ॥ ७॥ चीरवासा भवेत्रित्यं स्नाति त्रिषवणं शुचिः। सर्वभूतानुकम्पी स्यात् प्रतिग्रहविवर्जितः॥ ५॥ नियतं द्विजः । ऋक्षेष्वाग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् ॥ ६॥ यजेत उत्तरायणब्ब क्रमशो दक्षस्यायनमेव च । वासन्तैः शारदैर्मेध्येर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ॥१०॥ प्रोडाशांश्चारुश्चेव विधिविन्निर्विपेत् पृथक् । देवताभ्यश्च तद्धत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः ॥११॥ रोषं समुप्रभुक्षीत लवण्य स्वयं कृतम् । वर्जयेन्मघु-मांसानि भोमानि कवकानि च ॥१२॥ भूस्तृणं शिग्रुकञ्चैव इलेष्मातकफलानि च । न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमिप केनचित् ॥१३॥ न ग्रामजातान्यात्तोंऽपि पुष्पाणि च फलानि च। श्रावणेनैव विधिना विह्न परिचरेत् सदा ॥१४॥ न दृद्धोत् सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत् । न नक्तं किन्विदश्नीयाद्रात्रौ ध्यानपरो भवेत् ॥१५॥ जितेन्द्रियो जितकोषस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं न पत्नीमपि संश्रयेत् ॥१६॥ यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत् । तद्वतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥१७॥ तत्र यो जायते गर्भो न संस्पृश्यो द्विजातिभिः। न च वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेऽप्येवमेव हि ॥१६॥ श्रवः शयीत नियतं सावित्रीजपतत्परः । शरएयः सर्वभूतानां संविभागरतः सदा ॥१९॥ परिवादं मृषावादं निद्रालस्यं विवर्जयेत् । एकाग्निरनिकेतःस्यात् प्रोक्षितां भूमिमाश्रयेत् ॥२०॥ मृगैः सह चरेद्वासं तैः सहैव च संविशेत् । शिलायां वा शर्करायां शयीत सुसमाहितः ॥२१॥ सद्यः प्रचालको वा स्यान्माससञ्जियिकोऽपि वा । षएमासनिचयो वा स्यात् समानिचय एव च ॥२२॥ त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसन्धितम् । जीर्णानि चैव वासांसि शाक-मूल फलानि च ॥२३॥ दंतोलूखिलको वा स्यात् कापोतीं वृत्तिमाश्रयेत्। ग्रहमकुट्टो भवेद्वापि कालपक्कभुगेव च ॥२४॥ नक्तश्वान्नं समक्तीयाद्दिता चाहत्य कितः। चतुर्थेकालिको वा स्यात् स्याद्वा चाष्ट्रमकालिकः॥२५॥ चान्द्रायणविधानेवा शुक्ले कृष्णे च वर्तयेत् । पक्षे पक्षे समक्तीयाद्यवागूं कथितां सकृत् ॥२६॥ पूछप - मूल - फलैर्वापि केवलैर्वर्रायेत् सदा । स्वाभाविकैः स्वयंशीणविखानसमते स्थितः ॥२७॥ भूमो वा परिवर्त्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् । स्थानासनास्यां विहरेन्न कचिद्धैर्यमुत्सुजेत् ॥२८॥ पञ्चतपास्तद्वद्वषिस्वभावकाशकः । म्रार्द्रवासास्तुं हेमन्ते क्रमशो वर्द्धयंस्तपः ॥२९॥ उपस्पृष्य त्रिषवणं पितृदेवांश्च तर्पयेत् । एकपादेन तिष्ठेत मरीचीन् वा पिबेत् तदा ॥३०॥ पञ्चारिनर्धूमपो वा स्यादुष्मपः सोमपोऽथवा । पयः पिबेच्छुक्रपक्षे कृष्णपक्षे च गोमयम् ॥३१॥ शीर्णपर्णाशनो वा स्यात् कृच्छ्रैर्वा वर्त्तयेत् सदा। योगाभ्यासरतश्चैव रुद्राध्यायी भवेत् सदा। भ्रथर्वशिरसाऽध्येता वेदान्ताभ्यासतत्परः ॥३२॥

उत्तरभागे सप्तविशोऽध्यायः

यमान् सेवेत सततं नियमांश्चाप्यतिन्द्रतः । कृष्णाजिनी सोत्तरीयः शुक्रयज्ञोपवीतवान् ॥ ३॥ ग्रथ चाग्नीन् समारोप्य स्वात्मिनि ध्यानतत्परः । ग्रनिगरिनकेतः स्यान्मुनिमीक्षपरो भवेत् ॥ ३४॥ तापसेष्वेव विषेषु यात्रिकं भैक्षनाहरेत् । गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिष ॥ ३४॥ ग्रामादाहृत्य चाश्नीयादष्टी ग्रासान् वने वसन् । प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणाना करकेण वा ॥ ३६॥ विविधाश्चोपनिषद ग्रात्मसंसिद्धये जपेत् । विद्याविशेषान् सावित्रीं छ्द्राध्यायं तथैव च ॥ ३७॥ महाप्रस्थानिकं वासी कुर्यादनशनन्तु वा । ग्रग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्गणविधी स्थितः ॥ ३०॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां वानप्रस्थाश्रमधर्मी नाम सप्तिविकोऽध्यायः ॥ २७ ॥

त्रात्तिक अष्टाविशोऽध्यायः वेत्रात्तिक अष्टाविशोऽध्यायः

order of the applicant that a popular sources. The

व्यास उवाच

एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः । चतुर्थमायुषो भागं सन्यासेन नयेत् क्रमात् ॥ १ ॥ ग्रग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रत्रजितो भवेत् । योगाभ्यासरतः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ॥ २ ॥ यदा मनिस सञ्जातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु । तदा सन्यासिमच्छन्ति पतितः स्याद्विपर्यये ॥ ३॥ प्राजापत्यां निरूपेष्टिमाग्नेयोमथवा पुनः । दान्तः पककषायोऽसौ ब्रह्माश्रममूपाश्रयेत् ॥ ४ ॥ ज्ञानसन्त्यासिनः केचिद्वेदसन्त्यासिनः परे । कर्मसन्त्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः परिकीत्तिताः ॥ ५ ॥ सर्वसङ्गिनर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः । प्रोच्यने ज्ञानसन्न्यासी स्वातमन्येव व्यवस्थितः ॥ ६ ॥ वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः । प्रोच्यते वेदसंन्त्यासी मुमुक्ष्विजितेन्द्रियः ॥ ७॥ यस्त्वग्नीनात्मसात् कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः । सं ज्ञेयः कर्मसन्त्यासी महायज्ञपरायणः ॥ ५॥ त्रयाणामिप चैतेषा योगी त्वभ्यधिको मतः । न तस्य विद्यते कार्यं न लिङ्गं वा विपश्चितः ॥ ह ॥ निर्ममो निर्भयः शान्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः । जीर्णकौपीनवासाः स्यान्नरनो वा ध्यानतत्पर ॥१०॥ ब्रह्मचारी मितग्रासी ग्रामात् त्वन्ने समाहरेत् । ग्रध्यात्ममितरासीत निरपेक्षी निरामिषः ॥ श्रात्मनैव सहायेन सूखार्थी विचरेदिह ॥११॥ नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जोवितम् । कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भूतको यथा । १२॥ नाध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कदाचन । एवं ज्ञानपरी योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१३॥ एकवासाथवा विद्वान् कौपीनाच्छादनस्तथा । मुण्डी शिखी वाथ भवेत् त्रिदण्डी निष्परिग्रहः॥१४॥ ध्यानयोगपरायणः । ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेद्देवालयेऽपि वा ॥१९६१। काषायवासाः सततं समः शत्री च मित्रे च तथा मानापमानयोः । भैक्ष्येण वत्त्यित्रित्यं नैकान्नादी भवेत् कचित् ॥१६॥ यस्तु मोहेन वान्यस्मादेकान्नादी भवेद यतिः। न तस्य निष्कृतिः काचिद्धमशास्त्रेषु कथ्यते ॥१७॥ राग-द्वेषविमुक्तात्मा समलोष्टारमकाञ्चनः । प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनी स्यात् सर्वनिस्यहः॥१दा

हिष्टिपूर्तं न्यसेत् पादं वस्त्रपूर्तं जलं पिबेत्। सत्यपूर्तां वदेद्बाणीं मनःपूर्तं समाचरेत्॥१९॥ नैकत्र निवसेद्देशे वर्शभ्योऽन्यत्र भिक्षुकः । स्नान-शौचरतो नित्यं कमग्डलुकरः शुविः ॥२०॥ वनवासरतो भवेत् । मोक्ष शास्त्रेष् निरतो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥२१॥ ब्रह्मचर्यरतो नित्यं दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो निन्दा - पैशुन्यवर्जितः । स्रात्मज्ञानगुणोपेतो यतिमीक्षमवाष्न्यात् ॥२२॥ ग्रम्यसेत् सततं देवं प्रणवाख्यं सनातनम् । स्नात्वाचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु ॥२३॥ यज्ञोपत्रीती शान्तात्मा कुशपािंगः समाहितः । घौतकाषायत्रसनो भस्मच्छन्नतनूरुहः ॥२४॥ ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव वा । म्राध्यात्मिकञ्च सततं वेदान्ताभिहितञ्च यत् ॥२५॥ पत्रेषु चाथ निवस ब्रह्म नारी यतिर्मृनिः । वेदमेनाभ्यसेन्नित्यं स याति परमां गतिम् ॥२६॥ श्राहिमा सत्यमस्तेयं ब्रह्मवर्यं ततः परम् । क्षमा दया च सन्तोषो व्रतान्यस्य विशेषतः ॥२७॥ वेदान्तज्ञानिष्ठो वा पञ्च यज्ञान् समाहितः । कुर्यादहरहः स्नात्वा भिक्षान्नेनैव तेन हि ॥२८॥ होममन्त्रात् जपेन्नित्यं होमकाले समाहितः । स्वाध्यायश्वान्वहं क्र्यात् सावित्रीं सन्ध्ययोर्जपेत्॥२९॥ सतत देवमेकान्ते परमेश्वरम् । एकान्तं वर्जयेन्नित्यं कामं क्रोधं परिग्रहम् ॥३०॥ एकवासा द्विवासा वा शिलो यज्ञोपवीतवान् । कमएडलुधरो विद्वांश्चिदएडी याति तत्परम् ॥३१॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां यितिधर्मो नामाष्टार्विकोऽध्यायः ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

व्यास उवाच

एवं स्वाश्रमनिष्ठानां यतीनां नियतात्मनाम् । भक्ष्येण वर्त्तनं प्रोक्तं फल-मूलैरथापि वा ॥ १ ॥ एकं कालं चरेद भैक्षं न प्रसज्येत विस्तरे । भैक्ष्यप्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्विप सज्जित ॥ २ ॥ सप्तागारं चरेद् भैक्षमलाभे तु पुनश्चरेत् । प्रक्षाल्य पात्रे भुक्षीत ग्राद्भिः प्रक्षालयेत् पुनः ।। ३ ॥ श्रयवान्यद्वादाय पात्रे भुञ्जीत नित्यशः । भुक्तवा तत् संमुजेत् पात्रं यात्रामात्रमलोलुपः ॥ ४ ॥ सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवर्जने । वृत्ते शरावसम्पात भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ ५ ॥ गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षरघोम्खः । भिक्षेत्युक्त्वा सङ्गत् तूष्णोमश्रीयाद्वाग्यतः श्चिः॥ ६॥ प्रक्षाल्य पाणी पादी च समाचम्य यथाविवि । म्रादित्ये दर्शियत्वान्नं भूखोत प्राङ्मुखोऽत्वरः ॥ ७॥ हत्वा प्राणाहतोः पञ्च प्रासानष्टो समाहितः। प्राचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरम्॥ ५॥ म्रलाबुरात्रं दार्वश्व मुन्पयं वै एवं ततः । चत्वारि यति रात्रात्राणि मनुराह प्रजापितः ॥ ९॥ प्रामात्रे पररात्रे च मध्यरात्रे तथैव च । सन्ध्यास्त्राग्निविशेषेण चिन्तयेन्नित्यमीइवरम् ॥१०॥ कृत्वा हृत्यद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसम्भवम् । प्रात्मानं सर्वभूतानां परस्तात् तपिस स्थितम् ॥११॥ सर्वं याधारमव्यक्तमानन्दं ज्योतिरव्ययम् । प्रधानपुरुषातीतमाकाशकूहरं सर्वभावानामीश्वरं ब्रह्मरूपिणम् । ध्यायेदनादिमध्यान्तमानन्दाख्यगुणालयम् महान्तं पुरुषं ब्रह्म ब्रह्माणं सत्यमभ्ययम् । सितेतरारुणाकारं महेशं मोङ्कारेणाथ चात्मानं संस्थाप्य परमात्मिन । म्राकाशे देवभीशानं ध्यायीताकाशमध्यगम् ॥१५॥ सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम् । पुराणं पुरुषं जुभ्रं ध्यायन् सुच्येत बन्धनात् ॥१६॥ प्रकृती जगत्संमोहनालये । विचित्त्य परमं व्योम सर्वभूतैककारएाम् ॥१७॥ गुहाया

जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते । भ्रानन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत् पश्यन्ति मुमुक्षवः ॥१८॥ तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम् । श्रनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत संयतः ॥१९॥ गुह्याद गुह्यतमं ज्ञानं यसीनामेतदीरितम् । योऽनुतिष्ठेत सततं सोऽवनुते योगमैश्वरम् ॥२०॥ तस्माद् ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायगाः । ज्ञानं समभ्यसेद् ब्राह्यं येन मुच्येत बन्धनात् ॥२१॥ मत्वा पृथक् स्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम् । म्रानन्दमजरं ज्ञानं ध्यायीतं च पुनः परम् ॥२२॥ यस्माद्भवन्ति भतानि यद् गत्वा नेह जायते । स तस्मादीश्वरो देवः परस्ताद् योऽचितिष्ठति ॥२३॥ यदन्तरे तद्गगनं शाश्वतं शिवमव्ययम् । यदंशस्तत्परो यस्तु स देवः स्यान्महेश्वरः ॥२४॥ व्रतानि यानि भिक्षणां तथैवोपव्रतानि च । एकैकातिकमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥२५॥ उपेत्य तु स्त्रियं कामात् प्रायश्चित्तं समाहितः । प्राणायामसमायुक्तं कुर्योत्सान्तपनं शुचिः ॥२६॥ ततश्चरेत नियमात् कृच्छं संयतमानसः । पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षरतन्द्रतः ॥२७॥ 'न नर्मयुक्तमनृतं हिनस्ती'ति मनोषिणः । तथापि च न कर्ताव्यं प्रसङ्गो ह्योष दारुणः ॥२८॥ प्राणायामशतं तथा । उक्त्वानृतं प्रकर्त्तव्यं यतिना धर्मलिप्नुना ॥२९॥ परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमन्यतः । स्तेयादभ्यधिकः कश्चित्र स्त्यवर्मं इति श्रतिः ॥३०॥ हिंसा चैषा परा दिष्टा या चात्पज्ञाननाशिका । तदेतद् द्रविणं नाम प्राणा ह्योते बहिश्चिराः ॥३१॥ स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम् । एतत् कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्यृतः ॥३२॥ निर्वेदमापन्नश्चरेचान्द्रायणवतम् । विधिना शास्त्रहष्टेन संवत्सरमिति श्रतिः ॥३३॥ ग्रकस्मादेव हिंसान्तु यदि भिक्षुः समाचरेत् । कुर्यात् कृच्छातिकृच्छन्तु चान्द्रायणमथापि वा ॥३४॥ स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि । तेन घारियतन्या वे प्राणायामास्तु षोडश । दिवास्कन्ने त्रिरात्रं स्यात् प्राणायामशतं तथा ॥३५॥

एकान्ने मधुगांसे च नवश्राद्धे तथैव च। प्रत्यक्षलवणे चोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम् ॥३६॥ ध्यानिष्ठस्य सततं नव्यते सर्वपातकम् । तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वा तद्ध्यानपरमो भवेत् ॥३०॥ यद् ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम् । योऽन्तरा परमं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः ॥३०॥ एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः । तदेवाक्षरमद्धेतं तदादित्यान्तरं परम् ॥३९॥ यस्मान्महीयते देवः स्वधाम्नि ज्ञानसंस्थिते । ग्रात्मयोगाह्नये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः ॥४०॥ नान्यं देवं महादेवाद् व्यतिरिक्तं प्रव्यति । तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परं पदम् ॥४१॥ मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् । न ते पव्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्वमः ॥ २॥ एकमेनं परं ब्रह्म विज्ञेयं तत्त्वमध्ययम् । स देवस्तु महादेवो नैतद्विज्ञाय बध्यते ॥४३॥ तस्माद् यजेत नियतं यतिः संयतमानसः । ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपर।यणः ॥४४॥ एष वः कथितो विप्रा यतीनामाश्रमः शुभः । पितामहेन विभुना मुनीनां पूर्वमीरितः ॥४५॥ नापृत्रशिष्ठययोगिन्यो दद्यादिदमनुत्तमम् । प्रोक्तं स्वयम्भुवा ज्ञानं यतिधमिश्रयं शुभम् ॥४६॥

इति यतिनियमानामेतदुक्तं विधानं पशुपति।रितोषे यद्भवेदेकहेतुः।
न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः प्रणिहितमनसा ये नित्यमेवाचरन्ति ॥४७॥
इति श्रीकोमं महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां
यतिधमों नामैकोनित्रशोऽध्यायः ॥२९॥

१६६

कूर्मपुरागम्

त्रिंशोऽध्यायः

व्यास उवाच

श्रतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधि शुभम् । हिताय सर्वविप्राणां पापानामपनुत्तये ॥ १॥ श्रकृत्वा विहितं कर्मं कृत्वा निन्दितमेव च । दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ २ ॥ प्रायश्चितमकृत्वा तु न तिष्ठेद् ब्राह्मणः कचित्। यद् ब्रूयुर्वाह्मणःशान्ता विद्वांसस्तत् समाचरेत्।। ३॥ वेदार्थं वित्तमः शान्तो वर्मकामोऽग्निमान् द्विजः । स एवं स्यात् परो धर्मो यमेकोऽपि व्यवस्यति ॥ ४॥ भ्रताहिताग्तयो विप्रास्त्रयो वेदार्भपारगाः । यद् ब्रयुर्धर्मकामास्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधनम् ॥ ५ ॥ ऊहापोहविशारदाः । वेदाध्ययनसम्पन्नाः सप्तैते परिकोत्तिताः ॥ ६॥ ग्रनेकधर्मशास्त्रज्ञा मीमांसा - न्यायतत्त्वज्ञा वेदान्तक्रशला द्विजाः । एकविशतिविख्याताः प्रायश्चित्तं वदन्ति वै ॥ ७ ॥ ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च । महापातिकनस्त्वेते यश्चेतैः सह संविशेत्।। ५॥ संवत्सरन्त्र पतितः संसर्गं कुरुते तु यः । यानशय्यासनैनित्यं जानन् वै पतितो भवेत ॥ ९॥ याजन योनिसम्बन्धं तथैवाध्यागनं द्विजः । कृत्वा सद्यः पतेज् ज्ञानात् सहभोजनमेव च ॥१०॥ भविज्ञायाथ यो मोहात् कुर्यादध्यापनं द्विजः । संवत्सरेण पतित सहाध्ययनमेव च ॥११॥ ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटि कृत्वा वने वसेत् । भिक्षेदात्मविशुद्धचर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥१२॥ बाह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्जयेत् । विनिन्दन् स्वयमारमानं ब्राह्मणं तश्व संस्मरन् ॥१३॥ ग्रसङ्खल्पतयोग्यानि सप्तागाराणि संविशेत् । विधूमे शनकैर्नित्यं व्यङ्गारे भूक्तवर्जने ॥१४॥-वर्त्तयेद्धयमाश्रितः ॥१५॥ एककालं चरेद मेक्षं दोषं विख्यापयन् नृणाम् । वन्यमूलफलैर्वापि कपालपाणिः खट्वाङ्गी ब्रह्मचर्यपरायणः। पूर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहित ॥१६॥ ग्रकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तिमदं शुभम् । कामतो मरणाच्छुद्धिर्ज्ञेया नान्येन केनचित् ॥१७॥ क्यादनशन वाथ भृगोः पतनमेव वा । ज्वलितं वा विशेदिग्नं जलं वा प्रविशेत् स्वयम्॥१८॥ ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत् । ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा वा मृतस्य तु ।।१९॥ दीर्घामयाविनं विप्रं कृत्वाऽनामयमेव वा । दत्त्वा चान्नं मुविदुषे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥२०॥ ग्रश्वमेघावभृयके स्नात्वा वै शुध्यते द्विजः । सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्माशाय प्रदाय च ॥२१॥ सङ्गमे लोकविश्रुते । गुध्येत् त्रिषवणस्नानात् त्रिरात्रोपोषितो द्वि जः॥२२॥ गत्वा रामेश्वरं पुर्णं स्नात्वा चैव महोदधौ । ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तो ह्रष्ट्वा रुद्रं विमोचयेत् ॥२३॥ कपालमो वनं नाम तीथं देवस्य शूलिनः । स्नात्वाभ्यच्यं पितृन् देवान् ब्रह्महत्यां व्यपोहिता। २४॥ देवाधिदेवेन भेरवेणामितोजसा । कपालं स्थापितं पूर्वं ब्रह्मणः परमेष्ठितः ॥ २५॥ समभ्यचर्य महादेवं तत्र भैरवरूपिए। तर्पयित्वा पितृत् स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२६॥

> इति श्रीकीर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां प्रायश्चित्तकथने त्रिशोऽध्यायः ॥३०॥

> > THE COURSE WATER TO THE TAIL

एकत्रिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

कथं देवेन रुद्रेण राङ्करेणामितीजसा । कपालं ब्रह्मणः पूर्वं स्थापितं देहजं भुविः ॥ १ ॥

व्यास उवाच

शृणुष्वमृषयः पुरायो कथा पापप्रणाशिनीम् । माहात्म्यं देवदेवस्य महादेवस्य घीमतः ॥ २ ॥ पुरा पितामहं देव मे हश्युङ्गे महर्षयः । प्रोचुः प्रराम्य लोकादि किमेकं तत्त्वमञ्ययम्॥ ३ ॥ स मायया महेशस्य मोहितो लोकसम्भवः । प्रविज्ञाय परं भावं स्वात्मानं प्राह चिषणाम् ॥ ४ ॥ प्रहं धाता जगद्योतिः स्वयम्भूरेक ईश्वरः । प्रनादि मत्परं ब्रह्म मामभ्यच्यं विमुच्यते ॥ ५ ॥ प्रहं हि सर्वदेवानां प्रवर्त्तक - निवर्त्तकः । न विद्यते चाभ्यधिको मत्तो लोकेषु कश्चन ॥ ६ ॥ तस्यैवं मन्यमानस्य यज्ञो नारायणांशजः । प्रोत्राच प्रहसन् वाक्यं रोषताम्रविलोचनः ॥ ७ ॥ कि कारणिमदं ब्रह्मन् वन्ति तव साम्प्रतम् । प्रज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतदुचितं तव ॥ ६ ॥ प्रहं धाता हि लोकानां यज्ञो नारायणः प्रभुः । न मामृतेऽस्य जातो जीवनं सर्वदा क्वचित् ॥ ९ ॥ प्रहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गतिः । मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमर्ग्डलम् ॥ १ ॥ प्रवं विवदतोर्मोहात् परस्परजयैषिणोः । म्राजग्मुर्यंत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि ॥ १ ॥ प्रन्वोक्ष्य देवं ब्रह्माणं यज्ञात्मानश्च संस्थितम् । प्रोचुः संविग्नहृदया याथात्म्यं परमेष्ठिनः ॥ १ ॥ प्रन्वोक्ष्य देवं ब्रह्माणं यज्ञात्मानश्च संस्थितम् । प्रोचुः संविग्नहृदया याथात्म्यं परमेष्ठिनः ॥ १ ॥

ऋग्वेद उवाच

यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात् सर्वं प्रवर्त्तते । यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः ॥१३॥

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञैरिखलैरीशो योगेन च समर्च्यते। यमाहुरीश्वरं देवं स देवः स्यान्महेश्वरः॥१४॥

सामवेद उवाच

येनेदं भ्राम्यते विक्वं यदाकाशान्तरं शिवम् । योगिभिश्चिन्त्वते तत्त्वं महादेवः स शङ्करः ॥१५॥ अथर्वेद उवाच

यं प्रपश्यन्ति देवेशं यतन्तो यतयः परम् । महेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान् भवः ॥१६॥ एवं स भगवान् ब्रह्मा वेदानामीरितं शुभम् । श्रुत्वा विहस्य विश्वात्मा ततश्चाह विमोहितः ॥१७॥

ब्रह्मोवाच

कर्यं तत् परमं ब्रह्म सर्वसङ्गिविविजितम् । रमते भार्यया सार्द्धं प्रमथैश्चातिविद्धितम् ॥१८॥ इतीरितेऽय भगवान् प्रणवात्मा सनातनः । श्रमूर्त्तो मूर्तिमान् भूत्वा वचः प्राह पितामहम् ॥१९॥

प्रणव उवाच

न हा ष भगवान् पत्न्या स्वात्मनो व्यतिरिक्तया । कयाचिद्रमते रुद्रस्ताहशो हि महेश्वरः ॥२०॥ भयं स भगवानीशः स्वयंत्रयोतिः धनादनः । स्वातःदभूता विद्या देवी नागन्तुका शिवा ॥२१॥

कूमंपुराणम्

इत्येवम्बनेऽपि तदा यज्ञमूर्त्तरजस्य च । नाज्ञानमगमन्नाशमीक्वरस्यैव मायया ॥२२॥ त्तदन्तरे महाज्यो।तिर्विरिश्वो विश्वभावनः प्रादर्शदद्भुतं दिव्यं पूरयत् गगनान्तरम् ॥२३॥ तन्मध्यमं स्थित ज्योतिर्मग्डलं तेजसोज्ज्वलम् । व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद् द्विजोत्तमाः ॥२४॥ स दृष्ट्वा बदनं दिव्यमूध्वं लोकपितामहः । तैजसं मराडलं घोरमलोकयदनिन्दितम् ॥२५॥ प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः । क्षणादपश्यत् स महान् पुरुषो नीललोहितः ॥२६॥ त्रिशूली पिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान् । तं प्राह भगवान् ब्रह्मा शङ्करं नीललोहितम् ॥२०॥ जानामि पूर्व भगवान् ललाटादेव शङ्करम् । प्रादुर्भूतं महेशानं मामतः पद्मयोनेरथेश्वरः । प्राहिस्मोत् पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम् ॥२९॥ सगववचनं सं कृत्वा सुमहद् युद्धं ब्रह्मणा कालभैरव । प्रचकत्तिऽस्य वदनं विरिश्वस्याथ पश्चमम् ॥३०॥ निकृत्तवदनो देवो ब्रह्म देवेन शम्भुना ममार चेशो योगेन जीवितं प्राप विश्वकृत् ॥३१॥ भ्रयान्वपर्यदीशानं मएडलान्तरसंस्थितम् । समासीनं महादेव्या महादेवं त्रिलोचनम् ॥३२॥ भुजङ्गराजवलयं शादू लचम्वसनं दि चन्द्रावयवभूषणम् । कोटिसूर्यप्रतीकाशं जटाजृटविराजितम् ॥३३॥ दि यमालासमिन्वतम् । त्रिशूलपाणि दुष्प्रेक्ष्यं योगिनं भूतिभूषणम् ॥३४॥ यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम् । तमादिमेकं ब्रह्माणं महादेवं ददर्शं ह ॥३५॥ यस्य सा परमा देशे शक्तिराकाश अंजिता । सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो हश्यते किल ॥३६॥ यस्याशेषजगद्वीजं विलयं याति मोहनम् । सकृत् प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते ॥३७॥ येऽय नाचारनिरतास्तद्भक्तार्थ्येव केवलम् । विलोचयति लोकात्मा नायको दृश्यते किल ॥३८॥ यस्य ब्रह्मादयो देवा ऋषयो ब्रह्मवादिनः । अर्चयन्ति सदा लिङ्गं स शिवः खलु हश्यते ॥३९॥ यस्याशेषजगत्सूर्तिविज्ञानतनुरोश्वरः । न मुखित सदा पाइव शङ्करोऽसी च दृश्यते ॥४०॥ विद्यासहायो भगवात् यस्यासौ मएडलान्तरम् । हिरएयगर्भपुत्रोऽसावीश्वरो हश्यते परः ॥४१॥ पूष्पं वा यदि वा पत्रं यत्पादयुगले जलम्। दत्त्वा तरित संसारं रद्रोऽसौ हश्यते किल ॥४२॥ तरसन्निधाने सकलं नियच्छति सनातनः । कालं किल नियोगात्मा कालः कालो हि हश्यते॥४३॥ जीवनं सर्वलोकानां त्रिलोकस्यैव भूषणम् । सोमः स हश्यते देवः सोमो यस्य विभूषणम् ॥४४॥ देव्या सह सदा साक्षाद्यस्य योगस्वभावतः । गीयते परमा मुक्तिर्महादेवः स हश्यते ॥४ ॥ योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखानिशम् । योगं ध्यायन्ति देव्याऽसौ स योगी दृश्यते किल ॥४६॥ सोऽनुवीक्ष्य महादेवं महादेव्या सनातनम् । वरासने समासीनमवाप परमां समृतिम् ॥४७॥ लब्ध्वा माहेश्वरीं दिव्यां संस्मृति भगवानजः । तोषयामास वरदं सोमं सोमार्द्धभूषाम् ॥४८॥

त्रह्मोवाच

नमो देवाय महते महादेव्ये नमो नमः । नमः शिवाय शान्ताय शिवाये सततं नमः ॥४९॥ नमोऽस्तु ब्रह्मणे तुभ्यं विद्याये ते नमो नमः । महेशाय नमस्तुभ्यं मूलप्रकृतये नमः ॥४९॥ नमो विज्ञानदेहाय चितये ते नमो नमः । नमोऽस्तु कालकालाय ईश्वराये नमो नमः ॥४१॥ नमो नमोऽस्तु रुद्धाय रुद्धायये ते नमो नमः । नमो नमस्ते कालाय मायाये ते नमो नमः ॥५२॥ निय त्रे सर्वकार्याणां क्षोभिकाये नमो नमः । नमोऽस्तु ते प्रकृतये नमो नारायणाय च ॥४३॥ योगदाये नमस्तुभ्यं योगिनां गुरवे नमः । नमः संसारनाशाय संसारोत्पत्तये नमः ॥५४॥ निर्यादन्दाय विभवे नमोऽस्त्वादन्दमूर्त्तये । नमः कार्यविहीनाय दिस्वप्रकृतये नमः ॥५४॥

श्रोङ्कारमूर्त्तये तुभ्यं तदन्तःसंस्थिताय च । नमस्ते व्योमसंस्थाय व्योमशक्तये नमो नमः ॥५६॥ इति सोमाष्टकेनेशं प्रिणिपत्य पितामहः । पपात दर्डवद्भृमी एए।न् वै शतरुद्रियम् ॥५७॥ थ्रथ देवो महादेवः प्रग्तात्तिहरो हरः । प्रोवाचोत्थाप्य हस्ताभ्यां प्रीतोऽस्मि तव सांप्रतम्। १ न। दत्त्वास्मे परमं योगमैश्वर्यमतुलं महत् । श्रोवाचाश्रस्थितं कदं नीललोहितमीश्वरम् ॥५९॥ एष ब्रह्मास्य ज्ञिगतः सम्पूज्यः प्रथमः स्थितः । स्रात्मना रक्षणीयस्ते गुणज्येष्ठः पिता तव ॥६०॥ भ्रयं पुराणः पुरुषो न हत्तव्यस्त्वयानध । य योगैश्वर्यमाहात्म्यान्मामेव परमं गतः ॥६१॥ भ्रयन्व यज्ञो गर्वोऽसौ सगर्वो भवतानघ । शासितव्यो विरिक्चस्य घारगीयं शिरस्त्वया ॥६२॥ ब्रह्महत्यापनोदार्थं व्रतं लोके प्रदर्शयन् । चरस्व सततं भिक्षां संस्थापय सुरद्विजान् ॥६३॥ इत्येतदुवत्वा वचनं भगवान् परमेश्वर: । स्थानं स्वाभाविकं दिव्यं ययौ तत् परमं पदम्॥६४॥ ततः स भगवानीयः कपदी नीललोहितः । ग्राहयामास वदनं ब्रह्मणः कालभैरवम् ॥६४॥ चर त्वं पापनाशार्थं व्रतं लोके हितावहम् । कपालहस्तो भगवान् भिक्षां ग्रह्णातु सर्वतः ॥६६॥ उक्तवैवं प्राहिणोत् कन्यां ब्रह्महत्येति विश्रताम् । दंष्ट्राकरालवदनां ज्वालामालाविभूषणाम् ॥६७॥ याबद्वाराणसीं दिव्यां पुरीमेष गमिष्यति । तावत् त्वं भीषणे कालमनुगच्छ त्रिश्चिनम् ॥६८॥ एवमाभाष्य कालाग्नि प्राह लोकमहेश्वरम् । ग्रटस्व लोकानिखलान् भैक्षार्थी मिश्रयोगतः ॥६९॥ यदा द्रक्ष्यसि देवेशं नारायणमनामयम् । तदासौ वक्ष्यति स्पष्टमुपायं पापशोधनम् ॥७०॥ स देवदेवतावाक्यमाकर्ग्य भगवान् हरः । कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम् ॥७१॥ भ्रास्थाय विकृतं वेषं दीप्यमानं स्वतेजसा । श्रीमत् पवित्रं रुचिरं लोचनत्रयसं धुतम् ॥७२॥ कोटिसुयंप्रतीकारौः प्रमथैश्चातिगवितै: । भाति कालाग्निनयनो महादेवः समावृतः ॥७३॥ पीत्वा वदमृतं दिव्यमानन्दं परमेष्ठिनः । लीलाविलासबहुलो लोकानागच्छतीश्वरः ॥७४॥ तं हृष्ट्वा कालवदनं शङ्कर कालभैरवम् । रूपलावरायसम्पन्नं नारीकुलमगादनु ॥७॥ गायन्ति विविधं गीतं नृत्यन्ति पुरतः प्रभा । नस्मितं प्रक्ष्य वदनं चक्रभू भङ्गमेव च ॥७६॥ स देव-दानवादीनां देशानभ्येत्य शलधृक् जगाम विष्णोभुवनं यत्रास्ते पुरुषोत्तमः ॥७७॥ सम्प्राप्य दिव्यभवनं शङ्करो लोकशङ्करः। सहैव भूतप्रवरः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥ ७५॥ म्रविज्ञाय परं भावं दिव्यं तत् पारमेश्वरम् । न्यवारयत् त्रिश्लाङ्कं द्वारपालो महाबलः ॥७९॥ शङ्ख - चक्र - गदापाणिः पीतवासा महाभुजः । विष्वन्सेन इति स्यातो विष्णोरंशसम्द्भवः ॥५०॥ म्रथैनं शङ्करगराो युयुधे विष्णुसम्भवम् । भीषणो भैरवादेशात् कालवेग इति स्मृतः ॥ ५१॥ विजित्य तं कालवेगं क्रोधसंरक्तलोचनः । दुद्रावाभिमुखं रुद्रं चिक्षेप च सुदर्शनम् ॥ ६२॥ महादेविश्वपुरारिस्त्रिश्लभृत् । तमापतन्तं सावज्ञमालोकयदिमित्रजित् ॥ ६३॥ युगान्तदहनोपमम् । शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भूवि ॥ ५४॥ स शूलाभिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वं परमं बलम् । तत्याज जीवितं दृष्ट्वा मृत्युं व्याधिहता इव ॥ दशा निहत्य विष्णुपुरुषं सार्ढं प्रमथपुङ्गवैः । विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम् ॥ ६॥ वीक्ष्य तं जगतो हेतुमीश्वरं भगवान् हरिः। शिरां ललाटात् सम्भिद्य रक्तधारामपातयत् ॥ ५०॥ यहाण भिक्षां भगवन् मदीयामिमतद्युते । न विद्यते Sन्या ह्यु चिता तव त्रिपुरमदेन ।। पना। न सम्पूर्णं कपालं तद् ब्रह्मणः परमेश्रिनः । दिव्यं वर्षसहस्रन्तु सा च धारा प्रवाहिता ॥ ८९॥ ध्यथाऽब्रवीत् कालरुद्रं हरिनरियणः प्रभुः । संस्तूय विविधैभविर्बहुमानपुरःसरम् ॥९०॥ किमथॅमेतद्वदनं ब्रह्मणो भवता घृतम् । प्रोवाच वृत्तमखिलं देवदेवो महेश्वरः ॥९१॥

समाहूय हृषीकेशो इहाहत्यामथाच्युतः । प्रार्थयामास भगवान विमुखेति त्रिशूलिनम् ॥९२॥ न नत्याजाथ सा पाइवें व्याहृतापि मुरारिणा । चिरं ध्यात्वा जगद्योनि शङ्करं प्राह सर्ववित् ॥९३॥ व्रजस्व भगवन् दिव्यां पुरीं वारागासीं शुभाम् । यत्राखिलजगद्दोषान् क्षिप्रं नाशयतीश्वरः ॥९४॥ ततः सर्वाणि गुह्यानि तीर्थान्याय नानि च । जगाम लीलया देवो लोकानां हितकाम्यया ॥९५॥ प्रमथैर्महायोगैरितस्ततः । नत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः ॥९६॥ संस्त्यमानः हरिनरियणः प्रभुः। समास्थाय परं रूपं नृत्यदर्शनलालसः॥९७॥ समभ्यधावद्भगवान् निरीक्षमाणो गोविन्दं वृषेन्द्राङ्कितशासनः । सस्मयोऽनन्तयोगात्मा नृत्यति स्म पुनः पुनः ॥९८॥ रुद्रः सहरिधंमवाहनः । भेजे महादेवपुरीं वाराणसीति विश्रुताम् ॥९९॥ सान्चरो प्रविष्टमान्ने विद्वेशे ब्रह्महत्या कर्पादिनि । हाहेत्युक्त्वा सनादं सा पातालं प्राप दुःखिता॥१००॥ प्रविदय परमं स्थानं कपालं ब्रह्मणो हरः । गणानामग्रतो देवः स्थापयामास शङ्करः ॥१०१॥ स्थापियत्वा महादेवो ददौ तच्च कलेवरम् । उक्तवा स जीवमस्त्वीति विष्णवेऽसौ घृणानिधिः।१०२। ये स्मरन्ति ममाजस्रं कापालं वेषम्त्तमम् । तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहाम्त्र च पातकम् ॥१०३॥ भ्रागम्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः । तर्पयित्वा पितृन् देवान् मुच्यते ब्रह्महत्यया॥१०४॥ श्रशाश्वतं जगज्ज्ञात्वा येऽस्मिन् स्थाने वसन्ति वै। देहान्ते तत् परं ज्ञानं ददामि परमं पदम् ॥१०५॥ इतीदमनत्वा भगवान् समालिङ्गघ जनार्दनम् । सहैव प्रमथेशानैः क्षिणादन्तरधीयत ॥१०६॥ स लब्ध्वा भगवान् कृष्णो विष्वक्सेनं त्रिशूलिनः। स्वं देशमगमत् तूर्णं गृहीत्वा परमं वपुः।।१०७॥ कथितं पुर्यं महापातकनाशनम् । कपालभोचनं तीर्थं स्थाएगोः प्रियतरं शुभम्॥१०८॥ य इमं पठतेऽध्यायं ब्राह्मणानां समीपतः । मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्च प्रमुच्यते ॥१०९॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीताया कपालमोचनमाहात्म्यं नामैकत्रिशोऽध्यायः ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

व्यास उवाच

मुरापस्तु सुरां तप्तामिनवणां स्वयं पिबेत् । निर्दश्यकायः स तया मुच्यते च द्विजोत्तमः ॥ १ ॥ गोमूत्रमिनवणं वा गोशकृद्रसमेव वा। पयो घृतं जलं वाथ मुच्यते पातकात् ततः ॥ २ ॥ जलाईवासाः प्रयतो ध्यात्वा नारायणं हरिम् । ब्रह्महत्याव्रतः व्याप्य चरेत् कृत्योपशान्तये ॥ ३ ॥ सुवर्णस्तेयकृद् विश्रो राजानमिभगम्य तु । स्वकर्म ख्यापयन् ब्र्यान्मां भवाननुशास्त्वित ॥ ४ ॥ गृहीत्वा मुषलं राजा सङ्कद्वन्यात् तु तं स्वयम् । वधेन शुध्यते स्तेनो ब्राह्मग्रास्तपसाथवा ॥ ४ ॥ स्कन्धेनादाय मुषलं लकुचं वापि खादिरम् । शक्तिश्वादाय तीक्षणाग्रामायसं दग्डमेव वा॥ ६ ॥ राजा तेन च गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता । भ्राचक्षाणेन तत् पापमेतत्कर्मास्मि शाधि माम्॥ ७ ॥

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते । श्रशासित्वा तृ तं राजा स्तेनस्याप्नोति कित्विषम्।।८।। तपसापनोत्त्रमिच्छंस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् । चीरवासा द्विजोऽरएये चरेद् ब्रह्महणो ब्रह्म ॥ ९॥ स्नात्वाक्वमेघावभृथे पूतः स्यादथवा द्विजः । प्रदद्याद्वाथ विप्रेभ्यः स्वात्मतुल्यं हिरएयकम् ॥१०॥ चरेद्वा वत्सरं कुच्छुं ब्रह्मचर्यपरायणः । ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापस्यापनुत्तये ॥११॥ गुरोभीयी समारुहा ब्राह्मणः काममोहित:। म्रालिङ्गयेत् स्त्रियं तप्तां दीप्तां कारणीयसीं कृताम्॥१२॥ स्वयं वा शिक्ष-वृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलो । स्रभिगच्छेदक्षिणाशामानिपातादजिह्मगः शाखां वा कएटकोपेतां परिष्वज्याथ वत्सरम् । भ्रधः शयीत नियतो मुच्यते गुरुतल्पगः ॥१४॥ कुच्छुं वाब्दं चरेद्विप्रश्चीरवासाः समाहितः । श्रश्वमेवावभूयके स्नात्वा वा श्रध्यते द्विजः ॥१॥ कालेऽष्टमे वा भुजानो ब्रह्मचारी सदावती । स्थानाशनाभ्यां विहरंश्विरह्नोऽभ्युपयन्नपः ॥१६॥ अधःशायी त्रिभिवेषेस्तद्व्यपोहति पातकम् । चान्द्रायणानि वा कुर्यात् पञ्च चत्वारि वा पुना।१७॥ पिततैःसम्प्रयुक्तानामथ वक्ष्यामि निष्कृतिम् । पिततेन तु संसर्गं यो येन कुरुते द्विजः ।

तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत् ॥१८॥ कत्यकां दूषियत्वा त् चरेचान्द्रायगात्रतम् । ग्रमानुषोषु

चरेद्वाथ संवत्सरमतिन्द्रतः । षाग्मासिके तु संसर्गे प्रायश्चित्तार्द्धमहीत ॥१९॥ एभिर्नृतैरपोहन्ति महापातिकनो मलम् । पुरायतीर्थाभिगमनात् पृथिव्यां वाथ निष्कृतिः॥२०॥ ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वेङ्गनागमम् । कृत्वा तैश्चापि संसर्गं ब्राह्मणः कामचारतः ॥२१॥ कुर्यादनशनं विप्रः पुर्यतीर्थे समाहितः । ज्वलन्तं वा विशेदग्नि ध्यात्वा देवं कपर्दिनम् ॥२२॥ न ह्यन्या निष्कृतिर्देष्टा मुनिभिर्धर्मवादिभिः । तस्मात् पुरुषेषु तीर्थेषु दहन् वापि स्वदेहकम् ॥२३॥ गत्वा दुहितरं वित्रः स्वसारं वा स्नुषामि । प्रविशेज् ज्वलनं दीप्तं मितपूर्वामिति स्थितिः ॥२४॥ मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम् । भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात् कुच्छातिकुच्छकम्॥२५॥ चान्द्रायणं वा कुर्वीत तस्य पापस्य शान्तये । ध्यायन् देवं जगद्यानिमनादिनिधनं हरिम् ॥२६॥ भ्रातृभाया समारुद्ध कुर्यात् तत्पापशान्तये । चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा सुसमाहितः ॥२७॥ पितृष्वसेयीं गत्वा तु स्वस्रोयां मातुरेव च । मातुलस्य सुतां वापि गत्वा चान्द्रायणं चरेत्।।२८॥ सिलभावी समारुह्य गत्वा इयालीं तथैव च । ब्रह्मेरात्रोषितो भूत्वा तप्त कृच्छ समाचरेत् ॥२९॥ उदनया गमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति । चाएडालीगमने चैव तप्रकृच्छ्रत्रयं विदुः ॥३०॥ शुद्धिःसान्तपनेन स्यान्नान्यथा निष्कृतिः स्मृता । मातृगोत्रां समारुह्य समानप्रवरां तथा ॥३१॥ चान्द्रायणेन शुध्येत , प्रयतात्मा समाहितः । ब्राह्मणो ब्राह्मणो गत्वा कृच्छुमेकं समाचरेत् ॥३२॥ उदक्यायामयोनिषु ॥३३॥ पुरुष रेतः सिक्त्वा जले चैव कुच्छुं सान्तपनं चरेत् । बन्धकीगमने विप्रख्निरात्रेण विशुध्यति ॥ ४॥ चरेच्चान्द्रायणवतम् । म्रजावीमैथुनं कृत्वा प्राजापत्यं चरेद् द्विजः ॥ ५॥ पतिताञ्च स्त्रियं गत्ना त्रिभिः कुच्ल्रेविंशुव्यति । पुक्कशीगमने चैव कुच्ल्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥३६॥ नटीं शैलूषकोञ्चैव रजकीं वेणुजीविनीम् । गत्वा चान्द्रायण कुर्यात् तथा चर्मोपजीविनीम् ॥३७॥ ब्रह्मचारी स्थियं गच्छेत् कथि छित् काममोहितः । सप्तागारं चरेद् भैक्षं विसित्वा गर्दभाजिनम् ॥३८॥ उपस्रृशेत् त्रिषवणं स्वपापं परिकीर्त्तयन् । संवत्सरेण चैकेन तस्मान् पापान् प्रमुच्यते ॥३९॥ ब्रह्महत्यात्रतः चापि षएमासानाचरेद् यती । मुच्यते ह्यवकीर्णी तु ब्राह्मणानुमते स्थितः ॥४०॥ मैक्षचर्या ग्नवूजनम् । रेतसञ्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्तं समावरेत् ॥४१॥ म्रोंकारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभिः सदा । संवत्सरन्तु यज्वानो नक्तं भिक्षाश्चनः शुनिः ॥४२॥

सावित्रीश्व जपेच्चैव नित्यं कोधविवर्जितः । नदीतीरेषु तीर्थेषु तस्मात् पापादिमुच्यते ॥४३॥ हत्वा तु क्षत्रियं विप्रः कुर्याद् ब्रह्महणो वतम् । ग्रकामतो वै ष्एमासान् दद्यात् पश्चशतं गवाम् ॥४४॥ ग्रव्हं चरेद्यानयुतो वनवासी समाहितः । प्राजापत्यं सान्तपनं तप्तकृच्छुन्तु वा स्वयम् ॥४५॥ प्रमार्यं कामतो वैदयं कुर्यात् संवत्सरवयम् । गोसहस्रन्तु पादन्तु कुर्याद् ब्रह्महणो वतम् । कृच्छ्यातिकुच्छ्यो वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा ॥४६॥

संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छुद्रं हत्वा प्रमादतः । गोसहस्राद्धेपादञ्च दद्यात् तत्पापशान्तये ॥४७॥ म्रष्टो वर्षाणि षर् त्रीणि कुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम् । हत्वा तु क्षत्रियं वैश्य श्रुदान्त्रेव यथाक्रमम् ॥४५॥ निहत्य ब्राह्मणीं निप्रस्त्वष्टवर्षं वर्तं चरेत् । राजकन्यां वर्षघट्कं वैश्यां संवत्सरत्रयम् ॥४९॥ संवत्सरेण शुध्येत शूद्रां हत्वा द्विजोत्तमः । वैश्यां हत्वा द्विजातिस्तु किन्बिद् दद्याद् द्विजातये॥१०॥ भ्रन्त्यजानां वधे चैव कुर्याचान्द्रायणं व्रतम् । पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवान् मनुः ॥५१॥ मराडूकं नकुलं काकं विड्वराहञ्च मूलकम् । इत्रानं हत्वा द्विजः कुर्यात् पोडशांशं महाव्रतम्।।५२।। पयः पिबेत् त्रिरात्रन्तु र्वानं हत्वा ह्यतन्द्रतः । मार्जारं वाथ नकुलं योजनन्वाध्वनो व्रजेत् ॥५३॥ कृच्छं द्वादशरात्रन्तु कुर्यादश्ववधे द्विजः । अर्चा कार्ष्णायसीं दद्यात् सर्वं हत्वा द्विजोत्तमः॥५४॥ षराढे सीसकन्बेकमाषकम् । घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोरान्तु तित्तिरे ॥५५॥ षुके द्विहायनं वत्सं क्रीश्वं हत्वा त्रिहायनम् । हत्वा हंसं बलाकाश्व वकं बहिणमेव च ॥५६॥ वानरं स्थेन-भासी च स्पर्शयेद ब्राह्मणाय गाम् । क्रव्यादांस्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात् पयस्विनीम्।५७॥ अकव्यादान् वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् । किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे ॥५५॥ ग्रनस्टनाञ्चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति । फलदानान्तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् ॥५९॥ गुल्म-वल्ली-लतानान्तु पुष्पितानाञ्च वीरुवाम् । ग्रन्येषाञ्चेव वृक्षाणां सरसानाञ्च सर्वेशः ॥६०॥ फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम् । हस्तिनाञ्च वधे दष्टं तप्रकृच्छ्ं विशोधनम् ॥६८॥ चान्द्रायएां पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादतः । मतिपूर्ववधे चास्याः प्रायश्चितां न विचते ॥६२॥

> इति श्रीकौर्मे महापुराण उत्तरभागे व्यासगीतायां शयश्चित्तनियमे द्वात्रिशोऽव्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिशोऽध्यायः

व्यास उवाच

मनुष्याणान्तु हरणं कृत्वा स्त्रीणां गृहस्य च । वापी - कूपजलानाञ्च शुध्येद्यान्द्रायणेन तु ॥ १ ॥ द्रव्याणामलपसाराणां स्त्रेयं कृत्वाऽन्यवेश्मनः । चरेत् सान्तपनं कृच्छ्रं तिन्नर्यात्यात्मशुद्धये ॥ २ ॥ धान्यात्मधनचौयन्तु कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः । सजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्द्धेन विशुध्यति ॥ ३ ॥ भक्ष्य - भोज्योपहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्प-सूल-फलानाञ्च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ४ ॥ तृण । काष्ठ - दुमाणाञ्च शुष्कान्नस्य गुडस्य च । चैल-चर्मामिषाणाञ्च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ४ ॥

धत्तरभागे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मणि - मुक्ता - प्रवालानां ताम्त्रस्य रजतस्य च । ग्रयःवांस्योपलानाश्च द्वादशाहं कणादनम् ॥ ६ ॥ कार्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफश्य च । पुष्पगन्धोषधीनाश्च पिबेच्चैत त्र्यहं पयः ॥ ७ ॥ नरमांसाशनं कृत्वा चान्द्रायग्रामथाचरेत् । काकश्चेव तथा धानं जग्ध्वा हस्तिनमेव वा । वराहं कुक्कुटं वाय तप्रकृच्छेण शुध्यति ॥ ८ ॥

क्रव्यादानाञ्च मांसानि पुरीषं मूत्रमेव वा । गो-गोमायु-कपीनाञ्च तदेव व्रतमाचरेत् । उपोष्य द्वादशाहञ्च कृष्माएडेजु ह्याद् घृतम् ॥ ९॥

नकुलोक-मार्जारान् जग्ध्वा सान्तपनं चरेत् । श्वापदोष्ट्र-खरान् जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रे ए। शुध्यति॥१०॥ प्रकुर्याच्चैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैव तु । बकश्चेवं बलाकाञ्च हंसं कारएडवं तथा ॥११॥ जग्ध्वा द्वादशाहमभोजनम् । कपोतं टिट्टिमां खेव शुकं सारसमेव च ॥१२॥ उल्कं जालपाद च जग्डवाप्यतद व्रतं चरेत्। शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च ॥१३॥ ज्यस्वा चैव कटाहारमेतदेव व्रत चरेत्। कोकिलञ्जैव मत्स्यादान् मग्डूकं भूजगं तथा ॥१४॥ गोमुत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुध्यति । जलेचरांश्च जलजान् प्रणुदानथ विष्किरान् ॥१५॥ रक्तपादांस्तथा जग्ध्वा सप्ताहः चैतदाचरेत्। शुनो मांसं शुष्कमांसमात्मार्थः तथा कृतम् ॥१६॥ भुक्त्वा मासं चरे देतत् तत्पापस्यापनुत्तय । वार्त्ताकं मूलक शिग्नुं कुटकं चटकं तथा ॥१७॥ प्राजापत्यं चरेज जम्ध्या शंङखं कूम्भीकमेव वा । पलाग्डं लगूनश्वेव भूक्त्वा चान्द्रायण चरेत्॥१८॥ नालिकां तराडु नीयक्च प्राजापत्येन शुध्यति । ग्रहमान्तकं तथा पत्तं नप्रकृच्छ्रे ए। शुध्यति ॥ ९॥ प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात् कुसुम्भस्य च भक्षणे । अलाबुं किंशुकञ्जेन भुक्तवाप्येतद् वर्तं चरेत् ॥२०॥ उदुम्बरश्व कालेन तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति । वृथाकृसर संयाव पायसापूपमंक्लम् ॥२१॥ भुक्तवा चैवंविधन्त्वन्यत् त्रिरात्रेण विशुध्यति । पीत्वा क्षाराग्यपेयानि ब्रह्मवारी सनाहितः॥ २॥ गोमूत्रयावकाहा रो मासेनैकेन शुध्यात । अनिर्दशाह गाक्षार महिष्याजमेव ॥२३॥ सन्धिन्याश्च विवत्सायाः पिबन् क्षीरमिदं चरेत्। एतेषाश्व विकाराणि पीत्वा माहेन मानवः ॥२४॥ शुध्यति । भुवत्वा चैव नवश्राद्धे मृतके सूतके तथा ॥२५॥ गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण चान्द्रायणेन शुध्येत ब्राह्मणः सुसमाहितः । यस्याग्नौ हूयते नित्यमन्नस्याग्रं न दोयते ॥२६॥ चान्द्रायगां चरेत् सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विजः । श्रभोज्यानान्तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम् ॥२७॥ श्चन्त्यावसायिनाञ्चैव तप्रकृच्छ्रेण शुध्यति । चाएडालान्नं द्विजो मुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायएां चरेत्॥२८॥ बुद्धिपूर्वन्तु कुच्छ्राब्द पूनः संस्कारमेव च । श्रमुरामद्यपानेन कुर्याचान्द्रायणत्रतम् ॥२९॥ श्रभोज्यान्नन्तु भुक्तवा तु प्राजापत्येन शुध्यति । विएमूत्रप्राशनं कृत्वा रेतसभ्वैतदाचरेत् ॥३०॥ म्रानादिष्टे तु चैकाहं सर्वत्र तु यथार्थतः । विड्वराह-खराष्ट्राणां गोमायोः किपकाकयोः॥३१॥ प्राच्य मूत्र-पुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायगां चरेत् । श्रज्ञानात् प्राच्य विग्मूतं सुरासंस्पृष्टमेव च ॥३२॥ पुनः संस्कारमहॅन्ति त्रयो वर्णी द्विजातयः । क्रव्यादां पक्षिणान्ते । प्रार्य पूत्रपुरीषकम् ॥३३॥ महासान्तवनं मोहात् तथा कुर्याद् द्विजोत्तमः । भास-मराडू ह-कुररे विष्करे कृच्छ्रवाचरेत् ॥३४॥ प्राजापत्येन शुध्येत ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने । क्षत्रिये तप्रकृच्छं स्याद्वेश्ये चैवातिकृच्छकम् ॥३१॥ शूद्रोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा कुर्याच्चान्द्रायए। त्रुत्या भाग्डके वारि पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥३६॥ समुच्छिष्टं द्विजो भुक्तवा त्रिरात्रेण विशुध्यति । गोमूत्रयावकाहारः पीतशेष च वा गत्राम् ॥३०॥ मूत्रपुरीषाद्यैद्विवताः प्राशयेद्यदि । तदा सान्तपनं कृच्छं व्रतं पापविशोधनम् ॥३८॥ चाएडालकूप-भाएडेषु यदि ज्ञानात् पिबेज् जलम् । चरेत् सान्तपनं कृच्छ्रं ब्राह्मणः पापशोधनम्॥३९॥

कूमंपुराणम्

चाएडालेन तु सस्पृष्टं पीत्वा वारि द्विजोत्तमः । त्रिरात्रव्रतमुख्येन पञ्चगब्येन शुध्यति ॥४०॥ महापातिकसंस्पर्शे भुक्त्या स्नात्या द्विजो यदि । बुद्धिपूर्वन्तु मूढात्मा तप्तकृच्छु समाचरेत् ॥४१॥ स्पृष्टा महापातिकनं चएडालं वा रजस्त्रलाम् । प्रमादाद्भोजनं कृत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥४२॥ स्नानाहीं यदि भुक्षीत ह्यहोरात्रेण शुध्यति । बुद्धिपूर्वन्तु कृच्छ्रोरा भगवानाह पद्मजः॥४३॥ भुक्त्वा पर्युषितादीनि गवादिप्रतिदूषिताम् । भूक्त्वोपवासं कूर्वीत कृच्छ्पादमथापि वा ॥४४॥ संवत्सरान्ते कृच्छ्न्तु चरेद् द्विप्रः पुनः पुनः । स्रज्ञानभुक्तसुद्धचर्यं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥४५॥ ब्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च । ग्रभिचारमहीनछ त्रिभिः कृच्छ्रैविशुध्यति ॥४६॥ ब्राह्मणादिहतानान्तु कृत्वा दाहादिकं द्विजः । गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येन शुध्यति ॥४७॥ तेलाभ्यक्तोऽय वान्तो वा कुर्यान्म्य - पुरीषके । ग्रहोरात्रेण शुध्येत इमश्रुकर्मणि मैथुने ॥४६॥ एकाहेन विवाहारिन परिहार्य द्विजोत्तमः । त्रिरात्रेण विशुध्येत त्रिरात्रात् षडहः परम् ॥४९॥ दशाहं द्वादशाहं वा परिहार्य प्रमादतः । कृच्छ्रं चान्द्रायणं कुर्यात् तत्पापस्योपशान्तये ॥५०॥ पतिताद् द्रज्यमादाय तदुरसर्गेण शुध्यति । चरेच्च विधिना कृच्छमित्याह भगवान् मनुः ॥ १॥ अनाशकान्त्रवृत्तास्तु प्रव्रज्यावसितास्तथा । चरेयुस्त्रीणि कृच्छाणि त्रीणि चान्द्रायणानि च ॥ १२॥ पुनश्च जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृता द्विजाः । शुध्येयुस्तद्वतं सम्यक् चरेयूर्धमं दिशनः ॥५३॥ श्रन्पासितसन्ध्यस्त् तदहर्जापको वसेत् । ग्रनश्नन् संयतमना रात्रौ चेद्रात्रिमेव हि ॥५४॥ श्रकृत्वा सिमदाधानं शुचिः स्नात्वा समाहितः । गायत्र्यष्टसहस्रस्य जप्यं क्यांदिश्द्ये ॥४४॥ उपवासी चरेत् सन्ध्यां गृहस्थो हि प्रमादतः । स्नात्वा विशुध्यते सद्यः परिश्रान्तश्च संयमात् ॥५६॥ वेदोदितानि नित्यानि कर्माणि च निलोप्य तु । स्नातको व्रतलोपन्तु कृत्वा चोपवसेद दिनम् ॥५७॥ संवत्सरं चरेत् कृच्छ्रमग्न्युत्सादी द्विजोत्तमः । चान्द्रायगां चरेद् व्रात्यो गोप्रदानेन गुध्यति ॥५८॥ नास्तिक्यं यदि कुर्वीत प्राजापत्यं चरेद द्विजः । देवद्रोहं गुरुद्रोहं तप्तच्छ्रे एा षष्टाप्तकालता मासं संहिताजव एव च । होमाश्च शाकला नित्यमयाज्यानां विशोधनम्।।६०॥ नीलं रक्तं वसित्वा च ब्राह्मणो वस्त्रमेव हि । ग्रहोरात्रोषितः स्नातः पञ्चगव्येन शूध्यति ॥६१॥ उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानव्य कामतः । त्रिरात्रेण विशुध्येच नग्नो वा प्रविशेज जलम् ॥६२॥ वेदधर्मपुराणानां चएडालस्य तु भाषणे । चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यान्न ह्यन्या तस्य निष्कृतिमाद्दशा उद्बन्धनादिनिहतं संस्पृश्य ब्राह्मणः कचित् । चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यात् प्राजापत्येन वा पुनः॥६४॥ उच्छिष्टो यद्यनाचान्तत्र्याएडालादोन् स्पृशेद् द्विजः। प्रमादाद्वे जपेत् स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥६५॥ हुपदानां शतं वापि ब्रह्मचारी समाहितः । त्रिरात्रोपोषितः सम्यक् पञ्चगव्येन शुच्यति ॥६६॥ चाएडालपतितादींश्च कामाद्यः संस्पृशेद द्विजः । उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं चाएडाल-सूतिक-शवांस्तथा नारीं रजस्वलाम् । स्पृष्ट्वा स्नायाद्विशुद्ध्यर्थं प्राह देवः वितामहः॥ ६।। चाएडाल - सूतिक - शवेः संस्पृष्टं संस्पृशेद्यदि । ततः स्नात्वाथ आवम्य जपं कुर्यात् समाहितः ॥६९॥ तत्स्पृष्टस्पर्शिनं स्पृष्ट्वा बुद्धिपूर्वं द्विजोत्तमः । स्नात्वाचामेद्विशुद्धयर्थं प्राह देवः पितामहः ॥७०॥ भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित् संस्रवेद् गुदम् । कृत्वा शीचं ततः स्नायादुनोष्य जुहुयाद् घृतम्॥ १॥ चाएडालन्तु शवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कृत्वा विशुध्यति । दृष्ट्वाऽभ्यत्तस्त्वसंस्पृश्य ग्रहोरात्रण शुध्यति ॥७२॥ सूरां स्पृष्ट्वा द्विजःकुर्यात् प्राणायामत्रयं शुनिः । पलागडुं लशुनन्धेव घृतं प्रास्य ततः शुनिः ॥७३॥ ब्राह्मणस्तु शना दष्टस्त्रयहं सायं पयः पिबेत् । नाभेक र्वन्तु दष्टस्य तदेव द्विगुरां भवेत् ॥ ७४॥ स्यादेतत् त्रिगुएां बाह्वोमूर्धि च स्याचतुगुणम् । स्नात्वा जपेद्वा सावित्रीं श्वभिर्देष्टो द्विजोत्तमः॥ ७५॥

श्रनि वैत्र्यं महायज्ञान् यो भुङ्कते तु द्विजोत्तमः। श्रनातुरः सति धने कुच्छ्रार्द्धेन विशुध्यति ॥७६॥ श्राहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद् यस्तु पर्विण् । ऋतौ न गच्छेद्भायाँ वा सोऽपि कुच्छार्द्धमाचरेत्।७७। विनाद्भिरप्यु नाप्यार्त्तरारीरं सन्निवेश्य च । सचेलो जलमाप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति ॥७५॥ बुद्धिपूर्वन्त्वभ्युदिते जपेदन्तर्जले द्विजः । गायत्र्यष्टसहस्रन्तु त्र्यहब्चोपवसेद् व्रती ॥७९॥ ग्रन्गम्येच्छया शूद्रं प्रेतीभूतं द्विजोत्तमः। गायत्र्यष्टसहसुख्च जपं कृपन्निदीप कृत्वा तु शपथान् विप्रो विप्रस्याविषसंयुतम् । स चैव यावकान्नेन कुर्याच्चान्द्रायणं वतम् ॥ १॥ पङ्क्ती विषमदानन्तु वृत्वा कृच्छ्रे ए। शुध्यति । छायां श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद घृतम्॥ दश। ईक्षेदादित्यमग्चिर्हष्ट्वा म्लेच्छान्नमेव वा । मानुषब्बास्थि संस्पृश्य स्नानं कृत्वा विशध्यति॥६३॥ कृत्वा तु मिथ्याध्ययनं चरेद् भैक्षन्तु वत्सरम् । कृतन्नो ब्राह्मणयहे पञ्चसंवत्सरव्रती ॥ ५४॥ हुङ्कारं ब्राह्मणस्योवत्वा त्वङ्कारश्च गरीयसः। स्नात्वा नाश्रन्नहःशेषं प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥५५॥ ताडियित्वा तृणेनापि कर्छे बद्धाय वाससा । विवादे चापि निर्णित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥६६॥ भ्रवगूर्यं चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्ं निपातने । कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम्॥८७॥ गुरोराक्रोशमनृतं कृत्वा कुर्याद्विशोधनम् । एकरात्रं निराहारस्तत्वापस्यापनुत्तये ॥ ५५॥ देवर्षीण मिभमुंखं ष्ठीवनाक्रोधने कृते । उत्कया च दहेजिह्वां दातन्यश्व हिरएयकम् ॥६९॥ देवोद्यानेषु यः कुर्यान्मूत्रोचारं सकृद् द्विजः । छिन्द्याच्छिश्नं विशुद्धघर्यं चरेच्चान्द्रायणं व्रतम्।।९०॥ देवतायतने भूत्रं कृत्वा मोहाद् द्विजोत्तमः। शिश्नस्योत्कर्त्तनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत् ॥९१॥ देवतानामृषीणाञ्च देवानाञ्चेव कुत्सनम् । कृत्वा सम्यक् प्रकुर्वीत प्राजापत्यं द्विजोत्तमः ॥९२॥ तैस्तु सम्भाषणं कृतवा स्नात्वा देवं समर्चयेत् । दृष्ट्वा वीक्षित भारवन्तं समृत्वा विश्वेशवरं समरेत्९३ यः सर्वभूताधिपति विष्वेशानं विनिन्दति । न तस्य निष्कृतिः शक्या कत्तु वर्षशतैरिप ॥९४॥ चान्द्रायणं चरेत् पूर्वं कुच्छ्रश्वेवातिकुच्छ्रकम् । प्रपन्नः शरणं देवं तस्मात् पापाद्विमुच्यते ॥९५॥ वर्षस्वदानं विधिवत् पातकानां विशोधनम् । चान्द्रायणुख विधिना कुच्छुखैवाति कुच्छुकम् ॥९६॥ सर्वपापविनाशनम् । देवताभ्यर्चनं नॄणामशेषाघविनाशनम् ॥९७॥ पूर्यक्षेत्राभिगमनं श्रमावास्यां तिथि प्राप्य यः समाराधयेद्भवम् । ब्राह्म ।त् पूजियत्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९५॥ कुष्णाष्टम्यां महादेवी तथा कृष्णाचतुर्द्शीम् । सम्पूज्य ब्राह्मणमुखे सर्वपापैः प्रमुज्यते ॥९९॥ त्रयोदश्यां तथा रात्री सोपहारं त्रिलोचनम् । इष्ट्वेशं प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः ॥१००॥ उपोषितश्चतृर्हर्यां कृष्णपक्षे समाहितः। यमाय धर्मराजाय मत्यवे चान्तकाय च। सर्वेपापक्षयाय च ॥१०१॥ कालाय प्रत्येकं तिलसंयुक्तान् दद्यात् सप्तोदकाञ्जलीन् । स्नात्वा दद्याच पूर्वाह्वे मुच्यते सर्वपातकैः ॥१०२ ब्रह्मचर्यमधःशय्या उपवासो द्विजार्चनम् । व्रतेष्वेतेतु कुर्वीत शान्तः संयतमानसः ॥१०३॥ श्रमावास्यायां ब्रह्माणं समुद्द्श्य पितामहम् । ब्राह्मणांस्त्रीन् समभ्यच्यं मुच्यते सवंपातकैः॥१०४॥ षष्ट्यामुपोषितो देव श्क्रपक्षे समाहितः। सप्तम्यामर्चयेद्भानुं मुच्यते सर्वपातकैः॥१०॥॥ भरएयाञ्च चतुर्थ्याञ्च रानैश्चरदिने यमम्। पूजयेत् सप्तजन्मोत्थेर्मुच्यते सर्वपातकैः॥१०६॥ एकादश्यां निराहारः समभ्यच्यं जनार्दनम् । द्वादश्यां गुक्रपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते ॥१०७॥ तपो जपस्तीर्थसेवा देव - ब्राह्मणपूजनम् । ग्रह्णादिषु कालेषु महापातकशोधनम् ॥१०८॥ यः सर्वे पाययुक्तोऽपि पुरायतीथेषु मानवः । नियमेन त्यजेत् प्राणान् मुच्यते सर्वेपातकेः ॥१०९॥ ब्रह्माच्नं वा कृतच्नं वा महापातक दूषितम् । भतिरमुद्धरेकारी प्रविष्टा सह पावकम् ॥११०॥

एतदेव परं स्त्रीणां प्रायश्चित्तां विदुर्बुधाः । सर्वेपापसमुद्भूतौ नात्र कार्या विचारणा ॥१११॥ पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्र्षणे रता । न तस्या विद्यते पापिमह लोके परत्र च ॥११२॥ पतिव्रता धर्मरता भद्राएयेव न संशय: । नास्याःपराभवं कर्तुं शकोतीह जनःकचित् ॥११३॥ यथा रामस्य मुभगा सीता त्रैलोक्यविश्रुता। पत्नी दाशरथेर्देवी विजिग्ये राक्ष्मेश्वरम्।।११४॥ रामस्य भार्यां सुभगां रावणो राक्षसेश्वरः । सीतां विशालनयनां चकमे कालनोदितः ॥११५॥ गृहीत्वा मायया वेषं चरन्तीं विजने वने । समाहतुँ मित चक्रे तापसः किल भाविनीम् ॥११६॥ विज्ञाय सा च तद्भावं स्मृत्वा दाशरियं पतिम् । जगाम शरणं विह्नमावसथ्यं शुचि स्मिता ।।११७॥ उपतस्ये महायोगं सर्वलोकविदाहकम् । कृत्वाञ्जलि रामपन्नो साक्षात् पतिमिवाच्युतम्।।११८।। नमस्यामि महायोगं कुशानुं गह्वरं परम् । दाहकं सर्वभूतानामीशानं कालरूपिणम् ॥११९। नमस्ये पावकं देवं साक्षिणं विश्वतोमुखम् । ग्रात्मानं दीप्तवपूषं सर्वभूतहृदि स्थितम् ॥१२०॥ प्रपद्ये शरगां विह्न ब्रह्मार्यं ब्रह्मारूपिणम् । योगिनं कृत्तिवसनं भूतेशं परमं पदम् ॥१२१॥ तं प्रपद्ये जगःमूर्त्तं प्रभवं सर्वतेजसाम । महायोगेश्वरं विह्मिमदित्यं परमेष्ठिनम् ॥१२२॥ प्रपद्ये शरगं रुद्रं महावासं त्रिशूलिनम् । कालाग्नि योगिनाशीशं भोग-मोक्षफलप्रदम्॥१२३॥ प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं भूभुवः स्वः स्वरूपिए। हिरएमये गृहं गुर्ां महान्तमितौजसम् ॥१२४॥ प्रपद्येऽहं सर्वभूनेष्ववस्थितम् । हब्य - काव्यवहं देवं प्रपद्ये विह्नमीश्वरम् ॥१२५॥ प्रपद्ये तत् परं तत्वं वरेग्यं सवितुः शिवम् । स्वर्गमिनि परं ज्योती रक्ष मां हव्यवाहनम्॥१२६॥ इति वह्नचष्टकं जप्तवा रामपत्नी यशस्विनी । ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममून्मीलितेक्षगा ॥१२७॥ श्रथावसध्याद्भगवान् हव्यवाहो महेश्वरः । ग्राविरासीत् सुदीप्तात्मा तेजसा निर्दहन्निव ॥१२८॥ सृष्ट्वा मायामयीं सीतां स रावणवधेच्छया । सीतामादाय रामेष्टां पावकोऽन्तरधीयत ॥१२९॥ तां हष्ट्वा ताहकीं सीतां रावणो राक्षमेश्वरः । समादाय ययौ लङ्कां सागरान्तरसंस्थिताम् ॥१३०॥ कृत्वाथ रावणवर्धं रामो लक्ष्मणसंयुतः । समादायाभवत् सीतां शङ्काकुलितमानसः ॥१३१॥ सा प्रत्ययाय भूतानां सीता मायामयी पूनः । विवेश पावकं दीप्तं ददाह ज्वलनोऽपि ताम् ॥१३२॥ दग्व्वा मायामयीं सीतां भगवानुष्णदाधितः । रामायादर्शयत् सीतां पावकोऽभूत् सुरप्रियः ॥१३३॥ प्रयह्म भत्तु[®]श्चरणी कराभ्यां सा सुमध्यमा । चकार प्रणिति भूमी रामाय जनकात्मजा ॥१३४॥ ष्ट्रह्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः । ननाम विह्न शिरसा तोषयामास राघवः ॥१३४॥ उवाच विह्न भगवन् किमेषा वीरवर्णनि । दग्धा भगवता पूर्वं दृष्ट्वा मत्पार्व्यमागता ॥१३६॥ तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः । यथावृत्तं दाशर्थि भूतानामेव सन्तिवौ ॥१३ 🖏 इयं मा िथिलेशेन पार्वतीं रुद्रवल्लभाम् । श्राराध्य लब्धा तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा। १३८।। भत्तः शुश्रवणोपेता सुशीलेयं पतिव्रता । भवानीपाद्यमानीता मया रावणकामिता ॥१३९॥ या नीता राक्षमेशेन सीता सा भम्मतां गता । मया मायामयी सृष्टा रावण्यस् वधाय सा ॥१४०॥ यदर्थं भवता दृष्टो रावणो राक्षमेश्वरः । मायोप बहुता चैव हतो लोकविनाशनः ॥१४१॥ गृहाण विमलामेनां जानकीं वचनान्मम । पश्य नारायणं देवं स्वात्मानं प्रभवाव्ययम् ॥१४२॥ इत्युक्त्वा भगवांश्चराडो विश्वाचिविश्वतोमुखः । मानितो राघवेसारिनभूतैश्चान्तरधीयत ॥१४३॥ एतत् पतित्रतानां वे माहात्म्यं कथितं मया । स्त्रीगां सर्वाघशमन प्रायिश्वत्तामद स्मृतम् ॥१४४॥ ग्रशेषपापसंयुक्तः प्रषोऽपि सुसंयतः । स्वदेहं प्रयतीर्थेषु त्यवत्वा मुच्येत किल्विषात्।।१४५॥ पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा पुरयेषु वा द्विजः । मुच्यते पातकैः सर्वेः सन्धितैरीप पूरषः ॥१४६॥ इत्येष मानवो धर्मी युष्माकं कथितो मया । महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगस्त्र शाश्वतः ॥१४७॥ योऽनेन विधिना युक्तं ज्ञानयोगं समाचरेत् । स पश्यित महादेवं नान्यः कल्पशतैरिप ॥१४६॥ स्थापयेद्यः परं धर्मं ज्ञानं तत् पारमेश्वरम् । न तस्मादिधको लोके स योगी परमो मतः ॥९४९॥ यः संस्थ पितृ शक्तो न कुर्यान्मोहितो जनः । स योगयुक्तोऽिप मुनिर्नात्यथं भगवित्रयः ॥१५०॥ तस्मात् सदैव दातव्यं ब्राह्मणेषु विशेषतः । धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै ॥१५१॥ यः पठेद्भवतां नित्यं संवादं मम चैव हि । सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमां गतिम् ॥१५२॥ श्राद्धे वा दैविके कार्ये ब्राह्मणानाञ्च सिन्नधौ । पठेत नित्यं सुमनाः श्रोतव्य हिजातिभिः॥१५३॥ योऽर्थं विचार्यं युक्तात्मा श्रावयेद्धा द्विजान् शुचीन् । स दोषकञ्चकं त्यक्तवा याति देवं महेश्वरम् ॥१५४॥ एतावदुक्तवा भगवान् व्यासः सत्यवतीसुतः । समाश्वास्य मुनीन् सूतं जगाम च यथागतम्॥१५४॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे व्यासगीतायां प्रायिश्चित्तविवेको नाम त्रयास्त्रिकोऽध्यायः ॥३३॥

[समाप्ता व्यासगीता]

चतुस्त्रिशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन् विश्रुतानि महान्त्यिप। तानि त्वं कथयास्माकं रोमहर्षेण साम्प्रतम्।। १।।

रोमहर्षण उवाच

श्रृणुध्वं कथयिष्येऽहं तीर्थानि विविधानि च । कथितानि पुराणेषु मुनिभिन्नह्म वादिभिः ॥ २ ॥ यत्र स्नानं जपो होमः श्राद्धं - दानादिकं कृतम् । एकैकशो मुनिश्रेशः पुनात्यासप्तमं कुलम् ।: ३॥ ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । प्रयागं प्रथितं तीर्थं यस्य माहात्म्यमीरितम् ॥ ४ ॥ पञ्चयोजनविस्तीणं सर्वपापविशोधनम् ॥ ५ ॥ भ्रन्यच तीर्थप्रवरं कुरूएां देववन्दितम्। ऋषीणामाश्रमैजु^६टं तत्र स्नात्वा विशुद्धात्मा दम्भ-मात्सर्यंवर्जितः । ददाति यत् किञ्चिदपि पुनात्युभयतः कुलम् ॥ ६ ॥ पर गुह्यं गयातीर्थं पितणाञ्चातिदूर्लभम् । कृत्वा पिएडप्रदानन्तु न भूयो जायते नरः ॥ ७॥ सकुद् गयाभिगमनं कृत्वा पिराँडं ददाति यः । तारिताः पितरस्तेन यास्यन्ति परमां गतिम्।। द ।। रुद्रेण परमात्मना । शिलातले पदं न्यस्तं तत्र पितन् प्रसादयेत् ॥ ९ ॥ लोकहितार्थाय गयाभिगमनं कत्तं यः शक्तो नाभिगच्छति । शोचन्ति पितरस्तं वै वृथा तस्य परिश्रमः ॥१०॥ गायन्ति पितरो गाथाः कीर्रायन्ति महर्षयः। गयां यास्यति यःकश्चित्सोऽस्मान् संतारियष्यित।।११।। यदि स्यात् पातकोपेतः स्वधर्मपरिवर्जितः । गयां यास्यति वंशोत्थःसोऽस्मान् संतारियष्यति॥१२॥ एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः । तेषांन्तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां वजेत् ॥१३॥ ब्राह्मणस्तु विशेषतः । प्रदद्याद्विधिवत् पिराडान् गयौ गत्वा समाहितः॥१४॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धन्यास्तु खलु ते मत्त्र्या गयायां पिएडदायिनः । कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्यान्वयुः परम् ॥१५॥ ्रिङ्वावासमुदाहृतम् । प्रभासमिति विख्यातं यत्रास्ते भगवान् भवः॥१६॥ तीर्प्रवरं श्रन्यज्ञ

तत्र स्नानं ततः श्राद्धं ब्राह्मणानाश्व पूजनम् । वृत्वा लोवमवाप्नोति ब्रह्मणोऽक्षयमुत्तमम् ॥१७॥ तीर्थं यत् त्रेंग्बकं नाम सर्वदेवन मस्कृतम्। पूजियत्वा तत्र मद्रं जयोतिष्टोमफलं लभेत्।।१८।। इ.स.भ्यर्य कपहिनम् । बाह् णान् पूजियत्वा च गारापार्यं लभेद् ध्रुवम्।।१९॥ मुपणिक्षं महादेवं सोमेश्वरं तीर्थवरं परमेष्टिनः । सर्वन्याधिहरं पृग्यं स्द्रमालोक्यकारग्म् ॥२०॥ रुद्रस्य तीर्थानां परमं तीर्थं दिजयं नाम कोभनम् । तत्र लिङ्गं महेशस्य विजयं नाम विश्रतम् ॥२१॥ ब्रह्मचारी समाहितः। उषित्वा तत्र विष्रेन्द्रा प्रयान्ति परमं पदम् ॥२२॥ ष्यमासनियताहारो पूर्वदेशेषु शोभनम् । एकाम्रं देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम् ॥२३॥ दत्त्वात्र शिवभक्तानां कि छिन्छ श्वन्महीं शुभाम् । सार्वभीमो भवेद्राजा मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात् ॥२४॥ सर्वपापविनाशनम् । ग्रहणे तद्रपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥२५॥ पूर्यं श्रन्या च विरजा नाम नदी त्रैलोक्यविश्रता । तस्यां स्नात्वा नरो विप्रा ब्रह्मलोके महीयते ॥२६॥ तीर्थं नारायणस्यान्यन्नाम्ना तु पृरुषोत्तमम् । तत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपूरुषः ॥२७॥ पूजियत्वा परं विष्णुं रनात्वा तत्र द्विजोत्तमः । ब्राह्मणान् पूजियत्वा त् विष्णुलोकमवाप्न्यात्॥२८॥ तीर्थानां परमं तीर्थं गोकर्ण नाम विश्रतम् । सर्वपापहरं कम्भोनिवासः दृष्ट्वा लिङ्गन्त् देवस्य गोकर्णेश्वरमृत्तरम् । ईप्सिताल्लभते कामान् स्दरय दियतो भवेत्॥३०॥ उत्तरश्वापि गोकणं लिङ्गं देवस्य जूलिनः । महादेवञ्चार्चियत्वा शिवसायुज्यमाष्न्रयात् ॥३१॥ तत्र देवो महादेवः स्थाणुरिस्यभिविश्तः। तं हृष्ट्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणान्मुच्यते नरः।।३२॥ अन्यत् कुरु । श्रमं ९ एयं रथानं विष्णोर्महात्मनः । सम्पूष्य प्रखं विष्णुं इवेतहीपे महीयते ।।३३।। यत्र नारायणो देवो रुद्रेण त्रिपुरारिए।। इत्वा यज्ञस्य मथनं दक्षस्य तु विसर्जितः॥३॥ क्षेत्रं सिद्धर्षिगणसेवितम् । पुरायमायतनं विष्णोस्तत्रास्ते पुरषोत्तमः ॥३५॥ समन्ताद्योजनं श्रन्यत् कोकामुखं विष्णोतीर्थमञ्जतकर्मणः । मुक्तोऽत्र पातकैर्मर्गो विष्णुसारूप्यमाप्नुयात् ॥३६॥ शालमामं महातीर्थं विष्णोः प्रीतिविवर्द्धनम् । प्राणांस्तत्र नरस्त्यक्त्वा हृषीकेशं प्रपत्यित ॥३७॥ श्रश्वतीर्थमिति ख्यातं सिद्धावासं सुपावनम् । श्रास्ते हयिशरा नित्यं तत्र नारायणः स्वयम् ॥३८॥ तीर्थं त्रेलोक्यविख्यातं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। पूष्करं सर्वेपापघ्नं मृतानां ब्रह्मलोकदम् ॥३९॥ मनसा संस्मरेद्यस्तु पुष्करं वै द्विजोत्तमः । पूयते पातकैः सर्वैः शक्रोण सह मोदते ॥४०॥ तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः । उपासते सिद्धसङ्घा ब्रह्माणं पद्मसम्भवम् ॥४१॥ तत्र स्नात्वा लभेच्छुद्धो ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । पूजियत्वा द्विजवरं ब्रह्माणं सम्प्रपदयित ॥४२॥ देवेशं पुरुहूतमनिन्दितम् । तद्रपो जायते मर्त्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥४३॥ ब्रह्माद्यैः परिषेवितम् । पूजियत्वा तत्र रुद्रमश्वमेघफलं लभेत् ॥४४॥ सप्तगोदावरं तीर्थं यत्र मङ्कणको रुद्र - प्रयन्नः परमेश्वरम् । ग्रीराधयामास हरं पञ्चाक्षरपरायणः ॥४५॥ नमः शिवायेति मुनिजपन् पञ्चाक्षरन्त्विदम् । ग्राराधयामास शिव तपसा गोवृषध्वजम् ॥४६॥ मुनिर्मञ्जूणकस्तदा । ननत्ते हर्षवेगेण जात्वा रुद्रं समागतम् ॥४७॥ तपसा त प्राह भगवान् रुद्रः किमर्थं निततं त्वया । हष्ट्वापि देवमीशानं नृत्यति स्म पुनःपुनः ॥४८॥ सोऽन्वीक्ष्य भगवानीशः सगवं गर्वशान्तये । स्वकं देहं विदार्यासी भस्मराशिमदशयत् ॥४९॥ परयैनं मच्छरीरोत्थं भस्मापि स्वं द्विजोत्तम । माहास्म्यमेतत् तपसस्त्वाहशोऽन्योपि विद्यते ॥५०॥ यः सगर्वे हि भवता नर्त्तितं मुनिपुङ्गव । न युक्तं तापसस्यैतत् त्वत्तोऽप्यभ्यधिको ह्यहम्॥५१॥ इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रद्रः किल विश्वहक् । ग्रास्थाय परमं भावं ननर्त्तं जगतो हरः ॥५२॥

सहस्रशीर्षो भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात् । दंष्ट्राकरालवदनो ज्वालामाली भयञ्जूरः ॥५३॥ सोऽन्वपश्यदयेशस्य पार्श्वे तस्य त्रिशूलिनः विशाललोचनामेकां देवीं चारुविलासिनीम् ॥५४॥ सूर्यायुतसमाकारां प्रसन्नवदनां शिवाम् । सस्मितं प्रेक्ष्य विश्वेशं तिष्ठन्तीममितद्युतिम् ॥५५॥ ह ष्ट्वा सन्त्रस्तहृदयो वेपभानो मुनीश्वरः । ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायं जपन् वशी ॥५६॥ प्रसन्नो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः। पूर्ववषं स जगृहे देती चान्तर्हिताऽभवत् ॥५७॥ ग्रालिङ्गच भक्तं प्रणतं देवदेवः स्वयं शिवः । न भेतःयं त्वया वत्स प्राह किं ते ददाम्यहम्॥५५॥ प्रणम्य सूर्झा गिरिशं हरं त्रिपुरसूदनम् । विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः ॥ १९॥ नमोऽस्तु ते महादेव महंश्वर नमोऽस्तु ते । किमेतद्भगद्रपं सुघोरं विश्वतोमुखम्।।६०।। का च सा भगवत्पाइर्वे राजमाना व्यवस्थिता । ग्रन्तितैव सहसा सर्वीमच्छामि वेदितूम् ॥६१॥ इत्युक्तो व्याजहारेशस्तदा मङ्कणकं हरः। महेशः स्वात्मनो योगं देवीश्व त्रिपूरानलः॥६२॥ ग्रहं सहस्रतयतः सर्वातमा सर्वतोमुखः। दाहकः सर्वपाशानां कालः कालहरो हरः॥३३॥ मयैव प्रेर्यं विश्वं चेतनाचेत तत्म कम् । सोऽन्तर्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः ॥६४॥ तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुगात्मिका । प्रोच्यते मुनिभिः शक्तिर्जगद्योनिः सनातनी ॥६५॥ स एष मायया विश्व व्यामोहयति विश्वकृत् । नारायणः परोऽव्यक्तो मायारूप इति श्रृतिः ॥६६॥ एवमेत जगत् सर्वे सर्वेदा स्थापयाम्यहम् । योजयामि प्र इत्याहं पुरुषं पञ्चिविजनम् ।।६७॥ तया स सङ्गतो देवः कूटस्थः सर्वगोऽमनः । स्जत्यशेषमेवेदं स्वमूर्तेः प्रकृतेरजः ॥६८॥ स देवो भगवान् ब्रह्मा विश्वरूपः पितापहः । तवतत् कथितं सम्यक् स्रव्हत्वं परमेष्ठिनः ॥६९॥ एकोऽहं भगवान् कालो ह्यनादिश्चान्त कृद्धिभुः । सनास्याय परं भावं प्रोक्तो रुद्रो मनीषिभिः ॥७०॥ ममैव सा परा शक्तिर्देवी विद्येति विश्रुता । दृष्टो हि भवता तूनं विद्यादेहः स्वयं ततः ॥७१।। प्रधानपुरुषेश्वरः । विष्णुर्वद्या च भगवात् रुद्र:काल इति श्रुतिः॥७२॥ एवमेतानि तत्त्वानि ब्रह्म एयेव व्य गस्थितम् । तदात्मकं यदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रृतिः ॥७३॥ त्रयमेतदनाद्यन्तं भ्रात्मानन्दपरं तत्वं विन्मात्रं परमं पदम् । ग्राकाशं निष्कलं ब्रह्म तस्मादन्यन्न विद्यते ॥७४॥ भक्तियोगाश्रयेण तु । सम्पूज्या वन्दनीयाऽहं ततस्तं पश्यसीश्वरम् ॥७१॥ एवं विज्ञाय भवता एतावदुक्त्या भगवान् जगामादर्शन हरः। तत्रेव भक्तियोगेन रुद्रमाराधयन्मुनिः॥७६॥ एतत् पवित्रमतुलं तीर्थं ब्रह्मिवितम् । वंसेव्य ब्राह्मणो विद्वात् मुच्यते सर्वपातकैः ॥७७॥

इति श्रीकीमें महापुराणे उत्तरभागे तीर्थोपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

850

कूर्मपुराणम्

पञ्चित्रंशोऽध्यायः

स्त उवाच

अन्यत् पवित्रं विशुलं तीर्थं त्रैलोदयविश्रुतम् । रुद्रकोटिरिति ख्यातं रुद्रस्य परमेष्ठिनः ॥ १॥ देवदर्शनतत्पराः । कोंटिब्रह्मर्षयो दान्तास्तं देशमगमन् परम् ॥ २ ॥ पुरा पूर्यतमे काले श्रहं द्रक्ष्यामि गिरिशं पूर्वमेव पिनाकिनम् । ग्रन्योन्यं भक्तियुक्तानां दिवादोऽभून्महान् किल।। ः ।। तेषां भक्ति तदा दृष्ट्वा गिरिको योगिनां गुरुः। कोटिरूपोऽभवदुद्रो रुद्रकोटिस्ततः स्मृतः।। ४॥ ते सम सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहारायम् । पश्यन्तः पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टिधयोऽभवन् ॥ ५ ॥ महादेवं पूर्वमेवाहमी खरम् । दृष्टवानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्ति घयोऽभवन् ॥६॥ श्रथान्तरीक्षे विमलं पश्यन्ति सम महत्तरम् । ज्योतिस्तत्रैव ते सर्वे न्यलीयन्त परं पदम् ॥ ७॥ यतः स देवोऽध्युषितस्तीर्थं पुरायतमं शुभम् । हब्ट्वा रुद्रं समभ्यन्यं रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्।। 🖘 ।। स्रन्यच तीर्थप्रवरं नाम्ना मधुवनं शुभम्। तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्याद्वीसनं लभेत्।। ९॥ देशः पुरायतमः शुभः । तत्र गत्वा पितृन् पूज्य कुलानां तारयेच्छतम्।।१०।। श्रथान्या पद्मनगरी कालखरं महातीर्थं लोके रुद्रो महेश्वरः । कालं जरितवान् देवो यत्र भक्तप्रियो हरः ॥११॥ व्वेतो नाम शिवे भक्तो राजर्षिप्रवरः पुरा । तदाशीस्तन्नमस्कारः पूजयामास शूलिनम् ॥१२॥ संस्थाप्य विधिना लिङ्गं भक्तियोगपुरःसरः। जजाप रुद्रमिनशं तत्र सन्यस्तमानसः॥१३॥ सितं कालोऽय दीप्तात्मा शूलमादाय भाषणम् । नेतुमभ्यागतो देशं स राजा यत्र तिष्ठति ॥१४॥ वीक्ष्य राजा भयाविष्टः शूलहस्तं समागतम् । कालं कालकरं घोरं भीषणं चएडदी घितिम् ॥१५॥ उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पष्ट्वासौ लिङ्गमुत्तमम् । ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम् ॥१६॥ नमन्तमसक्रद्भवम् । एह्यं होति पुरः स्थित्वा कृतान्तः प्रहसन्निव ॥१७॥ जपन्तमाह राजानं रुद्रपरायणः । एकमीशार्चनरतं विहायान्यान् निसूदय ॥१८॥ तमुवाच भयाविष्टो राजा भगवानब्रवीद्भातमानसम् । रुद्रार्चनरतो वान्यो मद्वशे को न तिष्ठति ॥१९॥ इत्युक्तवन्तं एवमुक्त्वा स राजानं कालो लाकप्रकालनः । बबन्ध पाशं राजापि जजाप शतरुद्रियम् ॥२०॥

ग्रथान्तरोक्षे विपुलं दीप्यमानं तेजोराशि भूतभत्तः पुराण्म्। ज्वालामालासंवृतं व्याप्य विश्वं श्रादुभूतं सास्थतं सन्ददर्श ॥२१॥ तन्मध्येऽसौ पुरुषं स्वमवर्णं देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम्। तेजोरूपं पश्यात स्मातिहृष्टो मेने चास्मन्नाथ ग्रागच्छतीति ॥२२॥ ग्रागच्छन्तं नातिदूरेऽथ हष्ट्वा कालो रुद्र देवदेव्या महेशम्। व्यपेतभीरिखलेशीकनाथ राजिषस्तं नेतुमभ्याजगाम् ॥२३॥ ग्रालोक्यासौ भगवानुप्रकमा देवो रुद्रो भूतभर्ता पुराणः। एवं भक्तं सत्वरं मां स्मरन्तं देहीतीमं कालरूपं ममेति ॥२४॥ श्रुत्वा वाक्यं गोपतेरुप्रभावः कालात्मासौ मन्यमानः स्वभावम् । श्रुत्वा वाक्यं गोपतेरुप्रभावः कालात्मासौ मन्यमानः स्वभावम् । श्रुत्वा भक्तं पुनरेवाथ पाशैः कुद्धो रुद्रञ्जाभिदद्राव वेगात् ॥२४॥ प्रेक्ष्यायान्तं शैलपुत्रीमथेशः सोऽन्वीक्ष्यान्ते विश्वमायाविधिजः । सावजं वे वामपादेन कालं राज्ञश्चैनं पश्यतो ह्याजघान ॥२६॥

ममार सोऽतिभीषणो महेशपादघातितः । रराज देवतापितः सहोमया पिनाकघृक् ॥२७॥ निरीक्ष्य देवमीश्वरं प्रहृष्टमानसो हरम् । ननाम सात्त्वमध्ययं स राजपुङ्गवस्तदा ॥२८॥ नमो भवाय हेतवे हराय विश्वशम्भवे । नमः शिवाय घीमते नमोऽपवर्गदायिने ॥२९॥ नमो नमो नमोऽस्तु ते महाविभूतये नमः । विभागहीनरूपिणे नमो नराघिपाय ते ॥३०॥ नमोऽस्तु ते गणेश्वर प्रपन्नदुःखनाशन । ग्रनादिनित्यभूतये वराहृष्टुङ्गधारिणे ॥३१॥ नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नमः । नमो महानटाय ते विनाहवे हराय ते ॥३२॥ ग्रथानुग्रह्य शङ्करः प्रणामतत्परं नृपम् । स्वगाणपत्यमञ्ययं स्वरूपतामणो ददी ॥३३॥ सहोमया सपार्षदः सराजपुङ्गवो हरः । मुनीशसिद्धवन्दितः क्षणादहश्यतामणात् ॥३४॥ काले महेशनिहते लोकनाथः पितामहः । ग्रयाचत वरं रद्रं सजीवोऽयं भवत्विति ॥३४॥ नास्ति कश्चिदपीशान दोषलेशो वृषध्वज । कृतान्तस्यैव भवता तत्कार्ये विनियोजितः ॥३६॥ स देवदेववचनाद्वेवदेवश्वरो हरः । तथास्त्वत्याह विश्वात्मा सोऽपि ताहग्विधोऽभवत्॥३७॥ इत्येतत् परमं तीर्थं कालखरमिति श्रुतिः । गत्वाभ्यच्यं महादेवं गाणपत्यश्च विन्दति ॥३६॥ इत्येतत् परमं तीर्थं कालखरमिति श्रुतिः । गत्वाभ्यच्यं महादेवं गाणपत्यश्च विन्दति ॥३६॥ इत्येतत् परमं तीर्थं कालखरमिति श्रुतिः । गत्वाभ्यच्यं महादेवं गाणपत्यश्च विन्दति ॥३६॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे तीर्थोपाख्याने कालवधे पञ्चित्रिशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

इदमन्यत् परं स्थानं गुह्याद् गुह्यतरं महत् । महादेवस्य देवस्य महालय इति श्रुतिः ॥ १ ॥ रुद्रेण त्रिप्रारिणा। शिलातले पदं न्यस्तं नास्तिकानौ निदर्शनम् ॥ २॥ देवाधिदेवेन तत्र पागुपताः शांता भस्मोद्धूलितविग्रहाः । उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्पराः ॥ ३ ॥ स्नात्वा तत्र पदं शावं हष्ट्वा भिकत्रर:सरम् । नमस्ऋत्याथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ॥ ४ ॥ श्रन्यच देवदेवस्य स्थानं शम्भोमहात्मनः । केदारमिति विख्यातं सिद्धानामालयं श्रभम् ॥ ४ ॥ तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यच्यं वृषकेतवम् । पीत्वा चैवोदकं शुद्धं गाएपत्यमवाष्तुयात् ॥ ६ ॥ श्राद्ध-दानादिकं कृत्वा ह्यक्षयं लभते फलम् । द्विजातिप्रवरैर्जुष्ट योगिभिर्जितमानसैः॥ ७॥ सर्वपापविनाशनम् । तत्राभ्यच्यं श्रोनित्रासं विष्णुलोके महीयते ॥ ८॥ प्लक्षावतरणं स्वर्गलोकगतिप्रदम् । ग्रक्षयं विन्दते स्वर्गं तत्र गत्वा द्विजोत्तमः ॥ ९ ॥ मगधारएयं तीर्थं कनखलं पुरायं महापातकनाशनम्। यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशितः॥१०॥ शुचिभविसमन्वितः । मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥११॥ गङ्गामुपस्पृश्य महातीर्थमिति ख्यातं पुर्यं नारायणित्रयम् । तत्राभ्चर्यं हृशोकेशं श्वेतद्वीपं निगच्छति ॥१२॥ श्रन्यच तीर्थप्रवरं नाम्ना श्रीपर्वतं शुमम् । ग्रत्र प्राणान् परित्यज्य रुद्रस्य दियतो भवेत् ॥१३॥

कूर्मपुराणम्

तत्र सिन्निहितो रद्रो देव्या सह महेश्वरः । स्नान-पिएडादिकं तत्र दत्तमक्षयमुत्तमम् ॥१४॥ गोदावरी नदी पुराया सर्वपाप - प्रणाशनी । तत्र स्नात्वा पितृत् देवांस्तर्पयित्वा यथाविधि । सर्वपापविशुद्धातमा गोसहस्रफलं लभेत् ॥१५॥

पवित्रसिलला पुराया काबेरी विपुला नदी । तस्यां स्नात्वोदकं कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥१६॥ त्रिरात्रोपितिनाथ एकरात्रोपितेन वा । द्विजातीनान्तु कथितं तीर्थानामिह सेवनम् ॥१७॥ यस्य वाङ्मनसे शुद्ध हस्त पादी च संयतौ । श्रलोलुपो ब्रह्मचारी तीर्थानां फलमाप्नुयात् ॥१८॥ स्वामितीर्थं महातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्वतम् । तत्र सिन्नहितो नित्यं स्कन्दोऽमरनमस्कृतः ॥१९॥ स्नात्वा कुमारघारायां कृत्वा देवादितप्णम् । ग्राराध्य परामुखं देवं स्कन्देन सह मोदते ॥२०॥ नदी त्रेलोक्यविख्याता तास्रपर्णीति नामतः । तत्र स्नात्वा पितृ भक्त्या तप्पित्वा यथाविधि । पापकर्त्वापि पितृ स्तारयेन्नात्र संशयः ॥२१॥

चन्द्रतीर्थीमिति एपातं काबेर्याः प्रभवे ऽक्षयम् । तीर्थे तत्र भवेद् दत्तं मृतानां सद्गतिप्रदम् ॥२२॥ विन्ध्यपादे प्रपश्यन्ति देवदेवं सदाशिवम् । भक्त्या ये ते न पश्यन्ति यमस्य वदनं द्विजाः॥२३॥ देविकायां वृषो नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम् । तत्र स्नात्वोदकं कृत्वा योगसिद्धिश्व विन्दति ॥२४॥ तीयं सर्वपापविनागनम् । दशानामश्वमेवानां तत्राप्तोति फलं नरः ॥२५॥ पूर्डरीकं तथा तीर्थं ब्राह्मणेरुपशोभितम् । तत्राभिगम्य युक्तात्मा पौर्डरीकफलं लभेत् ॥२६॥ ताथभ्यः परमं तीर्थं ब्रह्मतार्थमिति श्रुतम् । ब्रह्माणमचैयित्वात्र ब्रह्मलोके महीयते ॥२७॥ व्लक्त्रस्रवणं शुभम् । व्यासतीर्थमिति ख्यातं मैनाकश्च नगोत्तमः ॥२८॥ सरस्वत्या विनशनं सर्वपापविनाशनः । पितृणां दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुता ॥२६॥ यमुनाप्रभवश्चेव तस्यां स्नात्वा दिवं यान्ति मृतो जातिस्मरो भवेत् । कुबेरतुङ्गं पापष्नं सिद्ध - चारणसेवितम् ॥३०॥ कुबरानुचरा भवेत्। उमातुङ्गामित ख्यातं यत्र सा रुद्रवल्लभा ॥३१॥ प्राणांस्तत्र परित्यज्य महादेवीं गोसहस्रफलं लभेत्। भृगुतुङ्ग तपस्तप्तः श्राद्धं दानं तथा कृतम् ॥३२॥ सप्त पुनाताति मितममे । कार्यपस्य महातीर्थं कालसर्विरिति श्रुतम् ॥३२॥ तत्र श्राद्धानि देशानि नित्यं पापक्षयेच्छया । दशाणीयां तथा दानं श्राद्धं होमस्तपो जपः ॥३४। सवदा । तीर्थं द्विजातिभिजुं ष्टं नाम्ना वे कुरु जाङ्गलम्॥३४॥ ध्रक्षयश्वाव्ययश्वेव कृतं भवति दत्त्वात्र दानं विधिवद् ब्रह्मलोके महीयते । वैतरएयां महातार्थ स्वणवेद्यां तथैव च ।।३६॥ ब्रह्मपृष्टे च शिरसि ब्रह्मणः परमे शुभे । भरतस्याश्रमे पुर्पे पुर्पे एध्रवने शुभे ॥३७॥ महाह्रदे च कौशिक्यां दत्तं भवति चाक्षयम् । मुगडपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवन् धीमता ॥३८॥ हिताय सर्वभूतानां नास्तिकानां निदर्शनम् । ग्रत्ये ॥५ तु कालेन नरा धमपरायण ॥३८॥ त्वचामवोरगः । नाम्ना कनेकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥४०॥ पाप्मानमुःसुजेद्यत्र जीर्णा ब्रह्मार्षिगगासेवितम् । तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति कुशीला वा द्विजातयः।४१। उदीच्यां मुराडपृष्ठस्य दत्तं वापि सदा श्राद्धमक्षय समुदाहृतम् । ऋणैश्विभिर्नरः स्नात्वा मुच्यते क्षाणकलमषः ॥४२॥ मानसे सरित स्नात्वा शकस्याद्धांसन लभेत् । उत्तरं मान । गत्वा सिद्धि प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥४३॥ तिस्मन् निवत्तेयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम् । स कामान् ल मते दिञ्यान् मोक्षोपायञ्च विन्दति॥४४॥ पर्वतो हिमवान् नाम नानाघातुविभूषितः । योजनानां सहस्राणि साशीतिस्त्वायतो गिरिः॥४५॥ देविषगणसेवितः । तत्र पुष्करिएगि रम्या सुषुम्णा नाम नामतः ॥४६॥ सिद्ध - चारए। सङ्कीर्णी तत्र गत्वा दिजो विद्वान् ब्रह्महत्यां विमुचिति । श्राद्धं भवति चाझय्यं तत्र दत्तं महोदयम् ॥४७॥

तारयेच्च पितृत सम्यग्दश पूर्वात् दशापरान् । सर्वत्र हिमवान् पुर्यो गङ्गा पुर्या समन्ततः ।।४०॥ नद्यः समुद्रगाः पुर्याः सम्द्राश्च विशेषतः । वदर्याश्रममासाद्य मुच्यते सर्वेकिल्विषत् ॥४०॥ तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः । श्रक्षयं तत्र दानं स्याज्जप्यं वापि तथाविषम् ॥४०॥ महादेविष्रयं तीर्थं पावनं तिद्वशेषतः । तारयेच्च पितृत् सर्वान् दत्त्वा श्राद्धं समाहितः ॥४१॥ देवदाश्चनं पुर्यं सिद्ध - गन्धवंसेवितम् । महता देवदेवेन तत्र दत्तं महाफलम् ॥४०॥ मोहियत्वा मुनीन् सर्वात् समस्तैः सम्प्रपूजितः । प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रात् प्राह भावितान् ॥ ३॥ इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यय सर्वदा । मद्भावनासमायुक्तास्ततः सिद्धमवाप्स्यय ॥४४॥ येऽत्र मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरायणाः । तेषां ददामि परमं गाणपत्यं हि शाश्वतम् ॥५५॥ श्रत्न नित्यं वसिष्यामि सह नारायणन तु । प्राणानिह नरस्त्यका न भूयो जन्म चान्नुयात् ॥५६॥ संस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तागता जनाः । तेषाश्च सर्वपाणि नाशयामि द्विजोत्तमाः ॥५७॥ श्राद्धं दानं तपो होमःपिएडनिर्वपण् तथा । ध्यानं जपश्च नियमः सर्वमत्राक्षयं कृतम् ॥५८॥ तस्मात् सर्वप्रयत्ने न द्रष्टव्यं हि द्विजातिभिः । देवदाक्वनं पुर्यं महादेवनिषेवितम् ॥५९॥ यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः । तत्र सिन्निहिता गङ्गा तीर्थान्यायतनानि च ॥५९॥ यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः । तत्र सिन्निहिता गङ्गा तीर्थान्यायतनानि च ॥५९॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे तीर्थोपाख्यानं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६॥

-:0:-

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

कथं दारुवनं प्राप्तो भगवान् गोवृषध्वजः । मोहयामास विप्रेन्द्रान् सूत तद्ववतुमईसि ॥ १ ॥

स्त उवाच

पुरा दाह्यने रम्ये देव-सिद्धनिषेविते । सपुत्रदारा सुनयस्तपश्चेकः सहस्रणः ॥ २ ॥ प्रवृत्तः विविधं कर्म प्रकृवीणा यथाविधि । यजन्ति विविधेर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षयः ॥ ३ ॥ तेषां प्रवृत्तिविन्यस्त - चेतसामथ शूलभृत् । व्याख्यापयन् सदा दोषं ययौ दाह्वनं हरः ॥ ४ ॥ कृत्वा विश्वगुरुं विष्णुं पाहवें देवो महेहवरः । ययौ निवृत्तविज्ञानः स्थापनार्थेख शङ्करः ॥ ४ ॥ ग्रास्थाय विपुलं वेषमूनविज्ञातिवत्सरः । लीलालसो महाबाहुः पीनाङ्गश्चारुलोचनः ॥ ६ ॥ चामीकरवपः श्रोमान् पूर्णंचन्द्रनिभाननः । मत्तमातङ्गगमनो दिग्वासा जगदीहवरः ॥ ७ ॥ जातक्ष्यमयी मालां सर्वरत्नैरलङ् हताम् । द्यानो भगवानीशः समागच्छित सस्मितः ॥ ५ ॥ योऽन तः पुह्षो योनिलोकानामःययो हरिः । स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छित श्रुलिनम्॥ ९ ॥ सम्पूर्णंचन्द्रवदनं पीनोन्नत्तपयोधरम् । शुचिस्मितं सुप्रसन्नं रणन्नपुरकृद्वयम् ॥१०॥

१५४

सुपीतवसनं दिव्यं व्यामलं चारुलीचनम् । उदारहंसगमनं विलासि सुमनोहरम् ॥११॥ एवं स भगवानीशो देवदारुवनं हरः । चचार हरिणा सार्द्धं मायया मोहयज् जगत् ॥ २॥ हष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाविनम् । मायया मोहिता नार्यो देवदेवं समन्वयुः ॥१३॥ विस्नस्तवस्ताभरणास्त्यक्त्वा लज्जां पित्रताः । सहैव तेन कामार्त्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि ॥१४॥ ऋषीणां पुत्रका ये स्युर्युवानो जितमानसाः । श्रन्वगच्छन् हृषीकेशं सर्वे कामप्रपीड़िताः ॥१५॥

गायन्ति नृत्यन्ति विलासयुक्ता नारीगणा नायकमेकमीशम्।
हुट्वा सपत्नीकमतीव कान्तिमष्टं तथालिङ्गितमाचरन्ति ॥१६॥
ते सिन्नपत्य स्मितमाचरन्ति गायन्ति गीतानि मुनीशपृत्राः।
ग्रालोक्य पद्मापितमादिदेवं भ्रूभङ्गमन्ये विचरन्ति तेन ॥१७॥
ग्रासामथैषामिप वासुदेवो मायो मुरारिर्मनिस प्रविष्टः।
करोति भोगान् मनिस प्रवृत्ति मायानुभूतान् स इतीव सम्यक् ॥१८॥
विभाति विश्वामरविश्वनाथः समाधव - स्त्रीगणसन्निविष्टः।
ग्रशेषशक्त्या समयं निविष्टो यथैकशक्त्या सह देवदेवः॥१०॥
करोति नित्यं परमं प्रधानं तदा विरूढः पुनरेव भूयः।
ययो समारुह्य हिरः स्वभावं तमीहशं नाम तमादिदेवम्॥२०॥

हुद्वा नारीकुलं रुद्रं पुत्रानिप च केशवम् । मोहयन्तं मृनिश्रेष्ठाः कोपं सन्द्धिरे भृशम् ॥२१॥ अतीव पर्षं वाक्यं प्रोचुदेवं कपिह्निम् । शेपुश्च शापिविविधेमीयया तस्य मोहिताः ॥२२॥ तपासि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यन्त शंकरे । यथादित्यप्रतीकाशे तारका नभिस स्थिताः ॥२३॥ तं मत्स्यं तापसा विष्राः समेत्य वृषभध्वजम् । को भवानिति देवेशं पृच्छन्ति स्म विमोहिताः॥२४॥ सीऽब्रवीद्भगवानीशस्तपश्चर्तुमहागतः । इदानीं भार्याया देशे भवद्भिरह सुव्रताः ॥२६॥ तस्य ते वाक्यमाकर्ण्यं भृग्वाद्या मृतिपुङ्गवाः । ऊनुगृहीत्वा वसनं त्यक्तवा भार्यां तपश्चर ॥२६॥ अथोवाच विहस्येशः पिनाकी नीजलोहितः । सम्प्रेक्ष्य जगतां योनि पार्श्वस्थञ्च जनार्दनम् ।२७॥ कथं भवद्भिरुदितं स्वभार्यापोषणोत्मुकैः । त्यक्तव्या मम भार्येति धर्मजैः शान्तमानसैः ॥२६॥

ऋषय ऊचुः

व्यभिचाररता भार्याः सन्त्याज्याः पतिनेरिताः । ग्रस्माभिरेषा सुभगा ताहशी त्यागमर्हति ॥२९॥

महादेव उवाच

न कदाचिदियं विप्रा मनसाप्यन्यमिच्छति । नाहमेनामपि तथा विमुञ्जामि कदाचन ॥३०॥

ऋषय ऊचु:

हण्ट्वा व्यभिचरन्तीह हास्माभिः पुरुषाधम । उनतं हासत्यं भवता गम्यतां क्षिप्रमेव हि ॥३१॥ एवमुक्ते महादेवः सत्यमेव मयेरितम् । भवतां प्रतिभात्येषेत्युक्त्वासौ विचचार ह ॥३२॥ सोऽगच्छद्धरिणा सार्धं मुनीन्द्रस्य महात्मनः । विसष्ठस्याश्रमं पुण्यं भिक्षार्थी परमेश्वरः ॥३३॥ हण्ट्वा समागतं देवं भिक्षमाणमरुन्धती । विमष्ठस्य प्रिया भवत्या प्रत्युद्गम्य ननाम् तम्॥३४॥ प्रक्षल्य पादौ विमलं दत्त्वा चासनमुत्तमम् । सम्प्रेक्ष्य शिथालं गात्रमभिधातहतं द्विजैः ॥३५॥

सन्ध्यामास भैषज्यैविषर्णवदना सती । चकार महतीं पूजां प्रार्थयामास भार्यया ॥३६॥ को भवान कुत ग्रायातः किमाचारो भवानिति । उच्यतामाह भगवान्।सिद्धानां प्रवरो ह्यहम् ॥३७॥ यदेतन्मरहलं शुद्धं भाति ब्रह्ममयं सदा । एषैव देवता मह्यं घारयामि सदैव तु ॥३८॥ इत्युक्तवा प्रययो श्रीमाननुगृह्य पतित्रताम् । ताडयाश्विकरे दर्ग्डेर्यष्टिभिर्मुष्टिभिर्द्धिजाः ॥३९॥ हृष्ट्वा चरन्तं गिरिशं नग्नं विद्यत्तकक्षणम् । प्रोचुरेतद्भवांत्विज्ञञ्चस्त्रत् तु दुर्मते ॥४०॥ तानव्रवीन्महायोगी करिष्यामीति शङ्करः । युष्माकं मामके लिङ्गे यदि द्वेषोऽभिजायते ॥४०॥ इत्युक्तवोत्पाटयामास भगवान् भगनेत्रहा । नापश्यंस्तत् क्षणाच्चेशं केशवं लिङ्गमेव च ॥४२॥ तदोत्पाता बभृवुहि लोकानां भयशंसिनः । नाराजत सहसांशुश्चवाल पृथिवी पुनः । निष्प्रभाश्च ग्रहाः सर्वे चुक्षभे च महोदिधः ॥४३॥

भ्रवश्यच्चानसूयात्रेः स्वप्नं भार्या पतित्रता । कथयामास विप्राणां भयदाकुलितेन्द्रिया ॥४४॥ तिजसा भासयन् कृत्स्नं नारायणसहायवान् । भिक्षमाणः शिवो नूनं हष्टोऽस्माकं गृहेष्विति॥४५॥ तस्या वचनमाक्त्यं शङ्कमाना महर्षयः । सवं ज्यममहायोगं ब्रह्माणं विश्वसम्भवम् ॥४६॥ उपास्यमानममलेयोगिभिन्नंह्मवित्तमेः । चतुर्वेदैम् तिमिद्धः सावित्र्या महितं प्रभूम ॥४७॥ ग्रासीनमासने रम्ये नानाश्चर्यममन्विते । प्रभामहस्रकलिले ज्ञानैश्वर्योद्दसंयुते ॥४६॥ विश्वाजमानं वपुषा सिमतं मृश्व लोचनम् । चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमजं परम् ॥४६॥ विलोवय देववपुषं प्रसन्नवदनं शुचिम् । शिरोभिर्धरणों गत्वा तोषयामास्रीश्वरम् ॥४०॥ तान् प्रसन्नो महादेवश्चतुर्मृत्तिश्चतुर्मुखः । व्याजहार मुनिश्वेष्ठाः किमागमनकारणम् ॥४१॥ तस्य ते वृत्तमिखलं ब्रह्मणः परमात्मनः । ज्ञापयाश्विकरे सर्वे कृत्वा शिरसि चाखलिम्॥४२॥

ऋषय ऊचुः

कश्चिद्दारुवनं पुग्यं पुरुषोऽतीवशोभनः । भार्यया चारसर्वाङ्ग्या प्रविष्टो नग्न एव हि ॥५३॥ मोहयामास वपुषा नारीणां कुलमीश्वरः । कन्यकानां प्रिया चास्य दूषयामास पुत्रकान् ॥५४॥ ग्रस्माभि विविधाः शाणाः प्रवृत्ताश्च पराहताः । ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिङ्गन्तुविनिपातितम्॥५४॥ ग्रन्तिहितश्च भगवान् सभायौ लिङ्गमेव च । उत्पाताश्चाभवन् घोराः सर्वभूतभयङ्कराः ॥५६॥ क एष पुरुषो देव भीताः स्मः पुरुषोत्तम् । भवन्तमेव शरणं प्रपन्ना वयमच्युत ॥५७॥ ववं हि वेत्सं जगत्यस्मिन् यिकिञ्चिदह चेष्टितम् । ग्रनुग्रहेण युवतेन तदास्मानुपपालय ॥५८॥ विज्ञापितो मुनिगणैविश्वात्मा वमलोद्भवः । ध्यात्वा देवं त्रिशूलाङ्कं कृताञ्चिलरभाषत ॥५९॥

ब्रह्मोबाच

हा कष्टं भवतामद्य जातं सर्वार्थनाशनम् । धिग्वनं धिक् तपश्चयी मध्यैव भवतामिह ॥६०॥ हमप्राप्य पुर्यस्स्थानां निष्ठीनां परमं निष्ठिम् । उपेक्षितं वृथाभावैभविद्भिरिह मोहितैः ॥६१॥ काङ्क्ष्नित योगिनो नित्यं यतन्तो यतयो निधिम्। यमेव तं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम् ॥६२॥ यं समासाद्य देवानामैदवर्यभिखलं ध्रुवम् । तम।साद्याक्षयं देवं हा भवद्भिरुपेक्षितम् ॥६३॥ यमर्चियत्वा सततं विद्वेद्यत्विमदं मम । स देवोपेक्षितो हष्ट्वा निधानं भाग्यविजताः॥६४॥ यस्मिन् समाहितं दिव्यमैदवर्यं यत्तदव्ययम् । तमासाद्य निधि ब्रह्म हा भवद्भिर्वृथा कृतम् ॥६५॥ एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेदवरः । न तस्य परमं किश्वित् पदं समधिगम्यते ॥६६॥ देवतानामृषीणां वा पितृणाश्वापि शाद्यतः । सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाम् ॥६७॥ संहरत्येष भगवान् कालो भूत्वा महेदवरः । एष चेव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा ॥६८॥ एष चक्की चक्रवर्ती श्रीवत्सकृतलक्षणः । योगी कृतयुगे देवस्त्रेतायां यज्ञ एव च । द्वापरे भगवान् कालो धर्मकेतः कलो युगे ॥६९॥

याभिविश्वमिदं ततम्। तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुरितिस्मृतिः॥७०॥ रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो मुत्तिरन्या स्मृता चास्य दिग्वासा वै शिवा ध्रवा । यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् ॥७१॥ या चास्य पार्श्वगा भार्या भवद्भिरभिभाषिता । स हि नारायणो देवः परमात्मा सनातनः । ७२॥ तस्मात् सर्वमिदं जातं तलेव च लयं व्रजेत् । स एष मोहयेत् कृत्स्नं स एष च परा गतिः ।।७३।। सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । एकश्रुङ्को महानात्मा पुराणात्माक्षरो हरिः ॥७४॥ परमेश्वरः । एकमूर्तिरनन्तात्मा नारायण इति श्रतिः ॥७५॥ चतुर्वेदश्चतुमूत्ति स्त्रिगुणः भगवानापोमयतनुः प्रभुः । स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्वाह्मणैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥७६॥ स तस्य गर्भो संहत्य सकलं विश्वं कल्पान्ते पुरुषोत्तमः । शेते योगामृतं पीत्वा यत्तद्विष्णोः परं पदम् ॥७७॥ न जायते न म्रियते वर्द्धते न च विश्वहक् । मूलप्रकृतिरव्यक्ता गीयते वैदिकैरजः ॥७८॥ ततो निषायो व्युष्टायां सिस्क्षुरिखलं जगत् । भ्रजनाभौ तु तद्बीजं क्षिपत्येष महेश्वरः ॥७९॥ तं मो वित्त महात्मानं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम् । महान्तं पुरुषं विश्वमपी गर्भमनूत्तमम् ॥५०॥ न तं जानीत जनकं मोहितास्तस्य मायया । देवदेवं महादेवं भूतानामीश्वरं हरम्।। ६१।। एष देवो महादेवो ह्यनादिर्भगवान् हरः । विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च ॥ दरा। न तस्य विद्यते कार्यं न तस्माद्विद्यते परम् । स वेदान् प्रददो पूर्वं योगमायातनुर्मम ॥ ६३॥ स मायी मायया सर्वं करोति विकरोति च । तमेव मुक्तये ज्ञात्वा व्रजध्वं शरणं शिवम् ॥५४॥ इतीरिता भगवता मरीचिप्रमुखा विभुम् । प्रणम्य देवं ब्रह्मारां पृच्छन्ति स्म समाहिताः॥८४॥

मुनय ऊचुः

कथं परयेम तं देवं पुनरेव पिनाकिनम् । ब्रूहि विश्वामरेशान त्राता त्वं शरणैषिणाम् ॥८६॥

ब्रह्मोबाच

यदृष्टं भवता तस्य लिङ्गं भुवि निपातितम् । तिलङ्गानुकृतीशस्य कृत्वा लिड्गमनुत्तमम् ॥ ५७॥

पूजयध्वं सपत्नीकाः सादरं पुत्रसंयुताः । वैदिकैरेव नियमैर्विविधैर्न्नह्मचारिएाः ॥ = =।। शाङ्करैर्भन्त्रैऋंग्यजुःसामसम्भवैः । तपः परं समास्थाय गृणान्तः शतस्त्रियम् ॥=९॥ समाहिताः पूजयध्वं सपुत्राः सह बन्धुभिः । सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा गूलपाणि प्रपद्यथ ॥९०॥ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः । यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमवर्मश्च प्रण्डयित ॥९१॥ ब्रह्माणमितीजसम् । जग्मुः संहृष्टमनसो देवदाहवनं पुनः ॥९२॥ प्रणम्य वरदं श्राराधयितुमारब्धा ब्रह्मगा कथितं यथा । श्रजानन्तः परं भावं वीतरागा विमत्सराः ॥९३॥ स्थिरिडलेषु विचित्रेषु पर्वतानां गुहासु च । नदीनाञ्च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च ॥९४॥ शैवालभोजनाः केचित् केचिदन्तर्जलेशयाः । केचिदभ्रावकाशास्तु पादाङ्गुष्ठे द्यधिष्ठिताः ॥९४॥ दन्तोलूखिलनस्त्वन्ये ह्यश्मकुट्टास्तथा परे । शाकपर्णाशनाः केचित् सम्प्रक्षाला मरीचिपाः॥९६॥ शिलाशय्यास्तथापरे । कालं नयन्ति तपसा पूजयन्तो महेश्वरम् ॥९७॥ वृक्षमूलनिकेताश्च ततस्तेषां प्रसादार्थं प्रयन्नात्तिहरो हरः। चकार भगवान् बुद्धि प्रबोधाय वृषध्वजः॥९८॥ देवः कृतयुगे ह्यस्मिन् श्रुङ्गे हिमवतः शुभे । देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः ॥९९॥ भस्मपार्द्रुरदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः । उत्पूकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः ॥१००॥ कचिच हसते रोद्रं कचिद् गायति विस्मितः । कचिन् नृत्यति शृङ्गारी कचिद्रौति मुहुर्मुहुः॥१०१॥ भाश्रमे ह्यटते भिक्षुर्याचते च पुनः पुनः । मायां कृत्वात्मनो रूपं देवस्तद्वनमागतः ॥१०२॥ कृत्वा गिरिसुतां गौरीं पाइर्वे देव: पिनाकधृक् । सा च पूर्वद् वदेवेशी देवदारुवनं गता ॥१•३॥ दृष्ट्वा समागतं देवं देव्या सह कपर्दिनम् । प्रणेमुः शिरसा भूमौ तोषयामासुरीश्वरम् ॥१०४॥ वैदिकैविविधैर्मन्त्रैस्तोत्रैमिहिश्वरैः शुभैः । ग्रथर्वशिरसा चान्ये रुद्राद्यैरर्चयन् भवम् ॥१•॥॥ नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः । त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिशूलवरघारिणे ॥१०६॥ स्वयमप्रणतात्मने ॥१०७॥ नमो दिग्वाससे तुभ्यं विकृताय पिनाकिने । सर्वप्रणतदेहाय तुभ्यं सर्वसंहरणाय च । नमोऽस्तु नृत्यशीलाय नमो भैरवरूपिणे ॥१०८॥ श्रन्त कान्तकृते नमः । नमो दान्ताय शान्ताय तापसाय हराय च॥१०९॥ गूरवे योगिने नरनारीशरीराय कृत्तिवाससे । नमस्ते लेलिहानाय शितिकएठाय ते नमः ॥११०॥ नमस्ते रुद्राय नमः । नमः कनकमालाय देव्याः प्रियकराय च ॥१११॥ वै वामदेवाय श्रघोरघोररूपाय शम्भवे परमेष्ठिने । नमो योगाधिपतये भूताधिपतये नमः ॥११२॥ गङ्गासलिलघाराय प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्माङ्गधारिणे । नमस्ते हव्यवाहाय दंष्ट्रिणे हव्यरेतसे ॥११३॥ नमस्ते कालरूपिणे । श्रागित ते न जानीमो गित नैव च नैव च।। ११४।। शिरोहर्ने ब्रह्मणश्च विश्वेश्वर महादेव योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते । नमः प्रमथनाथाय दात्रे च गुभ-सम्पदाम् ॥११५॥ जुष्टतमाय ते । नमः कनकपिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः ॥११६॥ नमो कलापपाणयै तभ्यं नमो वह्नघर्कलङ्काय ज्ञानलङ्काय ते नमः। नमो भुजङ्गहाराय कर्णिकारप्रियाय च ॥११॥

करीटिने कुएडिलने कालकालाय ते नमः। वामदेव महेशान देवदेव त्रिलोचन ॥११८॥ सम्यतां यत् कृतं मोहात् त्रमेव शरणं हि नः। चिरतानि विचित्राणि गृह्यानि गहनानि च॥११८॥ स्वादीनास्त्र सर्वेषां दुविजेयोऽिस शङ्कर । स्रज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात् किश्चिद्यत् कुरुते नरः॥१२०॥ तत् सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया । एवं स्तुत्वा महादेवं प्रविष्टेरन्तरात्मिशः ॥१२१॥ कुद्धः प्रणम्य गिरिशं पश्यामस्त्वां यथा पुरा । तेषां संस्तवमाकर्ण्यं सोमः सोमविभूषणः ॥१२२॥ स्वमेव परमं रूपं दर्शयामास शङ्करः । तं दृष्ट्वाथ गिरिशं देव्या सह पिनाकिनम् ॥१२३॥ स्थापूर्वं स्थिता विद्राः प्रणमृह्ष्टमानसाः । ततस्ते मुनयः सर्वे संस्तूय च महेश्वरम् ॥१२४॥ मृखङ्करो—वसिष्ठास्तु विश्वामित्रस्तथैव च । गौतमोऽत्रिः सुकेशस्त्र पुलहः कृतुः॥१२४॥ मरीचिः कश्यपुत्रापि संवर्त्तकमहातपाः । प्रणम्य देवदेवेशमिदं वचनमन्नुवन् ॥१२६॥ कृषं त्वां देवदेवेश कर्मयोगेण वा प्रभो । ज्ञानेन वाथ योगेन पूज्यामः सदैव हि ॥१२७॥ कृषं त्वां देवदेवेश कर्मयोगेण वा प्रभो । ज्ञानेन वाथ योगेन पूज्यामः सदैव हि ॥१२७॥ कृष्वं वा देव मार्गेण सम्यूज्यो भगवानिह । कि तत् सेव्यनसेव्यं वा सर्वमेतद् व्रवीहि नः॥१२८॥

देवदेव उवाच

एतदः सम्बद्ध्यामि गाढ्ं गहनमृतमम् । ब्रह्मणा कथितं पूर्वमादावेव महर्षयः ॥१२९॥ सांख्ययोगाद द्विषा ज्ञेयं पुरुषाएगां हि साधनम् । योगेन सहितं सांख्यं पुरुषाणां विमुक्तिदम् ॥१३०॥ न केवलं हि योगेन हश्यते पुरुषः परः । ज्ञानन्तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम् ॥१३१॥ भवन्तः केवलं योगं समाश्रित्य विमुक्तये । विहाय सांख्यं विमलमकुर्वत परिश्रमम् ॥१३२॥ एतस्मात् कारणाद्विप्रा नणां केवलकर्मणाम् । भ्रागतोऽहमिमं देशं ज्ञापयन् मोहसम्भवम् ॥१३३॥ तस्माद्भवद्भिविमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम् । ज्ञातव्यं हि प्रयत्नेन श्रोतव्यं हश्यमेव च ॥१३४॥ एकः सर्वंतगो ह्यात्मा केवलश्चितिमालकः । ग्रानन्दो निर्मलो नित्य एतद्वै सांख्यदर्शनम्॥१३४॥ एतदेव परं ज्ञानमय मोक्षोऽनुगीयते । एतत् कैवल्यममलं ब्रह्मभावश्च वर्णितः ॥१३६॥ श्राश्रित्य चैतत् परमं तन्निष्ठास्तत्पराय्णाः । पश्यन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम्।।१३७॥ एतत् तत् परमं ज्ञानं केवलं सिन्नरञ्जनम् । श्रहं हि वेद्यो भगवान् मम मूर्तिरियं शिवा ॥१३६॥ बहुनि साधनानीह सिद्धये कथितानि तु । तेषामभ्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुङ्गवाः ॥१३९॥ क्रानियोगरताः शान्ता मामेव शरणं गता । ये हि मां भस्मितिरता ध्यायन्ति सततं हृदि ॥१४०॥ मद्भक्तितत्वरा नित्यं यत्यः क्षीणकल्मषाः । नाशयाम्यचिरात् तेषां घोरं संसारसागरम् ॥१४१॥ निर्मितं हि मया पूर्वं वर्त पाशुपतं शुभम्। गुह्याद् गुह्यतमं सूक्ष्मं वेदसारं विमुक्तये ॥१४२॥ प्रशान्तः संगतमना भस्मोद्ध्लितविग्रहः । ब्रह्मचर्यरतौ नग्नो व्रतं पाशुपतं चरेत् ॥१४३॥ यद्धाः कौपीतवसनः स्यादेकवसनो सुनिः । वेदाभ्यासरती विद्वान् ध्यायेत् पशुपति शिवम्॥१४४॥ एव पाशुपतो योगः सेवनीयो मुमुक्षुभिः। भस्मच्छन्नीहं सततं निष्कामैरिति हि श्रतम्॥१४४॥ वीतराग - भय - क्रोधा मन्मया मामुपाश्चिताः । बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः ॥१४६॥

श्रन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽिंसन् मोहनानि च । वेद गदिवहद्वानि मयैत कथितानि तु ॥१४॥ वामं पागुपतं सोमं लाकुल चैव भैरवम् । श्रसेव्यमेतत् कथितं वेदबाह्यं तथेतरत् ॥१४८॥ वेदमूर्तिरहं विश्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभिः । ज्ञायते मत्स्वरूपन्तु मुक्तवा देवं सनातनम्॥१४९॥ स्थापयध्विसमं मार्गं पूजयध्वं महेश्वरम् । ततोऽिचराद्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति न संजयः ॥१४०॥ मिय भक्तिश्च विपुला भनतामस्तु सत्तमाः । ध्यातमात्रो हि सािक्षध्यं दास्यामि मुनिसत्तमा॥१४१॥ इत्युक्तवा भगत्रान् सोमस्तत्रैवान्तिहितोऽभवत् । तेऽिष दाह्वने स्थित्वा ह्यर्चयन्ति स्म शंकरम् ॥१४२॥ ब्रह्मचर्यरताः शान्ता सांख्ययोगपरायणाः । समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः । विचिकिरे बहु । वादान् स्वात्मज्ञानसमाश्रयान् ॥१४३॥

किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि । कोऽपि स्यात् सर्वभावाणां हेतुरीश्वर एव च॥१५४॥ इत्येवं मन्यमानानां ध्यानमार्गावलम्बिनाम् । ग्राविरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा ॥१५५॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता । स्वभाभिनिर्मलाभिः सा पूरयन्ती नभस्तलम्॥१५६॥

तामन्वपर्यन् गिरिजाममेयां ज्वालासहस्रान्तरसिन्नविष्टाम् । प्रणेमुरेतामिखलेशपत्नीं जानन्ति चैतत् परमस्य बीजम् ॥१५७॥ श्रस्माकमेषा परमस्य पत्नी गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना । पर्यन्त्यथात्मानिमदञ्जकृत्सनं तस्यामथैते सुनयः प्रहृष्टाः ॥१४न॥ निरीक्षितास्ते परमेशपरन्या तदन्तरे देवमशेषहेतुम्। पश्यन्ति शम्भु कविमीशितारं रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥१५९॥ प्रणेमुरानन्दमवापुरग्रचम् । ग्रालोक्य देवीमथ देवमोशं ज्ञानं तदैशं भगवत् - प्रसादादाविर्बभौ जन्मविनाशहेत् ॥१६०॥ इयं या सा जगतो योनिरेका सर्वीत्मका सर्वनियामिका च। माहेश्वरी शक्तिरनादिसिद्धा व्योमाभिघाना दिवि राजतीव ॥१६१॥ श्रस्यां महान् परमेष्ठी परस्तान्महेश्वरः शिव एकः स रुद्रः । चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं मायामथाहह्य च देवदेवः ॥१६२॥ एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च । स एवं देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति ॥१६३॥ भ्रन्तिहितोऽभूद्भगवान् महेशो देव्या तया सह देवाधिदेवः । ग्राराधयन्ति सम तभादिदेवं वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम् ॥१६४॥

एतद्वः कथितं सर्वं देवदेवस्य चेष्टितम् । देवदारुवने पूर्वं पुराणे यन्मया श्रुतम् ॥१६५॥ यः पठेन्छणुयान्नित्यं मुन्यते सर्वपातकैः । श्रावयेद्वा द्विजाञ्छान्तान् स याति परमां गतिम्॥१६६॥ इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे तीर्थमाहात्म्ये देवदारुवनप्रवेशो नाम सप्तित्रशोऽध्यायः ॥३०॥ 290

कूमपुराणम्

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

एषा पुरायतमा देवी देव - गन्धर्वसेविता । नर्मदा लोकविख्याता तीर्थानामुत्तमा नदी ॥ १ ॥ तस्याः श्रुणुध्वं माहात्म्यं मार्कराडेयेन भाषितम् । युधिष्ठिराय तु शुभं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतास्ते विविधा धर्मास्तत्त्रसादान्महामुने । माहात्म्यश्व प्रयागस्य तीर्थानि विविधानि च॥ ३॥ नर्मदा सर्वतीर्थानां मुख्या हि भवतेरिता । तस्यास्त्विदानीं माहात्म्यं वक्तुमहीस सत्तमा। ४॥

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता । तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ५ ॥ नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम् । इदानीं तत् प्रवक्ष्यामि श्रुगुष्वैकमनाः शुभम्॥ ६॥ पुराया कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती । ग्रामे वा यदि वाऽरएये पुराया सर्वत्र नर्मंदा ॥ ७॥ त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहाद्यामुनं जलम् । सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ॥ ८ ॥ पर्वतेऽमरकग्टके । पुग्या च त्रिषु लोकेषु रमग्गीया मनोरमा ॥ ९ ॥ कलिङ्कदेशपश्चार्द्धे सदेवासुरगन्धर्वा तपोधनाः । तपस्तप्तवा तु राजेन्द्र सिद्धन्तु परमां गताः ॥१०॥ ऋषयश्च तत्र स्नात्वा नरो राजन् नियमस्थो जितेन्द्रियः । उपोष्य रजनीमेकौ कुलानां तारयेच्छतम् ॥११॥ योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा । विस्तरेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता ॥१२॥ षष्टिकोटचस्तथैव च। पर्वतस्य समन्तात् तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके ॥१३॥ षष्टितीर्थंसहस्राणि ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितकोधो जितेन्द्रियः । सर्वेहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतिहते एवं शृद्धसमाचारो यस्तु प्राणान् परित्यजेत् । तस्य पुरायकलं राजन् श्रृणुष्वावहितोऽनघ ॥१४॥ शतं वर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति पाएडव । ग्रप्सरोगणसङ्कीर्णो दिव्यस्त्रीपरिवारितः ॥१६॥ दिन्यपुष्पोपशोभितः । क्रीड़ते दिन्यलोके तु विष्टुधैः सह मोदते ॥१७॥ दिव्यगन्धानुलिप्तश्च ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः । गृहन्तु लभतेऽसौ वै नानारत्नसमन्वितम् ॥१८॥ स्तम्भैर्माण्मयदिं येर्वज्यवेद्रयंभूषितम् । म्रालेख्य-वाहनैः श्रुभेदिंसीशतसमन्वितम् ॥१९॥ श्रीमान् सर्वश्रीजनवल्लभः । जीवेद्वर्षशतं साग्रं तत्र राजराजेश्वरः भ्रथवानशने कृते । भ्रनिवर्त्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा ॥२१॥ धरिनप्रवेशेऽथ जले सर्वपापविनाशनः । ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्र्तः ॥२२॥ पर्वततटे सन्ध्योपासनकर्मणा । दश वर्षसहस्राणि तर्पिताः स्युर्ने संशयः ॥२३॥ तत्र पिएडप्रदानेन दक्षिणे नर्मदाकूले किपलाख्या महानदी। सरलाजु नसञ्खन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता॥२४॥

सा तु पुराया महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता । तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानान्तु यूधिष्ठिर ॥२४॥ तिसमस्तीर्थे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् । नर्मदातोयसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमा गितम् ॥२६॥ द्वितीया तु महाभाग विशल्यकरणी शुभा । तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणाता। २७॥ किपला च विशल्या च श्र्येते सरिदुत्तमे । ईश्वरेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया ॥ २८॥ अनाशकन्तु यः कुर्यात् तस्मिस्तीर्थे नराधिप । सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं च गच्छति ॥२९॥ तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् । ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते ॥३०॥ सरस्वत्याञ्च गङ्गायां नर्मदायां युचिष्ठिर । समं स्नानब्ब दानञ्च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ॥३१॥ परित्यजित यः प्राणान् पर्वतेऽमरकग्टके। वर्षकोटिशतं साग्रं म्द्रलोके महीयते ॥३२॥ नर्मदायो जलं पुर्यं फेनोर्मिसमलं कृतम् । पवित्रं शिरसा धृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३३॥ नर्मदा सर्वतः पुराया ब्रह्महत्यापहारिस्मी । भ्रहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥३४॥ तीर्थवरं सर्वपापप्रणाशनम् । तत्र गत्रा नियमवान् सर्वकामान् लभेन्नरः ॥३५। जालेश्वरं चन्द्र - सूर्योपरागे तु गत्वा चामरकग्टकम् । ध्रश्वमेधादृशगुणं पूर्यमाप्नोति मानवः ॥३६॥ एष पुरायो गिरिवरो देव - गन्धर्वसेवितः । नानाद्रुम - लताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः ॥३७॥ तत्र सिन्नहितो राजन् देव्या सह महेश्वरः । ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो विद्याघरगणैः सह ॥३८॥ प्रदक्षिणन्तु यः कुर्यात् पर्वतेऽमरकग्टके । पौग्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३९॥ काबेरी नाम विख्याता नदी कल्मषनाशिनी । तत्र स्नात्वा महादेवमर्चयेद्वृषभध्वजम् । सङ्गमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके महीयते ॥४०॥

> इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे तीर्थमाहात्म्ये मार्कग्डेययुधिष्ठिरसंवादे नर्मदा-माहात्म्यं नामाष्टित्रशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापिवनािशनी । मुनिभिः कथिता पूर्वमी श्वरेशा स्वयम्भुना ॥ १ ॥ मुनिभिः संस्तुता ह्योषा नर्मदा प्रवरा नदी । रुद्रगात्रद् विनिष्काःता लोकानां हितकाम्यया ॥ २ ॥ सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता । संस्तुता देवगन्धवें प्परोभिस्तथैव च ॥ ३ ॥ उत्तरे चैव तत्कूले तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुते । नाम्ना भद्रेश्वरं पुग्यं सर्वपापहरं शुभम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् दैवतैः सह मोदते ॥ ४ ॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थमाम्रातकेश्वरम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ४ ॥

ततोऽङ्गारेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः । सर्वपापिवशुद्धातमा रुद्रलोके महीयते ॥ ६॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र केदारं नाप पुण्यदम् । तत्र स्नात्वोदकं पीत्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ७॥ निष्पलेशं ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम् । तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते ॥ ८॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र बाणतीर्थमनुत्तमम् । तत्र प्रणान् परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ६॥ ततः पुरकरिणीं गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्याद्धीसनं लभेत् ॥१०॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र शूलभेदमिति श्रुतिः । तत्र स्नात्वा च पीत्वा च गोसहस्रफलं लभेत् ॥११॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र बलितीर्थमनुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् सिहासनपतिर्भवेत् ॥१२॥ शकतीर्थं ततो गच्छेत् कूले चैवं तु दक्षिणे । उपोष्य रजनीमेकां स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥१३॥ <mark>श्राराघयेन्महायोगं देवदेवं नरोऽमलः । गोसहस्राफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥१४॥</mark> ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वंपापहरं नृगाम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोके नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्।।१६॥ यत्र तप्तः पूर्वं नारदेन सुर्षिणा । प्रीतस्तस्य ददो योगं देवदेवो महेश्वरः ॥१७॥ ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मोश्वरमिति श्रतम् । यत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलोके महीयते ॥१८॥ ऋरणतीर्थं ततो गच्छेहरणान्मूच्येन्नरो ध्रुवम् । वटेश्वरं ततो गच्छेत् पर्याप्तं जन्मनः फलम् ॥१९॥ भीमेश्वरं ततो गच्छेत् सर्वेद्याधिविनाशनम् । स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥२०॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् । ग्रहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्न्यात् ॥२१॥ तिसमस्तीर्थे तु राजेन्द्र किपलो यः प्रयन्छित । यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च । रुद्रलोके महीयते ॥२२॥ तावद्वषंसहस्राणि

यस्तु प्राणपित्यागं कुर्यात् तत्र नराधिप । ग्रच्यं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥२३॥ नर्मदातटमाश्रित्य ये च तिष्टन्ति मानवाः । ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥२४॥ ततो दीप्तेश्वरं गच्छेद् व्यासतीर्थं तपोवनम् । निवित्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी । हङ्कारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता ॥२५॥

प्रदक्षिणन्तु यः कुर्यात् तिस्मंस्तीर्थे युधिष्टिर । प्रीतस्तत्र भवेद व्यासी वाव्छितं लभते फलम्॥२६॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु सङ्गमम् । त्रैलोश्यविश्रुतं पुग्यं तत्र सिन्निहितः शिवः । तत्र स्नात्वा नरो राजन् गाणपत्यमवाष्नुयात् ॥२७॥

स्कन्दतीर्थे ततो गन्छेत् सर्वपापप्रगाशनम् । श्रा जन्मनः वृतं पापं स्नातस्तत्र व्यपोहति ॥२८॥ तत्र देवाः सगन्वर्वा भगित्मजम् नुत्तमम् । उपासते महात्मानं स्कदं शक्तिधरं प्रभुम् ॥२९॥ ततो गच्छेदाङ्गिरसं स्नानं तत्र समाचरेत् । गोसहस्रफलं प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छिति ॥३०॥ श्रिङ्गरा यत्र देवेशं ब्रह्मपूत्रीं वृषध्वजम् । तपसाशध्य विश्वेशं लब्धवान् योगसुत्तमम् ॥३१॥ कुशतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् । तत्र स्नानं प्रमुर्वीत श्रद्यमेधफलं लभेत् ॥३२॥

कोटितीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् । श्रा जन्मनः कृतं पापं स्नातस्तत्र व्यपोहिति । तत्र स्नात्वा नरो राज्यं लभते नात्र संशयः ।।३३॥

चन्द्रभागां ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नानमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ॥३४॥ नर्मदादक्षिणे कुले सङ्गमेश्वरमूत्तमम । तत्र स्नात्वा नरो राजन् सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥३४॥ नर्मदायोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् । ग्रादित्यायतनं रम्यमी वदेण तु भाषितम् ॥३६॥ तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दत्वा दानन्तु शक्तितः। तस्य तीर्थप्रभावेण लभते चाक्षयं फलम् ॥३७॥ हरिद्राव्याधिता ये च ये च दुष्कृतकिमणः । मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं प्रयान्ति च ॥३८॥ मातृतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥३९॥ पश्चिमतो गच्छेन्मरुदालयमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भृत्वा समाहितः ॥४०॥ काञ्चनश्च यतेर्दद्याद् यथाविभवविस्तरम् । पुष्पकेगा विमानेन वायुलोकं स गच्छति ॥४१॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र ग्रहल्यातीर्थमूत्तमम् । स्नातमात्रादप्सरोभिर्मोदते कालमृत्तमम् ॥४२॥ चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्रपक्षे त्रयोदशी । कामदेवदिने तस्मिन्नहल्या यस्तु यत्र तत्र समृत्पन्नो नरोऽत्यर्थप्रियो भवेत् । स्त्रीवल्लभो भवेच्छीमान् कामदेव इवापरः ॥४४॥ सरिद्वरां समासाद्य तीर्थं काकस्य विश्रतम । स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ॥४४॥ सोमतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४६॥ सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत् । त्रैलोक्यविश्रतं राजन् सोमतीर्थं महाफलम् ॥४७॥ यस्त चान्द्रायणं कूर्यात् तत्र तीर्थे समाहितः । सर्वेपापविश्वद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति ॥४८॥ श्चित्रिवेशं यः कुर्यात् सोमतीर्थे नराधिप । जले चानशनं वापि नासौ मत्त्यों हि जायते ॥४९॥ स्तम्भतीर्थे ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ॥५०॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र विष्णृतीर्थमनुत्तमम् । योघनीपुरमाख्यातं विष्णोः स्थानमृनृत्तमम् । ध्रमुरा योघितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः ॥५१॥

तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुश्रीको भवेदिह । ग्रहोराश्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहित ॥५२॥ नर्भदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । कामतीर्थमिति ख्यातं यत्र कामोऽर्चयद् भवम् ॥५३॥ तिस्मंस्थीर्थं नरः स्नात्वा उपवासपरायणः । कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते ॥५४॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मतोर्थमनुत्तमम् । ग्रमोर्घामिति विख्यातं तत्र सन्तर्पयेत् पितृन् । पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याद् यथाविधि ॥५४॥

गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये व्यवस्थिता । तस्मिंस्तु दापयेत् पिग्डान् वैशाखे तु समाहितः॥१६॥ स्नात्वा समाहितमना दम्भ-मात्पर्यविज्जितः । तृष्यान्ति पितरस्तस्य यावत् तिष्ठिति मेदिनी ॥ ७॥ सिद्धेश्वरं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत् ॥१८॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र लिङ्को यत्र जनार्दनः । तत्र रनात्वा नरो भक्तशा विष्णुलोके महीयते ॥१९॥

तत्र नारायणो देवो मूनीनो भावितात्मनाम् । स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्ग तत् परमं पदम् ॥६०॥ प्रकोलन्त ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम् । स्नानं दानन्त तत्रैव ब्राह्मणानान्त भोजनम् ॥६१॥ प्रेत्यानन्तफलप्रदम् । त्रियम्बकेण तोयेन यश्चरुं श्रपयेद् द्विजः ॥६२॥ कृतं मङ्कोलमूले दद्याच पिएडोश्चेव यथाविधि । तारिताः पितरस्तेन तृष्यन्त्याचन्द्र-तारकम् ॥६३॥ राजेन्द्र तापसेश्वरम्त्तमम् । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र प्राप्न्यात् तपसः फलम्॥६४॥ शक्कतीय ततो गच्छेत सर्वापविनाशनम्। नास्ति तेन समं तीथ नर्मदायां युधिष्ठिर ॥६५॥ दर्शनात् स्पर्शनात् यस्य सानादानात् तपोजपात् । होमाच्चैवोपवासाच शुक्रतीर्थे महत् फलम् ॥६६॥ योजनं तत् स्मृतं क्षेत्रं देव - गन्धर्वसेवितम् । शुक्रतीर्थिमिति स्यातं सर्वपापविनाशनम् ॥६७॥ ब्रह्महत्या व्यपोहति । देव्या सह सदा भर्गस्तत्र तिष्ठति शङ्करः ॥६८॥ हष्टेन कृष्णपक्षे चतुर्देश्यो वैशाखे मासि सुव्रत । लोकात् स्वकाद्विनिष्क्रम्य तत्र सिन्नहितो हरः॥६१॥ देव-दानव-गन्धर्वाः सिद्ध - विद्यावरास्तथा । गणाश्चाप्सरसो नागास्तत्र तिष्ठन्ति पुङ्गवाः ॥७०॥ रिखतं हि यथा वसं शुक्लं भवति वारिणा । ग्राजन्मजनितं पापंश्कतीर्थे व्यपोहति ॥७१॥ सानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं तत्र दृश्यते । शुक्रतीर्थात् परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥७२॥ पूर्व वयसि कर्माण कृत्वा पापानि मानवः । ग्रहोरात्रोपवासेन शुक्रतीर्थे व्यपोहति ॥७३॥ कात्तिकस्य तु मासस्य कृष्ण पक्षे चतुर्देशी । घृतेन स्नापयेद देवमुपोष्य परमेश्वरम् ॥७४॥ ध्यवेदीश्वरालयात् । तपसा ब्रह्मचर्येगा यज्ञैदिनेन वा पुनः। एकविंशत्कलोपेतो न न तो गतिमवाप्रोति शुक्रतीर्थे तु यौ लभेत् ॥७५॥

णुक्रतीर्थं महातीर्थमृषि - सिद्धनिषेवितम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् पुनर्जन्म न विन्दति ॥७६॥ प्रयमे वा चतुर्दश्यो संक्रान्तौ विषुवे तथा । स्नात्वा तु सोपवासःसन् विजितात्मा समाहितः॥७०॥ दानं दद्याद् यथाशक्ति प्रीयेतो हरि - शब्द्धरौ । एतत्तीर्थप्रमावेगा सर्वं भवित चाक्षयम् ॥७६॥ प्रनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा । उद्घाहयित यस्तीर्थे तस्य पुग्यफलं श्रृणु ॥७९॥ यावत् तद्रोमसंख्या तु त्रप्रसूतिकुलेषु च । तावद्वर्षसहस्राग् रद्रलोके महीयते ॥००॥ ततो गन्छेत राजेन्द्र यमतीर्थमनुत्तमम् । दृष्णपक्षे चतुर्दश्यां माधमासे युधिष्ठिर ॥०१॥ स्नानं द्वत्वा नक्तभोजी न पश्येद् योनिसङ्कृत्य । ततो गन्छेत राजेन्द्र एरग्डीतीर्थमृत्तमम् ॥०२॥ सङ्गमे तु नरः स्नात्वा उपवासपरायणः । ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवित भोजिताः ॥०२॥ एरग्डीसङ्गमे स्नात्वा भित्तभावानुरिक्षतः । मृत्तिकां शिरिष स्थाप्य भवगाह्य च तब्जलम् ।

नमंदोदकसंमिश्रं मुच्यते सर्वेकिल्विषै:।। दशा

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं कञ्जोलकेश्वरम् । गङ्गावतरते तत्र दिने पुर्ये न संशयः ॥८५॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्त्वा चैव यथाविश्वि । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥५६॥ निन्दिनीर्थं ततो गच्छेत् तत्र स्नानं समाचरेत् । प्रीयते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते ॥५७॥

उत्तरभागे चत्वारिंशोऽध्यायः

त्तो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थन्त्वनरकं शुभम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् नरकं नैव पश्यित ॥द्रा। तिस्मंस्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थीनि विनिक्षिपेत् । रूपवान् जायते लोके धनभोगसमन्वितः ॥द्रश। ततो गच्छेत राजेन्द्र किपलातीर्थमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत्॥९०॥ ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्ते चतुद्रश्यां विशेषतः । तत्रोपोष्य नरो भक्त्या दत्त्वा दीपं घृतेन तु॥९१॥ घृतेन स्नापयेद्रुद्रं सघृतं श्रीफलं ददेत् । घएटाभरणसंयुक्तां किपलां वै प्रदापयेत् ॥९२॥ सर्वोभरणसंयुक्तः सर्वदेवनमस्कृतः । शिवतुल्यबलो भूत्वा शिववत् कोड़ते सदा ॥९३॥ प्रञ्जारकिदिने प्राप्ते चतुर्थ्यान्तु विशेषतः । स्नापयित्वा शिवं दद्याद् बाह्मणेभ्यस्तु भोजनम्॥९४॥ सर्वभोगसमायुक्तो विमाने सार्वका मके । गत्वा शकस्य भवनं शकेण सह मोदते । ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो धनवान् भोगवान् भवेत् ॥९४॥

श्रङ्गारकनवम्यान्तु श्रमावास्यां तथैव च । स्नापयेत् तत्र यत्नेन रूपवान् सुभगो भवेत् ॥९६॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र गणेश्वरमनुत्तमम् । श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्देशी ॥९७॥ स्नातमात्रो नरस्तत्र ब्रह्मलोके महीयते । पितृणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते स ऋणत्रयात् ॥९८॥ गङ्गोश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम् । श्रकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः । श्राजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥९९॥

तस्य वै पश्चिमे भागे समीपे नातिदूरतः । दशाश्वमेघिकं तीथं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥१००॥ उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे शुभे । श्रमावास्यां नरः स्नात्वा पूजयेद् गोवृषघ्वजम्॥१०१॥ काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना । गत्वा रुद्रपुरं रम्यं रुद्रेण सह मोदते ॥१०२॥ सर्वत्र सर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत् । पितृणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेघफलं लभेत् ॥१०३॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे नर्मदातीर्थमहास्म्ये एकोनचत्वारिशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

-:0:-

चत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र भृगुतीर्थमनुत्तमम् । तत्र देवं भृगुभँगं रुद्रमाराधयत् पुरा । दर्शनात् तस्य देवस्य सद्यः पापात् प्रमुच्यते ॥ १ ॥ एतत् क्षेत्रं मुवियुलं सर्वपापप्रणाशनम् । तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ २ ॥ उपानही तथा युग्यं देयमञ्च काञ्चनम् । भोजनञ्च यथागक्ति सदस्याक्षयमुच्यते ॥ ३ ॥ क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञदानं तपः क्रिया । न क्षरेद्यत् तपस्तप्तं भृगुतीर्थे युविष्ठिर ॥ ४ ॥

तस्यैव तपसोग्रेण तुष्टेन त्रिपुरारिए। । सान्निष्यं तत्र कथितं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर ॥ ४॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम् । यत्राराध्य त्रिश्चलाङ्कं गौतमः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ६॥ तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासगरायणः । काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥ ७॥ वृषोत्सगै ततो गच्छेच्छाश्वतं पदमाप्नुयात् । न जानन्ति नरा सूढ़ा विष्णोर्मायाविमोहिताः॥ ६॥ घौतपापं ततो गच्छेद्धौतं यत्र वृषेण तु । नर्मदायां स्थितं राजन् सर्वपातकनाशनम् । तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां विमुञ्चति ॥ ६॥

तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्यागं करोति यः । चतुर्भुजिखनेत्रश्च हरतुल्यबलो भवेत् ॥१०॥ वसेत् कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः । कालेन गहता जातः पृथिव्यामेकराड् भवेत् ॥११॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र हंसतीर्थमनुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलोके महीयते ॥१२॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र यत्र सिद्धो जनार्दनः । वराहतीर्थमाख्यातं विष्णुलोकगितप्रदम् ॥१३॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम् । पौर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत् ।

स्नातमात्रो नरस्तत्र चन्द्रलोके महीयते ॥१४॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र कन्यातीर्थमनुत्तमम् । स्नात्वा तत्र नरो राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१५॥ शृक्तपक्षे तृतीयायां स्नानं तत्र समाचरेत् । स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड् भवेत् ॥१६॥ देवतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वदेवनमस्कृतम् । तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र दैवतैः सह मोदते ॥१७॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र शिखितीर्थमनुत्तमम् । यत् तत्र दीयते श्राद्धं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥१८॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं पैतामहं शुभम् । यत् तत्र दीयते श्राद्धं सर्वं तस्याक्षयं भवेत् ॥१९॥ सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् । विघ्य सर्वपापाणि ब्रह्मलोके महीयते ॥२०॥ मनोहरन्तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते ॥२१॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र मानसं तीर्थमृत्तमम् । स्नात्वा तत्र नरो राजन् रुद्रलोके महीयते ॥२२॥ सर्गबिन्दुं ततो गच्छेत् तीर्थं देवनमस्मृतम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् दुर्गितं वै न पश्यित ॥२३॥ सर्गबिन्दुं ततो गच्छेत् तीर्थं देवनमस्मृतम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् दुर्गितं वै न पश्यित ॥२४॥ सर्गबिन्दुं ततो गच्छेत् सानं तत्र समाचरेत् । कोडन्ते नाकलोकस्थो ह्यप्सरोभिः स मोदते॥२५॥ ततो गच्छेत् राजेन्द्र भारभूतिमनुत्तमम् । उपोषितो यजेतेशं रुद्रलोके महीयते।

ग्रस्मिस्तीर्थे मृतो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥२६॥

कार्तिके मासि देवेशमर्चयेत् पार्वतीपितम् । प्रश्वमेवाद्शगुणं प्रवदन्ति मनीिषणः ॥२७॥ वृषभं यः प्रयच्छेत तत्र कुन्देन्दुसप्रभम् । वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छिति ॥२५॥ एतत् तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् । सर्वपापिविनिमुक्तो रुद्रलोकं स गच्छिति ॥२९॥ जलप्रवेशं यः कुर्यात् तिस्मस्तीर्थं नराविष । हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं स गच्छिति ॥३०॥ एरएड्या नर्मदायास्तु सङ्गमं लोकिविश्रुतम् । तच्च तीर्थं महापुग्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥३१॥

उपवासपरो भूत्वा नित्यं व्रतपरायणः । तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥३२॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र नर्मदोदिवसङ्गमम् । जमदिग्निरिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः ॥३३॥ तत्र स्नात्वा नरो राजन् नर्मदोदिवसङ्गमे । त्रिगुणश्वाश्वमेवस्य फलं प्राप्नोपि मानवः ॥३४॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम् । तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते ॥३५॥ तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत विमलेश्वरम् । सप्नजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम् ॥३६॥ ततो गच्छेत राजेन्द्र ध्रलकातोर्थमुत्तमम् । उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः । ध्रस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मूच्यते ब्रह्महत्यया ॥३७॥

एतानि तव संक्षेत्रात् प्राधान्यात् कथितानि च । न शक्या विस्तराद्वकतुं संख्या तीर्थेषु पाएडव॥३६॥
एषा पवित्रा वियुला नदी त्रैनोक्यविश्रुता । नर्मदा सरितां श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा ॥३६॥
मनसा संस्मरेद यस्तु नर्मदां वे युधिष्ठिर । चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः ॥४०॥
ग्रश्नद्वानाः पुरुषा नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः । पतन्ति नरके घोरे इत्याह परमेश्वरः ॥४१॥
नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः । तेन पुरुषा नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी ॥४२॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे नर्मदामाहात्म्यं नाम चत्वारिशोऽध्यायः ॥ ४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

इदं त्रैनोक्यिविख्यातं तीर्थं नैिमषमुत्तमम् । महादेवित्रियतरं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
महादेवं दिहसूणामृषीणां परमेष्ठिना । ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तपस्तप्तं द्विजोत्तमाः॥ २ ॥
मरीचयोऽत्रयो विद्रा विसष्ठाः कतवस्तथा । भृगवोऽिङ्गरसः पूर्वं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ३ ॥
समेत्य सर्ववरदं चतुर्मृतं चतुर्मृखम् । पृच्छन्ति प्रणिपत्यैनं विश्वकर्माणमञ्चयम् ॥ ४ ॥

षट्कुलीया ऊचुः

भगवन् देवमीशानं तमेवैकं कपहिनम् । केनोपायेन पर्यम ब्रूहि देव नमस्तव॥ ॥॥

ब्रह्मोवाच

सत्रं महत् समासन्वं वाङ्मनोदोषवर्जिताः । देशन्व वः प्रवक्ष्यामि यस्मिन् देशे चरिष्यय ॥ ६ ॥ मुन्तवा मनोमयं चक्रं संस्रृष्ट्वा तानुवाच ह । क्षिप्रमेतन्मया चक्रमनुत्र नत मा चिरम्॥ ७ ॥

यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशस्तपसः शुभः । ततो मुमोच तचकं ते च तत् समनुत्रजन् ॥ ८॥ तस्य वे त्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यत । नैमिषं तत् स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम्॥ ९॥ सिद्ध - चारणसङ्कीणं यक्ष - गन्वर्वसेवितम् । स्थानं भगवतः शम्भोरेतन्नैमिषमुत्तमम् ॥१०॥ अत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरग - राक्षसाः । तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरे प्रवरान् वरान् ॥११॥ इमं देशं समाश्रित्य षट्कुलीयाः समाहिताः । सत्रेणाराध्य देवेशं दृष्टवन्तो महेश्वरम् ॥१२॥ भ्रत्र दानं तपस्तप्तं श्राद्ध - यागादिकञ्च यत् । एकैकं नाशयेत् पापं सप्तजन्मकृतं तथा ॥१३॥ मत्र पूर्वं स भगवानृषीणो सत्रमासताम् । स व प्रोवाच ब्रह्माएडपुराणं ब्रह्मभावितम् ॥१४॥ भ्रत्र देवो महादेवो रुद्राएया किल विश्वहक् । रमतेऽद्यापि भगवान् प्रमथैः परिवारितः ॥१५॥ भ्रत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातयः । ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते ॥१६॥ **ग्रन्**यच तीर्थप्रवरं जाष्येश्वरमिति श्रृतम् । जजाप **रु**द्रमिनशं यथा नन्दी महागणः ॥१७॥ प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सह पिनाकघृक् । ददावात्मसमानत्वं मृत्युवञ्चनमेव ग्रभूहिषः स धर्मात्मा शिलादो नाम घर्मवित् । ग्राराघयन्महादेवं पुत्रार्थं वृषभध्वजम् ॥१९॥ तस्य वर्षसङ्ख्रान्ते तप्यमानस्य विश्ववृक् । शर्वः सोमो गणवृतो वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥२०॥ स वन्ने वरमीशानं वरेएयं गिरिजापतिम् । श्रयोनिजं मृत्युहीनं याचे पुत्रं त्वया समम् ॥२१॥ त्तयास्त्वित्याह भगवान् देव्या सह महेश्वरः । पश्यतस्तस्य विप्रर्धेरन्तद्धनिं गतो हरः ॥२२॥ ततो यियक्षुः स्वां भूमि शिलादो धर्मवित्तमः । चकर्षं लाङ्गलेनोर्वी भिन्वादृश्यत शोभनः ॥२३॥ प्रहसन्निव । रूपलावएयसम्पन्नस्तेजसा भासयन् दिशः ॥२४॥ संवर्त्तकोऽनलप्रख्यः कुमारः कुमारतुल्योऽप्रतिमो मेघगम्भीरया गिरा । शिलादं तात तातेति प्राह नन्दी पुनःपुनः ॥२५॥ तं हुष्ट्वा नन्द्नं जातं शिलादः परिषस्वजे । मुनीनां दर्शयामास तत्राश्रमनिवासिनाम् ॥२६॥ जातकर्मादिकाः सर्वाः कियास्तस्य चकार ह । उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् स्त्रयम् ॥२०॥ भ्रधीतवेदो भगवान् नन्दो मितमनुत्तमाम् । चक्रे महेश्वरं हष्ट्वा जेष्ये मृत्युमिति प्रभुम् ॥२५॥ स गत्वा सागरं पुर्यमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः । जजाप रुद्रमनिशं महेशासक्तवानसः ॥२९॥ तस्य कोटचाच पूर्णायां शङ्करो भक्तवत्सनः । घागत्य साम्बः सगणो वरदोऽस्मोत्यभाषत ॥३०॥ वन्ने पुतरेवेशं जपेयं कोटिमोश्वरम् । तात्रदायुर्महादेवं देहीति वरमीश्वर ॥३१॥ देवोऽप्यन्तरघीयत । जजाप कोटि भगवान् भूयस्तद्गतमानसः ॥३२॥ एवमस्त्वित सम्प्रोच्य दितीयायाः कोट्यां वै पूर्णायाः वृषष्वजः । म्रागत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणेवृतः ॥३३॥ तृतीयां जप्तुमिच्छामि कोटि भूयोऽपि शङ्कर । तथास्त्वित्याह विश्वातमा देव्या चान्तरबीयत॥३४॥ कोटित्रयेऽय सम्पूर्णे देवः प्रोतमना भृशम् । ग्रागत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः ॥३४॥ जपेयं कोटिमन्यां वे भूयोऽपि तव तेजसा । इत्युक्ते भगवानाह न जप्नव्यं त्वया पूनः ॥३६॥ ग्रमरो जरया त्यको मम पार्श्वगतः सदा । महागण।तिर्देग्याः पुत्रो भव महेश्वरः ॥३७॥

योगीश्वरो योगनेत्रो गणानामीश्वरेश्वरः । सर्वलोकाधिपः श्रीमा ् सर्वजो मद्दलान्वितः ॥३८॥ ज्ञानं तन्मामकं दिव्यं हस्तामलकवत् तव । ग्राभूतसंग्लवस्थायी ततो यास्यसि तत्पदम् ॥३९॥ एतदुक्त्वा महादेवो गणनाहूय शङ्करः । ग्रभिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत् ॥४०॥ उद्वाहयामास च तं स्वयमेव पिनाकधृक् । मस्ताष्ट्र शुभौ कन्यां सुयशैति च विश्रुताम् ॥४१॥ एतज्जाध्येश्वरं स्थानं देवदेवस्य शुलिनः । यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते ॥४२॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे जाप्येश्वरमाहात्म्यं नामः एकचत्वारिकोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

जाप्येश्वरसमीपतः । नाम्ना पञ्चनदं पुग्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १॥ तीर्थप्रवरं धन्यच महेश्वरम् । सर्वपापविश्रद्धात्मा रुद्रलोके महीयते ॥ २॥ पुजयित्वा त्रिरात्रमुषितस्तत्र शकस्यामिततेजसः । महाभैरविमत्युक्तं महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥ तीर्थंप्रवरं धन्यज्ञ तीर्थानान्व परं तीर्थं वितस्ता परमा नदी । सर्वपापहरा पुराया स्वयमेव गिरीन्द्रजा ॥ ४ ॥ नाम शम्भोरमिततेजसः । यत्र देवाचिदेवेन चकार्थं पूजितो भवः ॥ ४॥ पञ्चतपो प्रेत्यानन्दमुखप्रदम् । मृतस्तत्राय नियमाद ब्रह्मलोके महीयते ॥ ६॥ तत्र **पि**एडदानादिकं महादेवालयं शुमम् । यत्र माहेश्वरा धर्मी मुनिभिः सम्प्रवित्ताः ।। ७ ॥ कायावरोहणं नाम उपवासस्तथाक्षयः । परित्यजति यः प्राणान् रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ६ ॥ दानं तपो होम कन्यातीर्थमनुत्तमम् । तत्र गत्वा त्यजन् प्राणील्लोकानाप्तोति शास्तान्॥९॥ तीर्थप्रवरं च शुभं रामस्याक्रिष्टकर्मणः । तत्र स्नात्वा तीर्थवरे गोसहस्रफलं लभेत् ॥१०॥ महाकालिमिति स्यातं तीर्थं लोकेषु विश्वुतम् । गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥११॥ तीथं नकुलीश्वरमुत्तमम् । तत्र सिन्निहितः श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वरः ॥१२॥ गुह्याद गुह्यतमं हिमविच्छिखरे रम्ये गङ्गाद्वारे सुशोभने । देव्या सह महादेवा नित्यं शिष्येश्व संवृतः ॥१३॥ तत्र स्नात्वा महादेवं पूजियत्वा वृषध्वजम् । सर्वपापात् प्रमुच्येत मृतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात् ॥१४॥ भ्रन्यच देवेदेवस्य स्थानं पुर्यतमं शुभम् । भीमेश्वरमिति ख्यातं गत्वा मुश्विति पातकम्॥१४॥ तथान्यश्चराडवेगायाः सम्भेदः पापनाशनः। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते ब्रह्महत्यया ।१६॥ सर्वेषामित चैतेषा तीर्थाना परमा पुरी । नाम्ना वाराणमी दिव्या कोटिकोट्ययुताधिका। । हस्याः पुरस्तानमाहात्यं भाषितं वो मया त्विह । नान्यत्र लभते मुक्ति योगेनाप्येकजन्मना ॥१५॥

कूर्मपुराणम्

एते प्राधान्यतः प्रोक्ता देशाः पापहरा नृणाम् । गत्वा संक्षालयेत् पापं जन्मान्तरशतैः कृतम् ॥१९॥
यः स्वधमिन् परित्यज्य तीर्थमेवां करोति हि । न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च ॥२०॥
प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथा यायावरो गृही । प्रकुर्यात् तीर्थसंसेवां यश्चान्यस्ताहशो जनः ॥२१॥
सहाग्निर्वा सपत्नीकी गच्छेत् तीर्थानि यत्नतः । सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात् ॥२२॥
कृष्णानि त्रीग्यपाकृत्य कुर्योद्वा तीर्थसेवनम् । विधाय वृत्ति पुत्राणां भायी तेषु निधाय च ॥२३॥
प्रायश्चित्तप्रसङ्गोन तीर्थमाहात्म्यमीरितम् । यः पठेच्छुणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२४॥

इति श्रीकोर्मे म्हापुराणे उत्तरभागे तीर्थमाहात्मं नाम द्विचत्वारिकोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

स्त उवाच

एकदाकर्यं विज्ञानं नारायणमुखेरितम् । कूर्मरूपघरं देवं पप्रच्छुर्मुनयः प्रभुम् ॥१॥

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता घर्मौ मोक्षज्ञानं सविस्तरम् । लोकानां सर्गविस्तारो वंशो मन्वन्तराणि च ॥ २ ॥ इदानीं देवदेवेश प्रलयं वक्तुमर्हीस । भूताना भूतभव्येश यथापूर्वं त्वयोदितम् ॥ ३ ॥

स्त उवाच

श्रुत्वा तेषा तदा वाक्यं भगवान् कूर्मरूपघृक् । व्याजहार महायोगी भूतानां प्रतिसञ्चरम् ॥ ४॥

कूर्म उवाच

नित्यो नैिमित्तकश्चेव प्राकृतात्यित्तको तथा। चतुद्धीऽयं पराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसञ्चरः॥ प्र॥ योऽयं संहत्यते नित्यं लोके भूतक्षयस्त्विह । नित्यः सङ्कीत्त्र्यते नाम्ना मुनिभिः प्रतिसञ्चरः॥ ६॥ ब्राह्मो नैिमित्तिको नाम कल्पान्ते यो मिविष्यति । श्रेलोकचस्यास्य कथितः प्रतिसगौ मनोषिभिः॥ ७॥ महदाद्यं विशेषान्तं यदा संयाति संक्षयम । प्राकृत प्रतिसगौऽयं प्रोच्यते कालचिन्तकैः ॥ ६॥ ब्राह्मादात्यिन्तकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मिन । प्रलयः प्रतिसगौऽयं कालचिन्तापरैर्द्विजैः ॥ ९॥ ब्राह्मिन्तिकस्तु कथितः प्रलयो ज्ञानसाधनः । नैिमित्तिकमिदानीं वः कथिष्ठये समासतः ॥ १०॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

200

चतुर्युगसहस्रान्ते सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे । स्वात्मसस्थाः प्रजाः कर्तुं प्रतिपेदे प्रजापतिः ॥११॥ ततोऽभवत् त्वनावृष्टिस्तीवा सा शतवार्षिकी । भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयङ्करी ॥१२॥ ततो यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले । तानि चाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥१३॥ सप्तरिक्षरा भूत्वा समुत्तिक्ष्त् दिवाकरः । ग्रसह्यरिक्मभवति पिबन्नम्भो गभस्तिभिः ॥१४॥ तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे । तेनाहारेण ते दीप्ताः सूर्याः सप्त भवन्ति हि ।।१५॥ ततस्ते रश्मयः सप्त शोषियत्वा चतुर्दिशम्। चतुर्लोकिमदं सव दहन्ति शिखिनो यथा ॥१६॥ व्याप्नुवन्तश्च ते दीप्ता ऊर्द्धश्चाघः स्वरिवमिभः । दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निप्रदीपिताः॥१७॥ ते सूर्या वारिएगा दीप्ता बहुसाहस्ररक्मयः। खं समावृत्य तिष्ठन्ति प्रदहन्तो वमुन्वराम् ॥१८॥ वसुन्धरा । साद्रि - नद्यर्गव - द्वीपा निस्नेहा सम्प्रपद्यते ॥१९॥ दह्यमाना मरीचिभिः प्रदीप्ताभिः सन्तताभिः समन्ततः । प्रषश्चोर्द्धे लग्नाभिस्तिर्यंक् चैव समावृतम् ॥२०॥ सूर्याग्निना प्रमृष्टानां संसृष्टानां परस्परम् । एकत्वमुपयातानामेकज्वालं सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा तु मग्डली । चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्याशु तेजसा ॥२२॥ ततः प्रलीने सर्वेस्मिन् जङ्गमे स्थावरे तथा । निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठा प्रकाशते ॥२३॥ ग्रम्बरीषमिवाभाति सर्वमापूरितं जगत् । सर्वमेतत् तदर्चिभिः पूर्णं जाज्वल्यते पूनः ॥२४॥ पाताले यानि सत्त्वानि महोदिधगतानि च । तत्र तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥२४॥ द्वीपांश्च पर्वतांश्चेव वर्षारयथ महोदधीन् । तान् सर्वान् भस्मसाञ्चक्रे सप्तातमा पावकःप्रभुः॥२६॥ सम्द्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वेषाः । पिबन्नपःसमिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्चितोऽज्वलत्॥२७॥ ततः संवर्तकः शैलानतिक्रम्य महांस्तथा । लोकान् दहति दीप्रात्मा रद्रतेजोविजिम्भतः ॥२ द्या स दरध्वा पृथिवीं देवो रसातलमशोभयत्। ग्रधस्तात् पृथिवीं दरध्वा दिवमूध्वं दहिष्यति ॥२९॥ योजनानां शतानीह सहस्राएययुतानि च । उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्य वह्नेः संवर्त्तकस्य तु । ३०:1 गन्धर्वाश्च पिशाचांश्च सयक्षोरगराक्षसान् । तदा दहत्यसी दीप्तः कालस्द्रप्रणोदितः ॥३१॥ भूलोंकञ्च भूवलोंकं स्वलोंकञ्च तथा महा। दहेदशेषं कालाग्निः कालाविष्टतनुः स्वयम् ॥३२॥ तिर्यगृद्धमधाग्निना । तत् तेजः समनुप्राप्य कृत्रनं जगदिदं शनैः । व्याप्तेष्वेतेष भ्रयोगुडनिभं सर्वं तदा चैकं प्रकाशते ॥३३॥

ततो गजकुलोन्नादास्तिङिद्धः सः लंकृताः उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्तका घनाः॥३४॥ केचिन्नीलोत्पलक्यामाः केचित् कुमुदसिन्नभाः । धूम्प्रवर्णास्तथा केचित् केचित् पीताः पयोषराः॥३४॥ केचिद्रासभवर्णास्तु लाक्षारसिनभाः परे । कङ्घ - कुन्दिनभाश्चान्ये जात्यञ्जनिभास्तथा ॥३६॥ मनः शिलाभास्तवन्ये च कपोतसह्नाः परे । केचिद्रदाक्षवर्णाभास्तयान्ये क्षोरमिन्नभाः ॥३७॥ तथा कर्बूरवर्णश्च भिन्नाञ्जनिभास्तथा । इन्द्रगोपिनभाः केचिद्रतिलालिभारतथा ॥३०॥ इन्द्रचापिनभाः केचिद्रतिलिनभारतथा ॥३०॥ इन्द्रचापिनभाः केचिद्रतिष्ठिन्ति घना दिवि । केचित् पर्वतसङ्काषाः केचिद् राजकुलोपमाः ॥३९॥

घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः ॥४०॥ कटागारनिभाश्चान्ये केचिन्मीनकुलोद्रहाः । बहरूपा सदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभस्तलन् । ततस्ते जलदा घोरा राविणो भास्करात्मजाः ॥४१॥ सप्तवा सम्भतात्मानं तमग्नि शमयन्त्युत । ततस्ते जलदा वर्षं मुश्वन्तीह महारवम् ॥४२॥ सुघोरमिशवं सर्वं नाशयन्ति च पावकम् । प्रवृद्धैस्तैस्तदात्यर्थमम्भसा पूर्यते जगत् ॥४३॥ मद्भिस्तेजोऽभिभूतात्मा तदाग्निः प्रविशत्यपः । नष्टे चाग्नी वर्षशतैः पयोदाः क्षयसम्भवाः ॥४४॥ प्लावयन्तो जगत सर्वं महाजलपरिस्रवैः । धाराभिः पुरयन्तीदं नोद्यमानाः स्वयम्भूवा । ४४॥ **घत्यन्तसलिलोघास्तु वेला इव महोदधेः। साद्रिद्वीपा ततः पृथ्वी जलैः संछाद्यते घनैः।।४६॥** यादित्यरिक्मिभः पीतं जलमञ्जेषु तिष्ठति । पूनः पतित तद्भुमौ पूर्यन्ते तेन चार्णवाः ॥४७॥ सतः समुद्राः स्वां वेलामतिकान्तास्तु कृत्स्रवाः । पर्वताश्च विलीयन्ते मही चाप्सु निमज्जित ॥४८॥ तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावर-जङ्गमे । योगनिन्द्रां समास्थाय शेते देवो जगत्पतिः ॥४९॥ कल्पमाहुर्मनीषिद्याः । बाराहो वर्तते कल्गे यस्य विस्तर ईरितः ॥५०॥ चत्र्यंगसहस्रान्तं षसंख्यातास्तथा कल्पा ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकाः। कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः ॥५१॥ सास्विकेष्वय कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः। तामसेषु हरस्योक्तं राजसेषु प्रजापतेः॥५२॥ योऽयं प्रवर्त्तते कल्पो वाराहः सात्त्विको मतः । श्रन्ये च सात्त्विकाः कल्पा मम तेषु परिग्रहः॥५३॥ ध्यामं तपस्तथा ज्ञानं लब्धवा तेष्वेव योगिनः । श्राराध्य गिरिशं माख्य यान्ति तत् परमं पदम्॥५४॥ सोऽहं तत्वं समास्थाय मायी मायामयं स्वयम् । एकार्गावे जगत्यस्मिन् योगनिद्रां ब्रजामि तु ॥५५॥ मां परयन्ति महात्मानः सप्त काले महर्षयः । जनलोके वर्तामानास्ताषसा योगचक्ष्णा ॥५६॥ महं पुराणः पुरुषो भूभूवः प्रभवो विभुः। सहस्रचरणः श्रीमान् सहस्राक्षः सहस्रपात्।।५७॥ मन्त्रोऽग्निर्दक्षिणा गावःक्षाञ्च समिघो हाहम् । प्रोक्षणी च सुवञ्चेव सोमो घृतमथारम्यहम् ॥५५॥ संवत्तंको महानात्मा पवित्रं परमं यशः । वेदो वेद्यं प्रभुगोप्ता गोपतिक्रीह्म गो मुखम् ॥५९॥ पनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतां वरः । हंसः प्राणोऽथ किपलो विश्वमूर्त्तिः सनातनः ॥६०॥ क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्वीजमथामृतम्। माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते ॥६१॥

> म्रादित्यवर्णी भुवनस्य गोप्ता नारायणः पुरुषो योगमूर्त्तिः । मा परयन्ते यतयो योगनिष्ठा ज्ञात्वात्मानं मम तत्त्वं व्रजन्ति ॥६२॥

इति श्रीकोर्मे महापुराणे उत्तरभागे प्रलयवर्णनं नाम त्रिचत्वारिकोऽध्यायः ॥ ४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

कूम उवाच

थ्रतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिसर्गमनुत्तमम् । प्राकृतं तत् समासेन श्रृणुष्वं गदतो मम ॥ १ ॥ गते परार्द्धद्वितये काले लोकप्रकालनः । कालाग्निर्भस्मसात् कत्तु चरते चाखिलं जगत् ॥ २॥ स्वात्मन्यात्मानमावेश्य भूत्वा देवो महेश्वरः । दहेदशेषं ब्रह्माग्डं सदेवास्रमान्षम ॥ ३॥ तमाविश्य महादेवो भगवान् नीललोहितः । करोति लोकसंहारं भीषणं रूपमाश्रितः ॥ ४॥ प्रविश्य मग्डलं सीरं कृत्वासी बहुधा पून: । निर्देहत्यखिलं लोकं सप्तसप्तिस्वरूपघृक् ॥ ४ ॥ स दग्ध्वा सकलं विश्वमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत् । देवतानां शरीरेषु क्षिपत्यखिलदाहकम् ॥ ६॥ दग्धेष्वशोषदेवेषु देवी गिरिवरात्मजा। एका सा साक्षिणी शम्भोस्तिष्ठते वैदिकी श्रुतिः॥ ७॥ शिर:कपालैर्देवानां कृतस्रग्वरभूषणः । ग्रादित्यःचन्द्रादिगणः पूरयन् व्योममग्रहलम् ॥ ८॥ सहस्रनयनो देवः सहस्राकृतिरीश्वरः । सहस्रहस्तचरणः सहस्राचिम्हाभुजः ॥ ९ ॥ प्रदीप्तानललोचनः । त्रिशूली कृत्तिवसनो योगमैश्वरमास्थितः ॥१०॥ दंष्ट्राकरालवदनः पीत्वा तत्परमानन्दं प्रभूतममृतं स्वयम् । करोति ताग्डवं देवीमालोक्य परमेश्वरः ॥११॥ पीत्वा नृत्यामृतं देवी भत्तुः परममङ्गलम् । योगमास्थाय देवस्य देहमायाति शूलिनः ॥१२॥ सन्त्यक्त्वा ताग्डवरसं स्वेच्छ्येव पिनाकघृक् । याति स्वभावंभगवान् दग्ध्वा ब्रह्माग्डमग्डलम्॥१३॥ संस्थितेष्वय देवेषु ब्रह्म - विष्णु - पिनाकिषु । गुणैरशेषैः पृथिवी विलयं याति वारिष् ॥१४॥ स वारितत्त्वं सगुरां प्रसते हव्यवाहनः । तेजः स्वगुणसंयुक्तं वायी संयाति संक्षयम् ॥१५॥ भ्राकाशे सगुणो वायुः प्रलयं याति विश्वभृत् । भूतादी च तथाकाशं लीयते गुणसंयुतम् ॥१६॥ इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे यान्ति संक्षयम् । वैकारिके देवगणाः प्रलयं यान्ति सत्तमाः ॥१७॥ वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चेति सत्तमाः । त्रिविघोऽयमहङ्कारो महित प्रलयं व्रजेत् ॥१८॥ महान्तमेभिः सहितं ब्रह्माणमितौजसम् । भ्रव्यक्तं जगतो योनिः संहरेदेकमव्ययम् ॥१९॥ एवं संहत्य भूतानि तत्त्वानि च महेश्वरः । वियोजयित चान्योन्यं प्रधानं पुरुषं परम् ॥२०॥ संहार ईरितः। महेश्वरेच्छाजनितो न स्वयं विद्यते लयः ॥२१॥ प्रवानपुंसोरजयोरेष प्रकृतिः परिगीयते । प्रधानं जगतो योनिर्मायातत्त्वमचेतनम् ॥२२॥ कूटस्यश्चित्मयो ह्यात्मा केवलः पञ्चिविशकः । गीयते मुनिभिः साक्षी महानेष पितामहः ॥२३॥ एवं संहारशक्तिश्च शक्तिमहिश्वरी श्रुवा । प्रधानाद्यं विशेषान्तं दहेदुद्र इति श्रुतिः ॥२४॥ योगिनामथ सर्वेषा ज्ञानविन्यस्तचेतसाम् । मात्यन्तिकःचैव लयं विद्धातीह शङ्करः ॥२५॥ इत्येष भगवान रदः संहारं कुरुते वशी । स्थापिका मोहिसी शक्तिनशियण इति श्रुतिः ॥२६॥

प्रकृतेस्तन्मयः पञ्चविशकः ॥२७॥ हिरएयगर्भी भगवान् जगत् सदसदात्मकम् । मुजेदशेषं सर्वजाः सर्वगाःशान्ताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः । शक्तयो ब्रह्मविष्य्वीशा भक्ति-मुक्तिफलप्रदाः ॥२८॥ शाखतानन्तभोगिनः । एकमेवाक्षरं सर्वेश्वराः सर्वबन्धाः तत्त्वं पुम्प्रधानेश्वरात्मकम् ॥२९॥ भन्याश्च शक्तयो दिव्यास्तत्र सन्ति सहस्रशः । इज्यन्ते विविधैर्यज्ञैः शकादित्यादयोऽमराः ॥३०॥ एकैकस्याः सहस्राणि देहानां वे शतानि च । कथ्यन्ते देवमाहात्म्याच्छिक्तिरेकैव निर्गुणा ॥३१॥ इमां शक्ति समास्थाय स्वयं देवो महेश्वरः । करोति विविधान् देहान् ग्रसते चैव लीलया ॥३२॥ सर्वयज्ञेष बाह्म एविंदवादिभिः । सर्वकामप्रदो रुद्र इत्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥३३॥ सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्म - विष्णु - महेश्वराः । प्राधान्येन स्मृता देवाः शक्तयः परमात्मनः ॥३४॥ श्राभ्यः परस्ताद्भगवान् परमात्मा सनातनः । गीयते सर्वमायात्मा श्रूलपाणिर्महेश्वरः ॥३५॥ वदन्त्यगिन नारायणमथापरे । इन्द्रमेकं परे प्राएां ब्रह्माणमपरे जगुः ॥३६॥ ब्रह्म विष्एविन-वरुणाः सर्वे देवास्तथर्षयः । एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्त्तिताः ॥३७॥ यं यं भेदं समाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम् । तत्तद्रपं समास्थाय प्रददाति फलं शिवः ॥३८॥ तस्मादेकतरं भेदं समाधित्यापि शाश्वतम् । श्राराघयन्महादेवं याति तत् परमं पदम् ॥३९॥ किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्ति सनातनम् । धाराधयेह गिरिशं सगुरां वाथ निर्गुणम् ॥४०॥ मया प्रोक्तो हि भवता योगः प्रागेव निर्गाएः । ध्राक्रुक्षुस्तु सगुरां पूजयेत् परमेश्वरम् ॥४१॥ पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तिवाससम् । रुक्माभं वा सहस्रार्काचिन्तयेद्वैदिकी श्रुतिः ॥४२॥ एष योगः समुदिष्टः सबीजो मुनिवुङ्गवाः । ग्रत्राप्यशक्तोऽय हरं विष्णुं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥४३॥ श्रय चेदसमर्थः स्यात् तत्रापि मुनिपुङ्गवाः । ततो वाय्त्रिन-शकादीन् पूजयेद्भक्तिसंयुतः ॥४४॥ तस्मात् सर्वात् परित्यज्य देवात् ब्रह्मपुरोगमात् । म्राराधयेद्विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम् ।।४५॥ भक्तियोगसमायुक्तः स्वकर्मनिरतः शुचिः। तादृशं रूपमास्थाय समायात्यन्तिकं शिवः।।४६॥ एष योगः समुदिष्टः सबीजोऽत्यन्तभावनः । यथाविचि प्रकुर्वागः प्राप्नुयादैश्वरं पदम् ॥४७॥ ये चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह । ग्रत्रापि कथितो योगो निर्बीजश्च सबीजकः ॥४८॥ ज्ञानं तदुक्तं निर्बीजं पूर्वं हि भवतौ मया । विष्णुं रुद्रं विरख्चश्च सबीजे साधयेद् बुवः ॥४९॥ अय वाय्वादिकान् देवांस्तत्परो नियतात्मवान् । पूजयेत् पुरुषं विष्णुं चतुर्मू तिंघरं हरिम्।।५०।। श्रनादिनिधनं देवं वासुदेवं सनातनम् । नारायएां जगद्योनिमाकाशं परमं पदम् ॥५१॥ तिल्लङ्गधारी नियतं तद्भक्तस्तदुपाश्रयः। एष एव विधिव्वह्मि भावने चान्तिमे मतः॥५२॥ इत्येतत् कथितं ज्ञानं भावनासंश्रयं परम् । इन्द्रद्युम्नाय मुनये कथितं यन्मया पुरा ॥५३॥ प्रव्यक्तात्मकमेवेदं चेतनाचेतनं जगत्। तदीश्वरः परं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्ममयं जगत्।।५४।।

स्त उवाच

एताबदुक्त्वा भगवान विरराम जनार्दनः । तुष्टुकुर्मुनयो विष्णुं शक्केण सह माधवम् ॥१५४॥

ऋषय ऊचुः

नमस्ते कूर्म रूपाय विष्णावे परमातमने । नारायणाय विश्वाय वामुदेवाय ते नमः ॥१६॥ नमो नमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय च ते नमः । माघवाय च ते नित्यं नमो यज्ञेश्वराय च ॥१७॥ सहस्रक्षिरसे तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः । नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥१६॥ श्रों नमो ज्ञानरूपाय विष्णावे परमात्मने । श्रानन्दाय नमस्तुभ्यं मायातीताय ते नमः ॥१९॥ नमो गूहस्वरूपाय निर्णुणाय नमोऽस्तु ते । पुष्पाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे ॥६०॥ नमः सांख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तु ते । धर्मज्ञानाधिगम्याय निष्कलाय नमो नमः ॥६१॥ नमस्ते योगतत्वाय महायोगेश्वराय च । परावराणां प्रभवे वेदवेद्याय ते नमः ॥६२॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो मुक्ताय हेतवे । नमो नमो नमस्तुभ्यं ह्षाकेशाय ते नमः ॥६॥ नमोऽस्तु ते वराहाय नार्रासहाय ते नमः । वामनाय नमस्तुभ्यं हृषोकेशाय ते नमः ॥६॥ नमोऽस्तु कालकृद्धाय कालकृदाय ते नमः । स्वर्गापवर्गदात्रे च नमोऽप्रतिहतात्मने ॥६५॥ नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने । देवानां पतये तुभ्यं देवात्तिशमनाय ते ॥६७॥ श्रुताश्च विविधा धर्मा वंशा मन्वन्तराणि च । सर्गश्च प्रतिसर्गश्च ब्रह्माग्डस्यास्य विस्तरः ॥६५॥ श्रुताश्च विविधा धर्मा वंशा मन्वन्तराणि च । सर्गश्च प्रतिसर्गश्च ब्रह्माग्डस्यास्य विस्तरः ॥६५॥ व्याद्याश्च विविधा धर्मा वंशा मन्वन्तराणि च । सर्गश्च प्रतिसर्गश्च ब्रह्माग्डस्यास्य विस्तरः ॥६९॥ व्याद्यास्य विश्वतेः नारायण् परः । त्रातुमर्हस्यनन्तात्मा त्वामेव शरणं गताः ॥६९॥ वाद्यास्य त्वासेव शरणं गताः ॥६९॥

स्त उवाच

एतद्वः कथितं वित्रा भोग - मोक्षप्रदायकम् । कौमं पुराणमिखलं यज्जगाद गदाघरः ॥७०॥ ग्रस्मिन् पुराणे लक्ष्म्यास्तु संभवः कथितः पुरा । मोहायाशेषभूतानां वामुदेवेन योजितः ॥७१॥ प्रजापतीनां सर्गस्तु वर्णधमिश्च वृत्तयः। घमीर्थ-काम-मोक्षाणां यथावल्लक्षणं शुभम्॥७२॥ वितामहस्य विष्णोश्च महेशस्य च घीमतः । एकत्वश्च पृथक्तवञ्च विशेषश्चोपर्वाएतः ॥७३॥ भक्तानां लक्षणं प्रोक्तं समाचारः सुशोभनः । वर्णाश्रमाणां कथितं यथावदिह लक्षणम् ॥७४॥ पश्चादग्डावरणसप्तकम् । हिरग्यगर्भसर्गश्च कीर्त्तितो मुनिपुङ्गवाः ॥७५॥ माहात्म्यश्वेश्वरस्य च । ब्रह्मणः शयनश्वाप्तु नामनिर्वचनं तथा।।७६॥ काल संख्याप्रकथनं भूमेरुद्धरणं पुनः । मुख्यादिसर्गकथन मूनिसगस्तथापरः ॥७०॥ भूयो ऋषिसर्गश्च तापसः । धर्मस्य च प्रजासर्गस्तामसात् पूर्वमेव तु ॥७५॥ व्याख्यातो रुद्रसर्गश्च स्यादन्तर्देह प्रवेशनम् । पद्मोद्भवत्वं देवस्य मोहस्तस्य च वीमतः ॥७९॥ ब्रह्म विष्एवोविवादः दर्शनञ्च महेशस्य माहात्म्यं विष्णुनेरितम् । दिव्यदृष्टिप्रदानञ्च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥५०॥ ब्रह्मणा परमेष्ठिना । प्रसादो गिरिशस्याय वरदानं तथैव च ॥ -१॥ संवादी विष्णुना साद शङ्कारस्य महात्मनः । वरदानं तथा पूर्वमन्तद्धीनं पिनाकिनः ॥दश। वध्य कथितो विप्रा मघु - कैटभयोः पुरा । भ्रवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात् ॥६३॥ एकीमावश्च देवेन ब्रह्मणा कथितः पुरा। विमोहो ब्रह्मणश्चाय संज्ञालाभो हरेस्ततः ॥५४॥ घीमतः । प्रादुर्भावो महेशस्य ललाटात् कथितस्ततः ॥ ५५॥ तपश्चरणमाख्यातं देवदेवस्य वरदानोपदेशको ॥ दश। रद्राणां कथिता सृष्टिर्त्रह्मागः प्रतिषेधनम् । ततश्च देवदेवस्य नरनारीशरीरता ॥५७॥ भन्तद्धानश्च देवस्य तपश्चर्याएडजस्य च । दर्शनं देवदेवस्य देव्या विभागकथनं देवदेवात् पिनाकिनः। देव्याश्च पश्चात् कथितं दक्षपुत्रीत्वमेव च ॥ ८८॥ हिमवद्दुहितृत्वश्च देव्या माहात्म्यमेव च। दर्शनं दिव्यरूपस्य विश्वरूपस्य दर्शनम् ॥५९॥ नाम्नौ सहस्रं कथितं पित्रा हिमवता स्वयम् । उपदेशो महादेव्या वरदानं तथैव च ॥९०॥ भुग्वादीनां प्रजासगाँ राज्ञां वंशस्य विस्तरः । प्राचेतसत्वं दक्षस्य दक्षयज्ञविमर्दनम् ॥९१॥ दधीचस्य च यज्ञस्य विवादः कथितस्तदा । ततश्च शापः कथितो मुनीनां मुनियुङ्गवाः ॥९२॥ रद्वागृतिः प्रसादश्च ग्रन्तद्धीनं पिनाकिनः । पितामहोपदेशः स्यान् कीर्तितं रक्षणाय तु ॥९३॥ दक्षस्य च प्रजासर्गः कश्यपस्य महात्मनः । हिरएयकशिपोर्नाशो हिरएयाक्षवधस्तथा ॥९४॥ कथितो देवदारुवनौकसाम् । निम्नहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमन्तमम् ॥९५॥ संयमनन्त्वथ । वाणस्य निग्रहश्चाय प्रसादस्तस्य शूलिनः ॥९६॥ बले: ऋषीणां वंशविस्तारी राज्ञां वंशाः प्रकीत्तिताः । वसुदेवात् ततो विष्णोरुत्पत्तिःस्वेच्छया हरेः॥९७॥ तपश्चरणमेव च । वरलाभो महादेवं दृष्ट्वा साम्बं त्रिलोचनम । दर्शनञ्चोपमन्योर्वे निवासस्तत्र शाङ्गिणः ॥९८॥ कैलासगमनश्चाय

ततश्च कथ्यने मोतिर्दारवत्यां निवासिनाम् । रक्षणं गरुडेनाथ जित्वा शत्रून् महाबलान् ॥९९॥ नारदागमनंचैव यात्रा चैव गरुत्मतः । ततश्च कृष्णागमनं मुनीनामागितस्ततः ॥१००॥ नैत्यिकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गार्चनं तथा । मार्कग्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोक्तस्ततः परम्॥१०१॥ लिङ्गार्चनिमित्तच लिङ्गस्यापि च लिङ्गिनः । माहात्म्यकथनचाथ लिङ्गार्दै भीतिरेव च॥१०२॥ महा-विष्ण्वोस्तथा मध्ये कीर्त्तिता मुनिपुङ्गवाः । मोहस्तयोवे कथितो गमनचोध्वतो ह्यधः ॥१०३॥ संस्तवो देवदेवस्य प्रसादः परमेष्ठिनः । म्रन्तद्वीनख्च लिङ्गस्य साम्बोत्वत्ति स्ततः परम् । कीर्त्तिता चानिरुद्धस्य समुत्पत्तिर्द्धिजोत्तमाः ॥१०४॥

कृष्णस्य गमने बुद्धिऋषिणामागितस्तथा। प्रनुशासनः कृष्णेन वरदानं महातमनः ॥१०५॥ गमनःचैव कृष्णस्य पार्थस्याप्यथ दर्शनम्। कृष्णद्वेपायनस्योक्ता युगंत्रमीः सनातनाः ॥१०६॥ प्रनुप्रहोऽथ पार्थस्य वाराणस्या गितस्ततः। पाराशर्यस्य च मुनेज्यसिस्याद्भुतकर्मगः। वाराणस्यास्त्र माहात्म्यं तीर्थानाःचैव वर्णनम् ॥१०७॥

व्यासस्य तीर्थवात्रा च देव्याश्चेवाय दर्शनम् । उद्घासनच कथितं वरदानं तथैव च ॥१०८॥

षत्तरभागे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

प्रयागस्य च माहातम्यं क्षेत्राणामय कीर्त्तनम् । फलश्व विपुलं विप्रा मार्कग्डेयस्य निर्ममः ॥१०९॥ भुवनानौ स्वरूपञ्च ज्योतिषाद्ध निवेशनम्। कीत्तितश्चापि वर्षाणां नदीनाञ्चेव निर्णयः॥११०॥ पर्वतानाञ्च कथनं स्थानानि च दिवीकसाम् । द्वीपानां प्रविभागश्च स्वेतद्वीपोपवर्णनम् ॥१११॥ वायनं केशवस्याथ माहात्म्य महात्मनः । मन्वन्तराणां कथनं विष्णोर्माहात्म्यमेव च ॥११२॥ वेदशाखाप्रग्रयनं व्यासानां कथनं ततः। भ्रवेदस्य च वेदस्य कथनं मुनिपुङ्गवाः॥११३॥ योगेश्वराणाञ्च कथा शिष्याणाञ्चाय कीर्तनम् । गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याय कीर्त्तिताः॥११४॥ वर्णाश्रमाणामाचाराः प्रायश्चित्तविध्स्ततः। कपालित्वश्व रुद्रस्य भिक्षाचरणमेव च ॥११५॥ पितव्रतानामारूयानं तीर्थानाञ्च विनिर्णयः । तथा मङ्कण्यकस्याथ निग्रहः कीत्तितो द्विजाः॥११६॥ वध्य कथितो विप्राः कालस्य च समासतः । दैवदारुवने शम्भोः प्रवेशो माधवस्य च ॥११७॥ दर्शनं षट्कुलीयानां देवदेवस्य त्रीमतः। वरदानः देवस्य नन्दिने तु प्रकीत्तितम् ॥११८॥ नेमित्तिकश्च कथितः प्रतिसर्गस्ततः परम् । प्राकृतः प्रलयश्चोध्वं सबीजो योग एव च ॥११९॥ एवं ज्ञात्वा पुराग्रस्य संक्षेपं कीर्तयेत् तु यः । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।।१२०॥ एवमुक्त्वा श्रियं देवीमादाय पुरुषोत्तमः । सन्त्यज्य कूर्मसंस्थानं स्वस्थानञ्च जगाम ह॥१२१॥ दैवाश्च सर्वे मुनयः स्वानि स्थानानि भेजिरे । प्रणम्य पुरुषं विष्णुं गृहीत्वा ह्यमृतं द्विजाः ॥१२२॥ एतत् पुराणं परमं भाषितं कूर्मरूपिणा । साक्षाद्वािघदेवेन विष्णुना विश्वयोनिना ॥१२३॥ यः पठेत् सततं भक्त्या नियमेन समासतः । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मालोके महीयते ॥१२४॥ लिखित्वा चैव यो दद्याद्वेशाखे कात्तिकेऽपि वा । विप्राय वेदविदुषे तस्य पुर्यं निबोषत ॥१२४॥ सर्वपापविनिर्मृक्तः सर्वेश्वर्यसमन्वितः । भुक्त्वा तु विपुलान् मत्त्यों भोगान् दिव्यान्सुशोभनान्॥१२६॥ ततः स्वर्गात् परिश्रष्टो विष्राणां जायते कुले । पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्॥१२७॥ पिठत्वाध्यायमेवेकं सर्वपापैः प्रमुच्यते । योऽथं विचारयेत् सम्यक् प्राप्नोति परमं पदम्॥१२८॥ म्रध्येतव्यमिदं पुर्यं विष्रैः पर्वणि पर्वणि । श्रोतव्यश्व द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम् ॥१२९॥ एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानि कृत्स्नवाः। एकत्र परमञ्चेदमेतदेवातिरिच्यते ॥१३०॥ वमंतेपुणकामानां ज्ञाननेपुणकामिनाम्। इदं पुराणं मुक्त्वेकं नान्यत् साधनकं परम् ॥१३१॥ यथावदत्र भगवान् देवो नारायणो हरिः। कीर्त्यते हि यथा विष्णुर्न तथाऽन्येषु सुत्रताः॥१३२॥ बाह्यी पौराणिकी चेयं संहिता पापनाशनी अत्र तत् परमं ब्रह्म कीत्त्र्यते हि यथार्थतः ॥१३३॥ तीर्थानां परमं तीर्थं तपसाञ्च परं तपः । ज्ञानानां परमं ज्ञानं व्रतानां परमं व्रतम् ॥१३४॥ नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य च सिन्नघी । योऽघीते चैव मोहात्मा स याति नरकान् बहुन्॥१३५॥ श्राद्धे वा दैविके कार्ये श्रावणीयं द्विजातिभिः । यज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम् ॥१३६॥ मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः। श्रोतव्यक्राथ मन्तव्यं वेदार्थपरिबृहणम्॥१३७॥ ज्ञात्वा यथाविद्वप्रेन्द्रान् श्रावयेद्वक्तिसंयुतान् । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥१३८॥ योऽश्रद्धाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा । स प्रेत्य गत्वा निरयान् शुनां योनि व्रजत्यधः ॥१३९॥
नमस्कृत्य हरि विष्णुं जगदयौति सनातनम् । ग्रध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णुद्वेपायनं तथा ॥१४०॥
हत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णुरिमततेजसः । पाराशयस्य विप्रर्षेव्यसिस्य च महात्मनः ॥१४१॥
श्रुत्वा नारायग् हेवान्नारदो भगवानृषिः । गौतमाय ददौ पूर्वे तस्माच्चैव पराशरः ॥१४२॥
पराशरोऽपि भगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः । मुनिभ्यः कथयामास धर्म-कामार्थ-मोक्षदम् ॥१४३॥
बह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च घीमते । सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४४॥
सनकाद्भगवान् साक्षाहेवलो योगवित्तमः । ग्रवाप्तवान् पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम् ॥१४४॥
सनत्कुमाराद्भगवान् सुनिः सत्यवतीसुतः । लेभे पुराणं परमं व्यासः सर्वार्थसञ्चयम् ॥१४६॥
तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवतां पापनाशनः । ऊचिवान् वे भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने ॥१४५॥
तस्मो व्यासाय गुरवे सर्वज्ञाय महर्षये । पाराशर्याय शान्ताय नमो नारायणात्मने ॥१४५॥
यस्मात् सञ्जायते कृत्सनं यत्र चैव प्रलीयते । नमस्तस्मै परेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे ॥१४९॥

इति श्रीकौर्मे महापुराणे उत्तरभागे प्रतिसर्गादि स्थनं नाम चतुश्चत्वारिशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

समाप्त उत्तरभागः

इति कूर्मपुराणं समाप्तम्

पुराणपुरुषं घ्यात्वा शब्दार्थी सुविचार्यं च ।
संपादितामदं कूर्मपुराणं श्रद्धया मया ॥
रामशंकरसंज्ञेन जीवकेनाल्पबुद्धिना ।
गार्थेण तैस्तिरीयेण जात्युरकर्षेककामिना ॥

自身的主义,为中国的自己的主义。 "是一种的特殊,但是自己的主义,我们也是自己的主义,这种自己的主义,

कूर्मपुराणस् [शब्द - सची]

(श्रनुस्वारविसर्गो श्रव्यवहित-पूर्वस्वरानुगतौ इति कृत्वा वर्ग्।क्रमानुसारिग्। सचित्रिं प्रणीताः सादावनस्वारघटितं पदं ततश्च विसर्गघटितं स्थापितमत्र)।

| सूचिरियं प्रगीता | ; ग्रादावनुस्वारघाटत पद | तत्रश्च विसगधाटत स | था।पतमत्र)। |
|--|--|-----------------------------|---------------|
| ग्रक्र्र: | 63 | श्रनघ्याय: | १३४ |
| श्रग्नितीर्थम् | 58 | ग्रनन्तः | ६४,१२०,१२१ |
| श्राग्नवाहु: | 32 | श्रनरकम् | १९५ |
| ग्रग्निष्वात्ताः | 38 | म्रनलः | 80 |
| ग्रग्निहोत्रम् | १५७,१५८ | श्रनसूया | १७,३३ |
| ध्रग्नीकरराम् | १५४ | श्रनावृष्टि: | ४३ |
| ग्रङ्कोलतीर्थम् | 838 | ग्रनिरुद्ध: | ७१ |
| श्रङ्गः | 38 | श्रनिल; | 80 |
| श्रङ्गानि (वेदाङ्ग | हानि) १३४ | प्र नुः | 90 |
| ग्रङ्गारेश्वरम् | १६२ | धनुगिरि: | X |
| ग्रङ्गिरा: | १५,१७,४०,१६२ | श्रनुमती | \$ 3 |
| श्रजाः | १६ | धनुह्राद | ४१ |
| ग्रट्टहास: (महादे | रवावतारः) १०६ | श्रन्त्याश्रम: | ₹火 |
| भ्रण्डकटाहः | १०५ | ग्रन्तर्जलेशयः | १८७ |
| ग्रण्डम् | 88 | भ्रन्तद्धनि: | ३५ |
| श्रतिकृच्छ् | १७४ | | ३,४४,४४,४६,४७ |
| श्रतिथि: | १५२ | धन्नानि | 880 |
| धत्रिः | 2,20,33,48 | श्रपचिति: | ३३ |
| श्रत्रिः (महादेवा | ावतारः) १०९ | श्रपरान्ताः | १०० |
| प्रथवंवेद: | १०=,१६७ | भ्रपरिग्रह: | ११६ |
| ग्रथर्वा वेद: | | श्रपान्तरतमाः | १०७ |
| श्रथविङ्गिरसः | १६ | धपेयानि | 686 |
| ग्रथवंशिरः | १४०,१६२.१८७ | श्रप्सराः | १६,६२, १०१ |
| श्रदितिः | ४०,४८,५२ | ग्र प्सरेश म् | १६६ |
| श्रद्धैतम् | ************************************** | ध्रमक्ष्याणि- | १४२ |
| अधर्मः (हिसाप | ति:) १७ | श्रभाव: | १२६ |
| श्रधियज्ञम् | १६४ | श्रमिवादनम् | १३० |
| ग्रह्यात्मम् . | १ ३७ | ग्रभावकाशः | १५७ |
| The second secon | | | |

(?)

| श्रमरकण्कम् | 980 | ग्राकाशारव्य-तीर्थम् | द३ |
|---------------------------|------------|----------------------|-------------|
| ग्रमरावतो पुरी | 63,89 | श्राकतिः | १६,१०६ |
| श्रम्भांसि | 28 | ग्राग्नीध्रः | 03,32 |
| ग्ररिष्ट: | ५३ | ग्राग्नेयं पुराराम् | 8 |
| ग्ररिष्टनेमिः | 80 | ग्राङ्गि रसतीर्थम् | १६२ |
| ग्रिरिष्टा | ४०,५१ | ग्राचमन म् | १३२,१४३ |
| ग्रहण: | 48 | ग्राचार: | १३६,१३७ |
| ग्रहणोद-सरः | £ € | ग्रात्मयोगः | १४७ |
| श्रहन्धती | ४०,५२ | ग्रात्मविद्या | १२१ |
| ग्रर्जुन: | ४८,७६ | ग्रात्मा ११३, | ११४,१६४,१८८ |
| मर्थः | १५९ | ग्रात्यन्तिक-लयः | २००,२०३ |
| श्रबुंदा | 200 | ग्राथर्व गानि | Ę |
| ग्रवीक्स्रोत: | १४ | म्रादित्य: | 42 |
| ग्रवविसु: | £ 3 | श्रादित्याः | ४०,६२ |
| श्च त्रकनन्दा | 85 | भ्रा दित्यायतन म् | £38 |
| ग्र लकातीर्थम् | 039 | ग्राधिदैविकम् | १६४ |
| श्रवताराः (शंकरकृ | ताः) ७५ | ग्राघ्यात्मिकम् | १६४ |
| श्रवि: | १६ | - ग्रान्धाः | 800 |
| प्रविद्या | 18 | म्राप: | 80 |
| ग्रविमुक्तम् | ७७,७५,१२१ | श्राभीराः | १०० |
| ग्र व्यक्तम् | १२२ | ग्रामश्राद्धम् | 878 |
| ग्रशीचम् | १५४,१५६ | ग्राम्रातकेश्वरम् | \$39 |
| श्ररमकुट्टा: | १८७ | ग्रायति: | ३३ |
| श्रश्वतीर्थम् | १७५ | श्रार्षभ-तीर्थम् | 53 |
| श्रष्ट मूर्त्तयः (शिवस्य | प) २१ | ग्राईतम् (मोहनशा | स्त्रम्) ३१ |
| ग्रष्ट-सहस्रनाम | २५ | श्राशीचम् | १५४ |
| ग्रसाधक: (गृही) | १५५ | ग्राश्रम: | 5,8 |
| श्रसिक्ती | X0 | श्रासनम् | १२६ |
| श्रसित: | ५१,५२ | इक्षुनदी | 738 |
| श्रसितोदम् | ६ ६ | इक्षुरसाम्भोधिः | १०२ |
| ग्रसुरा: | १४,४१ | इक्षुरसोद: | £ \$ |
| श्रस्तेयम् | १२६ | इक्ष्वाकुः | ५३,५७ |
| ग्रहङ्कार: | 88 | इतिहास-पुराणानि | ७४,१०८,१५३ |
| श्रहल्यातीर्थम् — | १६३ | इतिहासपुराणे | 180 |
| ग्रहिंसा | १२६ | इन्द्रः (व्यासः) | १०५ |
| ग्रा काशम् | 88 | इन्द्रचुम्नः | 7,3,8,4,60 |
| | | | |

(३)

| इन्द्रद्वीप: | 33 | ऋषितीर्थम् | १९२ |
|---------------------|------------|-----------------------|-------------|
| इरा | ४०,५१ | ऋषिपुत्राः | ७४ |
| इला | पु३ | ऋषिव्रती | १५० |
| इलावृतवर्षम् | 33,73,03 | ऋषीक: | १५० |
| ईशानमन्त्रः | १४६ | एकपर्णा | 42 |
| ईश्वर: | १४३ | एकशृङ्गः | १८६ |
| ईश्वरगीता | १११ | एकाम्रम् | १७८ |
| उग्र: (महादेवावतारः | 309 | एकार्णवम् | १३,१८,७० |
| उग्रसेन: | ६३ | एरण्डीतीर्थम् | 838 |
| उत्तमः मनुः | १०६ | एरण्डीनर्मदासङ्गमः | १६६ |
| उत्तरवर्षम् | 03 | एरण्डीसङ्गमः | 838 |
| उत्तरा: कुरव: | ६६ | ऐरावतः | १२१ |
| उत्तानपाद: | १६,३४ | ग्रोङ्कारः | १२७,१३५ |
| उद्गीथ: | •3 | भ्रोङ्कारमूर्तिः | १२ २ |
| उपनिषद् | १६३ | भ्रोषधिः | १६ |
| उपपुरागानि | १,३१ | कङ्करणः (महादेवावतार | 308 |
| उपमन्युः | ६४,६५,६६ | क्णव: | 48 |
| उपवीती | १३० | कण्वाश्रमः | ६०,६१ |
| उमा | 88 | कथा | 1 |
| उमातुङ्गम् | १६२ | कद्र: | 80 |
| उर्वशीं | ६०,६१ | कर्नेखलम् | १८१ |
| उर्वशीपुलिनम् | 50 | क्त्यातीर्थम् | १६६,१६६ |
| उशनाः (ध्यासः) | १०८ | कपर्दीशम् (लिङ्गम्) | 57 |
| ऊर्घ्वस्रोतः | 88 | कपदीश्वरम् (लिङ्गम्) | 92,30 |
| ऋक्षपर्वतः | 33 | कपालमोचनम् | १६६,१७० |
| ऋक्षवत्-पर्वतः | 33 | कपिलः | १२१ |
| ऋग्वेद: | १०८,१६७ | कपिला | १६०,१६१ |
| | ,१६,५१,१३४ | कपिलातीर्थम् | १९४ |
| ऋगतीर्थम् | 938 | कम्बलाश्वतरो (नागो) | |
| ऋगप्रमोचनम् | 55 | कर्दमः | ३३,१०२ |
| ऋतञ्जयः (व्यासः) | १०५ | कर्म ७,१०,३ | २,१३७,१४३ |
| ऋभुः | 88 | कर्मभूमिः | 33 |
| ऋषभः | 0.3 | कर्मयोगः | १०,१३० |
| ऋषभः (महादेवावता | रः) १०६ | कर्माणि | 8.6 |
| ऋषभः (व्यासः) | १०८ | करुष: | ¥\$ |
| ऋषितर्पणम् | १४५ | कलि: | . ७३ |
| | | | |

(8)

| कलिङ्गदेशः | 039 | कालिकाह्वयम् (उपपु | राणम्) २ |
|---------------------|-----------------|------------------------|----------------|
| कलिङ्गाः | 200 | कालिन्दी | ६० |
| कलियुगम् | ७२,७३,७४ | किन्नरः | १६ |
| कल्प: | १३,२ २ | किम्पुरुष: | 03 |
| कल्पः (वेदाङ्गम्) | ₹१ | किम्पुरुषम् | 53,33 |
| कल्पतीर्थम् | १६६ | कीत्तः (दक्षकन्या) | १७ |
| कल्पाः | २०२ | कीर्तिमती | प्र |
| कल्पाधिकारिए: | દ્ય | कुण्डगोलादि: | ६२ |
| कल्माषपादकः | पूह | कुण्डानि | 5 |
| कल्लोलकेश्वरम् | 838 | कुबेर: | १२०,१२१ |
| | ४०,५१,५२,५४ | कुवेरतुङ्गम् | १८२ |
| कंस: | ६३,६४,७१ | कुब्जाम्न: | 388 |
| कसेरुमान् द्वीपः | 33 | बुब्जाश्रमः | १७८ |
| काद्रवेयाः | ४१ | कुमार: | ४० |
| कान्तिमती पुरी | 23 | कुमारधारा | १८२ |
| कापालम् (मोहनशा | स्त्रम्) ३१,४३ | कुम्भकर्णः | प्र |
| कापालिकाः | ७५,१५१ | कुरः | 800 |
| कापिलतीर्थम् | E 8 | कुरुक्षेत्रम् | 385 |
| कापिलम् (मोहनशा | स्त्रम्) ३१ | कुरुजाङ्गलम् | १८२ |
| कापिलम् (उपपुराए | | कुरुपाञ्चालाः | 200 |
| काबेरी | 939 | कुरुवर्षम् | 33,03 |
| काबेरीप्रभवः | १८२ | कुलपर्वतः | 33 |
| कामः | १५६ | कुशतीर्थं म् | 939 |
| कामतीर्थम् | F39 | कुराद्वीप: | ८६,६६,१०३ |
| कामरूपः (जनपदः |) | कुशावर्तम् | 388 |
| काम्यश्राद्धानि | १४८ | जुह: | 33 |
| कायावतार-तीर्थम् | 339,309 | क्में: (विष्णु:) | २,४,५ |
| कार्तवीर्यः | 45 | कुच्छू: | १७४ |
| काल: १३,२४, | ११४,१२१,१८० | कुच्छ्रातिकुच्छ्रौ | १७४ |
| कालकेश्वरम् तीर्थम् | 58 | कृतञ्जयः (व्यासः) | १०८ |
| कालचिन्तकः | २०२ | कृतम् | 828 |
| कालञ्जरम् | १८० | कृतयुगम् | ξ υ |
| कालतीर्थम् | 57 | कृत्तिवासेश्वर-लिङ्गम् | ७E, ⊆ • |
| कालसंख्या | १२ | कृशाश्व: | ४०,५१,५२ |
| कालसपि: | १८२ | कृषि: | · {85 |
| कालाग्निः | २०१ | कृष्टि: | ७३ |
| | | | |

(4)

| कृष्णः ६४,६५,६६, | ,६७,६८, | गङ्गायमुनसंगम: | 44 |
|----------------------|------------|--|-------------------|
| ७० | ,७१,७२,⊏३ | गङ्गावदनम् | १६५ |
| कृष्णद्वैपायन: | ३४,६५,७२, | गर्गेश: | 908 |
| | ७६,८३,१०८ | गरोश्वरम् | १६५ |
| केतुमान् (ग्रह:) | 83 | गर्गेश्वराः | ₹□ |
| केतुमालवर्षम् | 23,03 | गन्धमादन-वनम् | . इइ |
| केदारम् १४ | '६,१८१,१६२ | गन्धमादनवर्षम् | 0.3 |
| कैकेयी | ५२,५६ | गत्धर्वाः | १५,१६,१०१ |
| कैटभः (ग्रसुरः) | २० | गत्धर्वाः (सूर्यर | थाधिष्ठितारः) ६२ |
| कैलास: | १०० | गन्धवती पुरी | ६८ |
| कोकामुखम् | १७८ | गभस्तिमान् द्वीप | 33 |
| कोटितीर्थम् | ८७,१६३ | गय: | 03 |
| कौन्तेय: | द्रप् | गया | 388 |
| कौर्मपुराणम् | १,२,२ ४ | गयातीर्थम् | ⊏₹,१७७ |
| कौशिको | १८२ | गरुड: | ३८,४१,१०१,१२१ |
| क्रतुः १९ | ५,१७,३४,५४ | गरुड-पुराणम् | 8 |
| क्रिया (दक्षकन्या) | १७ | गाथा: | १७७ |
| क्रोधवशा | ४०,४१ | गानयोगः | ६३ |
| क्रोष्टु: | ६१ | गानविद्या | ६३ |
| क्रीश्वद्वीपम् | ८६,६६,१०३ | गान्धर्वः | 33 |
| क्रीश्व-पर्वतः | \$8 | The state of the s | १२६, १३४,१४३,१४७ |
| वलेश: | १२२ | गार्हस्थ्यम् | १२१ |
| खखोल्कः | 888 | गिरिश: | १८०,१८५ |
| क्षमा | १३७ | गिरीन्द्रजा | १२१ |
| क्षमा (दक्षक न्या) | १७,३३ | गुणसाम्यम् | २०३ |
| क्षारोद: | ६६ | गुरात्रयम् | १२२ |
| क्षीरसलिल: | ६६ | गुरु: | १३०,१३१,१३३ |
| क्षीरसागरम् | 2 | गुरुः (ग्रहः) | 93 |
| क्षीरार्ण् वः | . 808 | गृहावास: (म | हादेवावतारः) १०६ |
| क्षीरोद: | १०२,१०३ | गुह्यलिङ्गानि | ७९ |
| खसा | 80,48 | गृधवनम् | १८२ |
| ख्यातिः (दक्षकन्या) | १७,३३ | गृहस्थ: | ७,८,९,१६१, |
| | ,50,95,890 | गृ ही | १४८,२३७ |
| गङ्गांतीर्थम् | 58 | गृह्यकर्म | १३७ |
| गङ्गाद्वारम् | ३६,१९६,१४६ | गोकर्णम् | ४३,१७८ |
| गङ्गायमुनम् | द्ध | गोकर्णः | 308 |
| | | | |

()

| गोदावरी १४६,१८२ जनलोकः | ६४ |
|---|----------|
| गोवर्धनगिरिः ३५,६३ जनार्दनः | १६६ |
| गो: १६ जप: | 688 |
| गीतमः ४३,४४,५३,१६६ जपयज्ञः | 888 |
| गीतमः (महादेवावतारः) १०६ जमदिगनः | 78 |
| गौतम: (व्यास:) १०८ जम्बुकेश्वर तीर्थम् | 53 |
| गीतमेश्वरम् १६६ जम्बूद्वीपः | ९६ |
| गौरीतीर्थम् ६३ जम्बूद्वीपेश्वर: | 32 |
| ग्रहदोष: ३३ जयघ्वज: | ५८,५९ |
| ग्रहाः ६४ जलेश्वरम् | १९० |
| ग्रामणी: (सूर्यरथाधिष्ठितः) ६२ जातिस्मरः | १८२ |
| ग्रीष्मः ६४ जातूकर्गाः (व्यासः) | १०८ |
| घटोत्कच-तीर्थम् ५४ जाप्येश्वरम् | 338 |
| घृतोदकः ६६ जामदग्न्यतीर्थम् | १९९ |
| घृतोदिधः १०३ जाम्बवती | ७१ |
| घोषः ४० जालेश्वरम् | 838 |
| चतुर्युगम् ७२ जाह्नवी | 5.1 |
| चतुर्व्याहः २४ जिनाख्याः | ७५ |
| चन्द्रः ६३ जीवः | ११४ |
| चन्द्रतीर्थम् १८२,१६६ जीवश्राद्धम् | १५७ |
| चन्द्रभागा १९३ जैगीवन्य: (महादेवावतारः) | |
| चन्द्रमाः ३८,९२,१२१ जैगीषव्याश्रमः | 800 |
| चन्द्रस्थानम् १०२ जैमिनिः | ७६,१०८ |
| चर्मास्यं तीर्थम् ८३ ज्येष्ठसाम | १२१ |
| चतुर्लोकाः २०१ ज्येष्ठसामगः | १५० |
| चाक्षुष-मनुः १०६ ज्योतिः | 88 |
| चातुर्विद्यम् ७ ज्योतिःशास्त्रम् | 38 |
| चान्द्रायसम् १७४ ज्योतिष्मान् | 59,90 |
| चैत्ररथ-वनम् ९६ ज्ञानतीर्थम् | 28 |
| छ्रत्दः ३१ ज्ञानम् ३,४,१०,३२ | ,३३,३५, |
| छन्दांसि ९२ ११२,११३,११ | ७,१२१, |
| ् छन्दोग: १५० १२२,१२४,१ | रप्,१२७, |
| छागल-पर्वतः १०६ १२८,१३८,१ | ६५,१८८ |
| | ७७,१८८ |
| जगत् १०,११७,१२३,२०४ डामरम् (मोहनशास्त्रम्) | 38 |
| जटामाली (महादेवावतार;) १०६ डिण्डमुण्डीश्वरः | 308 |

| | 0) |) | |
|----------------------|---------|------------------------|-----------|
| तत्त्वचिन्तकाः | 80 | विचामा (व्यास:) | १०५ |
| तत्त्वम् | १६५,२०४ | त्रिपुण्ड्रकम् | 3 |
| तत्त्वानि | १२२,२०३ | त्रिमघु | १४० |
| तन्मात्राणि | १२२ | त्रिशूलम् | 3 |
| तपः | १२६ | त्रिसोपर्गाः | १४० |
| तपती | प्र | त्रेतायुगम् | ४७६७ |
| तपोलोकः | ६५ | त्यूम्बकः | १४६ |
| त स कुछ्। | १७३,१७४ | त्वष्टा | 03 |
| तर्पणम् | १४५ | दक्षः १५,१६,२७,३६, | |
| तलम् | 23 | | १२१ |
| तलातलम् | 83 | दक्षिणा | १६ |
| त्रयीबाह्याः | ३७,४३ | दत्तात्रय: | 33 |
| त्रयाहिएाः (व्यासः) | १०५ | दत्तोलिः | 33 |
| तापसः | 863 | दिधवाहः (महादेवावतारः) | |
| तापसाः | ६४ | दिधसागरम् | १०३ |
| तापसेश्वरम् | 838 | दघीचः | ३६,३७ |
| तामसः सर्गः | 80 | दघ्योदः | ६६ |
| तामसमनुः | १०६ | दनुः | ४०,४१ |
| ताम्रपर्गः (द्वीपः) | 33 | दन्तकाष्ठम् | १४३ |
| ताम्रपर्णी | १६२ | दन्तोलूखली | १५७ |
| ताम्रा | 80.88 | दमः | १३७,१३८ |
| तारकम् ब्रह्म | ৬5 | दया | १३७ |
| तालजङ्घः | ६० | दशरथ: | ४६ |
| तिर्यक्स्रोतः | 5.8 | दशाएँ। | १६२ |
| तिलकम् | ९ | दशाश्वमेधिकम् | १५२,१६४ |
| तिष्ययुगम् | 98 | दाक्षसावर्णः (मनुः) | 308 |
| तीर्थफलम् | १८२ | दाक्षिणात्याः | 100 |
| तीर्थानि | १७७ | दानधर्मः | १४६,१६१ |
| तुर्वसुः | 40 | दानवाः | १०२ |
| सुव्टि: | १७,३३ | दारुकः (महादेवावतारः) | 308 |
| तृराबिन्दुः | ४२ | दाह्वनम् ४ | १,१८३,१५४ |
| तृराबिन्दुः (व्यासः) | १०८ | दितिः | ٧٥ |
| तेजोवतीपुरी | 03 | दिवाकर: | १०३ |
| तेजसः | 90 | दी प्तेश्वरम् | १६२ |
| त्रिणाचिकेतः | १५० | दुर्गा | १०२ |

त्रिणाचिकेतः

| | (| ۹) | |
|------------------------|------------|------------------------|------------|
| दुर्जयः | ६० | वर्मः (दाक्षायग्गीपति | :) १७ |
| द्ववीसाः | 33 | घमंपदम् | ३५ |
| दुर्वाससोक्तम् (उपपुरा | | धर्मः (व्यासः) | १०५ |
| देवगणाः | १०६ | धर्मशास्त्रा शि | ७४,१५३,१५८ |
| देवता: | १४,१२०,१६० | धर्मसारः | १३१ |
| देवतीर्थम् | १८६ | वम्बियायः | १३८ |
| देवदारुवनम् | १८२,१८७ | घाातकिः ं | 35 |
| देवप्रहरणाः | * 4 5 | घाता | \$\$ |
| देवबादुः | \$\$ | घारणा | १२६ |
| देवयानी | ५७ | घीमान् | 03 |
| देवल: | . 80,85 | ध्रुवः | 38,80 |
| देवविंगिनी | ४२ | ध्रुवः (नक्षत्रम्) | 83,83 |
| देवा: | १४,४१,१४४ | धृतिः (दक्षकन्या) | १७ |
| देवाः (वैकारिकाः) | 88 | घृष्ट: | ¥\$ |
| देवासुरितरः | १४ | घौतपापम् | १९६ |
| देविका | १८२ | घ्यानम् | १२६ |
| देवी | ३१,२७,२०३ | नक्लीश्वर: | 388 |
| देव्यः | 88 | नकुलीश्वरः (महादेवा | तारः) १०६ |
| दैत्याचार्यः | १०२ | नकुलीश्वर-तीर्थम् | 339 |
| दैवतम् (कस्य को देवः | :) 45 | नक्तः | 0.3 |
| देवतानि | 888 | नक्षत्रमण्डलम् ः | 83 |
| द्युतिमान् | 03 | नक्षत्राणि | 28,883 |
| द्युतिमान् | 58 | नग्न: | 920 |
| द्र्ह्यः | ४७ | नड्वला | 38 |
| द्वापरम् | ४७,६७ | न न्दितीर्थम् | 838 |
| द्वारका | ६८,७२ | नन्दी | ४४,१९५ |
| द्विजाति: | १४८ | नन्दीश: | 838 |
| द्वेपायनः | 30 | नन्दीश्वर: | ¥₹,'0१ |
| घनञ्जयः (व्यासः) | १०५ | नन्दीश्वरम् | 188 |
| घनम् | १४५ | नर: | १६ |
| घनुः | १२१ | नरः (ऋषिः) | . 888 |
| घनुर्वेद: | , 3X | नरः (गयपुत्रः) | 90 |
| षनु वैदिवद् | ६२ | नरकाः | ९४,१४७ |
| घर: | 80 | नर्मदा - | १४९,१९० |
| षमंः ७,८,३१,३२,४०, | ७३,१५५,१५६ | नर्मदासंगमः | १९१ |
| | | | |

| नमंदोदधिसङ्गमः | १९७ | निष्पलेशम् | १९२ |
|-----------------------|------------|---------------------|----------------------|
| नरिष्यन्तः | पू३ | नीलपर्वतः | ९६, १४९ |
| नवरयः | ६२ | नीललोहित: | १५ |
| नवशस्येष्टिः | १५७ | नीलावल: | |
| नहुप: | . ५७ | नृतिह: | ९० |
| नाकुलम् | 83 | गृत्तह. नैमिलिक: | 88 |
| नागतीर्थम् | 58 | नैमिषम् | 200 |
| नागद्वीपः | 33 | नैमिषार एयम् | १९,१९८ १४९ |
| नागवीयी | 80 | नैषधम् | 90 |
| नाभागः | ¥ ¥ | नैष्कम्यं म् | 80 |
| नामिः . | 03 | न्याय: | १५०,१६६ |
| नाम | २५ | न्यायविद्या | 38 |
| नामानि | १६ | पञ्चतपस्तीर्थम् | 888 |
| | १२,६२,१९२ | पञ्चनदम् | १९९ |
| नारदीयम् पुराणम् | 8 | पञ्चब्रह्मारिए | १४६ |
| नारदीयम् (उपपुराणम्) | | पञ्चरात्रविद् | १५७ |
| नारसिंहं पुराराम् | 8 | पञ्चलक्षराम् | 2 |
| नारायणः १३,१४,१७, | १८,२०,२२, | पञ्चिवशकः | २०४ |
| ४२,१००,१०७,१२८ | | पञ्चाग्निः | १५० |
| (C) | १८६ | पञ्चायतनम् | ७९ |
| नारायणः (ऋषिः) | 888 | पतिताः | १५० |
| नारायणः | १०८ | पद्मनगरी | 860 |
| नारायणम् (तीर्थम्) | 6 3 | परमात्मा | ११३,१२१ |
| नारायणम् (पुरम्) | १०३ | परमेश्वर: | १२३ |
| नारायणः (हरिवर्षस्यः) | 93 | परमेष्ठी | ९०,१२१,१२३ |
| नारायणी | Ę | परार्घकम् | १२,१३ |
| नास्तिक्यम् | १७४ | पराशर: | ५२ |
| नितलम् | 83 | पराशरः (व्यासः) | १०८ |
| नियतिः | ३३ | पराशरोक्तम् (अपपुर | (।ग्मू) २ |
| निरुषतम् | 3 ? | परिमार्जनम् | १३२ |
| निऋ ति: | 120,121 | पर्वत: | 33 |
| निश्यः (प्रलयः) | २०० | पवमानः | 38 |
| निग्रंन्था: | ७५,१५१ | पवित्राणि | 184 |
| निर्वाणम् | १२४ | पशुः | १६, १२१ |
| निषध-पवंतः | ९६ | पञ्चरात्रम् | 83 |
| | | | |

(%)

| पाञ्चरात्रम् (मोहत | शास्त्रम्) ३१ | पुरासमंहिता | 6 |
|------------------------|---------------|-------------------|-----------------|
| पाञ्चरात्रः | 2 इंट | पुरासानि | ३१,१०८,१३५ |
| पाञ्चरात्रिकाः | ७५ | पुरुष: | ११६,१२२,१२४,१६४ |
| पातालाः | ९५ | पुरुषोत्तमः | १७८ |
| | | पुरुषोत्तमम् | १८४ |
| पादाङ्गुष्ठाविष्ठित। | | पुरूरखाः | ४७ |
| पाद्मः (कल्पः) | १३ | पुलस्त्यः | १४,१७,३४,४२,५४ |
| पाद्म-पुरासम् | ٩ | पुलहः | १७ १५,३३,५२,५४ |
| पावनम् | १६० | पुब्करः | १२१ |
| पारसीकाः | १०० | पुष्कर द्वीप: | ९६,१०४,१२१ |
| पाराशर्यः | १०८ | पुब्करम् | 308,388 |
| पारिजातवनम् | 100 | पुष्कराधिपति: | 32 |
| पारियात्र-पर्वतः | 009,33 | पुष्टिः (दक्षकन्य | 11) 29 |
| पार्थ: | 50 | पुष्पोत्कटा | ४२ |
| पार्वती | २३,४३ | पूरुः | 40 |
| पावकः | 38,888 | पूर्णमासः | 38 |
| पाविकः | १२१ | पूर्वदेश: | १००,१७५ |
| पाशुपतम् | ४३,१६९ | पूर्वपश्चिमम् | ४३ |
| पाशुपताः | १३८,१४१,१८१ | पूषा | ३८ |
| पाशुपतयोग: | १२७,१८८ | पृथिवी | ११,१४ |
| पाशुपतन्नतम् | १दद | पृथिवीविषय: | 80 |
| पाणुपताचाराः | ७४ | पृथिव्युद्धरण्म् | 83 |
| पाषएडा: | १४१ | पृथुः | 38,34,80 |
| पाष एडी | ६,१३८ | पृषध्यः | ४३ |
| विग्ड म् | १५७ | पैतामह-तीर्थम् | 188 |
| पितरः | १४,१७,३४,१५४ | पेतामह-धर्मः | 38 |
| वितामह-तीर्थम् | 48 | पैतामहमखः | 38 |
| पितृगसाः | १४६ | पैल: | १०५ |
| पिशाचः | १६,८१ | पौराणिकी संहि | |
| पुराइरीकम् | १८२ | पौरुषं सूवतं | १२१ |
| पुराड्राः जनपदः | 100 | पोलरस्याः | |
| पुण्यस्थानानि | : 95 | प्रकृतय: | 42 |
| पुत्रः (त्रियवतपुत्रः | 37 (| प्रकृति: | १२२ |
| पुराणम् | १३४,१४८ | प्रचेतसः | १०,६१४,१२३,२०३ |
| पुराणववतृत्वम् | 38 | प्रजापतिः (व्या | सः) ३६ |
| EX WE | | | सः) १०५ |

(88)

| प्रजापतिः | १३,१३४,१४७ | प्रातःस्नानम् | १४३ |
|-------------------|--|------------------------|--------------------------|
| प्रजापतिक्षेत्रम् | 5 ¥ | प्रा यश्चित्तम् | १७२,१७७ |
| प्रजापतिमूर्तिः | 99 | प्रायश्चित्तविधिः | १६६ |
| प्रजासर्गः | 33 | प्रियवतः | १६,३४,८६ |
| प्रग्वः | १२१,१२८,१४६,१६७ | प्रीति: | १७,३३ |
| प्रतिसर्गः | २०३ | प्लक्षः (द्वीपः) | १६ |
| प्रतिसंचरः | १३,२०० | प्लक्षद्वीपः | १०२ |
| प्रतिष्ठानम् | 50 | प्लक्षद्वीपेश्वरः | द९ |
| प्रतिहर्ता | 03 | प्लक्षावतरणम् | १८१ |
| प्रतीहार: | 90 | फल्गुतीर्थम् | 888 |
| प्रत्यङ्गि रसजाः | प्रश | बदर्याश्रमः | १८३ |
| प्रत्याहारः | १२६ | बन्धः | १२२ |
| प्रत्यूषः | 80 | बहिषदः | 38 |
| प्रद्युम्नः | ७१,१०७ | बलभद्रः | 48 |
| प्रघानम् १० | ,१०५,११६,१२२,१२३ | वलिः | ४८,४९ |
| प्रघानविनियोग | ाज्ञः १२२ | वितिर्वार्थम् | १९२ |
| प्रपञ्चपरमात्म | ानी ११३ | बहुपुत्रः | ४०,५१ |
| प्रभञ्जनः | १२० | बह् वृचः | १५० |
| प्रभा | ५२,५५,४७ | बाएाः | ५१,७१ |
| प्रभातः | ५२ | बाग्तीर्थम् | १९२ |
| त्रभासः | 389,08 | बालखिल्याः | 38 |
| प्रभासम् | १७७ | बाली (महादेवावतारः | |
| प्रयागः | ८३,व१,द६ ,८८,१७७ | बुद्धः (दक्षकन्या) | १७ |
| प्रलय: | १०, २०० | बुध: | ५३ |
| प्रसृति: | १६ | बुधः (महः) | ९१,९३ |
| प्रसेनः | 63 | बृहस्पतिः | ९३,९४ |
| प्रस्ताविः | 03 | बृहस्पतिः (व्यासः) | १०५ |
| प्रहाद: | 81,85,86,40,858 | बोद्धः | १५१ |
| प्राकृत-प्रलयः | २००,२०३ | | २१,१२४,१६५ |
| प्राकृत-सर्गः | 18 | | ः,९,१२६,१६२ |
| प्राचीनबहिः | \$1 | ब्रह्म वर्षम् | 838 |
| प्राचीनावीती | १३० | | ८४,१८२,१९३ १ ३ |
| प्रा गापत्य-तीष | The second secon | ब्रह्मदिवसम् | |
| प्राणः | ३३,११४ | ब ह्मपृष्ठम् | १८२ |
| प्राणायामः | १२६,१६५ | ब्रह्मप्रवचनानि | ७४ |
| | | | |

(१२)

| ब्रह्मबन्धुः | १५० | भरताश्रमः | १८२ |
|-------------------------|--------------|------------------|-----------------|
| ब्रद्धलोकः | ९५ | भरद्वाजः | 48 |
| ब्रह्मवादी (नव ब्राह्मए | j:) | भरद्वाजः (व्यास | |
| व्रह्मविज्ञानम् | \$ 68.8 | भवः | १७,९० |
| ब्रह्मविष्गू | 90 | भविष्यत्-पुराग् | |
| ब्रह्मवैवत्तं-पुराणम् | ? | भगीरथः | - 44 |
| ब्रह्मसावर्णः | 803 | भव्यः | ८९,९० |
| ब्रह्महत्या | १०० | भागवत-पुरागाः | |
| ब्रह्मा ६,८,१०,११, | १३,१४,१६,१७, | भागीरथी | , ५५ |
| १८,१६,२०,२१, | २२,२३,३६,४०, | भावनः | 80 |
| ६३,९७,१०२,१ | ०३,१०५,१२१, | भानु: | ४०,९१ |
| १२३, | १६७,१६८,१६३ | भानुमती | प्प |
| ब्रह्माराः (नव) | 930,22,0, | भारतवर्षम् | ९६,९९ |
| ब्रह्मार्डम् | ११,१०५ | भारमूर्तिः | १९६ |
| बह्म एडपुरा एाम् | 1 | भार्गवाह्नयम् (स | |
| ब्रह्माएडम् | २ | भावना | 8,4 |
| ब्रह्मार्प एम् | ९,१० | भास्करः | १०१ |
| ब्रह्मावत्तं: | १२१ | भिक्षा | १४६,१६४ |
| इ ह्मेश्वरम् | १९२ | भिक्षु: | 4 |
| बाह्मणम् | 98 | भिक्षुक: | . 9 |
| ब्राह्म पुराणम् | 8 | भीमेश्वरम् | १९२,१९९ |
| ब्राह्मी संहिता | 2 | भुवलीक: | 98 |
| ब्राह्मी सृष्टिः | 12,18 | भूता: | १५,१६ |
| भक्ताः | १२८ | भूतानि | ११,१६,२०३ |
| भक्तिः | ३२ | भूलोंकः | ९१,९६ |
| भक्तियोगः | ४,१२७ | भृगुः | १५,१७,३३,६५,१९५ |
| भस्यम् | १३१,१६४ | भृगुवीर्थम् | १९५ |
| भगः | ३८ | भृगुत्ज्ञम् | १५९ १८२ |
| भगवती (देवी) | २३ | भृगुः (महादेवाव | तारः) १०६ |
| भद्रकर्णम् | १४९ | भृगुशाव: | 48 |
| भद्रा नदी | ९८ | भृग्वादिसर्गः | 33 |
| भद्रकाली | 36 | भैक्षम् | १६४ |
| भद्रेश्वरम् | १९१ | भैरवः | ४७, ६६ |
| भद्राश्ववर्षम् | ९८ | भोज: | ६ ३ |
| भरतः | ५६,९० | भीत्यः | १०९ |

(१३)

| भौमः | 91,98 | महादेवः १५,२२,५५,६६,७०,९७, |
|--------------------|------------|----------------------------|
| मगघा: | 900 | १०३,११२,११७,१५६ |
| मगघारस्यम् | 968 | महादेवावताराः १०९ |
| मङ्कु, एकः | १७८ | महानदी ८३,१७८ |
| पिएकणं-तीर्थम् | 58 | महानात्मा ११,११५ |
| मत्स्योदरी | ७९ | महान्तः ६०,६० |
| मदनः | १०२ | महाप्रस्थानिकम् १६३ |
| मधुवनम् | १८० | महामन्दं सर: ९६ |
| मध्यदेशः | १०० | महाभागवताः १०३ |
| मध्यमेशम् | ८२ | महाभूतानि (२२ |
| मध्यमेश्वरम् | ७२ | महाभैरवम् १९९ |
| मनः | 88 | महामारी ३३ |
| मनव: | १२० | महामेरु: ६१ |
| | 38,880,888 | महायज्ञाः १४६ |
| 3 11011-71 | १७२ | महायाम: (महादेवावतारः) १०९ |
| मनुः (सूर्यपुत्रः) | ५२ | महायोग: ४२,१२५ |
| मनुष्याः | १५ | महालयः १८१ |
| मनोहर-तीर्थम् | १९६ | महालयम् १४९ |
| मन्त्राः | ३७,३८ | महालक्ष्मी: १०१ |
| मन्दः | 98 | महावीत: ५९ |
| मन्दरः (पर्वतः) | २,४३ | महान्याहृति: १३५,१७१ |
| मन्दाकिनी | ८२,१०० | महाहृदः १८२ |
| मन्वन्तरम् | 12 | महेन्द्र-पर्वतः ९९ |
| मन्बन्तराग्यि | १०६,१०७ | महेश्वरः १०,१०१,१०५, |
| मरीचिः | १५ १७,३३ | १२१,१६३, |
| मरीचिपाः | १८७ | महोदधिः १६६ |
| मरुत्वती | 80 | मातरः ४७ |
| मरुखन्तः | 80 | मातामहाः १५४ |
| मरुदालयम् | १६३ | मातृतीर्थम् १९३ |
| मलयः | 33 | मातृयागः १५४ |
| महद्ब्रह्म | १२२ | मातृश्राद्धम् १५४ |
| महलींकः | ९५ | मात्स्य-पुराणम् १ |
| | 129 | माद्राः १०० |
| महाकल्पः | 999 | माधवः (प्रयागस्थः) ५९ |
| महाकालतीर्थम् | | मानससरः ९६,९७,१८२ |
| महातीर्थम् | १८१ | मानव-धर्मः १७७ |

(88)

| मानसम् | १६६ | मैनाकः | ३४,१८२ |
|----------------------|--------------|--------------------|---------------|
| मानसोत्तरपर्वतः | 8 | मोक्ष: | 348 |
| मान्धाता | पू३ | मोक्षशास्त्रम् | १६४ |
| माया २,४,११, | २४,११६,१२?, | मोहकलिलम् | १२१ |
| | १२२,१२३ | मोहशास्त्राणि | ₹१,४३,१८€ |
| मायापाशः | १२२ | म्लेच्छभाषा | १४0 |
| मायामयी सीता | १७६ | यक्षाः | १५,१६ |
| मार्कण्डः | ३३,६६,८५ | यजुवेद: | १०८,१६७,१५० |
| मार्कण्डेयं पुराराम् | 8 | यजू वि | ६,१६,१३५ |
| मार्जनेम | १४४ | यज्ञ: | १६ |
| मालकाः जनपदः | 808 | यज्ञनिष्पत्तिः | Ę |
| मालवा जनपद: | १०० | यज्ञप्रवर्तनम् | ७४ |
| मारिषा | 3 € | यति: | ९,५७ |
| मारीचंम् (उपपुरार | णम् र | यतिपात्राणि | १६४ |
| माहेश्वरम् (उपपुरा | णाम्) २ | यदुः | ५७,५८ |
| मीमांसा | १६६ | यम: | ५२,१२० |
| मुक्तिः | १२१ | यमतीर्थम् | 23,85 |
| मुख्यसर्ग | 18 | यमाः | १२५ |
| मुण्डपृष्ठम् | १८२ | यमुना | ५२,८८,८५ |
| मुनयः (सूर्यरक्षाधि | ष्ठतार:) ६२ | यमुनाप्रभवः | १८२ |
| मुनयः (दक्षयज्ञहताः |) 35 | ययाति: | पूर् |
| मुनि: | प्र | ययातितीर्थम् | 28 |
| मुनि: (दक्षकन्या) | 80 | यशोवती पुरी | 23 |
| मुहूर्त: | Yo | याज्ञवल्क्य: | ६५ |
| मुहूत्ताः | ४५ | यामलम् (मोहनार्थं | शास्त्रम्) ३१ |
| मृकण्डु: | ३३ | यामाः (देवाः) | १६ |
| मृत्यु: | 198 | यामी | 80 |
| मृत्युः (व्यासः) | १०८ | युगधर्माः | ७३ |
| मेघ: | 508 | युगानि | १२ |
| मेघाः | ₹0१ | युवनाश्व: | प्र |
| मेघा | 58 | योगः ४ | ,१०,११४,१२५, |
| मेवा (दक्षकन्या) | १७ | | १२७,१८८,२०४ |
| मेधातिथिः | 58,80 | योगः (पाशुपतः) | |
| मेना | २३,२४,३४ | योगः (माहेश्वरः) | \$? |
| मेरु: | ६६,६८,१२१ | योगक्षेमी | 188 |
| मेरुमध्यम् | £0 | योगनिद्रा | ६४ |
| | | | |

(१५)

| योगशास्त्रम् | ६५ | रोमहर्षण: | 8 |
|----------------------|----------------|--------------------------|------------|
| योगाभ्यासः | १६२ | रोहिगी | ६३ |
| योगी | ८,१६३ | रौच्यः (मनुः) | 308 |
| योगेश्वरः | १२,११७ | लक्ष्मणः | पू६ |
| योधनींपुरम | F3 \$ | लक्ष्मी: | ३३ |
| रक्षांसि | १६ | लक्ष्मी: (दक्षकन्या) | १७ |
| रक्षोवती पुरी | ७३ | | (६,१७६ |
| रजः | 03 | लजा (दक्षकन्या) | १७ |
| रथजित् | 0.3 | लम्बा े | 80 |
| रम्यक-वर्षम् | ६६,६= | लाकुलम् | १८६ |
| रम्यवर्षम् | 03 | लाङ्गलो (महादेवावतार:) | 308 |
| रसातलम् | દ્ય | लिङ्गम् ७०,७६,१६८,१८ | न्प्र,श्यद |
| रश्मयः (सूर्यस्य | <i>\$3</i> (| लैङ्गम् पुराणम् | 8 |
| राका | ३३ | लोकपद्मम् | 23 |
| राक्षसा: | १५,६८,६२ | लोका: | 13,88 |
| राज्ञी | ५२ | लोकाक्षिः (महादेवावतारः) | |
| रामः ५ | ६,१००,१२१,१७६ | लोकालोक: | १०५ |
| रामः (बलरामः |) | लीहितग्रह: | £3 |
| रामेश्वरम् | १६६ | लौकिकगानम् | ७४ |
| रावराः | प्र,प्र,ह४,१७६ | बजम् | १२१ |
| | १,२३,३६,४३,५५, | वटमूलम् | 50 |
| ६६, | ६७,८१,१२०,१६५ | वत्सरः | 78 |
| च्द्रकोटि: | १८० | वनस्थ: | ७,८, |
| हद्रगायत्री | १४६ | वपुः (दक्षकन्या) | १७ |
| च्द्रपल्य: | 58 | वपुष्मान् | 58,80 |
| रुद्रसावर्णः (मनु | 308 | वयः | . १६ |
| च्द्राः | १४,२१,२३,१०१ | वयांसि | १६ |
| रुद्राः (मन्त्राः) | १४६ | वराह: (विष्णु:) | \$ \$ |
| रुद्राध्यायः | ३५,१६३ | वराहतीर्थम् | १६६ |
| रुद्रा घ्यायी | १५०,१६२ | वराहपर्वतः | 388 |
| रुक्मिग् गी | 48 | वरुग: | 850 |
| रुचि: | १६ | वर्णाश्रमाचारः | 8 |
| रुचि: | १०६ | वर्षाः (ऋतुः) | 83 |
| रेवती | Ę¥ | वसवः (ऋतुः) | 83 |
| रैवत: | १०६ | वसिष्ठः १५,१७,३४,५२, | |
| रेम्रान्त | प्रर | | 4,828 |
| | | | |

(१६)

| वसिष्ठः (व्यासः) | १०५ | विद्या | ११६ |
|----------------------|---------------|------------------------|---------------|
| वसुः | 80 | विद्याविशेष: | १६३ |
| | ६३,६५,१०७ | विधाता | ३३ |
| वसुमनाः | પૂરૂ | विनता | ४०,५१ |
| विह्नः १७,३४,३८,५ | | विनायक: | १२०,१२१, |
| वाका | प्र | विन्ध्य: | 33 |
| वाचश्रवाः (व्यासः) | १०८ | विन्ध्यपाद: | 85,853 |
| वािणज्यम् | १४८ | विपाशा | 188 |
| वातचक्रम् | 83 | विभावरी पुरी | 97 |
| वानप्रस्थः | 3 | विभूति: | 8 |
| वानप्रस्थाश्रमः | १६२ | विमलेश्वरम् | १९७ |
| वामदेव: | १२० | विरज: | 90 |
| वामन: | 88,40,800 | विरजा | ३३,५७,१७८ |
| वामनम् (उपपुराणम् |) २ | विराड् | १६ |
| वामनम् पुराराम् | ٧,٦, | विरोचनः | 85 |
| वामम् | 37,83,858 | विल्वकम् | १४९ |
| वामाः | ৬ ধ | विशल्यकरणी | 888 |
| वामाचारः | १३७ | विशल्या | 939 |
| वायवीयपुराणम् | 8 | विशेषा: (भूतानि) | 88 |
| वायवीयोत्तरपुराणम् | ६५ | विश्रवाः | पुर |
| वायुः ११,६१,६ | ४,१०३,१२१ | विश्वकर्मा | 80 |
| वायुतीर्थम् | 5 ₹ | विश्वकर्मा (सूर्यरिशः | £3 (|
| वाराणसी ६१,७७,७ | E, 988 339, 3 | विश्वम् | 398 |
| वाराह: | २०२ | विश्वरूप: | १२३ |
| वाराह (कल्पः) | १३ | विश्वरूपतीर्थम् | दर् |
| वाराह-तीर्थम् | 28 | विश्वश्रवाः (सूर्यरिमः | () १३ |
| वाराह-पुराणम् | 8 | विश्वा | 80 |
| वारुण-द्वीप: | 33 | विश्वामित्र: | ५४,५६ ६०, |
| वारुणीष्टिः | प्र | विश्वेदेवा: | 80 |
| वाल्मीकिः (व्यासः) | १०५ | विश्वेश्वर लिङ्गम् | ७६,७९ |
| विकारा: | १२२ | विष्टिः | ५२ |
| विजयम् | १७८ | | , १८, १६, ३८, |
| विज्ञानम् | १३७ | ४८,५८,१०१,१० | ७,१२१,१८३ |
| वितलम् | ह्यू | विष्साुतीर्थम् | १६३ |
| वितस्ता | 888 | विष्याुलोक: | ६५ |
| विदेहुः | प्रध | वीतिहोत्र: | ξo |
| | | | |

(29)

| वीरण: | 80 | वैशम्पायनः | १०८ |
|--------------------------|-----------|-------------------|---------------|
| वीरभद्र: | ३८,१२१ | वैष्णव-पुराणम् | 8 |
| बीरुध् | १२१ | व्याकरणम् | 38 |
| वृक्षमूर्लानकेताः | १८७ | व्यासः ८३,८४ | ,१०७,१३६,१६२ |
| वृत्तिः | १५८ | व्यासतीर्थम् | १८२ |
| वृषतीर्थम् | १२२ | व्यासाः | १२१ |
| वृषोत्सर्गतीर्थम् | १८६ | व्योम | १२१ |
| ृष्टि: | ३३ | व्रता नि | १६४ |
| विष्यव्सेन: | १६६,१७० | शक्तिः | ६,२३,२४,५२, |
| वेण: | ३४ | | ११६,१२३,२०४ |
| वेत्रवती | 388 | र्शाक्तः (व्यासः) | १०८ |
| वेद: ६,३१,३ | २,७४,१३४, | হাক: | ३८ |
| १३५,१५ | 339,888, | शकतीर्थम् | १६२ |
| वेदवादिवरूद्ध-शास्त्राणि | १८६ | शङ्कर: | प्र,६८,७५,१२१ |
| वेदबाह्य: | ४३ | शङ्कुकर्णः | 5 |
| वेदविकायणः | ७४ | शतकृतुः | १२१ |
| वेदव्यासाः | ७४ | হারনিব্ | •3 |
| वेदशब्द: | १६ | शतरुद्रियम् १२६ | १,१३६,१८०,१८७ |
| वेदशिराः | ३३ | शतरूपा | १६,३४ |
| वेदशीर्ष: | 308 | शत्रुघ: | प्रह |
| वेदा: | ७०,१०८ | शनि: | ४२ |
| वेदाङ्गानि | १३५,१७६ | शनैश्चर-ग्रहः | £3 |
| वेदानुशासनम् | 888 | शम: | १३७,१३८ |
| वेदान्तः | १६४,१६६ | शामु: | ३८,१२१ |
| वेदान्तसारः | १२७ | शरद् (ऋतुः) | 83 |
| वेदान्ताभ्यासः | १६२ | হামিষ্ঠা | 40 |
| वेदाभ्यास: | १४४ | श्याति: | ५३ |
| वैकुण्ठः (विष्सुः) | १०७ | হাহাী | \$3 |
| वैखानसमतम् | १६२ | शांकद्वोप: | ६६,१०३ |
| वैतरएी | १८२ | शाकद्वीपेश्वरः | 37 |
| वैदिकमन्त्रः | ६४ | शाकपण्शिनाः | १८७ |
| वैदिकी श्रतिः | २०४,३०३ | शाखा (स्वशाखा | |
| वैभाज-वनम् | . ६६ | शाण्डिल्यः | ५२ |
| वैराग्यम् | ४,७४ | शान्तिः | १२४ |
| वेराजाः | Х3 | शान्तिः (दक्षकन्य | |
| वैवस्वत मनुः | १०६ | शानग्रामः | ₹४,१७5 |
| | | | |

(25)

| शाल्मलिः (द्वीपः) | ह ६ | श्रद्धा (दक्षकथा) | १७ |
|------------------------|------------|---------------------|-------------|
| शाल्मलीशः | 32 | श्राद्धकल्प: | १५३,१५४, |
| शाल्वा: | १०० | श्रद्धादेव: | १०६ |
| शांशपायनः | ६५ | श्राद्धम् १५ १४७, | १५२,१५३,१५४ |
| शिक्षा (वेदाङ्गम्) | 38 | थावक: | १५१ |
| शिखण्डधृक् (महादेवाव | तार:) १०६ | थावस्ति: | प्रव |
| शिखण्डी | ३५ | श्रावस्ती: | पू३ |
| शिखितीर्थम् | १६६ | श्री; | 850 |
| शिलाद: | 885 | श्री: (लक्ष्मी:) | २,३,४ |
| शिलाशय्या | १८७ | श्रीतीर्थम् | 58 |
| शिवः १७,१६, | २०,२१,१०० | श्रीदेवी: | १०१ |
| शिवधमरूर्याम् (उपपुरा | ाणम्) २ | श्रीशैल: | 388 |
| शिवमाहात्म्यम् | 388 | श्रुति: | ११,१६४,१७६, |
| शिवा | 28 | 3 | १८१,१८६,२०३ |
| शिशिरः ऋतुः | 83 | श्वफल्कः | ६३ |
| शुक: | प्र | रवेत: | १५० |
| शुक्तिमान् पर्वतः | 33 | इवेतद्वीप: | 7,803 |
| गुक: | ५२,६५,६४ | इवेत-पर्वत: | 8 इ |
| शुक्रः (ग्रहः) | 83 | श्वेत: (महादेवावत | ारः) १०५ |
| शुक्रतीर्थम् | 838 | श्वेतवर्षम् | 03 |
| शुचि: | 3 8 | श्वेताश्वतरः | 34 |
| शुद्धवती पुरी | 95 | सगर: | ४५ |
| शूद्र: | ७,७५,१४७, | सङ्गल्पा | 80 |
| शूद्राः जनपदः | 200 | सङ्गम: (प्रयागस्यः | :) < |
| शूरसेन: | 4 द | सङ्गमेश्वरम् | १९३ |
| शूपंगुखा | प्र | संज्ञा | ५२ |
| शूलभेद-तीर्थम् | १६२ | सती | ३६ |
| श्ली (महादेवावतार: | 308 | सती (दक्षकन्या) | 80 |
| श्रृ ज्वद्वर्षम् | 03 | सत्यः (विष्साुः) | 20'9 |
| शृङ्गी | 23 | सत्यम् | १२१,१२५,१३७ |
| शेषः (पातालस्थः) | ९५ | सत्यलोक: | ९५ |
| शैव-पुराग्णम् | 8 | सत्वतः | ६२ |
| शैवालभोजनाः | १८७ | मत्त्वम् | 828 |
| शीचनः | 90 | सत्राजित् | ६३ |
| | १६,१३२,१४३ | सद्यः शीचम् | १४५,१५६ |
| शीचाचार: | १३३ | सनक: | 28 |
| | | | |

(38)

| सनत्कुमारः १४,४८, | ९७,१०२ | सह्यपाद-पर्वतः | 33 |
|--------------------------|---------|------------------------|---------|
| सनत्कुमारोक्त-पुराण्म् | 8 | संहार: (प्रलय:) | २०३ |
| सनन्द: | 88 | संहिता | ७४ |
| सनन्दनादय: | १०२ | सहिष्णुः (महादेवावतारः | 309 (|
| सनातनः | 58 | संहाद: | 88 |
| सन्तोष: | १२६ | सांख्य: | २३ |
| सन्ध्या | 883 | सांख्यदर्शनम् | १८५ |
| सन्ध्यावट: | 50 | | १४,१८८ |
| सन्ध्योपासनम् । | १४३,१४४ | सांख्ययोगी | १८९ |
| सन्नति: | १७,३४ | सात्वता: | ६२ |
| संन्यासः | १६३ | साधक: (गृहो) | १५८ |
| सपिण्डीकरगाम् | १४८ | साध्या | 80 |
| सप्तगोदावरम् | १७५ | सान्तपनम् | १७३ |
| सप्तर्षय: | १०६ | सांन्यासिक: | 5 |
| सप्तिषमण्डलम् | 98 | सापिण्डचम् | १५६ |
| सबीज: | 208 | सामवेदः १०८, १ | २१,१६७ |
| समाधि: | १२६ | सामानि ६, | ,१६,१३५ |
| सम्प्रक्षाला: | १५७ | साम्बः | 10 |
| सम्भूति: (दक्षकन्या) | १७,३३ | साम्बम् (उपपुराणम्) | ? |
| संयद्वसुः (सूर्यरिमः) | ९३ | सारस्वतः (व्यासः) | १०५ |
| संयमनीपुरी | ९२,९७ | सावर्णः (मनुः) | 209 |
| सरस्वती १०१, | १२०,१४६ | सार्वांग: | ४२,६५ |
| सरस्वत्यरुणासङ्गमः | १६६ | सावित्री १०२,१२०,१ | २१,१३६. |
| सर्गः (ऋबुद्धिपूर्वकः) | १४ | . १६३,१ | ४५,१७२ |
| सर्गः (प्राकृतः सर्गः) | १२ | सावित्रीतीर्थम् | १९६ |
| सर्गबिन्दु: | १९६ | सिद्धाः | १०२ |
| सर्पाः | १५ | सिद्धिः (दक्षकन्या) | १७ |
| सर्वाः (सूर्यरथारूढाः) | 99 | सिद्धेश्वरम् | १६३ |
| सर्वसामुद्र-कूप: | 50 | सिनीवाली | ३३ |
| सवन: | 32 | सिह: | १२१ |
| संवर्तक-तीर्थाम् | 58 | सीता | ४६,१७६ |
| सविता (व्यासः) | 205 | सीता नदी | 95 |
| सविता | 98 | सुखा पुरी | 97 |
| सवितृवनम् | ९६ | सुग्रीव: | ५६ |
| संसार: | 883 | सुचक्षुः (व्यासः) | १०५ |
| सह्य-पर्वतः | 99 | सुतलम् | 94 |
| | | | |

(२०)

| सुतारः (महादेवावतारः) १० | 9 | सोमेश्वरम् | १७८ |
|--------------------------|------------|---------------------------|-----------|
| | 5 | सीम्य-द्वीपः | 38 |
| | 8 | सौरम् (उपपुराणम्) | 7 |
| | ,5 | सौराष्ट्राः जनपदः | १०० |
| | 95 | सौरि: (ग्रह:) | 98 |
| | (3 | सौवोराः जनपदः | १०० |
| | 0 | स्कन्द: | १२० |
| | 5 | स्कन्दतीर्थम् | १९२ |
| | 33 | स्कान्द-पुराणम् | 8 |
| सुरभिः ४०, | 48 | स्तम्भवीर्थम् | \$38 |
| सुरसा ४०,५ | 18 | स्थानम् (ब्राह्मणादीनाम् | |
| | ६ | स्थानाभिमानिनः | १५ |
| | 3 | | ,१४४,१५६ |
| | 25 | स्मृति: | ३३,१८६ |
| | १५ | स्मृतिः (दक्षकन्या) | १७ |
| | £3 | स्मृतिः (वेदबात्या) | १७ |
| सुहोत्रः (महादेवातारः) | 30 | स्वधा | 38 |
| | २२ | स्वरः (सूर्यरिंगः) | ९३ |
| सूतः १, | ₹ ४ | स्वर्गद्वारम् (तीर्थम्) | ८३ |
| | 1 1 | स्वर्णवेदी | १८२ |
| सूताः (पुराखवक्तारः) | ३४ | स्वलींनम् (तीर्थम्) | ५३ |
| सूर्यः ५३,६१,९२,९४,१ | २० | स्वर्लोक: | 83 |
| 0.0.0 | 58 | स्वस्तिकम् | १२६ |
| सूर्यहदयम् १ | 88 | स्वाच्याय: | १२६,१५३ |
| सृष्टिः १४,१२, | 38 | स्वादूद: | ९६ |
| | X & | स्वायमभुव-मनुः | 9 |
| | 00 | स्वामितीर्थम् | १८२ |
| सोम: ३३,४०,१० | ₹, | स्वायम्भुवमनुः | ३१,१०६ |
| १२०,१४०,१ | 15 | स्वायंभुवमनुः (व्यासः) | १०५ |
| सोमतीर्थम् ८४,१९ | १३ | स्वाहा | १७,३४ |
| | ४१ | षद्कुलोया: | १९७,१९८ |
| | 38 | षडङ्गः | ४०२ |
| | =9 | षडङ्गानि | १२३,१५० |
| | ०९ | षडन्नानि | १४१ |
| | 3.7 | हनूमान् | 48 |
| सोमेश-तीर्थम् | 58 | हर: | १८३ |

(२१)

| हरि: | १०४,१८४ | हिरण्यकशिपु: | 80 |
|--------------------|----------------|------------------------|--------------------------|
| हरिकेश: (सूर्यरिक | <i>ξ</i> 3 (:1 | हिरण्यगर्भ: ५ | ,११ <mark>,१२,१=,</mark> |
| हरिवर्षम् | ९०,९६,६६ | | ५४,१२० |
| हरिश्चन्द्रः | प्रप | हिरण्याक्ष: | 80 |
| हर्यश्व: | ५२ | हिरण्वद्-वर्षम् | •3 |
| हलायुध: | ६३ | हिंसा (ग्रधर्मपत्नी) | १६,१७ |
| हविद्धिन: | ३५ | हूणाः | १०० |
| हंसतीर्थम् | १९६ | हृषीकेश: | |
| हंसप्रपतनम् | 59 | हेमक्टम् | 90 |
| हिमवर्षम् | ९० | हेमक्ट-पर्वत: | ६१,९६ |
| हिमवान् | ९६ | | |
| हिमवत्पृष्ठम् | ३४,६० | हेमन्तः (ऋतुः) | 98 |
| | २४,२९,६८,१८२ | हैमवती (हिमवत्कन्या |) २३ |
| हिरण्मय-वर्षम् | ९६,९९ | ह्राद: | 80 |

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

was a substitute of the second

JAN PRI

Philip to tobusing

13.32,43

\$ 15 may 25 79 79

Digitized by Madhuban Trust, Delhi





